प्रथम अध्याय

सृष्टि की उत्पत्ति

परिवर्तनशीलता

समय परिवर्तनशील है। सृष्टि परिवर्तनशील है और परिवर्तनशील है संसार तथा संसार में बसने वाला मानव। सृष्टि की हर चीज नित्य बदलती रहती है। स्थाई कोई चीज नहीं रह पाती। लकड़ियाँ जलती हैं। जलने के बाद अंगारों का रूप ले लेती हैं। फिर थोड़ी देर बाद अंगारे ठण्डे पड़ जाते हैं। और उनका तेज भी क्षीण होता जाता है। उन पर पहले पतली फिर मोटी राख की पपड़ी बन जाती है और जरा से स्पर्श से बिखर जाती है। क्या कारण है? क्षण भर पहले जो भस्म करने की जो शक्ति रखते थे, अब बिल्कुल ठंडे हो गये हैं। इसी प्रकार बीज को भूमि में बोया जाता है। उसे पानी से सींचा जाता है। अंकुर निकल आते हैं और फिर पौधों के रूप में विकसित हो उठते हैं और देखते ही देखते उन पौधों में उसी बीज के जिससे उनकी उत्पत्ति हुई थी, उसी के समान अनेक बीज उत्पन्न हो जाते हैं। इसका रहस्य है परिवर्तन—*कार्य* और कारण की शृंखला, जिसके कारण इस सृष्टि की उत्पत्ति हुई, संसार का प्रादुर्भाव हुआ, मनुष्य का आविर्भाव हुआ और सभ्यता तथा संस्कृति का प्रकाश उत्पन्न हुआ।

ज्ञान की आवश्यकता

मनुष्य समाज का एक प्राणी है। अतः समाज की प्रत्येक वस्तु से परिचय प्राप्त करना उसका स्वाभाविक कर्त्तव्य है जिससे कि उसका ज्ञान विस्तृत हो सके। सबसे पहले वह यह जानना चाहता है कि वह सृष्टि, जिसके निर्देशन में मानवीय सभ्यता का प्रसार हो रहा है कैसे उत्पन्न हुई? क्यों बनी? कितना समय व्यतीत हुआ है उसको बने हुए? बिना सृष्टि की उत्पत्ति का ज्ञान हुए सामाजिक ज्ञान का कोई तथ्य नहीं, कोई महत्व नहीं। फिर भी मानवीय स्वभाव

जिज्ञासामय जो ठहरा। सत्य का अनुसंधान करने का आदी जो ठहरा। अतः पृथ्वी व सृष्टि की उत्पत्ति की क्रिया को जानना अत्यधिक आवश्यक है।

आज से अरबों वर्ष पहले न पृथ्वी थी, न चन्द्रमा था और न ही नौ ग्रह थे। सम्पूर्ण खगोल ज्वलन्त वाष्प पुंज की भांति था। इस ज्वलन्त पुंज में असंख्य आग के गोले थे। कुछ छोटे, कुछ बड़े। ऐसे ही गोलों में सूर्य भी एक शक्तिशाली ज्वलन्त वाष्प पिंड था। उस समय सूर्य की गर्मी ५ करोड़ डिग्री थी। फौलाद को भी क्षण भर में पिघलाने की शक्ति रखने वाली। सूर्य की भांति अन्य आग के धधकते गोले भी थे। ये सब वाष्प पिंड खगोल में एक दूसरे से लाखों मील की दूरी पर स्वच्छन्द गति से विचरण करते थे। कभी कभी इनकी दूरी कम और कभी और अधिक हो जाती थी। सृष्टि की विशालता का कोई अन्त न था। उस समय में पानी, बादल, जीव, जैसी वस्तुओं का कोई अस्तित्व ही नहीं था।

प्रारम्भिक स्थिति

पृथ्वी की उत्पत्ति के करोड़ों वर्ष पहले खगोल में स्वच्छन्द गति से विचरण करने वाले वाष्प पिंडों के मध्य एक दुर्घटना हो गई। सूर्य रूपी ज्वलन्त वाष्प पिंड से उससे भी शक्तिशाली वाष्प पिंड टकरा गया। टकराने वाले वाष्प-पिंड का तो कोई अनिष्ट नहीं हुआ और वह पुनः अपनी राह चला गया। परन्तु सूर्य की बड़ी बुरी दुर्दशा हुई। उसका अंग भग हो गया। एक नहीं, दो नहीं बल्कि उसके नौ टुकड़े हो गये। ये छोटे छोटे टुकड़े सूर्य से पृथक तो जा पड़े परन्तु उनकी आत्मा एक थी। उनको सूर्य से प्रकाश मिलता था। अतः वे सूर्य के चारों तरफ द्रुत गति से चक्कर लगाने लगे। हमारी पृथ्वी भी इन नौ ग्रहों में से एक ग्रह है। बाकी के ग्रह बुध, शुक्र, बृहस्पति, मंगल व शनि, अरुण, नेपच्यून और प्लूटो कहलाते हैं। इन ग्रहों में बृहस्पति सबसे बड़ा है, मंगल सब से छोटा और पृथ्वी मध्यम कद की है।

सौर परिवार की उत्पत्ति

डा० चेम्बरलेन और डा० मौल्टन का कथन है कि करोड़ों वर्ष पूर्व सूर्य पास एक अन्य लघु वाष्प पिंड का आगमन हुआ। वह बहुत अधिक

था। और निष्क्रिय था। सूर्य के आकर्षण का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु ज्यों ज्यों यह सूर्य के समीप आता गया उसका आकर्षण बढ़ता गया और इसके परिणामस्वरूप सूर्य की भीतरी गुरुत्वाकर्षण शक्ति कम हो गई और सूर्य के दोनों ओर उभार निकल आये और सूर्य के कुछ छोटे टुकड़े उससे अलग होकर उस वाष्प पिंड की तरफ बढ़े। वह वाष्पपिंड पुनः अपनी राह चला गया परन्तु सूर्य से पृथक हुए टुकड़े फिर सूर्य तक न पहुँच सके और उन्होंने सूर्य के चारों ओर वृत्ताकार पथ ग्रहण किया। सूर्य और इस वाष्प पिंड की मुठभेड़ के फलस्वरूप एक साथ पिंड निक्षेप हुआ। पहली बार के निक्षेप से वरुण और अरुण ग्रहों की उत्पत्ति हुई। दूसरे में शनि और बृहस्पति, फिर उपग्रहों उसके बाद मंगल और पृथ्वी, शुक्र और बुध ग्रहों की उत्पत्ति हुई। इसके पश्चात् सूक्ष्म ग्रह बने। इस तरह से विश्व की उत्पत्ति हुई।

हेरोल्ड जेफ्रीज एवं सर जेम्स जीन्स ने इस मुठभेड़ सिद्धान्त में कुछ परिवर्तन किया है। उनके अनुसार इस वाष्पपिंड का आकार सूर्य से बड़ा था। इससे दो उभार सूर्य के दोनों ओर निकल आये। जब यह वाष्प पिंड सूर्य के बिल्कुल नजदीक चला आया तो दोनों में आकर्षण इतना अधिक हो गया कि सूर्य का कुछ भाग दूर जा पड़ा। बाद में ठन्डे होने पर उनसे ग्रहों और उपग्रहों की उत्पत्ति हुई। इस तरह से इस विश्व की उत्पत्ति हुई।

सूर्य एवं अन्य ग्रहों की स्थिति का ज्ञान करना अति जटिल कार्य है। सूर्य पृथ्वी से ९,३०,००,००० मील दूर है। चन्द्र २,३९,००० मील, बुध ३,६०,००,००० मील, शुक्र ६,७०,००,००० मील, मंगल १४,१०,००,००० मील,
ग्रहों की पृथ्वी से दूरी — बृहस्पति ४८,३०,००,००० मील, शनि ८८,६०,००,००० मील, अरुण १,७८,२०,००,००० मील, वरुण २,७९,३०,००,००० मील दूर है। इतनी विशाल संख्या कठिनता से समझ में आ सकती है। श्री एच० जी० वेल्स ने साधारण माप-दण्ड का उल्लेख किया है। उनके कथनानुसार यदि पृथ्वी को एक इंच व्यास की गेंद समझ लिया जाय तो सूर्य ९ फीट व्यास के गोले के सदृश ३२३ गज की दूरी पर होगा। चन्द्र २॥ फीट की दूरी पर, बुध और शुक्र जो कि सूर्य और पृथ्वी के मध्य है, सूर्य के क्रमशः १२५ और २५० गज की दूरी पर, मंगल १३५ फीट पर,

दिन कहने लगे और जो भाग सूर्य के प्रकाश से दूर था वह समय रात कहलाने लगा। पृथ्वी के इतिहास में पहली बार दिन और रात का आगमन हुआ। ऋतु बदलने लगी। चारों ओर रंग बिरंगा परिवर्तन होने लगा। इस प्रकार आधुनिक पृथ्वी का रूप आया।

पृथ्वी की विशेषताएं

आधुनिक पृथ्वी चपटी चौरस नहीं है। यह पिंडाकार पृथ्वी नारंगी की भांति, दोनो छोरों पर चपटी है। इसकी अपनी विशेषताएं हैं। यह सूर्य से ९३० लाख मील दूर है। पृथ्वी का व्यास ७९१,३ मील है और इसका क्षेत्रफल १९,६६,४०,००० वर्ग मील है। पृथ्वी की अपनी एक धुरी है जिसके सहारे वह सूर्य की परिक्रमा करती है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर ३६५¼ दिन में परिक्रमा पूर्ण कर लेती है। इसके अतिरिक्त वह अपनी धुरी पर अपनी परिक्रमा २३ घण्टे, ५३ मिनट में करती है। पृथ्वी का भार १७० हजार शंख मन है। इसकी गर्मी हर दो सौ फीट पर १० (+) बढ़ती है। इसके केन्द्र तक की दूरी ३,९५९ मील है। पृथ्वी की आयु २,०००,०००,००० वर्ष है। जीव की उत्पत्ति ३००,०००,००० वर्ष पहले हुई। मनुष्य की उत्पत्ति ३,००,००० वर्ष पहले हुई। सूर्य पृथ्वी से ३,३२,००० भाग बड़ा है, परन्तु घनत्व में पृथ्वी का ¼ भाग ही है। सौर परिवार के नौ सदस्यों में से केवल पृथ्वी ही एक ऐसा ग्रह है जिस पर जीव व मनुष्य निवास करते हैं।

सृष्टि की उत्पत्ति का इतिहास ऊपर लिखा जा चुका है। परन्तु इसकी उत्पत्ति के बारे में कई मत और सिद्धान्त मालूम किये गये। धर्म और ईश्वर में असीम भक्ति रखने वाले विद्वानों का यह कहना है

ईश्वर की रचना

कि ईश्वर ने ही सूर्य, पृथ्वी व अन्य ग्रहों की रचना की है। ऐसे विद्वानों के पास विश्वास के अतिरिक्त कई बुनियादी तथ्य नहीं है कि जिससे वे ईश्वर की रचनाओं का दिग्दर्शन करा सकें।

विश्व के प्रमुख धर्मों की भी यही कल्पना है। आज से कुछ ही काल पहले तक दुनिया के ईसाई व यहूदी लोग अपनी धर्म पुस्तक बाईबिल के आधार

यहूदी व ईसाई मत

पर यह मानते थे कि ईसा से ४,००४ वर्ष पूर्व अकस्मात् ही एक दिन ईश्वर ने इस सृष्टि की रचना कर दी। उसे इसकी रचना में छः दिन लगे। सर्वप्रथम रात और दिन बनाये गये, फिर ज़मीन, आसमान, पहाड़, समुद्र, नदियां, मैदान, वनस्पति व अनेक प्रकार के जीव जन्तु और अन्त में मानव। सातवें दिन ईश्वर ने आराम किया। इसी लिए सातवें रोज़ को पवित्र दिवस माना जाता है। उसके बाद सृष्टि अपने स्वाभाविक रूप से विकसित होती गई। सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में केवल इतना ही मतभेद था कि सृष्टि की उत्पत्ति बसन्त ऋतु में हुई या शिशिर ऋतु में।

पारसी मत

पारसियों की धर्म पुस्तक 'जेन्दावस्ता' में भी सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में हमें ऐसा ही उल्लेख मिलता है। पारसी धर्म के प्रवर्तक ज़रथुस्त्र के सिद्धान्तानुसार एक व्यक्ति रूप परमात्मा अहुरमज़्द ने सृष्टि की रचना की।

इस्लामी मत

इस्लाम धर्म के पवित्र ग्रन्थ 'कुरान' में भी ऐसा ही विवरण दिया गया है। इस धर्म के प्रवर्तक हज़रत मुहम्मद ने सृष्टि की उत्पत्ति को एक व्यक्ति रूप परमात्मा की देन कहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि मुसलमानों ने यहूदियों के सम्पर्क से ही यह बात अपने धर्म में ली होगी।

हिन्दू दृष्टिकोण

सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में हिन्दू धर्म का भी यही दृष्टिकोण है परन्तु हिन्दू धर्म सृष्टि की उत्पत्ति का कोई निश्चित समय निर्धारित नहीं करता है। हिन्दुओं के मत का आधार है वेद, उपनिषद् एवं दर्शन शास्त्र। इन सब का मूल आधार है ऋग्वेद का नासदीय सूक्त, जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति का रहस्य छिपा है। हिन्दू मत के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति (Creation) नहीं होती, इसका विकास (Evolution) होता है और जब उत्पत्ति नहीं हुई तो कर्ता का प्रश्न ही नहीं उठता। परन्तु फिर भी हिन्दू मत में इसकी मान्यता है। इस जगत का जिससे जन्मादि होता है—वह ब्रह्म है। यह ब्रह्म अभिव्यक्त होता है प्रकृति और पुरुष में। हिन्दुओं के अन्य धार्मिक ग्रन्थों, पुराणों में सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार महाप्रलय के बाद सृष्टि में केवल जल ही जल रह गया था। पहला अवतार मछली के रूप में हुआ। दूसरा कछुवे के रूप में

तीसरा वाराहावतार और चौथा नृसिंह का जिसका आधा शरीर सिंह का और आधा मनुष्य का था। पांचवा वामन अवतार हुआ। जिसमें जीव पशु योनि से मानव योनि में आता है। इस प्रकार धीरे धीरे विकास कार्य चलता रहा।

जैन व बौद्ध दृष्टिकोण

भारतवर्ष में प्रादुर्भूत जैन व बौद्ध धर्म भी सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में, उपर्युक्त सिद्धान्त को ही मोटे रूप में स्वीकार करते हैं। जैन धर्म के अनुसार संसार ईश्वर की कृति नहीं है। वे ईश्वर को विश्व का कर्त्ता व हर्त्ता नहीं मानते। उनके अनुसार निर्माणक के सदैव अंग-प्रत्यंग होते हैं जिनसे वह निर्माण करता है परन्तु ईश्वर निराकार माना जाता है। तब वह विश्व का निर्माणक कैसे माना जा सकता है। जैन लोग सृष्टि की उत्पत्ति का रहस्य पुद्गल व आत्मा (जीव) के मेल में मानते हैं। बौद्ध धर्म भी ईश्वर को सृष्टि का निर्माणकर्त्ता नहीं मानता। इस धर्म के अनुसार कार्य और कारण की शृंखला से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है और यह सृष्टि क्षणिक है, परिवर्तनशील है। बौद्ध लोगों के अनुसार पंचभूत—आकाश, पृथ्वी, जल, वायु और तेज के परमाणुओं के घात प्रतिघात तथा सम्पर्क से ही संसार की उत्पत्ति हुई है।

आधुनिक युग विज्ञान का युग है अतः उपरोक्त अतार्किक धर्म प्रधान मतों की कोई मान्यता नहीं है। आज कोई भी इन सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं कर सकता है। विज्ञान ने सृष्टि की उत्पत्ति के रहस्य को जानने का काफी प्रयत्न किया है परन्तु फिर भी अभी तक हम यह निश्चित रूप से यह नहीं कह सकते कि वैज्ञानिक मत कहाँ तक सही है। वैज्ञानिकों के कथनानुसार आज से

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

अरबों वर्ष पूर्व एक परिव्याप्त ज्वलन्त वाष्प ही वर्तमान था। यह वाष्प कितने अवकाश (Space) में विस्तृत था, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। उस समय इतनी गर्मी थी कि आधुनिक युग के सभी पदार्थ उस समय गैस के रूप में ही थे। फिर उस ज्वलन्त वाष्प के कई करोड़ों टुकड़े हो गये जो आज हमें तारों के रूप में दिखाई देते हैं। सूर्य भी एक तारा ही है परन्तु वह अधिक तेजोमय इसलिये दिखाई देता है कि वह पृथ्वी के समीप है जबकि दूसरे तारे

लगी। कुछ विद्वानों का मत है कि सूर्य और अन्य तारे की टक्कर नहीं हुई बल्कि खुद ही सूर्य का भाग घूमते घूमते उसके शरीर से अलग हो गया। उन टुकड़ों में पृथ्वी मुख्य टुकड़ा थी।

सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में अनेक मत व्यक्त किये जा चुके हैं। परन्तु कौन सा मत सत्य के अधिक समीप है, यह अभी तक निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। परन्तु यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में वर्णित दृष्टिकोण सत्य से बहुत दूर है। क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति ईसा से ४,००४ वर्ष पूर्व नहीं बल्कि करोड़ों, अरबों वर्ष पूर्व हो चुकी थी।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—सृष्टि की उत्पत्ति कब और कैसे हुई ? विस्तार सहित समझाइये।
२—पृथ्वी की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुये उसकी विशेषता का वर्णन कीजिये।
३—सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में कौन कौन से मत प्रचलित हैं ? आपको कौन सा मत युक्तिसंगत लगता है और क्यों ?
४—सौर परिवार से आप क्या समझते हैं ? उसकी उत्पत्ति कैसे हुई ?
५—चन्द्रमा का सौर मण्डल से क्या सम्बन्ध है ? इसकी उत्पत्ति कैसे हुई ?

द्वितीय अध्याय

पूर्व का अंत की उत्पत्ति और विकास

पृथ्वी अप्राण है, अचेतन है। उसमें प्रजनन की शक्ति नहीं है और हो भी कैसे सकती है क्योंकि प्रजनन के लिए प्राणमय एवं चेतन तत्व की आवश्यकता है। परन्तु फिर भी, विचित्र रहस्य है, इसी निष्प्राण पृथ्वी पर भू-तत्व से प्राणमय एवं चेतन का आविर्भाव हुआ। जीव की उत्पत्ति हुई। इस रहस्य को सुलझाने का जितना प्रयत्न किया जाता है उतना ही अधिक उलझता जाता है।

निर्जीव शिला युग के बाद, अतीत कालीन प्राणि चिह्न भी प्रकट होकर अधिकाधिक दीखने लगते हैं। संसार के इतिहास में अतीत प्राणि चिह्नकाल का नाम पूर्व लुप्त जीव काल (Lower Palaezoic Age) रख गया है। जीवविज्ञानवेत्ताओं का कहना है कि दुनिया में सबसे पहले जीव का जन्म समुद्र में हुआ। इन प्राणियों में से किसी के हाथ-पैर नहीं थे। शरीर में हड्डी और मांस तक नहीं थे। क्षुद्र शाखा के कोश, समुद्रतृण, पादपों के तन्तु और पुष्प सरीखे जूफाइट के शिरोभाग आदि प्रमुख थे। ये कोश वाले जीव बढ़ने लगे तो दोनों ओर फूलने लगे। बीच का हिस्सा पतला हो जाता था और अन्त में वह टूट जाता था। इस तरह इनकी वृद्धि होती थी। इनकी मृत्यु खुद तो कभी नहीं होती थी। इस तरह के प्राणी आज भी जल में पाये जाते हैं। इन्हें अमीबा कहते हैं। पानी के सूख जाने या अन्य किसी जीव के खा लेने पर ही ये मरते हैं।

समुद्र में रहने वाले जीवों के बाद हमें समुद्र के और धरती के पास के जीव का रूप मालूम होने लगा। कुछ बिना आकृति के थे, कुछ रस्से के समान लम्बे वनस्पति के रूप में थे। १०० लाख वर्ष तक इस प्रकार प्रारम्भिक जीव के जीवों का राज्य रहा। फिर बड़े बड़े अन्य प्रकार के जन्तु के रूप पैदा होने लगे। कोरल और कीटाणु जमीन पर भी रहने लगे। पहाड़ों की चोटियों से बह कर आई चिकनी मिट्टी पर उन्होंने अपना डेरा डाला। इनके साथ पेड़ पौधों के उगने की क्रियायें भी चलती रहीं। समुद्र की तली में जब काफी भीड़ हो गई तब उन्हें समुद्र की तह छोड़नी

पड़ी और वे भूमि की ओर बढ़ने लगे। सैकड़ों वर्षों तक वायु और गर्मी की

शक्ति से लड़ने के उपरान्त उन्होंने अपने को इस योग्य बना लिया कि वे हवा

राम से रह सकें।

धीरे धीरे पृथ्वी पर वनस्पति का विकास होने लगा। इसके साथ कुछ ऐसे कीटाणु पैदा होने लगे जिनमें हड्डियां थी और हाथ-पैर भी होते थे। जल में मछलियों का विस्तार होने लगा। स्थल पर सरीसृप (रेंगने वाले जन्तु) बढ़ने लगे। नग्न जमीन पर तेज़ी से चलने की आवश्यकता मालूम पड़ी तो उन्होंने अपने पैरों को दुरुस्त करना शुरू किया और पैर बढ़े, शरीर बढ़ा।

मछलियों की उत्पत्ति

इनमें शतपद और सहस्रपद जीव भी थे और आदिम कीड़े भी, प्राचीन राजकेंकड़ों के सजातीय प्राणी भी थे, और समुद्री बिच्छुओं के भी। इस युग के प्राणी बहुत बड़े होते थे। उदाहरण के लिए, सपक्ष नाग (Dragon Fly) के समान तत्कालीन मक्खियाँ ही परों सहित २६ इंच लम्बी होती थीं। कोई कोई प्राणी तो २५-३० फीट लम्बे होते थे। इस युग में प्राणियों के शारीरिक अवयव—आँख, नाक, नाखून तथा दांत आदि का विकास हो चुका था और वे गलफड़ों (gills) द्वारा ही श्वास लेते थे। निर्जीव शिलायुग तथा प्राचीन लुप्त जीव युग (Azoic and Palaezoic Periods) से एक ओर, तथा इसके और वर्तमान युग के बीच में आने वाले नवीन जीव युग (Cainozoic) से दूसरी ओर, विभिन्नता प्रकट करने के लिए—रेंग कर चलने वाले प्राणियों की आश्चर्यजनक वृद्धि के कारण, इस काल को मध्यजीव युग (Mesozoic Age) अथवा सरीसृप युग भी कहते हैं। इस युग को बीते अब आठ करोड़ वर्ष हो गये।

सरीसृप युग के भयंकर दीर्घकाय जानवरों से बचने के लिए कुछ जानवर जमीन को छोड़ कर पेड़ों पर रहने लगे। पेड़ भी अब बढ़ गये थे। इसी समय में इन सताई हुई उपजातियों में एक नवीन प्रकार के सेहरे (Scales) का विकास हुआ। ये सेहरे पहले तो नुकीले कांटों के समान थे परन्तु कालान्तर में परों का ढांचा बहुत और पैना हुआ। इसके अतिरिक्त शीत से बचने के लिए इन जीवों के भीतरी अवयवों में भी परिवर्तन हो रहे थे जिसके कारण आदिम पक्षी उष्ण रक्त वाले हो गए। पक्षियों के विकास में परों (Feathers) की उत्पत्ति पक्षों अर्थात् डैनों (Wings) से प्रथम हुई थी परन्तु जैसे ही परों का विकास हुआ वैसे ही लाक्ष रूप से उनका फैलाव होने की संभावना होने है,

पक्षियों का जन्म

वानरों में पेड़ पर रहने वाले जानवर, जो पक्षी न थे बल्कि दूसरी जाति के जीव थे। वृक्षों पर रहने वाली जाति में मुख्य कर वानर जाति थी जो वृक्षों के पत्तों तथा डालियों पर निर्भर रहती थी। अथवा समय वे वृक्षों के नीचे भी आ कर अपने भोजन की खोज करते।

मानव उत्पत्ति के बारे में डार्विन का मत

डार्विन साहब के मतानुसार मनुष्य इन्हीं वानर जाति की एक श्रेणी है। उसका रहन-सहन व खान पान वनमानुष का-सा था। परन्तु मनुष्य फलों का उपयोग अधिक करने लगा। वह अधिक तेजवान, बुद्धिवान हो गया उसके (फलों) रस की शक्ति का उपयोग भी लेने लगा। उसने हाथों का प्रयोग अधिक किया। पिछले पैरों का प्रयोग सिर्फ चलने व दौड़ने में किया करता था। असख्य बार गिरने उठने के बाद वह अपने सारे शरीर को पिछले पाँवों पर सभालने लगा। यह कार्य कठिन होते हुए भी मनुष्य के लिए लाभकारी सिद्ध हुआ। वनमानुष रूपी मनुष्य वातावरण के साथ संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ने लगा। धीरे धीरे उसका रूप, रंग, हाव भाव, बदलने लगे। वह आधा पशु और आधा वनमानुष था। उसका भोजन बदल गया। भूमि और पेड़ दोनों ही उसके निवास स्थान थे। झाड़ियों के भीतर भी कभी कभी वह रहता था। इसलिए कि वह अपना शिकार आसानी से कर सके। शिकार प्राप्त करने के साथ-साथ उसे अपनी रक्षा का भी भय मालूम होने लगा। अभी तक उसे सामाजिक रक्षा का ख्याल नहीं आया था। अतः अपनी रक्षा के लिए वह कई प्रकार के साधन करने लगा। इसी तरह का जीवन व्यतीत करने वाला जानवर आधुनिक काल के मनुष्य का पुरखा था। इस प्रकार के मनुष्य की उत्पत्ति लगभग ३,००,००० वर्ष पूर्व हुई।

भूगर्भशास्त्रियों का दृष्टिकोण

नवीन जीव युग (Cainozoic Period) जिसको अब लगभग ४ करोड़ वर्ष हो गये हैं, के मध्य में पृथ्वी की उस महान् ग्रीष्म ऋतु का अन्त हो गया और पृथ्वी हिम-कल्प (Ice age) की ओर अग्रसर होने लगी। भूगर्भ-शास्त्रियों ने इन शीत कालों का नाम प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ हिमकल्प रखा है। प्रथम हिमकल्प को प्रारम्भ हुए ६ लाख वर्ष व्यतीत हो गये थे। और चतुर्थ हिमकल्प का अत्यन्त भयंकर शीत ५० हजार वर्ष पहले अपनी

चरम सीमा पर पहुँचा था। इसी काल में मनुष्यों से समानता रखने वाले प्राणी पृथ्वी पर सर्वप्रथम उत्पन्न हुए। इस प्रकार के प्राणियों की हड्डियाँ नहीं मिली हैं परन्तु उनके औजार मिले हैं। यूरोप में इस काल के, धरती में गड़े हुए, ऐसे चकमक के पत्थर मिलते हैं, जिनका उपयोग शायद कूटने, पीसने, या आक्रमण करने में किया जाता होगा। इन औजारों को मनुष्य के समान परन्तु उससे भिन्न किसी चतुर मर्कट ने बनाया होगा।

नृवंश शास्त्र के आधार पर

नरवंश-विद्या के ज्ञाता (Ethnologists) मनुष्य की उत्पत्ति का रहस्य खोजने में लगे हुए हैं। अभी तक जो अनुसंधान तथा शोध कार्य हुआ है उसके अनुसार मनुष्य की वास्तविक उत्पत्ति का रहस्य सुलझाया नहीं जा सकता। जावा में लंगूर के समान एक प्राचीन प्राणी की खोपड़ी का एक अंश मिला है जो ५ लाख वर्ष पुराना माना जाता है। इसकी खोपड़ी आधुनिक पुच्छविहीन मनुष्याकार मर्कट से अधिक बड़ी होती थी और यह सीधा खड़ा हो कर चल सकता था। इसके बाद ढाई लाख वर्ष पुरानी अर्धमनुष्याकार प्राणी के जबड़े की एक—केवल एक ही हड्डी मिली है। इसी के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि यह प्राणी अत्यन्त भारी—दानवकाय—मनुष्य सरीखा रहा होगा। इस प्राणी का नाम हाइडलबर्ग मनुष्य रखा गया। क्योंकि इसके अवशेष हाइडलबर्ग में मिले थे। इसके बाद किसी निम्न मनुष्य (Subman) की खोपड़ी का कपाल मिला जिसे वैज्ञानिकों ने उषा कालीन मनुष्य (Eoanthropus) कहा है। यह प्राणी मनुष्य से काफी मिलता जुलता था। परन्तु फिर भी वैज्ञानिक लोग हाइडलबर्ग और उषा कालीन मनुष्य दोनों में से किसी को भी वर्तमान कालीन मनुष्य का सीधा पूर्व पुरुष नहीं मानते। हालाँकि इनका वंश (Genus) तो वही था परन्तु उपजाति (Species) दूसरी थी। इसके उपरान्त नैंडरथाल नामक स्थान पर

जांघ के ऊपरी भाग की ओर की हड्डी

अनेक नरकंकालों के अवशेष मिले हैं। इन प्राणियों को नीडरथाल के मनुष्य कहते हैं। ये काफी सीमा तक मनुष्य से मिलते थे। परन्तु इनमें भाषा को बोलने की शक्ति नहीं थी। इसके बाद यूरोपीय प्रदेशों में दक्षिण की तरफ से एक अन्य जाति ने प्रवेश किया। इस जाति ने नीडरथाल को मार भगाया। ये इनसे कहीं अधिक मेधावी व ज्ञानी तथा बोलने वाले और एक दूसरे की सहायता करने वाले थे। इस जाति के नर-कंकालों के अवशेष ग्रोमेग्नोन तथा ग्रिमाल्डी की गुफाओं में मिले हैं। शारीरिक शास्त्र (Anstomy) का कथन है कि वे हमारे ही समान थे, वे हमारे सम्बन्धी थे। और वे ही सर्वप्रथम वास्तविक मनुष्य थे। इनका नाम 'होमोसेपेअन' अर्थात् पूर्ण विकसित मनुष्य पड़ा।

हाइडलबर्ग मानव का जबड़ा

नीडरथाल मानव की खोपड़ी

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—आदि जीव कैसे थे? प्रथम महायुग के जीवों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

२—जीवों के क्रमिक विकास पर एक छोटा सा निबन्ध लिखो।

३—स्तनपायी जीवों के प्रादुर्भाव के साथ ही जीव संसार में क्रान्ति कैसे हो गई? समझाइये।

४—मानव की उत्पत्ति कब और कैसे हुई? पूर्ण विकसित मानव का उद्भव कब हुआ?

५—जीव की परिभाषा लिखिये तथा उसकी उत्पत्ति के बारे में स्थापित विभिन्न मतों को समझाइये।

तृतीय अध्याय

प्रकृति पर मानव की विजय एवं सामूहिक जीवन का विकास

बैठा ? इस प्रश्न का रहस्य मानव की व्यक्तिगत विशेषताओं में छिपा हुआ है।

मानव की विशेषताएँ

मानव में कुछ मौलिक विशेषताएं थीं, जो अन्य जानवरों में नहीं थीं। उसके पास मुक्त हाथ थे, सोचने वाला मस्तिष्क था और थी भावों को व्यक्त करने वाली वाणी। अन्य जानवरों के भी हाथ होते थे परन्तु वे हाथ केवल शरीर के संतुलन को बनाये रखने तथा आहार आदि में सहायता पहुँचाने के अतिरिक्त अन्य कोई काम नहीं आते थे। क्योंकि उनकी शारीरिक रचना ही इस प्रकार की थी कि यदि हाथों से अन्य कार्य लेते तो शरीर का सतुलन बिगड़ जाता। वे गिर पड़ते थे। परन्तु मनुष्य के हाथ स्वतन्त्र थे। शरीर का सतुलन करने के लिए पैर काफी थे। हाथों से किसी भी ढंग का कार्य लिया जा सकता था। किसी भी दशा में घुमाये जा सकते थे। फिर हाथ के पंजे की-पंजे के अंगूठे की स्थिति और रचना भी इस ढंग की थी कि सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु भी उसकी पकड़ से निकल नहीं सकती थी। यह मानव की मौलिक विशेषता थी। इसी के सहारे वह जड़ और चेतन पर प्रकृति के साथ संघर्ष में प्रयोग होने वाले श्रम को प्राप्त करता था। दूसरी विशेषता थी मस्तिष्क। अन्य जानवरों के भी मस्तिष्क था। परन्तु उनमें अधिक सोचने विचारने की शक्ति नहीं थी। परन्तु मानवीय मस्तिष्क में सोचने की शक्ति थी, निर्णय करने की शक्ति थी। पूर्व अनुभवों को याद रखकर उनसे लाभ उठाने की शक्ति थी। मानव की तीसरी मौलिक विशेषता थी भावों को व्यक्त करने की शक्ति का माध्यम—वाणी। इस वाणी के द्वारा वह अपने ही समान अन्य मनुष्यों के साथ सम्पर्क बढ़ाने में सफल हुआ। एक दूसरे को अपना संकट बतलाने में सफल हुआ। एक दूसरे का सहयोग पाने में सफल हुआ। यदि मनुष्य में उपर्युक्त मौलिक विशेषताएं न होतीं तो शायद ही आधुनिक सभ्यता का यह प्रसार देखने को मिलता।

मानव द्वारा जड़ और चेतन अर्थात् निर्जीव और सजीव पर विजय की कहानी बहुत ही रोचक एव महत्पूर्ण है। इसके लिए उसे प्रकृति से संघर्ष करना पड़ा। अल्प समय के लिए नहीं; बल्कि दीर्घकाल तक, युग युगान्तर तक। एक ही परिस्थिति और दृष्टि से नहीं बल्कि विभिन्न परिस्थितियों और भिन्न २ दृष्टियों में संघर्ष करना पड़ा था।

प्रारम्भ में मनुष्य ने जंगली जानवरों से बचने के लिए पेड़ों का आश्रय लिया होगा। परन्तु शीघ्र ही उसे भयंकर शीत, आँधी-तूफान और वर्षा का सामना करना पड़ा। उसने पर्वत की गुफाओं और कन्दराओं का आश्रय लिया। फिर क्षुधा शान्ति के लिए उसने जंगल के कन्द-मूल, फल-फूल का आश्रय लिया।

परन्तु इससे वह सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसी समय उसे अनुभव

आदि मानव का हुआ कि पत्थर के टुकड़ों के आघात से वेदना होती है,

शिकारी जीवन कभी २ तो गिर पड़ जाता है और प्राणी बेहोश हो जाता है या मर जाता है। फिर क्या था। उसने बड़े बड़े पत्थरों की सहायता से छोटे २ जानवरों का शिकार करना शुरू किया। शिकार में प्राप्त जानवरों का मांस भक्षण करने लगा, उस समय तक उसे अग्नि का ज्ञान नहीं हुआ था। अतः वह कच्चा मांस ही खाया करता था। फिर उसे एक नया ज्ञान हुआ। पत्थर के टुकड़ों को घिस कर नुकीला बना कर प्रहार करने का। इसके बाद उसने लकड़ी की करामात का ज्ञान प्राप्त किया। धीरे २ उसके मस्तिष्क में लकड़ी के एक सिरे पर नुकीला पत्थर बांध कर शिकार करने की सूझी। इस दिशा में वह अत्यन्त सफल रहा। फिर क्या था—बड़े बड़े जानवरों का शिकार किया जाने लगा। इस नवीन खोज से शीघ्र ही उसने कुल्हाड़े, बर्छे, भाले आदि बना लिये—लोहे के नहीं, पत्थर व लकड़ी के। बड़े बड़े जानवरों की खाल से अब वह अपने तन को भी ढकने लग गया था फिर उसकी दृष्टि जान-वरों की हड्डियों पर पड़ी। उन्हें भी घिस घिस कर वह अस्त्र शस्त्र तथा औजारों का रूप देने लगा। आदि मानव की उस समय की कृतियाँ आज भी यूरोप, एशिया, अमेरिका तथा अफ्रीका के देशों में पाई जाती हैं। इसके बाद मनुष्य ने हाथी दांत का प्रयोग भी किया। अब वह पत्थर, लकड़ी, हड्डियों तथा हाथी दांत की सहायता से नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्र, औजार तथा दैनिक जीवन में काम आने वाली कुछ वस्तुएं भी बनाने लग गया। इन आदिम प्राणियों की सबसे महत्वपूर्ण खोज यही थी। इसी के कारण विद्वानों ने इस युग को 'पूर्व पाषाण काल' कहा है। अर्थात् पत्थरों के प्रयोग का युग। मानव की [illegible], [illegible], शिकार। इसी समय आदि मानव के जीवन में एक [illegible] हुई। उसने प्रकृति की एक [illegible] शक्ति—अग्नि से परिपूर्ण [illegible]

और नालों पर विजय प्राप्त कर ली। एक बार उसने देखा कि लकड़ी के टुकड़े पानी पर तैर रहे हैं। उसने भी लकड़ी के टुकड़े पर बैठ कर नदी सरिता को पार करने का प्रयत्न किया परन्तु सफल नहीं हुआ। वह पानी में डूबने लगा। उसके मस्तिष्क ने और अधिक सोचा और प्रकृति का रहस्य उसकी समझ में आ गया। उसने अधिक वज़न वाले लकड़ी के टुकड़ों का प्रयोग किया और वह पानी पर विचरण करने लगा। फिर उसने लकड़ी की लाठी के द्वारा दूसरे टुकड़ों का रुख मोड़ना भी सीख लिया। मानव ने प्रकृति की इस चेतन शक्ति पर भी विजय प्राप्त कर ली। संक्षेप में हम इतना ही कह सकते हैं कि आदि मानव ने अपनी शिकारी अवस्था में प्रकृति की अनेक प्रवृत्तियों और पदार्थों पर विजय प्राप्त कर ली।

आधुनिक युग में आग जलाना या उत्पन्न करना बहुत ही सुगम है। दो तीन वर्ष का बच्चा भी दियासलाई की सहायता से सरलता के साथ आग जला सकता है। परन्तु आदि मानव ने इस ज्ञान की—आग उत्पन्न करने की, प्राप्ति असंख्य वर्षों के सतत् प्रयत्नों के बाद की थी। अभी तक यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि आदि मानव को इस ज्ञान का परिचय कैसे मिला। कुछ लोगों की धारणा है कि प्रारम्भिक काल में बिजली गिरने से, ज्वालामुखी आ जाने से, या अन्य किसी कारण से आग की उत्पत्ति हुई होगी और

अग्नि का आविष्कार

उसकी चिनगारियों से जंगल के जंगल भस्म हो गये होंगे। मानव भी अन्य प्राणियों की भाँति इस नवीन विपत्ति से घबरा कर उससे दूर भागा होगा। फिर आग की ज्वालाएं कम हुई। जले हुए पेड़ों के समीप ही उसने जले हुए पशु पक्षी देखे। क्षुधा को शांत करने के लिए उसने उन जले हुए प्राणियों का माँस खाया। उसे एक अनोखा स्वाद लगा। माँस कोमल तथा रसदार हो गया था। उसने अपने दूसरे साथियों को भी खिलाया। सब ने प्रसन्नता प्रगट की। आदि मानव ने इस परिवर्तन को आग के कारण स्वीकार कर लिया। बस फिर क्या था। उसने अंगारों को लेकर गुफाओं में रखा और सूखे पत्ते-पत्तियों तथा लकड़ियों की सहायता से अग्नि को रात दिन प्रज्वलित रखे रहा। इस अग्नि से वह माँस पका कर खाने लगा। कभी २ कन्दमूल पका कर भी खाने

लगा। कुछ लोगों की धारणा है कि बड़े बड़े बाँस के पेड़ों की आपसी टक्कर से उत्पन्न होने वाली आग का ज्ञान हुआ होगा। चाहे किसी प्रकार से हो, मनुष्य को अग्नि की प्राप्ति हो गई परन्तु फिर भी अभी तक उसे अग्नि उत्पन्न करने का ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था। जब एक के पास अग्नि खत्म हो जाती तो दूसरे से माँग कर लाना पड़ता था। परन्तु यह समस्या भी सुलझा ली गई। चकमक या सुमाक जैसे कड़े पत्थरों को रगड़ कर या घिस कर औज़ार बनाते समय अग्नि की चिनगारियों को निकलते देख कर उसने अग्नि की उत्पत्ति का रहस्य व ज्ञान भी प्राप्त कर लिया। अब वह सूखे पत्तों को रख कर पत्थरों की आपसी टक्कर से अग्नि उत्पन्न करने में समर्थ हो गया। अग्नि की समाप्ति पर उसे दूसरे मनुष्यों से माँगने की आवश्यकता नहीं रही।

अग्नि के आविष्कार का प्रभाव

अग्नि के आविष्कार ने आदि मानव के रहन-सहन एवं कार्यकलापों में एक नवीन क्रान्ति का सृजन किया। उसकी प्रवृत्तियों में परिवर्तन आया। अब उसने पर्वतीय गुफाओं का परित्याग करके मैदान में निवास करना प्रारम्भ किया। अग्नि को प्रज्वलित रखा जाता था और उसके प्रकाश से हिंसक प्राणी दूर भागने लगे। अर्थात् अग्नि के कारण मनुष्य रात्रि के समय जंगली जानवरों के भय से मुक्त हो गया। मैदान में निवास करने से पारिवारिक जीवन व भावना का अभ्युदय हुआ। अग्नि के प्रयोग से उसके खान पान में भी अन्तर आया। पहले जिन वस्तुओं को नहीं खा सकता था अब उन्हें भी खाने लगा। अग्नि के कारण ही मिट्टी के बर्तन बनाना उसके लिए सम्भव हुआ। क्योंकि इससे पूर्व मिट्टी के कच्चे बर्तन गल जाते थे। अब इन कच्चे बर्तनों को पकाया जाने लगा और पके बर्तनों का जीवन दीर्घतम होने लगा। इसी प्रक्रिया से धीरे-धीरे उसने ईंटों का पकाना सीखा और फिर पक्की ईंटों के सहारे घर बनाना सीखा। ईंधन के लिए लकड़ियों को लाने में उसे काफी श्रम उठाना पड़ता था। अतः इस श्रम से बचने के लिए उसने पहियों का निर्माण किया जिसने कालान्तर में पहिये वाली गाड़ी का रूप लिया। अग्नि की खोज ने आदि मानव की प्रवृत्तियों को बहुत प्रभावित किया।

आदि मानव ने प्रकृति पर विजय प्राप्त की। उसने अग्नि की खोज की। मैदानों में निवास स्थान बनाया। पारिवारिक जीवन की नींव डाली गई। परन्तु एक समस्या उनके सामने आ खड़ी हुई। वह समस्या थी—भाषा या बोली। अपनी इच्छाओं और उद्वेगों को व्यक्त करने की कला। प्रारंभिक काल में बोलने के अवयवों का विकास तो मानव प्राणी में पाया जाता है। वे चिल्ला सकते थे, हंस सकते थे, रो सकते थे। परन्तु अपने मनोभावों को व्यक्त करने की एक निश्चित भाषा या बोली उनके पास नहीं थी। उसका ज्ञान नहीं था। परन्तु एक दूसरे कुछ को समझाना तो पड़ता ही था। अतः प्रारंभिक काल में मनुष्य ने संकेतों या हरकतों से अपना काम निकाला होगा। फिर कालान्तर में विशेष प्रकार की ध्वनियों— जिनका सम्बन्ध भी विशेष प्रकार की परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों से रहा होगा। का विकास हुआ होगा। ऐसी खास खास ध्वनियां उन भावों और वस्तुओं के लिये शब्द बने होंगे। इसके उपरान्त मनुष्य ने पशु-पक्षी जगत से भी बहुत कुछ सीखा। उनके उच्चारण की ध्वनियों को भी ग्रहण किया और यह ध्वनियां भी शब्द के रूप में निकलने लगीं। फिर लोहा, पत्थर आदि के बजाने से जो विशेष ध्वनि व स्वर निकलते हैं उनका अनुसरण किया गया। इस प्रकार ज्यों २ परि-स्थितियां परिवर्तित होती गईं इन ध्वनि खंडों को सूचित करने वाले शब्दों का भी विकास होता गया। उस काल में शब्द और अर्थ का उतना निश्चित सम्बन्ध नहीं रहा होगा जितना कि आधुनिक युग में है। परन्तु फिर भी मानवीय हाव भाव, तथा उसकी प्रवृत्तियों को समझने समझाने में उस समय के अल्प संख्यक शब्दों से बनी भाषा का बहुत ही महत्व रहा होगा। फिर ज्यों २ सामाजिक परिवर्तन होते गये भाषा के शब्दों की संख्या में भी अभिवृद्धि होती गई, क्यों कि भाषा तो सामाजिक परिस्थितियों की दास है, उसकी आश्रित है। जैसा समाज वैसी भाषा। कालान्तर में उनकी भाषा में लिंग-भेद पर भी ध्यान दिया जाने लगा। पशु पालन तथा कृषि युग में उनकी भाषा के शब्दों का भण्डार बहुत विकसित हो गया। अब वे सुगमता से एक दूसरे से बात कर सकते थे। उनमें सामूहिकता की भावना भी बढ़ने लगी थी परन्तु अभी

भाषा का जन्म

तक मनुष्य को लिपि का ज्ञान नहीं हुआ था यह ज्ञान तो उसे सहस्रों वर्षों के बाद हुआ।

मनुष्य ने प्रारंभिक अवस्थाओं में जड़ की सहायता से चेतन पर विजय प्राप्त की थी अर्थात् पत्थर के अस्त्रों से जानवरों का शिकार करने में सफलता प्राप्त की थी। अब अग्नि के आविष्कार से जब मनुष्य ने मैदान में रहना प्रारम्भ कर दिया तो उसने एक नवीन युक्ति सोची। झोपड़ियों के पास ही लकड़ियों की सहायता से एक मजबूत बाड़ा बनाया फिर

पशु पालन

वे सामूहिक रूप से जंगल में जाते और जानवरों को जीवित अवस्था में पकड़ कर ले आते और इस बाड़े में बन्द कर देते। फिर जब आवश्यकता होती एक एक जानवर को निकाल कर अपनी क्षुधा शांति करते रहते। प्रारम्भ में उन्होंने इस पद्धति का श्रीगणेश अपनी भूख को शांत करने तथा शिकार में व्यतीत होने वाले समय और श्रम को बचाने की दृष्टि से ही किया था। परन्तु धीरे २ उन्हें पशुओं से प्रेम होता गया और पशुपालन का लाभ भी समझ में आने लगा। अभी तक हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि सर्वप्रथम उन्होंने किस पशु का पालन किया होगा। परन्तु साधारण तया यह माना जाता है कि आदि मानव ने सर्वप्रथम शायद कुत्ते का पालना प्रारम्भ किया होगा जो कि एक प्रकार से उनकी चौकीदारी के कार्य तथा अन्य जानवरों की गतिविधि का ध्यान भी रखता रहा होगा था इस कार्य में सहायता पहुंचाता रहा होगा। धीरे धीरे मानव ने गाय, बैल, भैंस, बकरी, मुर्गी, भेड़ और सूअर भी पालने शुरू किये। ज्यों २ मानव का ध्यान पशु-पालन की तरफ बढ़ने लगा त्यों त्यों उसको पशु-पालन की उपयोगिता भी ज्ञात होती गई। पहले वह केवल उनका मांस खाता था। अब उसका ध्यान उनके दूध की तरफ भी गया। पशुओं के बच्चों को उनका दूध पीते देख कर उसने भी पशुओं का दूध पी कर देखा और उस दूध के स्वाद ने उसे आकर्षित कर लिया। फिर उसे दूध की स्फूर्ति तथा शक्ति का रहस्य मालूम हुआ। समय के साथ साथ उसे दूध से निर्मित दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी आदि का भी ज्ञान हुआ। इतना ही नहीं बल्कि उसे बोझा ढोने में, सवारी के लिए भी जानवरों का उपयोग किया जाने लगा।

जिस प्रकार अग्नि की खोज मानव जाति के इतिहास में एक क्रांतिकारी घटना थी उसी प्रकार पशुपालन का प्रारम्भ एवं विकास भी उससे कम महत्वपूर्ण नहीं था। पशुपालन ने मानवीय कार्यों की गति को मोड़ दिया।

पशु-पालन का प्रभाव

इसके पूर्व मनुष्य शिकारी जीवन व्यतीत करता था। उसे शिकार प्राप्त करने के अतिरिक्त अन्य चिन्ता विशेष रूप से चिंतित नहीं करती थी। परन्तु अब पशुओं के लिए उसे घास-चारा का प्रबन्ध करना पड़ा। इसके लिए उसे चरागाह के मैदान ढूंढ़ने पड़े। इसके साथ ही साथ मनुष्य का ध्यान कृषि की ओर गया। कृषि के लिये उसने पुनः जानवरों का सहयोग लिया। कृषि के कारण संयुक्त परिवार प्रणाली का आविर्भाव हुआ क्योंकि इसके लिये अधिक मनुष्यों की आवश्यकता होती थी। इसके साथ ही साथ सामूहिक शक्ति एवं भावना का विकास हुआ। जानवरों का महत्व बढ़ा। आदान प्रदान करने की क्रिया में उन्हें विनिमय का माध्यम बनाया गया। परिवार में जनसत्तात्मक प्रणाली का भी प्रादुर्भाव हुआ। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पशु-पालन ने मनुष्यों को सभ्यता एवं संस्कृति का प्रथम पाठ पढ़ाया।

इस समय तक जड़ पदार्थों में से केवल धरती, पत्थर, लकड़ी आदि पर ही मनुष्य ने विजय प्राप्त की थी। उसे अभी तक अन्य धातुओं का ज्ञान नहीं हो पाया था। परन्तु मनुष्य ने अपनी इस कमी को भी दूर करने का प्रयत्न किया। ऐसा माना जाता है कि मनुष्य को सर्वप्रथम सोने

धातु ज्ञान का विकास

का ज्ञान हुआ। शायद आज से ८ हजार साल पहले। परन्तु किन्हीं कारणों से उसका अधिक उपयोग नहीं किया गया। इसके बाद उन्हें तांबे का ज्ञान हुआ। अफ्रीका, अमेरिका, मिश्र, तथा भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यताओं के अवशेषों में तांबे से निर्मित औजारों के अवशेष भी मिले हैं। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि पत्थर युग के तुरन्त बाद ही ताम्र युग का प्रचलन हो गया हो। तांबे के बाद लोहे का ज्ञान हुआ। लगभग ४ हजार से ५ हजार वर्ष पूर्व के लौहनिर्मित अस्त्र-शस्त्र एवं औजार बहुत अधिक संख्या में उपलब्ध हुए हैं। लोहे के बाद मनुष्य ने कांसे की भी खोज निकाला परन्तु कांसे को जिस ग से आधुनिक युग

में अन्य धातुओं के सम्मिश्रण से बनाया जाता है। कांसे की सिद्धि ज्ञात नहीं थी और इसी कारण उसका अधिक प्रचार नहीं हो सका। धीरे २ मनुष्य ने अन्य धातुओं का ज्ञान भी प्राप्त कर लिया। परन्तु ज्ञान के कारण मनुष्य के लिए प्रकृति पर एक के बाद दूसरी विजय करना सम्भव हो गया। इसी ज्ञान के कारण विज्ञान की उन्नति तथा मानवीय सभ्यता का विकास सम्भव हो सका। अतः धातुज्ञान भी एक महत्वपूर्ण चमत्कार था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक सभ्यता का मूल आधार आदि मानव के प्रयत्नों में छिपा हुआ है। आदि मानव के शिकारी जीवन में, उसकी प्रकृति पर विजय की कहानी में, पशुपालन तथा कृषि अवस्था के विकास एवं धातुज्ञान के महत्व को मान्य करने में निहित है। यह ठीक है कि आधुनिक युग में ये बातें बहुत ही सरल दिखाई देती हैं परन्तु उस प्रारम्भिक अवस्था में, जब कि प्रकृति परिवर्तनों से परिपूर्ण थी और मानव अकेला था, सुरक्षा के साधनों से वंचित, विज्ञान की शक्ति से अपरिचित, ये बातें उसके लिए अति भयंकर एवं कष्टों से परिपूर्ण रही होंगी जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं।

सामूहिकता की भावना की आवश्यकता

प्रारम्भिक काल का प्रथम मानव सामाजिक प्राणी नहीं था। परन्तु धीरे धीरे उसकी परिस्थितियों ने उसे समाज में रहने के लिये बाध्य किया। उसने देखा कि जंगल के विभिन्न प्रकार के जानवर भी अपने ही समान जानवरों के साथ झुण्ड या समूह के रूप में विचरण करते हैं। एक साथ रहते हैं। एक साथ ही एक स्थान से दूसरे स्थान की तरफ प्रस्थान करते हैं। फिर उसने अपने को चारों ओर से भयंकर जानवरों से घिरा हुआ पाया। उसे अपनी सुरक्षा का ख्याल आया। इसके अतिरिक्त अलग रहने से उसे अपना शिकार प्राप्त करने में कठिनाई होने लगी। इन सब बातों ने उसे समूह में रहने के लिए प्रेरित किया। फिर उसका विकास इतना शीघ्र होता गया कि समाज उसके जीवन का एक आवश्यक अंग बन गया और "मनुष्य सामाजिक प्राणी है; आवश्यकता तथा स्वभाव से", यह उक्ति भी स्वाभाविक पड़ने लगी। मनुष्य की सभ्यता का विकास समाज में रहने के बाद

ही प्रारम्भ हुआ। अतः मनुष्य समाज में जो परिवर्तन हुए वह उसकी सभ्यता में भी परिवर्तन थे। परिवर्तन होना वस्तुतः विकास के नियम (Law of Evolution) पर निर्भर था।

मानव का आरंभिक विकास बहुत धीमा था परन्तु उस स्थिति में वही यथेष्ट था। उस काल में मनुष्य का प्रमुख कार्य था—अपनी सुरक्षा का प्रयत्न। इसके लिए उसे प्रकृति से संघर्ष करना पड़ा, जानवरों से संघर्ष करना पड़ा और इसके लिए उसे श्रम करना पड़ा। व्यक्तिगत रूप से भी और सामूहिक रूप से भी। संभव है कि सामूहिक भावना उसने जानवरों से सीखी हो, परन्तु यह सत्य है कि इसी काल में अर्थात् प्रारम्भिक काल में मानव को समाज की आवश्यकता हुई और अधिक श्रम करने के लिये, एक दूसरे के मनोभावों का अध्ययन करने के लिये, समझने व समझाने के लिए भाषा की उत्पत्ति भी उसने की। इसके बाद शीघ्र ही वह समझने लगा कि अपने शत्रु का मुकाबिला तभी किया जा सकता है जब कि उसके मुकाबिले में एक हो कर लड़ें। प्रकृति और पशु जगत के मध्य असंख्य संघर्षों को करके उसने इस मूल मन्त्र को सीखा।

सामाजिक भावना की उत्पत्ति

आदि मानव के पास साधन कम थे, इस लिये उसे अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये व्यक्ति से अधिक समाज पर भरोसा रखना पड़ता था। वह समूह के रूप में रहने लगा। उसकी पूंजी सामूहिक थी। उसकी पूंजी या अर्थ वे वस्तुएं, जो वह प्राप्त करता परन्तु उनके खाने के उपरान्त भी बच रहती थीं वह समाज में काम में लाने लगा। उस समय के समाज में स्त्री का महत्व पूर्ण स्थान था। उस समय स्त्री पुरुष सम्बन्ध परिवार के भीतर ही होना जरूरी था क्योंकि सारे परिवार को एक साथ मिलकर जीविकार्जन और शत्रुओं से मुकाबिला करना पड़ता था। प्रारम्भिक समाज की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि उसमें वर्गभेद नहीं था। वहां कामकर और कामचोर श्रेणियां नहीं थीं। इस लिये न शोषण था और न उसे कायम रखने के लिये किसी एक वर्ग का शासन था।

सामूहिकता का विकास

प्रारंभिक जनसत्ता समाज में दो प्रवृत्तियाँ मुख्य थी। एक मातृसत्ता और बाद में दूसरी पितृसत्ता समाज। जनसत्ता के आरम्भिक काल में माता का ही राज्य था। अधिकार तथा संपत्ति साधिक होती थी किन्तु जो थोड़ी बहुत परिवार की संपत्ति थी, उसका उत्तराधिकारी पुत्र नहीं, पुत्रियां होती थीं। जनयुग में मानव की स्थायी संपत्ति थी—पत्थर, तांबे तथा लोहे के हथियार। मछली, जानवर या जानवर का मांस स्थायी संपत्ति नहीं थी। शिकार के अलावा पशुपालन का व्यवसाय भी होने लगा था। जन वास्तव में एक वंश के लोगों का समाज था। जिस पर माता का पूर्ण अधिकार होता था। वह जंगलों या पहाड़ियों की प्राकृतिक सीमा के भीतर एक स्थान पर रहता था। यथा समय एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिये माता से आज्ञा लेनी पड़ती थी।

मातृसत्तात्मक समाज

परन्तु धीरे २ पशुपालन तथा खेती के आविष्कार के साथ ही पुरुष ने अपने श्रम द्वारा अपनी सत्ता समाज में निर्धारित कर दी। पुरुष सत्ता के आते ही समाज पर व्यक्ति के प्रभुत्व को बहुत बड़ा दिया गया। साथ ही में वैयक्तिक सम्पत्ति का रास्ता खोल दिया। पशुपालन के कारण भूमि पर खेती के लिये अधिकार किया गया। राज्य की स्थापना हुई और स्वार्थपरता की वृद्धि हुई। तब से समाज में भारी कलह का सूत्रपात हुआ। वर्गभेद अधिक सम्पत्ति वाले और कम सम्पत्ति वाले शुरू हुये। युद्ध के समय शत्रुओं को न मार कर बन्दी बना कर खेत जोतने के काम में लिया जाने लगा। इस प्रकार दासभावना शुरू हुई।

पितृसत्तात्मक समाज

इस प्रकार हम देखते हैं कि अथक परिश्रम एवं संघर्षों के उपरान्त आदि मनुष्य प्रकृति पर एक के बाद दूसरी विजय प्राप्त करने में सफल हुआ। प्रकृति के साथ संघर्ष करते समय उसे सामूहिक भावना का ज्ञान हुआ और वह समाज में रहने लगे। प्रारंभिक समाज एक तरह से साम्यवादी समाज था। फिर मातृसत्तात्मक समाज का प्रादुर्भाव हुआ उसके उपरान्त पितृसत्तात्मक समाज का काल आया। उसके उपरान्त दास प्रथा सामन्त प्रथा, और फिर निरंकुश राजतन्त्र। समय बदला और फिर प्रजातन्त्र की स्थापना हुई।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—"मनुष्य का जीवन परिवर्तनशील है।" इस कथन की पुष्टि करते हुए मानव की प्रकृति पर विजय की व्याख्या कीजिए।

२—एक आदिम शिकारी अवस्था में रहने वाले मानव की कल्पना करो और उसकी दिनचर्या पर छोटी सी कहानी लिखो।

३—अग्नि का आविष्कार कब और कैसे हुआ ? इसके प्रयोग से आदि मानव जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा ?

४—पशुपालन मानवीय सभ्यता के विकास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम था ? इस कथन की सत्यता समझाइए।

५—भाषा का आविर्भाव और विकास कैसे हुआ ?

६—धातुओं का प्रयोग मनुष्य ने कब सीखा ? पहले पहल किन धातुओं का प्रयोग किया गया ?

७—मनुष्य में सामूहिक जीवन व्यतीत करने की भावना का विकास कैसे हुआ ?

८—'आदिम काल में मानव जीवन' इस विषय पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखो और बताओ कि सभ्य होने से पूर्व मानव का विकास किस प्रकार हुआ ?

चतुर्थ अध्याय

राज्य की उत्पत्ति और साम्राज्यों का विकास

नेता की उत्पत्ति

प्रारंभिक अवस्था में जब कि आदि मानव पर्वतीय गुफाओं में निवास करता था और शिकार के लिए इधर उधर घूमा करता था, उस समय उसके अन्दर सामाजिक भावना का विकास नहीं हो पाया था। परन्तु परिस्थितियां परिवर्तित होने लगीं। शिकार में उसे कठिनाई होने लगी और वह भुण्ड में शिकार के लिए निकलने लगा। इस प्रकार प्रारंभिक कठिनाई ने उसे समूह में रहने के लिए बाध्य किया। फिर कभी कभी उस समूह की अपने ही समान प्राणियों के अन्य समूह से भी टक्कर होने लग गई। जय-पराजय के बाद पराजित समूह को विजयी समूह के नेतृत्व में काम करना पड़ता था। मानवीय समूहों की पारस्परिक टक्कर ने मानव समूह को अपना एक नेता निर्वाचित करने के लिए बाध्य किया। ऐसा नेता जिसके नेतृत्व में वे लड़ सकें और पराजित मानव प्राणियों से काम ले सकें। आवश्यकता पड़ने पर उसी के नेतृत्व में समूह के रूप में अपने शिकार पर आक्रमण कर सकें। परन्तु इस आदि नेता का नेतृत्व पारस्परिक संघर्ष या आक्रमण और शिकार प्राप्त करने तक ही सीमित था। उसका पद और अवधि भी समूह के सदस्यों की सार्वजनिक इच्छा पर अवलम्बित थी। वह शासक निरंकुश व शासनुगत नहीं था। उसे भी अन्य सदस्यों की भांति काम करना पड़ता था। उसमें शोषण करने की प्रवृत्ति नहीं थी और होती भी किस वस्तु के आकर्षण से। उस समय सम्पत्ति नाम की कोई वस्तु ही नहीं थी। यहाँ तक कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध भी विवेकरहित स्वेच्छानुकूल होता था।

आदिम शिकारी अवस्था में परिवार का उद्भव नहीं हुआ था। उस युग में विवाहपद्धति की स्थापना नहीं हुई थी। स्त्री-पुरुष का इच्छानुसार

समागम होता था। संतान माता के साथ रहती थी। परन्तु धीरे २ जन-संख्या की वृद्धि के साथ साथ परिवार की भावना भी जोर पकड़ती गई। माता अपनी संतान का नैसर्गिक प्रेम और ममत्व से पालन करने लगी इसी सिद्धान्त की नींव पर सर्वप्रथम मातृसतात्मक परिवार की उत्पति हुई। माता परिवार पर नियंत्रण रखने लगी। पुरुष अपने परिवार के लिए आखेट करता। माता परिवार के सदस्यों का भरण-पोषण करती। उस युग में व्यक्तिगत सम्पति का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। अग्नि के आविष्कार तथा पशु-पालन प्रवृति ने आदि मानव के परिवार में भी क्राँति की। मातृसत्तात्मक परिवार का रूप मंद होने लगा और उसके स्थान पर पितृसत्तात्मक परिवारों का विकास हुआ। पुरुष की शक्ति का प्रभुत्व स्थापित हुआ।

परिवार का उद्भव

कृषि अवस्था के प्रारम्भ होते ही परिवार प्रणाली में एक और महत्व-पूर्ण परिवर्तन हुआ। अब आदि मनुष्य ने यायावर (घुमक्कड़) जीवन का परित्याग करके एक निश्चित स्थान पर रहना शुरू कर दिया। अतः नारी ने भी भिन्न २ पुरुषों से समागम का सम्बन्ध तोड़कर एक निश्चित पुरुष के साथ रहना प्रारम्भ किया। दूसरा परिवर्तन यह हुआ कि जब मानव समूह एक ही स्थान पर रहकर जीविकार्जन करने लगे तो श्रम का विभाजन करना भी आवश्यक हो गया। इससे उद्योग धंधों का विकास हुआ। तृतीय परिवर्तन था–जनसंख्या की वृद्धि। एक ही स्थान पर रहने से जनसख्या की वृद्धि हुई और जन संख्या की वृद्धि के साथ २ परिवारों की भी वृद्धि होने लगी।

परिवार मनुष्यों की सर्वप्रथम सुसगठित संस्था थी, जिसका नियंत्रण परिवार का मुखिया (पिता) किया करता था। परन्तु जब परिवारों की सख्या बढ़ने लगी तो उन पर नियंत्रण करने के लिये तथा एकता की शृंखला में पिरोने के लिये 'कुल' नामक नवीन संस्था की उत्पत्ति हुई। कुल का संचालन दो अधिकारियों के हाथ में था। एक का कार्य युद्ध के समय में कुल की सुरक्षा करना तथा दूसरे का कार्य शाँतिकाल में कुल के सदस्यों के आँतरिक झगड़ों का निर्णय करना था। इन दोनों का निर्वाचन परिवारों द्वारा होता था। धीरे २ कुलों की संख्या भी बढ़ने लगी। कुलों की एकता को कायम रखने के लिए 'कबीले'

कुल और कबीले

नामक संस्था की स्थापना की गई। कबीले के अन्दर कई कुल होते थे। कबीले का नियंत्रण प्रारम्भ में कुलों द्वारा निर्वाचित "कबीला परिषद्" करती थी। इस परिषद् के तत्वावधान में ही युद्ध, संधि और न्याय किया जाता था। परन्तु कालान्तर में कबीला-परिषद् के अधिकार कबीला परिषद् के प्रमुख व्यक्ति के हाथ में आ गये। परन्तु फिर भी उस समय तक राज्य की उत्पत्ति नहीं हुई थी। न कोई राजा था, न सेना थी। न मंत्री और न राजकर्मचारी थे और न ही न्यायालय तथा जेलों का ही अस्तित्व था।

राज्य की उत्पत्ति के सहायक तत्वों का पूर्ण वर्णन प्राप्त करने के पहले भौगोलिक परिस्थितियों का इस पर क्या प्रभाव पड़ा : इसका अध्ययन भी करना चाहिए। मनुष्य ने जब कृषि की खोज करली तो उसने उपजाऊ भूमि के पास रहना शुरू कर दिया। उपजाऊ भूमि के साथ साथ जल प्राप्ति का भी ध्यान रखा गया। ताकि आवश्यकता पड़ने पर सिंचाई का प्रबन्ध किया जा सके। पशुओं को पर्याप्त पानी मिल सके। रहने के लिए ईंटों के लायक मिट्टी तथा उनको बनाने के लिए पानी मिल सके। अल्पमात्रा में नहीं बल्कि विशाल मात्रा में। क्योंकि अब दस-बीस, सौ-पचास मनुष्यों का सवाल नहीं था। अब हजारों परिवारों का, सैकड़ों कुलों का, दर्जनों कबीलों का प्रश्न था। ऐसे स्थान उन्हें नदियों की घाटियों में उपलब्ध हुए। वहाँ विस्तृत मात्रा में जल था, उपजाऊ भूमि थी, घरों को बनाने के लिये ईंटों का निर्माण करने वाली मिट्टी थी।

भौगोलिक प्रभाव

धीरे २ मानव समूह में राज्य की उत्पत्ति हुई। राज्य की उत्पत्ति में सहायक तत्वों—नेता की उत्पत्ति, परिवार का उद्भव, कुल और कबीले का अध्ययन हम कर चुके हैं। नेता की उत्पत्ति ने मनुष्य को कुछ समय के लिए एक व्यक्ति विशेष के अन्तर्गत रह कर काम करना सिखलाया। परिवार ने उसके सदस्यों को जीवन भर एक मुखिया के आदेशों का पालन करना तथा पारस्परिक बन्धुत्व एवं अनुशासन का पाठ पढ़ाया। कुल और कबीले ने असंख्य मनुष्यों के समूह में रहते हुए एक व्यक्ति या परिषद् की अधीनता में रहना

राज्य की उत्पत्ति

दिखलाया। कबीलों के विकास तथा कबीला परिषद् द्वारा अपना एक प्रमुख निर्वाचित करने की प्रथा ने राज्य की उत्पत्ति में बहुत सहयोग दिया। यह पहिले ही कहा जा चुका है कि एक ही स्थान पर रहने से श्रम का विभाजन हो गया था। अतः व्यक्ति अपनी इच्छानुसार कार्य करने को स्वतन्त्र था। परन्तु कभी कभी उसकी इच्छा से अन्य व्यक्तियों को हानि उठानी पड़ती थी। वह कबीले के प्रमुख के पास प्रार्थना करता। प्रमुख उसका निर्णय करता। परन्तु यदि अभियुक्त अधिक शक्तिशाली हुआ तो निर्णय को कार्यान्वित करने की समस्या आ खड़ी होती। इस समस्या को सुलझाने के लिए प्रमुख ने कबीले से अधिकार माँगे। सैनिक माँगे। राज कर्मचारी माँगे। देखते ही देखते सब कुछ हो गया। सेना बन गई। राज कर्मचारी हो गये, न्यायालय हो गये परन्तु इनका खर्च कौन दे? कबीले के सदस्यों ने एक निश्चित भाग निश्चित किया, अपनी उपज का एक भाग। कालान्तर में यह भाग कर के रूप में परिवर्तित हो गया। कबीले का निवास केन्द्र तथा उस केन्द्र के आस-पास की उपजाऊ भूमि नगर-राज्य में परिणत हो गया। राज्य की उत्पत्ति हुई परन्तु फिर भी अभी तक राजा की उत्पत्ति नहीं हुई थी। कबीले का प्रमुख जनतान्त्रिक पद्धति से निर्वाचित किया जाता था। धीरे २ कबीले के प्रमुख ने सेना के साथ अपने सम्बन्ध दृढ़ किये। उसकी दृष्टि अन्य कबीलों की उपजाऊ भूमि पर पड़ी। सेना की संख्या बढ़ाई गई और दूसरे कबीलों पर आक्रमण किया गया। उन्हें अपने राज्य में मिला लिया गया। उनके निवासियों को दास बना लिया गया। इन दासों में से अधिकांश प्रमुख तथा सेनानायकों के हाथ लगे। इसी प्रकार उस कबीले की सम्पत्ति का अधिकांश भाग भी इन्हीं लोगों के हाथ लगा। वे धनिक बन गए। धन की शक्ति से उन्होंने सैनिक जनतन्त्र की स्थापना की। बाद से निरंकुश तंत्र की स्थापना हुई और फिर वंशानुगत राजतंत्र की स्थापना।

इस प्रकार परिवार की स्थापना से धीरे २ नगर राज्यों की और फिर निरंकुश राजतन्त्रों की स्थापना हुई। राज्य की स्थापना

धर्म का सहयोग

हुई। राज्य की स्थापना में जहाँ उपर्युक्त वर्णित तत्त्वों ने सहयोग प्रदान किया वहीं धर्म की समानता एवं एकता ने भी महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया। प्राचीनकाल का आदि मानव धर्म भीरु था। धर्म में उसकी अगाध श्रद्धा थी और नाना प्रकार के देवी-

देवताओं एवं प्राकृतिक शक्तियों की उपासना करता था। परन्तु धार्मिक अनुष्ठानों का सम्पादन पुरोहितों के प्रमुख की देख रेख में सम्पादित होता था। फिर राजा के द्वारा होने लगा। राजा देवताओं को अर्घ्य चढ़ाता अपने समर्थकों की उन्नति के लिए प्रार्थना करता। अपनी जनता के सुख-साधनों की याचना करता। धर्म और राजनीति एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हो गए। अतः राजा ईश्वर का प्रतिनिधि समझा जाने लगा। उनके आदेश ईश्वरीय आदेश माने जाने लगे। उनकी सत्ता को चुनौती देना ईश्वर को चुनौती देना समझा जाने लगा। इससे उनकी शक्ति और अधिकार बढ़े।

राज्य की उत्पत्ति कैसे हुई? इस मूल प्रश्न पर एक मत नहीं जिसका फल यह है कि राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न सिद्धान्त हैं- सामाजिक समझौता (संविदा) सिद्धान्त, दैवी अधिकार सिद्धान्त, शक्ति सिद्धान्त पितृसत्तात्मक सिद्धान्त, मातृसत्तात्मक सिद्धान्त और विकासवादी सिद्धान्त। अब हम प्रमुख सिद्धान्तों पर थोड़ा प्रकाश डालेंगे।

सामाजिक समझौता सिद्धान्त का आशय यह है कि राज्य उन लोगों के पारस्परिक समझौते का परिणाम है, जिनका अपना कोई राजनैतिक संगठन नहीं था। प्रारम्भ उनके युग में कोई शासन न होने के कारण कोई कानून न था। जिसे कोई सत्ता बल पूर्वक लागू कर सकती। मनुष्य सामाजिक प्राकृतिक अवस्था में रहते थे और केवल प्रकृति द्वारा संविदा सिद्धान्त निर्धारित नियमों का पालन करते थे। धीरे २ अव्यवस्था बढ़ने लगी, उद्योग धन्धों का विकास हुआ, पारस्परिक झगड़ों का सूत्रपात हुआ इस पर उन्होंने शासन स्थापित करने का निश्चय किया इस प्रकार उन्होंने अपनी प्राकृतिक स्वतन्त्रता का त्याग किया और शासन द्वारा प्रवर्तित कानूनों के पालन करने के लिए सहमत हो गए। मनुष्य प्राकृतिक अवस्था में शासन की कल्याणकारी सत्ता के बिना कैसे रहते थे, उन्होंने क्यों शासन स्थापित करने का निर्णय किया, किन किन के बीच समझौते हुए और समझौते की क्या शर्तें थीं, इन तथा अन्य बातों में इस सिद्धान्त के व्याख्याकारों में मतभेद है। परन्तु वे इससे सब सहमत हैं कि राज्य मानव कृति है और समझौते का परिणाम है।

आधुनिक युग में इस सिद्धान्त के प्रमुख व्याख्याकार हाब्स, लॉक और रूसो हुए हैं। यद्यपि ऐतिहासिक तथा तार्किक दृष्टि में इस सिद्धान्त को सही माना जा सकता परन्तु फिर भी यह शासन का उन मानवीय लक्ष्यों की ओर ध्यान दिलाता है जिसकी पूर्ति राज्य को करनी चाहिए और यही इसके अस्तित्व के औचित्य को सिद्ध कर सकते हैं। लॉक और रूसो ने इस सिद्धान्त को जो रूप दिया उससे यह परिणाम निकलता है कि राजनीतिक समाज शासक की सहमति पर नहीं बल्कि शासित की सहमति पर आधारित है और इस प्रकार वह आधुनिक लोकतन्त्र के विकास के लिए महत्वपूर्ण कदम बना।

दैवी उत्पत्ति सिद्धान्त

दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त में, जिसे बहुधा राजाओं के दैवी अधिकार का सिद्धान्त कहते हैं। तीन मुख्य बातें हैं—राज्य की स्थापना ईश्वर के एक अध्यादेश द्वारा हुई है; शासक दैवी रूप से नियुक्त किये जाते हैं, और वे ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य सत्ता के सामने उत्तरदायी नहीं है। इसके अनुसार ईश्वर की इच्छा कुछ विशेष व्यक्तियों के द्वारा स्वयं अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त की गई समझी जाती है। इस प्रकार राज्य की आज्ञा का पालन धार्मिक तथा राजनीतिक दोनों कर्तव्य होते हैं और आज्ञा का उल्लंघन पाप समझा जाता है।

प्राचीन युग में यह सिद्धान्त बहुत लोक प्रिय हो चुका था। मध्य युग में पोप तथा अन्य धर्मों के आचार्यों के समर्थन से इस सिद्धान्त की ओट में राजाओं ने अपनी निरंकुश सत्ता स्थापित की थी। अब आम तौर से इस सिद्धान्त को अस्वीकार किया जाता है। क्योंकि इसमें कल्पना का पुट अधिक और तर्क ज्ञान का अंश न्यून मात्रा में है।

शक्ति का सिद्धान्त

साधारण रूप से, शक्ति की सिद्धान्त की व्याख्या हम इस प्रकार कर सकते हैं कि "युद्ध ने राजा को पैदा किया।" जब शक्तिशाली व्यक्ति दुर्लभ को दास बनाता है तो राज्य की उत्पत्ति होती है ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह सिद्ध करने में जरा सी भी कठिनाई नहीं है कि आधुनिक प्रकार के समस्त राजनीतिक-समाज सफल युद्ध कौशल के फलस्वरूप अस्तित्व में आये। आबादी के बढ़ने के फलस्वरूप जीवन निर्वाह के साधनों पर दबाव बढ़ने से युद्ध की

कलों का भी विकास हुआ। लड़ाई लड़ना विशेषज्ञों का काम हो गया। राज्य की स्थापना उस समय होती है जब एक नेता अपने योद्धाओं के गिरोह के साथ किसी काफी बड़े और निश्चित क्षेत्र पर स्थायी रूप से अधिकार कर लेता है। यद्यपि राज्य की उत्पत्ति में शक्ति का प्रमुख भाग रहा है परन्तु केवल शक्ति को ही राज्य की उत्पत्ति की आधारशिला नहीं माना जा सकता क्योंकि अन्य बहुत से तत्व भी इसके लिए उत्तरदायी थे।

राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आम तौर से मान्य सिद्धान्त ऐतिहासिक अथवा विकासवादी सिद्धान्त के नाम से विख्यात है। इसके अनुसार राज्य न तो दैवी रचना है और न सोच विचार कर मनुष्य द्वारा निर्मित कृति। इसके अनुसार राज्य प्राकृतिक विकास के आधार पर अस्तित्व में आया। इस सिद्धान्त के प्रमुख व्याख्याकार हैं—जे. डब्ल्यू. बर्गेस, विल्सन, तथा अन्य विद्वान।

विकासवादी सिद्धान्त

राज्य की उत्पत्ति इतिहास से हुई है, इसका यह अर्थ है कि राज्य मानव समाज का क्रमिक तथा अविच्छिन्न विकास है। यह विकास बिलकुल आधार हीन अवस्था से आरम्भ होकर अभिव्यक्ति के कुरूप किन्तु उन्नतिशील रूपों से गुजर कर मानव जाति के पूर्ण तथा विश्वव्यापी संगठन की ओर अग्रसर हुआ है। यह नहीं कहा जा सकता कि राज्य का आरम्भ किस विशेष समय से अथवा स्थान से हुआ। यह अनेक युगों का विभिन्न परिस्थितियों का परिणाम है यह धर्म, युद्ध और राजनैतिक चेतना है।

प्रारम्भिक राज्य-संस्थाओं की उत्पत्ति कुछ विद्वानों के अनुसार आज से लगभग ५ हजार वर्ष पूर्व मेसोपोटेमिया (इराक) में दजला और फरात नदियों की घाटी में हुई थी। उस समय सुमेर, अक्काद, एलाम, सिप्पर आदि अनेक राज्यों का विकास हुआ। इसके बाद मिस्र, भारत, चीन आदि देशों में राज्यों का विकास हुआ। कालान्तर में विश्व के बहुत से देशों में राज्य-संस्थाओं की उत्पत्ति हुई। आरम्भ में ये राज्य संस्थाएं नैतिक अनन्य के रूप में नहीं होती। फिर निरंकुश तथा अन्त में गणतन्त्र के रूप में।

राज्यत्व के विकास के साथ ही साथ मानव समाज में एक अन्य भावना का भी विकास हो रहा था। वह भावना थी असहयोग तथा स्पर्धा की।

साम्राज्यों का विकास — दूसरों की अर्जित पूंजी पर अधिकार करने की। अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने की। इस भावना के वशीभूत होकर राज्य के कर्णधारों ने दूसरे राज्य पर अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार अनेक राज्यों पर अधिकार कर लेने के उपरांत उस विजेता राज्य का स्वरूप भी बदल गया। नाम भी बदल गया। अब वह साम्राज्य कहा जाने लगा। उसका अधिकारी सम्राट्। इस प्रकार दूसरे राज्यों को हड़पने की नीति से साम्राज्यों की उत्पत्ति एवं विकास हुआ। प्राचीनकाल में विश्व में अनेकों साम्राज्यों का विकास हुआ। उनमें से प्रमुख थे—मिश्र में नील नदी की घाटी में मिश्र का साम्राज्य, दजला और फरात की घाटी में—सुमेरियन, बेबीलोन, असीरियन, कैल्डियन साम्राज्य, भारत में सिन्धु नदी की घाटी में सिन्धु साम्राज्य, चीन में ह्वांग हो और यांगसी नदियों की घाटियों में चीनी साम्राज्य। फिर कालान्तर में यूनानी साम्राज्य, ईरानी साम्राज्य तथा रोमन साम्राज्य का विकास हुआ। अमेरिका में मैक्सिको तथा पीरू प्रांतों में मय साम्राज्य का उत्थान हुआ।

अब हम साम्राज्यों के इस युग में मानव की सांस्कृतिक प्रगति एवं उपलब्धियों का अध्ययन करेंगे। पहले मिश्र, सुमेर, बेबीलोन, चीन पर्शिया, पेरू, मैक्सिको, यूनान तथा रोम का क्रमबद्ध अध्ययन करेंगे।

(१) मिश्र की सभ्यता एवं संस्कृति

किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति उस देश की भौगोलिक स्थिति से प्रभावित होती है। मिश्र अफ्रीका महाद्वीप के उत्तरी भाग में पश्चिमी एशिया से बिलकुल लगा हुआ है। मिश्र के पूर्व में लाल सागर है, उत्तर में भूमध्य सागर दक्षिण में अफ्रिका के सघन वन तथा पश्चिम में मरुस्थल है। मिश्र के बीचों बीच नील नदी बहती है। यह ५०० मील लम्बी है और इसकी बाढ़ का पानी ३० मील चौड़ी पट्टी को सींचता रहता है। नील नदी का डेल्टा भी बहुत उपजाऊ है। प्रसिद्ध इतिहासकार हेरोडोटस ने ठीक ही लिखा है कि "मिश्र नील नदी का वरदान है।" इस सुरक्षित भौगोलिक स्थिति के कारण मिश्र कई शताब्दियों तक विदेशियों के प्रभाव एवं आक्रमण से मुक्त

सुरक्षित भौगोलिक स्थिति
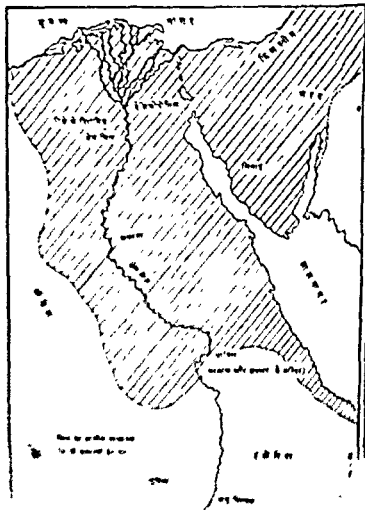
रहा। उसे अपने पड़ोसी देश सुमेरिया तथा बेबीलोनियां की भाँति पादाक्रान्त नहीं होना पड़ा। आज मिश्र एक स्वतन्त्र प्रजातांत्रिक देश है तथा इसकी राजधानी काहिरा है।

प्राचीन शिलालेखों (रोजेता पत्थर का शिलालेख प्रमुख है) एवं अन्य लेखों से ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व ४००० साल से लेकर ४०० वर्ष पूर्व तक मिश्र पर लगभग तीस राजवंशों ने शासन किया। इस काल को तीन हिस्सों में विभाजित किया जाता है—(१) पिरामिड काल (३४०० ई० पू० से २५०० ई० पू०) (२) सामन्त काल [२५०० ई० पू० से १८०० ई० पू०] तथा (३) नवीन साम्राज्यवाद काल [४०० ई० पू० तक]। प्रारम्भ में मिश्र में अनेक नगर राज्य थे। फिर मिश्र दो साम्राज्यों में विभाजित हो गया। अन्त में सम्राट् मीनीज ने मिश्र को एक राज्य में परिवर्तित किया तथा मेम्फिस को अपनी राजधानी बनाया। कुफू अथवा चिऑप्स मिश्र का महान् सम्राट हुआ। उसने विश्व प्रसिद्ध पिरामिडों का गीजा नामक स्थान पर निर्माण करवाया। अमेन होटप तृतीय भी एक महान् सम्राट् था। उसने भी बीज नगर को मिश्र की राजधानी बनाया। कालान्तर में मिश्र पर हाईकोसास, यूनानी तथा रोमन जातियों का क्रमानुसार अधिकार स्थापित होता रहा।

राजनैतिक इतिहास

मिश्र की सम्पूर्ण शासन व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी मिश्र का सम्राट् होता था जिसे 'फरोहा' अर्थात् 'महान् वंशज' कहा जाता था। फरोहा को देवपुत्र समझा जाता था। वह विधि-निर्माण करता, युद्धकाल में सैन्य संचालन करता तथा शांतिकाल में न्याय करता सम्पूर्ण शासन व्यवस्था सम्राट् के व्यक्तित्व पर निर्भर करती थी। मिश्र का सम्राट् निरंकुश स्वेच्छाचारी शासक होता था। सम्राट् की सहायता के लिये एक परिषद् होती थी जिसे 'सरू' कहा जाता था। उस समय में मिश्र का साम्राज्य अनेक प्रांतों में विभाजित था। प्रांत को 'नार्म' कहा जाता था। प्रांतपति सम्राट् के प्रति उत्तरदायी होते थे तथा प्रांतों से राजस्व कर वसूल करके केन्द्र को भेजते थे। ग्राम का शासन स्थानीय सामन्तों के अधिकार में था।

शासन व्यवस्था

धार्मिक विचारधारा

प्राचीन मिस्र की संस्कृति पर तत्कालीन धार्मिक विचारधारा का बहुत प्रभाव पड़ा। उस समय के लोग अन्धविश्वास की भावना से परिपूर्ण थे। इसी कारण एक परमात्मा की उपासना न कर, अनेक देवी देवताओं की उपासना की जाती थी। इन देवताओं में सबसे प्रमुख स्थान 'रा' [सूर्य] देवता का था। रा का अन्य नाम 'ओसिरिस' था। सूर्य को ही जगत पिता माना जाता था। वही मनुष्य के पाप-पुण्य का निर्णय करता था। उसकी प्रतिमाएं प्रत्येक शहर तथा ग्राम में बड़े २ मंदिरों में स्थापित थी। मिस्र के निवासी प्राकृतिक शक्तियों की भी उपासना करते थे। ठीक उसी तरह जैसे कि अन्य देशों-सुमेरिया, भारत और चीन में की जाती थी। 'निबू' को आकाश का देवता, 'तुईने' को पृथ्वी की देवी मानते थे। वे लोग वैदिक धर्म की भाँति वृक्षों की उपासना भी करते थे। जानवरों की भी पूजा की जाती थी। जादू-टोना, तावीज, मंत्र एवं जप आदि तान्त्रिक वस्तुओं के प्रति श्रद्धा की भावना रखते थे और उनकी उपासना भी करते थे। मिस्र के निवासी पुनर्जन्म में विश्वास रखते थे। उनके अनुसार आत्मा अमर थी। आत्मा दोनों संसार इहलोक और परलोक गमन करती रहती थी। मृत्यु के समय आत्मा शुद्धि के लिये परलोक गमन करती थी और शुद्धि के उपरान्त पुन: अपने मृतक शरीर में प्रवेश करती थी। इसी विश्वास के आधार पर वे लोग अपने मृतक शरीरों को विशेष मसालों की सहायता से सुरक्षित रखते थे जिसे 'ममी' कहा जाता था। फरोहा प्रमुख पुरोहित माना जाता था।

मिस्र की धार्मिक विचारधारा काफी अंशों में तत्कालीन सुमेर, बेबीलोन, चीन एवं भारत की विचार सरणी से समानता रखती थी। केवल मृतक शरीर को सुरक्षित रखने की प्रथा उसकी विशेषता थी जो अन्य देशों में उस समय विद्यमान नहीं थी।

मिस्र का सामाजिक जीवन सीधा सादा एवं सरल था। सम्पूर्ण समाज तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित था। प्रथम वर्ग श्रीमन्तों या पुरोहितों का था। इस युग में शासक और पुरोहित का कार्य एक ही व्यक्ति में निहित था। इस व्यक्ति के सम्बन्धी तथा उसके साथ प्रतिष्ठा शाली सामन्ती

को प्रथम वर्ग का गौरव एवं सुविधा तथा अधिकार प्राप्त थे। प्रशासन में इस वर्ग का अत्यधिक प्रभाव था। द्वितीय वर्ग आधुनिक युग की मध्यम श्रेणी के समान था। इस वर्ग में व्यापारी, शिल्पी, राज्य-कर्मचारी, लेखक आदि थे। यद्यपि इस वर्ग को प्रशासनाधिकार तो नहीं था परन्तु फिर भी उनके विचारों का मनन किया जाता था। तृतीय वर्ग निम्न लोगों का था अर्थात् किसान, श्रमिक, दास आदि का इस वर्ग के प्रति किसी की सहानुभूति नहीं थी इनका दमन किया जाता था। शोषण किया जाता था और कभी कभी जानवरों की भांति इनका क्रय-विक्रय भी किया जाता था। इनके पास किसी प्रकार के अधिकार नहीं थे।

धर्माश्रित समाज

मिश्र के सामाजिक जीवन की प्रमुख विशेषता उसके मातृसत्तात्मक लक्षण में विद्यमान थी। विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में इस प्रकार का लक्षण बहुत ही महत्व रखता था और नारी की मर्यादा तथा अधिकारों का द्योतक था। उस युग में सामान्य रूप से एक पत्नी प्रथा का प्रचलन ही था परन्तु बहुपत्नी प्रथा का पूर्ण रूप से बहिष्कार भी नहीं किया जा चुका था। मिश्र के शासक तथा सामन्त लोग अनेक विवाह करते थे। अनेकों रखैलें भी रखते थे। एक आश्चर्य की बात यह थी कि मिश्र के शासक अपनी बहन से भी विवाह कर लेते थे। हमारे वैदिक धर्म में इस प्रकार के सम्बन्ध को पाप माना जाता था और माना जाता है। नारी को नर के समान ही अधिकार प्राप्त थे और सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होने का अधिकार भी उसे प्राप्त था। विवाह विच्छेद की प्रथा भी उस युग में विद्यमान थी।

सामाजिक रीति-रिवाज और रहन सहन

मिश्र के लोगों की जीविका की आधारशिला कृषि थी। अधिकांश लोग कृषि के सहारे अपनी जीविका का निर्वाह करते थे। राजस्व कर फसल काटते समय दिया जाता था और यह कर उपज का १।१० या १।५ वां भाग होता था। गेहूँ, जौ, बाजरा, प्याज, तिल, सेम, मटर आदि की उपज मुख्य होती थी। इसके अतिरिक्त ये लोग पशु पालन भी करते थे और इसके माध्यम से ऊन, दूध, घी आदि का भी व्यापार करते थे। मांस, अंडे आदि

खाद्य पदार्थों में थे। फल फूल का भी उपयोग किया जाता था। उस समय के लोग समृद्ध थे। वे लोग सोना, चांदी, हीरे, मोती आदि मूल्यवान् धातुओं से निर्मित आभूषणों को पहना करते थे।

प्राचीन मिश्र के निवासियों ने कला के विभिन्न क्षेत्रों में चिरस्मरणीय उन्नति की। उनकी कलात्मक रचनाएं विश्व के महान् आश्चर्यों में गिनी जाती हैं। सृष्टि के भयंकर परिवर्तनों के उपरान्त भी उनकी कलाकृतियाँ विशेष कर पिरामिड तथा मन्दिर, आज भी आधुनिक कलाकारों को चुनौती दे रही हैं। प्राचीन मिश्र की स्थापत्य कला के सर्वोच्च प्रतीक हैं—गीजा के महान् पिरामिड। आज से ४५०० वर्ष पहले के पिरामिड। उस समय के जब कि आधुनिक विज्ञान और यातायात के साधनों का विकास नहीं हो पाया था। इन पिरामिडों में से एक पिरामिड की ऊंचाई ४५० फीट, एक भुजा की लंबाई ७५० फीट है। इसमें २३ लाख पत्थर के टुकड़े छोटे छोटे टुकड़े नहीं बल्कि २॥ टन का एक एक टुकड़ा अर्थात् ५० लाख टन वजन के पत्थर के टुकड़े लगे हुए हैं। यह वास्तव में एक आश्चर्य की बात है कि इस रेगिस्तानी मैदान में आधुनिक वैज्ञानिक यंत्रों की सहायता के बिना, विशालकाय पत्थरों को सैकड़ों मील की दूरी से कैसे लाया गया होगा, कैसे उन्हें चुना गया होगा। इन पिरामिडों के आंतरिक भाग में भवन के विशाल कमरे की भांति 'ममी' को रखने का स्थान बनाया जाता था।

विभिन्न क्षेत्रों में कला की प्रगति

स्फिंक्स (कल्पित प्राणी)

पिरामिड के बाहर ही मन्दिर के आकार से मिलते जुलते, भवन का निर्माण किया जाता था। इस स्थान के बीचों बीच एक विचित्र मूर्ति रखी जाती थी। जिसे 'स्फिंक्स' कहते हैं। यह मूर्ति भी कैसी-मनुष्य तथा शेर

की मिश्रित मूर्ति, जिसका मुख मनुष्य का परन्तु शरीर शेर का। इसकी लम्बाई २४० फीट और ऊंचाई ६६ फीट। ऐसी विशाल मूर्ति को स्वप्न में भी देखे तो भय से चिल्ला उठे। इस मूर्ति की नाक ही लगभग २० फीट लंबी है। परन्तु मूर्ति को देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानों कोई जीवित प्राणी ही बैठा हो।

उस युग की वास्तुकला का दिग्दर्शन भव्य मन्दिरों में होता है। कारनाक का मन्दिर अति भव्य है। इस मन्दिर की एक सुरंग में १३६ पत्थर के चित्रित स्तम्भ हैं जो १६ पंक्तियों मे खड़े हैं। मन्दिर की दीवारो पर भव्य व आकर्षक चित्रकारी की गई है। इसी प्रकार का एक अन्य मन्दिर अबूसिम्बेल स्थान पर है। इसमें उदय होते हुए सूर्य की प्रतिमा स्थापित है। मूर्तिकला के क्षेत्र में भी मिश्र के निवासियों ने बहुत प्रगति की। स्फिंक्स जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है सजीवता, सौन्दर्य तथा अन्य कलात्मक गुणों से परिपूर्ण है। मिश्री शासकों की मूर्तियां भी बहुत सुन्दर हैं। ठोस पत्थर को काटकर ये मूर्तियाँ बनाई गई हैं। इन मूर्तियों की ऊंचाई ८० फीट से लेकर ६० फीट तक है। इसके साथ ही साथ, उस युग के चित्रकारों ने भी प्राकृतिक सौन्दर्य को चित्रित करने में अत्यधिक प्रवीणता प्राप्त कर ली थी।

आबू सिम्बल की दीर्घकाय चट्टानों से बनी मूर्ति

अधिकांश विद्वानों की धारणा है कि लेखन कला का आश्चर्यजनक आविष्कार सर्व प्रथम मिश्र में ही हुआ था। प्रारम्भ में लेखन कला का

लेखन कला का विकास

तात्पर्य था मानवी विचारधारा को चित्र रूप प्रदान करना। उनकी लेखन कला, चित्रलिपि पर आधारित थी। मिश्रवासियों को स्वरज्ञान नहीं था। वे केवल व्यंजनों का ही बोध करा सकते थे। उनकी चित्रलिपि में कुल मिलाकर २४ प्रकार के संकेत या चित्र होते थे। इस प्रकार चित्रों, संकेतों एवं व्यंजनों की सहायता से वे अपनी विचारधाराओं को लिपिबद्ध करते थे।

मिश्र के निवासी कागज, स्याही तथा कलम का प्रयोग करते थे। पैपिरस नामक वृक्ष की छाल तथा तने के बारीक टुकड़ों को एक विशेष द्रव्य से चिपका कर कागज बनाया जाता था। इन कागजों पर, काजल और गोंद के मिश्रण से तैयार की हुई स्याही से लिखा जाता था। लिखने के लिये सरकंडे की कलम का प्रयोग किया जाता था। स्याही काली व लाल रंग की होती थी। इंगलैंड के संग्रहालय में १३५ फीट लम्बा व १७" चौड़ा कागज, जोकि प्राचीन मिश्र की खुदाई के समय उपलब्ध हुआ था, सुरक्षित रखा है। मिश्री लोगों का साहित्य प्रधानतया धार्मिक था। धर्म से संबन्धित विषयों पर ही अधिकतर ग्रन्थ लिखे जाते रहे होंगे। धर्म के अतिरिक्त गणित, ज्योतिष, इतिहास आदि विषयों पर भी बहुत से ग्रन्थ लिखे गये थे।

वैज्ञानिक प्रगति

विज्ञान के क्षेत्र में भी मिश्र के निवासी पीछे नहीं रहे। मृतक शरीर को हजारों वर्षों तक सुरक्षित रखने की सामर्थ्य, उस युग के वैज्ञानिकों की अपूर्व सफलता थी। इसके अतिरिक्त खगोल विद्या में भी उनका ज्ञान बहुत बढ़ा चढ़ा था। विश्व के प्रथम कैलेण्डर का आविष्कार भी मिश्र में ही हुआ। उन्होंने नक्षत्रों के अध्ययन से पता लगाया कि एक वर्ष में ३६५ दिन होते हैं। एक वर्ष को उन लोगों ने १२ महीनों में विभक्त कर रखा था। प्रत्येक मास में ३० दिन होते थे। बाकी ५ दिन विश्राम के लिए रखे जाते थे और उसके बाद दूसरा साल आरम्भ होता था। चिकित्सा क्षेत्र में भी मिश्र ने काफी उन्नति करली थी। उन्हें ४८ प्रकार के आपरेशन का ज्ञान प्राप्त था। शरीर के तापमान के विशेष उतार चढ़ाव, आदि का उन्हें पूर्ण ज्ञान था। 'इम्होटेप' उस युग का प्रसिद्ध चिकित्सक था। कुछ विद्वानों का मत है कि आधुनिक युग की सर्व- [illegible]

प्रचलित 'दशमलव' पद्धति की खोज भी मिश्र वालों ने ही की थी। उन्हें ज्योमेट्री (रेखागणित) का भी ज्ञान था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मिश्र की प्राचीन सभ्यता व संस्कृति बहुत उन्नत व समृद्ध थी। अपनी समकालीन अन्य सभ्यताओं में कई बातों में अधिक उन्नत थी। बहुत सी बातों में समान थी। इतना ही नहीं बल्कि आधुनिक युग की सभ्यता की आधार शिला थी। साम्राज्यवादी भावना, कलात्मक सजीवता तथा वैज्ञानिक प्रवृत्ति के कारण उसका स्थान विश्व की सभ्यताओं में महत्वपूर्ण है। उसने हमें पंचांग, ज्योतिष, रेखागणित, दशमलव पद्धति का ज्ञान प्रदान किया।

[२] सुमेरिया की सभ्यता एवं संस्कृति

ईसा से लगभग ६००० वर्ष पूर्व पश्चिमी एशिया की दजला और फरात (यूफेटीज और टाइग्रीस) के मध्यवर्ती हरे भरे भू भागों पर मिश्र के समान ही, सभ्यता एवं संस्कृति का प्रादुर्भाव हो चला था। इस प्रान्त को उस समय में मेसोपोटेमिया—दो नदियों के बीच का भूभाग कहते थे। यदि नील नदी मिश्र की बेटी थी तो दजला फरात मेसोपोटेमिया की, जहाँ सुमेरियन, बेबीलोन, असीरियन, खाल्दियन-आदि सभ्यताएँ, एक के बाद एक क्रमशः विकसित हुई। आधुनिक समय में इस प्रान्त को इराक कहते हैं। दजला और फरात आज भी बहती हैं परन्तु उस युग की दिशा के समान नहीं, पृथक् पृथक् रूप से नहीं, परन्तु एक ही साथ समुद्र-समागम करती हुई।

असुरक्षित भौगोलिक स्थित

मेसोपोटेमिया की भौगोलिक स्थिति मिश्र के समान सुरक्षित नहीं थी। वहाँ का मौसम, वहाँ की उपजाऊ भूमि, और अगाध जलराशि, उसे विदेशियों के आकर्षण से वंचित न रख सकी। उसके उत्तरी और पूर्वी पहाड़ तथा पश्चिमी दक्षिणी रेगिस्तान भी सुरक्षित नहीं रख सके। यही कारण था कि इस घाटी पर एक के बाद दूसरा आक्रमण होता ही रहा। आज भी वही स्थिति है। अमेरिका, इंगलैंड, और रूस इस स्वतन्त्र राष्ट्र को अपने अपने प्रक्षेत्र में रखने के लिए प्रयत्नशील हैं।

मि स्र
सी रि या
अ र ब
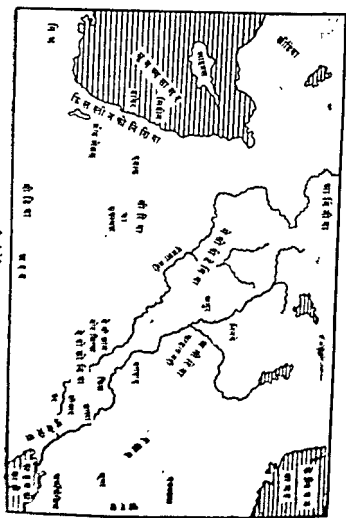
प्राचीन मेसोपोटेमिया में सर्व प्रथम ग्रामों और नगरों में सिंचाई का प्रादुर्भाव हुआ था। ईसा पूर्व ४००० साल के लगभग मेसोपोटेमिया के दक्षिणी भू भाग पर सुमेर लोगों ने अपना राज्य स्थापित किया।

राजनैतिक इतिहास

कालान्तर में उनके उत्तर में रहने वाली सेमेटिक जाति के अक्काद राज्य ने मेसोपोटेमिया पर अपना अधिकार कर लिया परन्तु उनका अधिकार भी क्षणिक रहा और उन्हें बेबीलोन के निवासियो से पराजित होना पड़ा और बेबीलोन वालों को असीरिया की शक्ति के आगे झुकना पड़ा। असीरिया को मीडिज जाति से पराजित होना पड़ा। मीडिज पर्शियन से पराजित हुए। पर्शियन यूनानी लोगों से और यूनानी रोमन लोगों से। यह क्रम चलता ही रहा। ठीक उसी प्रकार जैसे कि भारत में। मेसोपोटेमिया पर शासन करने वाली विविध जातियों का निम्न समय रहा—

(१) सुमेर (४५०० ई. पू. से २२०० ई. पू.) (२) बेबीलोन (२२०० ई. पू. से १३०० ई. पू.) (३) असीरिया (१२०० ई. पू. से ६१२ ई. पू.) (४) खाल्डिय (६१२ ई० पू० से ५३६ ई० पू०) (५) पर्शियन (५३६ ई० पू० से ३२४ ई० पू०) यूनानी और फिर रोमन जाति का आधिपत्य।

सुमेरिया के महान् शासकों में उराकाजिन, सारगन प्रथम, तथा गुड़िया का महत्वपूर्ण स्थान है। एक ने साम्राज्य की स्थापना का प्रयत्न किया, दूसरे ने सम्पूर्ण मेसोपोटेमिया पर अपना अधिकार किया और तीसरे ने पूर्व प्रतिष्ठा को कायम रखने का प्रयत्न किया।

प्रारंभिक अवस्था में सुमेर स्वतन्त्र नगर राज्यों में विभाजित था। प्रत्येक नगर का देवता और पुरोहित अलग २ होते थे। उस समय नगर शासक को 'पेटसी' या 'पटेसी' कहते थे। वह निरंकुश नहीं होता था और न ही कानून का स्रोत होता था। उसका कार्य नगर का सुप्रबन्ध तथा न्याय और संकट या युद्ध के समय नगर की सुरक्षा करना था। प्रारम्भ में इन

प्रशासन व्यवस्था

नगर राज्यों पर पुरोहितों की ही सत्ता थी परन्तु कालान्तर में राजाओं की शक्ति और अधिकार बढ़े। उसको सलाह देने के लिए मंत्रिया की नियुक्तियां हुई। राज्य का शासन की दृष्टि से विभाजन किया गया। प्रान्तों को राजपुत्र के तथा ग्रामों को सामन्तों के अधिकार में रखा गया।

राजाओं के युग में सेना का स्थान महत्वपूर्ण हो गया। सैनिकों को स्थायी नौकरी दी गई। वेतन निर्धारित किया गया। उन्हें उत्तम अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये गये। पराजित राज्य के सैनिकों को दास बना लिया जाता था। कभी २ उन्हें बेच दिया जाता था अथवा देवताओं की भेंट चढ़ा दिया जाता था। उस युग की न्याय व्यवस्था सुगम होती थी परन्तु नियम कठोर होते थे। पुरोहित मुख्य न्यायाधीश होता था। न्याय मन्दिरों में होता था। उस युग में यौनि तथा व्यापार सम्बन्धी समस्याओं का विशेष महत्व होता था। राजा की इच्छा अन्तिम होती थी। परन्तु वह भी न्याय का पालन करता था। सुमेरिया का न्याय विधान पारस्परिक झगड़ों को रोकने में बहुत रुचि रखता था।

वर्गाश्रित समाज

मिश्र की भाँति सुमेरिया का समाज भी तीन वर्गों में विभाजित था। प्रथम श्रेणी पुरोहितों और श्रीमन्तों की थी। इस श्रेणी के पास अत्यधिक अधिकार थे। द्वितीय श्रेणी व्यापारियों तथा शिल्प जीवियों की थी। इसके पास अधिकार तो ज्यादा नहीं थे परन्तु द्रव्य तथा कला के कारण इस वर्ग का सम्मान काफी था। तृतीय वर्ग अधिकार तथा धन विहीन था। इस श्रेणी में दास, कृषक तथा श्रमिक सम्मिलित थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ तक समाज की स्थिति का सवाल है मिश्र और सुमेरिया की सभ्यता में अत्यधिक समानता थी।

सुमेरिया समाज में नर व नारी को समान अधिकार प्राप्त थे। स्त्री स्वतन्त्रतापूर्वक अपना पृथक् व्यवसाय कर सकती थी। उस युग में माता पिता का सन्तान पर स्पष्ट अधिकार था। दुराचारिणी स्त्री को तथा बाँझ स्त्री को तलाक दिया जा सकता था। पुरुष को अपनी स्त्री को बेचने का पूर्ण अधिकार था। स्त्री सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी हो सकती थी। कितनी आश्चर्य की बात है उस युग की सभ्यता की, जहाँ एक तरफ तो नारी को नर के समान ही अधिकार प्राप्त थे और दूसरी तरफ नारी पुरुष की सम्पत्ति मानी जाती थी। वह उसे बेच भी सकता था।

सुमेर जाति के पुरुषों का रंग गेहुँआ और नाक उठी हुई होती थी। वे अपने सिर को मुड़ा हुआ रखते थे। शान्ति के समय सब समाज कृषि कार्य

में रत रहता था। सुमेरियन लोग केवल धार्मिक उत्सवों के दिनों में छुट्टी मनाते थे। उस समय का समाज बहुत ही निर्धन था, मिश्र की भांति समृद्ध नहीं। उसका व्यापार यदाकदा वस्तुओं के विनिमय से ही हो जाता था।

सुमेर की भूमि उपजाऊ थी और जल की प्रचुरता भी थी अतः यह स्वाभाविक था कि वहां के निवासी कृषि की ओर अधिक ध्यान देते। उस युग में गेहूं, जौ, कपास, दाल तथा खजूर की फसल अधिक होती थी। खजूर तो बहुत पसन्द किया जाता था। सुमेरियन लोगों ने कृषि की उन्नति के साथ साथ हलों को भी उन्नत कर लिया था। उनके हलों में बीज रखने की व्यवस्था थी। कृषि की उन्नति के लिए बड़े बड़े बांधों का निर्माण किया गया था। इन बांधों से नहरों द्वारा सिंचाई की जाती थी। इस प्रकार मिश्र की भांति सुमेरियों ने भी क्रमबद्ध सिंचाई की योजना को कार्यान्वित किया था। नदियों से भी नहरें निकाली गई थीं।

आर्थिक स्थिति

कृषि के अतिरिक्त वहां के निवासी पशुपालन भी करते थे। गाय, बैल बकरी, कुत्ते और गधे आदि पालतू जानवरों को पाला जाता था। मांस मछली, दूध, घी, ऊन आदि का व्यापार काफी उन्नत था। बैल और गधे माल ढोने के काम भी आते थे। उस युग में मिश्र तथा अन्य प्राचीन देशों की भांति सुमेरिया में भी सिक्कों का प्रचलन नहीं था। उनका व्यापार वस्तुओं के आदान-प्रदान से हो जाता था। परन्तु बड़े बड़े सामन्तों तथा शासकों के पास बहुमूल्य सोना-चांदी, हीरे, मोती आदि का अभाव नहीं था। वे उसी से वस्तुएं खरीदते थे। यद्यपि उस युग में सुमेरिया के लोगों को सोना, चांदी, कांसा, तांबा लोहा आदि का ज्ञान था। परन्तु उन्हें इनमें से अधिकांश धातुएं बाहर से लानी पड़ती थीं। ब्याज पर ऋण देने की प्रथा भी जारी थी। ब्याज २० से ३३ प्रतिशत तक लिया जाता था। उल [illegible] कार, रथकार, दर्जी आदि अनेक जातियों के व्यवसाय उस युग [illegible]

मिश्र की भांति [illegible] । वे
अनेक [illegible] [सर्य]
इन्लिल [illegible] की

तत्कालीन सुमेरिया के मानव समाज पर मन्दिरों का प्रभुत्व जमा हुआ था। जहाँ मिश्रवासियों ने महान पिरामिड बनाए थे वहाँ सुमेरिया के वासियों ने महान् मंदिर। सुमेरिया में विशाल शिलाकार मंदिरों का रिवाज था। यद्यपि सुमेरिया के निवासी अपने घरों का निर्माण धूप में सुखाई ईंटों के द्वारा करते थे परन्तु मंदिरों का निर्माण आग में पकी हुई ईंटों से किया जाता था। पुरातत्ववेत्ताओं ने ऐसे अनेकों मंदिरों को खोज निकाला है जिनमें उर, निप्पर, लराजे आदि स्थानों के मंदिर और मूर्तियाँ महत्वपूर्ण है। ये लोग मंदिर के चारों तरफ इमारतों का निर्माण करते थे। नालियों तथा नहरों का निर्माण, गुम्बज, महराब तथा खम्बों का प्रयोग सर्व प्रथम सुमेरिया के लोगों ने ही किया था। मिश्र वाले इस कलात्मक ज्ञान से अपरिचित थे। उस युग की बहुत सी मूर्तियाँ भी मिली हैं। यद्यपि विशालता में ये मूर्तियाँ अपना सानी नहीं रखतीं परन्तु कलात्मक दृष्टि से उतनी अच्छी नहीं जितनी कि मिश्र की मूर्तियाँ थीं। भद्दी एवं भौंडी आकृति प्रधान तथा भावों के अभाव में ये मूर्तियाँ उच्च श्रेणी की नही कही जा सकतीं।

कला का विकास

कला की दौड़ में सुमेरिया भले ही मिश्र से पीछे रह गया हो परन्तु विज्ञान के क्षेत्र में उसने बहुत उन्नति की। वे लोग ६० की संख्या से गणना करते थे। १ मिनट में ६० सेकेंड तथा ६० मि० का १ घंटा। १ पौंड में ६० शैकल। वृत्त को ६×६० ॥ ३६० में विभाजित किया जाता जाता था। प्रत्येक वर्ष को १२ महीनों में तथा प्रत्येक महीनों को ३० दिन में विभाजित करते थे। दिन और रात्रि को १२ घंटों में विभाजित किया जाता था। उन्होंने अनेकों नक्षत्रों को ढूंढ कर जगत को आश्चर्य चकित कर दिया था। रोमन लोगों ने उनकी इस विद्या का पूर्ण लाभ उठाया।

विज्ञान की प्रगति

(३) बेबीलोनिया की सभ्यता एवं संस्कृति

दजला और फरात की घाटी पर सुमेरिया की सभ्यता के उपरान्त, बेबीलोन की सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ। इस युग के इतिहास को जानने के लिए हमें

दो प्रमुख साधन उपलब्ध हुए हैं– (१) लगभग ४५ पत्रों का संग्रह तथा (२) हम्मूर बी के नियमों से अंकित विशाल प्रस्तर स्तम्भ। यद्यपि इस सभ्यता का विकास २२०० ई० पू० से लेकर १३०० ई० पू० तक रहा परन्तु हमें हम्मूर बी के अतिरिक्त अन्य राजाओं की पूर्ण जानकारी नहीं है। हम्मूर बी अपने युग का सर्वशक्तिमान स्वायत्त शासक था। उस में शूर-वीरता तथा नीति-निपुणता का अद्भुत समन्वय था। उसने मेसोपोटेमिया को नवीन विधि-संग्रह प्रदान किया। हम्मूर बी के उपरान्त बेबीलोन साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया और असीरिया का प्रभुत्व स्थापित हुआ।

राजनैतिक इतिहास

उस युग में राजा ईश्वर का प्रतिनिधि समझा जाता था। अतः सम्पूर्ण राष्ट्र उसकी आज्ञाओं का पालन करता था। इसी कारण वह निरंकुश और स्वेच्छाचारी होता था। परन्तु उसकी शक्ति के ऊपर पुरोहित तथा पूंजीपति वर्ग का अंकुश रहता था। उस समय प्रशासन सुव्यवस्थित था। सम्पूर्ण साम्राज्य अनेक प्रांतों में विभाजित था और प्रत्येक प्रांत अनेक ग्रामों में। इनका शासन सम्राट के निर्देशानुसार स्थानीय परम्परा को दृष्टि में रखते हुए किया जाता था। भ्रष्ट राजकर्मचारियों के विरुद्ध कठोर प्रशासनिक कार्यवाही की जाती थी। प्रशासन की दृष्टि से उस समय के मिश्र तथा सुमेरिया से कोई विशेष असमानता नहीं थी। केवल इतना ही अन्तर था कि नियम तथा अनुशासन कुछ अधिक कठोर थे।

प्रशासन की रूप रेखा

एक विशाल प्रस्तर स्तम्भ पर हम्मूर बी का विधि संग्रह अंकित किया हुआ है। इस विधि संग्रह में कुल २८० कानून हैं। हम्मूर बी के कानूनों की आधारशिला "प्रतिशोध अथवा जैसे को तैसा" के सिद्धान्त पर अवलम्बित थी। उदाहरण के लिए यदि किसी कारीगर द्वारा निर्मित भवन गिर जाय और उससे मकान मालिक की मृत्यु हो जाय तो कारीगर को मृत्यु दंड दिया जाता था। यदि मकान के गिरने से मालिक का पुत्र या पुत्री मर जाय तो कारीगर के पुत्र या पुत्री को प्राण-दंड की सजा मिलती थी। न्याय की दृष्टि से राजा सर्वोच्च अधिकारी था। वह किसी भी अपराधी को मुक्त कर सकता था। राजा के अधीन सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। इसे 'शक्कनइ' कहते थे। सर्वोच्च न्यायाधीश की

न्याय व्यवस्था का विकास

सहायता के लिए एक समिति होती थी। सर्वोच्च न्यायाधीश के नीचे द्वितीय न्यायाधीश होते थे जिन्हें 'रबिअनु' कहा जाता था। इनकी सहायता के लिए भी एक समिति होती थी। एक न्यायालय में पराजित हो जाने के बाद उस न्यायालय से उच्च न्यायालय में अपील करने की प्रथा थी, जैसे कि आजकल है। अन्तिम अपील राजा के पास की जाती थी।

हम्मूरबी के नियम विस्तृत थे। व्यभिचार, घूस, भ्रष्टाचार, बलात्कार, डकैती, अपहरण, वर्जित सहवास आदि अनैतिक विषय अपराध समझे जाते थे, और इन अपराधों के लिए सख्त सजा दी जाती थी। दूसरे के गुलामों को आश्रय देना, शराब विक्रय के नियमों का उल्लंघन करना, अपने अधिकार तथ कर्तव्य का दुरुपयोग करना, अधिक ब्याज लेना भी अपराध समझे जाते थे। अधिकांश अपराधों का निर्णय जल-परीक्षा और शपथ से किया जाता था। हम्मूरबी के नियमों में उदारता की झलक बहुत ही कम अंशों में मिलती है।

मिश्र और सुमेर की भांति बेबीलोन का समाज तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित न होकर पांच या इससे भी अधिक वर्गों में विभाजित रहा होगा। सबसे प्रथम श्रेणी में पुरोहित तथा शासक वर्ग के व्यक्ति होते थे। द्वितीय वर्ग सैनिकों का था। तृतीय वर्ग में धनिक व्यापारी तथा शिल्पकार होते थे। चतुर्थ श्रेणी में निर्धन किसान, व्यापारी तथा शिल्पकार होते थे। अंतिम श्रेणी दासों और गुलामों की थी। इस प्रकार की सामाजिक स्थिति को देखते हुए हमें बरबस ही मेगस्थनीज द्वारा वर्णित भारतीय समाज की—जिसे उसने सात हिस्सों में विभाजित किया था—याद आ जाती है।

नियमानुसार विभाजित समाज

बेबीलोन समाज नियम की दृष्टि से तीन प्रमुख श्रेणियों में विभाजित था। अमलू, मुश्किनु तथा अरदू। प्रथम श्रेणी के व्यक्तियों को अपने ऊपर किये गये शारीरिक आघातों का प्रतिकार करने का अधिकार था परन्तु यदि वे स्वयं कोई अपराध करते थे तो उन्हें भी कड़ा दण्ड दिया जाता था। इस वर्ग में राजवंश तथा पुरोहित वर्ग के व्यक्ति होते थे। द्वितीय श्रेणी में श्रमिक, शिल्पकार व्यापारी तथा शिक्षक आदि होते थे। इन्हें शारीरिक आघातों का प्रतिकार करने का अधिकार नहीं था परन्तु धन लेकर वे अपना प्रतिकार पूरा कर

लेते थे। स्वयं के अपराधी होने की परिस्थिति में इस वर्ग के व्यक्तियों को कोड़े भी लगाये जा सकते थे। अन्तिम श्रेणी दासों, गुलामों, तथा युद्धों में पकड़े हुए सैनिकों की थी। इस श्रेणी के पास किसी प्रकार के अधिकार नहीं थे। हाँ, इस श्रेणी के मालिक के पास इनको बेच देने, मार देने तक के अधिकार थे।

बेबीलोन समाज का पारिवारिक जीवन अत्यन्त ही मधुर था। माता पिता परिवार के मुखिया होते थे। अपनी सन्तान पर उनको पूर्ण अधिकार होता था। वे उनका लालन-पालन करने, शिक्षा शादीविवाह का प्रबन्ध करने तथा विवाह भी करवाते थे। उस समय स्त्री का स्थान बहुत ही सम्मानपूर्ण था। वह सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी हो सकती थी, उसे तलाक देने का भी अधिकार था। कभी कभी विशेष परिस्थितियों में पुरुष तथा स्त्री दोनों को ही दूसरी शादी करने का अधिकार प्राप्त था। स्त्री की स्थिति को देखते हुए यह कहना पड़ेगा कि बेबीलोन का समाज मिश्र और सुमेर से कहीं अधिक सभ्य और सुसंस्कृत था। व्यभिचारी स्त्री-पुरुष को कठोर सजा दी जाती थी। इस युग में बेबीलोन समाज में एक अन्य आश्चर्य की बात पाई जाती थी। वह थी 'सांकल्पित विवाह' (Trial marriage) अर्थात् वास्तविक विवाह के पहले विवाह का परीक्षण कर देख लेना कि पुरुष और स्त्री जीवन साथी बनकर रह सकते हैं या नहीं। दास स्त्रियों के साथ भी विवाह किया जा सकता था परन्तु दासों को अपनी जाति के अतिरिक्त अन्य जाति की स्त्री से विवाह करने का अधिकार प्राप्त नहीं था।

आर्थिक उन्नति

मिश्र, सुमेर, चीन, भारत आदि प्राचीन सभ्यताओं की भांति, उस युग में बेबीलोनिया की आर्थिक स्थिति की आधारशिला भी कृषि ही थी। परन्तु इस क्षेत्र में बेबीलोनिया ने अन्य देशों से अधिक उन्नति एवं सफलता प्राप्त करली थी। वे गेहूँ, जौ, बाजरा तिल, मूंग आदि के अतिरिक्त फलों तथा मेवों की खेती करते थे। नाना प्रकार की साग सब्जियाँ होती थीं। खेतों तक पानी पहुँचाने के लिए योजनाबद्ध नहरें खोदी गई थीं। पशुपालन भी यहाँ के लोगों का मुख्य व्यवसाय था। ऊंट, गधे, भैंस, बैल, बकरी, कुत्ते तथा चिड़ियों के पालने का अधिक रिवाज था। प्रथम बार हमें ऊंट और

चिड़ियों के पालने का वर्णन यहां मिलता है। मिस्र और सुमेरिया की सभ्यता में इसका उल्लेख नहीं मिलता।

बेबीलोनिया के निवासियों को तेल, ताँबा, सीसा, लोहा, चाँदी-सोना आदि द्रव्यों एवं धातुओं का ज्ञान था। इन धातुओं से वे अस्त्र-शस्त्र, आभूषण, खिलौने तथा अन्य वस्तुओं का निर्माण करते थे। उस युग में सूती और ऊनी कपड़ों का भी प्रचलन था। मिट्टी के बर्तन मेज, कुर्सी आदि भी बनाये जाते थे। बहुत से उद्योगों को राज्य तथा मंदिर का संरक्षण प्राप्त था। यातायात या गमनागमन का कार्य बैलगाड़ियों, पशुओं आदि की सहायता से होता था। बेबीलोनिया का व्यापार, भूमध्यसागरीय प्रदेशों, भारत आदि राष्ट्रों तक फैला हुआ था। सिक्कों का प्रचलन अभी तक नहीं हुआ था।

मिस्र तथा सुमेरिया की भांति बेबीलोनिया के निवासी भी बहुदेवतावाद के उपासक थे। वास्तविक बात तो यह थी कि विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में अभी तक एकेश्वरवाद की भावना की उत्पत्ति ही नहीं हुई थी। लोग नाना प्रकार के देवी-देवताओं की पूजा करते थे। बेबीलोनिया के निवासी भी अनेक देवी देवताओं की पूजा करते थे। उनका प्रमुख देवता 'मार्दुक' था। देवियों में 'इश्तर'। प्रेम व युद्ध की देवी का प्रमुख स्थान था।

धार्मिक स्थिति

उनके बहुत से देवता सुमेरियन देवताओं से मिलते-जुलते थे। ऐसा मालूम होता है कि उन लोगों ने सुमेरियन देवताओं का नाम परिवर्तन करके अपने देवताओं की श्रेणी में रख लिया था। वे अपने देवताओं की मूर्तियां बनाते और इन मूर्तियों को मन्दिरों में स्थापित करके उनकी उपासना करते थे। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पशु-बलि दी जाती थी। उनकी सेवा के लिए दासियाँ रखी जाती थीं। इससे वेश्यावृत्ति का प्रचार होने लगा। बहुत से विद्वानों का कथन है कि बेबीलोनिया की प्रत्येक स्त्री एक बार मन्दिर में किसी अन्य पुरुष के साथ सहवास करती थी। यह आवश्यक माना जाता था। इस प्रकार की प्रथा मिस्र, सुमेरिया, चीन और भारत आदि प्राचीन देशों में नहीं पाई जाती थी। बेबीलोनिया वालों में भी अन्धविश्वास कूट कूट कर भरा हुआ था। वे लोग जादू-टोने, मंत्र-तंत्र, तावीज आदि में

विश्वास करते थे और शैतान की भी उपासना करते थे। मिस्र की भांति मुर्दों को मसालों की सहायता से सुरक्षित रखने की प्रथा नहीं थी और न ही सुमेरिया की तरह मृतक के जीवित सम्बन्धियों और दासों को मृतक के साथ दफनाने की ही प्रथा थी। हालांकि वे लोग भी आत्मा तथा परमात्मा–इहलोक तथा परलोक–में विश्वास करते थे।

कलात्मक रुचि का विकास

बेबीलोनिया के निवासियों ने जहाँ सभ्यता के अन्य क्षेत्रों में मिस्र और सुमेरिया से भी अधिक उन्नति की वहाँ कला के क्षेत्र में पीछे रह गये। वे रेखाओं द्वारा मानवीय तथा जलचरों एवं थलचरों की आकृतियां अंकित करते थे। इन आकृतियों में न तो सौन्दर्य ही होता था और न ही कलात्मक रुचि का आकर्षण शक्ति। उस युग में बड़े २ मंदिर बनाये जाते थे जिनकी मीनारें बहुत ऊंची होती थीं। इसे 'जिगुरात' कहते थे। 'उर' के भग्नावशेष से एक विशालकाय जिगरेत का पता चला है जिसकी ऊंचाई ६८७ फीट है। इसी प्रकार एक मीनार मिली है जिसकी ऊंचाई ३५० फीट है।

चित्रकला तथा स्थापत्य कला में बेबीलोन पीछे ही रहा परन्तु संगीत में अवश्य ही उन्नति की। बांसुरी, बीन मशकबाजा, तुरही, भोंपू, ढोल, वीणा, मजीरा, तम्बूरी आदि वाद्य-यंत्रों का प्रयोग करना वे लोग अच्छी तरह से जानते थे।
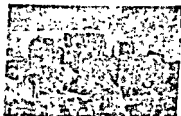
बेबीलोन के भग्नावशेष

बेबीलोनिया के निवासी शिक्षा में बहुत रुचि रखते थे। शिक्षा प्रायः मन्दिरों में दी जाती थी। भारत को छोड़कर अन्य सभी देशों में इसी ढंग से शिक्षा दी जाती थी। भारत में शिक्षा मन्दिरों में न दी जाकर गुरु के आश्रम तथा ऋषि के आश्रम में दी जाती थी। उस युग में बेबीलोनिया के लोग मिट्टी की तख्ती पर लकड़ी की लेखनी से लिखते थे। बेबीलोनिया की लिपि भी

चित्र तथा संकेत लिपि ही थी परन्तु सुमेरियन लिपि से काफी उन्नत थी। जहाँ सुमेरियन लिपि में ६६६ चित्र संकेत या अक्षर होते थे वहाँ बेबीलोन की लिपि में ३५० होते थे। बेबीलोन का साहित्य भी बहुत उन्नत था। पहाड़ों की चट्टानों पर एक महाकाव्य लिखा हुआ प्राप्त हुआ है जिसका नाम गिलगमिश है। बेबीलोनिया वालों को व्याकरण, शब्दकोष तथा भाषा विज्ञान का अच्छा ज्ञान था।

शिक्षा का विकास

विज्ञान के क्षेत्र में भी बेबीलोनिया ने काफी उन्नति की थी। वहा के निवासी खगोल विद्या के पूर्णतया परिचित थे और सूर्य तथा नक्षत्रों एवं ग्रहों की गतिविधि से भविष्य की घटनाओं का ज्ञान देने की शक्ति रखते थे। अर्थात् उनका ज्योतिष ज्ञान काफी उन्नत था। उन्हें जमीन की नाप करना, क्षेत्रफल निकालना आदि रहस्यों का ज्ञान भी प्राप्त था। गणित की सुगमता के लिए १, १०, और १०० की गणना की जाती थी तथा १/२, १/३ और १/४ का ज्ञान भी था। वे लोग चार सप्ताह का महीना तथा बारह महीनों का एक साल मानते थे। उनके साल में कभी कभी १३ महीने भी हो जाते थे जैसे कि आज के हिन्दू सम्वत् में होते हैं। सप्ताह में सात दिन होते थे। परन्तु उनका एक दिन १२ घंटे का होता था। उनका १ मिनट आधुनिक चार मिनटों के बराबर होता था। अर्थात् इस क्षेत्र में उन्होंने अन्य देशों का अनुकरण न करके अपनी स्वतन्त्र नीति का निर्माण किया।

विज्ञान की प्रगति

[८] चीन की सभ्यता एवं संस्कृति

चीन की सभ्यता भी विश्व की अन्य सभ्यताओं की भाँति अति प्राचीन है, और भारतीय सभ्यता के समान आज भी संशोधित रूप में विद्यमान है। उत्तरी चीन में अनेक स्थानों पर पुरातन प्रस्तर युग के चिन्ह उपलब्ध हुए हैं। कई स्थानों पर नूतन प्रस्तर युग के अवशेष प्राप्त हुए हैं जिनसे यह पता चलता है कि चीन की भूमि पर, स्वतन्त्र रूप से सभ्यता का विकास पूर्व प्रस्तर युग से ही हो गया था। इसी कारण चीनी विद्वानों की धारणा है कि चीन की

सभ्यता का आविर्भाव मानव प्राणी की उत्पत्ति के साथ ही साथ स्वतन्त्र रूप से हो चुका था।

विश्व की प्राचीनतम समृद्ध सभ्यताओं—मिस्र, सुमेर, सिन्धु की भांति चीन की प्रारम्भिक सभ्यता का विकास ह्वांगहो और यांग्सेकियांग नदियों की उपत्यका में हुआ था। प्रारम्भ में इस सभ्यता का आधार छोटे छोटे ग्राम रहे होंगे परन्तु अन्त में बस्तियों और तदुपरान्त नगर राज्यों का विकास हुआ होगा। प्रत्येक बस्ती एक स्वतन्त्र और पृथक् राज्य थी।

राजनीतिक इतिहास

सन् १६५० ई० पू० में चीन में एक शक्तिशाली राजवंश की स्थापना हुई जिसके सम्राटों ने पृथक् पृथक् राज्यों को नष्ट करके एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करने का प्रयत्न किया। इस वंश का नाम शांग वंश था और इसका शासनकाल ११२५ ई०पू० तक रहा। इस वंश में भी पाँच प्रसिद्ध सम्राट हुए ह्वांगटी, याओ, शुन आदि। इन सम्राटों के शासन काल में एक तरफ तो चीनी साम्राज्य का विकास हुआ और दूसरी तरफ सभ्यता एवं संस्कृति की उन्नति। शांग वंश के उपरांत चाऊ वंश ने ११२५ ई० पू० से लेकर २५० ई० पू० चीन पर शासन किया। इस वंश ने भी चीन की एकता को पूर्ण करने का प्रयत्न किया परन्तु वे पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सके। इस युग की एक विशेषता यह है कि इस युग में विश्व विख्यात दार्शनिक कन्फ्यूशियस तथा लाओत्से के विचारों का प्रसार हुआ। चाऊ वंश के उपरान्त-चीन वंश का शासन २५० से २०६ ई० पू० तक रहा। इस वंश का प्रमुख सम्राट् शिहुनशी था। इसने चीन के विविध राजाओं को जीत कर अपने अधीन किया और देश में एक व्यवस्थित शासन की स्थापना की। बर्बर हूणों के आक्रमणों को रोकने के लिए उसने एक विशाल दीवार का निर्माण किया जो कि १८०० मील लम्बी, २० फीट चौड़ी और २२ फीट ऊंची थी तथा १०० गज के अन्तर पर ४० फीट ऊंची मीनारें बनी हुई थीं। इसके कारण चीन एक विशाल दुर्ग के रूप में परिवर्तित हो गया। प्रसिद्ध फ्रेंच दार्शनिक वाल्तेयर ने कहा था "मिस्र के पिरामिड इस दीवार के सम्मुख तुच्छ हैं।" इसी युग में मंगोलिया, तुर्किस्तान तथा तिब्बत चीनी साम्राज्य में लिये गए। इसी वंश के कारण इस देश का नाम 'चीन' पड़ा। पहले

इसे मध्य देश कहा जाता था। शिनशी की मृत्यु के उपरान्त चीन में एक नवीन राजवंश (हानवंश) की उत्पत्ति हुई। इस वंश का प्रसिद्ध सम्राट वूसी था। उसके समय में चीन विश्व का विशाल साम्राज्य बन गया। हानवंश की महत्वपूर्ण घटना चीन में बौद्ध धर्म का प्रवेश थी। आचार्य कश्यप मातंग ने चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। दूसरी विशेषता छापेखाने का आविष्कार थी। तीसरी विशेषता राजकीय पदों पर नियुक्त किये जाने वाले अधिकारियों को परीक्षा की कसौटी पर कसना थी। आज भी लोक सेवा आयोग इसी प्रकार का कार्य करता है।

हानवंश के उपरान्त कई शताब्दियों तक चीन में अराजकता रही। जिसका अन्त ६१८ ई० तांगवंश के प्रथम शासक काओत्सु ने किया। इस लिए चीन की सभ्यता का अध्ययन दो पृथक् हिस्सों में—(१) प्रारम्भ से हानवंश तक और (२) तांगवंश के उपरान्त करना आवश्यक है।

(१) प्रारम्भ से हानवंश तक की चीनी सभ्यता

प्रारम्भिक युग में प्रशासन

प्रारंभिक चीनी प्रशासन प्रजातांत्रिक पद्धति पर अवलम्बित था। पृथक् पृथक् नगर राज्यों का युग था। परन्तु कालान्तर में महत्वाकांक्षी राजाओं ने इन नगर राज्यों की सामूहिक प्रशासन प्रणाली का अन्त करके स्वेच्छाचारी निरंकुश शासन प्रणाली का विकास किया। शीघ्र ही इन राज्यों को भी महान् साम्राज्यों में विलीन होना पड़ा और सम्राटों का करदसामन्त बन कर रहना पड़ा। हानवंशों के शासन काल में ही चीन में उस परीक्षा पद्धति का सूत्रपात हुआ, जो वहां दो हजार वर्ष तक कायम रही। परीक्षा में उत्तीर्ण व्यक्ति ही राजकीय पदों पर नियुक्त किये जाते थे। जन्म, कुल आदि का कोई भेद इसमें नहीं किया जाता था।

प्रशासन की सुविधा के लिए विशाल चीनी साम्राज्य प्रान्तों, जिलों तथा ग्रामों में विभक्त था। प्रान्तपति सम्राट के द्वारा नियुक्त किये जाते थे तथा सम्राट् के प्रति उत्तरदायी होते थे। उनका प्रमुख कार्य प्रान्त में शांति व्यवस्था करना, न्याय प्रदान करना, राजस्व कर वसूल करना तथा संकट के समय में सेना द्वारा सम्राट् की सहायता करना था। हानवंश के समय में चीनी साम्राज्य १३ प्रांतों में विभाजित था।

सम्राट् देवपुत्र या देवता का प्रतिनिधि समझा जाता था और जनता उसकी पूजा करती थी। उस पर अंकुश रखने वाली कोई संस्था नहीं थी। इसलिए वह स्वेच्छाचारी निरंकुश शासक होता था। उसकी सहायता के लिए मंत्रि परिषद् होती थी चीन सम्राट् न्याय के क्षेत्र में सर्वोच्च न्यायाधिकारी होता था। उसकी इच्छा ही कानून होती थी। वह किसी भी व्यक्ति को मृत्यु दण्ड दे सकता था और किसी को भी मुक्त कर सकता था।

सामाजिक स्थिति

चीन के समाज में पिता कुटुम्ब का मुखिया होता था, घर में उसके अधिकार असीमित थे। अति प्राचीन काल में शायद माता का अनुशासन माना जाता होगा। परन्तु यह निश्चित रूप से अभी तक ज्ञात नहीं हुआ है। पिता की प्रधानता के उस युग में परिवार का बहुत महत्व था। राज्य परिवारों को वैधानिक महत्व प्रदान करता था। उस युग में अन्य सभ्यताओं की भांति चीनी समाज में भी तलाक प्रथा का प्रचलन था। बहुविवाह का रिवाज भी था। ऐसी सम्भावना है कि बहुविवाह का अधिकार केवल पुरुषों को ही प्राप्त था। लोग रखैलियां (उपपत्नियाँ) भी रखते थे। इतना होने पर भी चीनी समाज में स्त्री को अत्यधिक सम्मान प्राप्त था। कन्याओं को अपने कौमार्य की रक्षा करनी पड़ती थी। यह उनका आवश्यक कर्तव्य माना जाता था। बेबीलोन की भाँति सांकेतिक विवाह की प्रथा यहां नहीं थी। विवाह राज्य की ओर से नियुक्त अधिकारी करवाता था। प्रारंभिक काल में चीनी समाज वर्गों में विभाजित था या नहीं इसकी निश्चित सूचना उपलब्ध नहीं है परन्तु ऐसा विश्वास किया जाता है कि चीनी समाज में भी ऊंच-नीच वर्ग अवश्य रहा होगा।

धार्मिक विचारधारा

प्राचीन समय में चीन के लोग विविध-देवी-देवताओं की उपासना करते थे। प्रत्येक वस्तु का पृथक् पृथक् देवता होता था। कुछ देवताओं का प्रचार सम्पूर्ण चीन में था। देवताओं की संतुष्टि के लिए वे पूजा-पाठ तथा बलि चढ़ाते थे। राजा धर्म का नेता तथा पुजारी होता था। चीन के अधिकतर लोग प्राकृतिक शक्तियों की उपासना करते थे। इसके अतिरिक्त उनमें जादू-टोना तथा

अन्धविश्वास की भावना की भी प्रधानता थी। चीन के लोग नैतिक जीवन में विश्वास रखते थे तथा अनैतिक कर्मों को बुरी दृष्टि से देखा जाता था। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में कन्फ्यूशियस ने एक नवीन धर्म का प्रचार किया। लाओत्से ने भी एक नवीन विचारधारा को जन्म दिया। फिर भारतीय बौद्ध धर्म का विकास हुआ।

६०४ ई० पू० में चीन में एक महान विचारक लाओत्से का जन्म हुआ। प्रारम्भ में चीनी लोग अपने धार्मिक ग्रन्थ 'यी चान' (परिवर्तन के नियम) तथा 'शूचिन' (इतिहास के नियम) में अगाध विश्वास रखते थे परन्तु कालान्तर में चीनी लोग उन्हें विस्मृत कर गये। लाओत्से तथा कन्फ्यूशियस की विचारधाराएं इन्हीं ग्रन्थों के मूलतत्वों पर आधारित थीं। लाओत्से ने मनुष्यों को नियति द्वारा निर्धारित मार्ग पर बिना किसी हिचकिचाहट के स्वतन्त्र रूप से चलने का मूल मन्त्र सिखाया। उसके अनुसार मनुष्य को सृष्टि के कार्यों में योजनाएं बनाने की, हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। वह जीवन को क्षण भंगुर मानता था। इसलिए कहता था कि अपने आपको सृष्टि के पथ पर उसके प्रवाह में, निश्चिन्त हो चलने दो। सफलता प्राप्त होगी परन्तु सफलता पर विश्वास करके, सृष्टि के कार्यों को संपादित करने की चेष्टा में असफलताओं की संभावना बनी रहती है।

लाओत्से को "गौतम" कहा जाता है। उसे "वृद्ध दार्शनिक" भी कहा जाता है। उसका वास्तविक नाम "लि-ईर" था। उसका प्रमुख उपदेश भी बुद्ध के समान था कि मनुष्य अपनी इच्छाओं के दमन के उपरान्त प्रसन्नता प्राप्त कर सकता है। मनुष्य को चाहिए कि भावनाओं और इच्छाओं के कारण अपनी आध्यात्मिक शांति को नष्ट न होने दे। "घुड़दौड़" और शिकार मनुष्य के चरित्र को दूषित करती है।" वह कहता था, मनुष्य को भोगविलास के जीवन से बचकर पवित्र और सादा जीवन बिताना चाहिए। मनुष्य त्याग की ओर जाय और तपस्या का जीवन बिताये। लाओत्से की शिक्षाओं का बहुत प्रचार हुआ। उसका धर्म टाउ धर्म कहलाया। कालान्तर में उसकी शिक्षाओं में जादू टोने आदि विश्वासों का समन्वय कर दिया गया जिसके कारण इस धर्म का अन्त हो गया।

लाओत्से की शिक्षाओं से भी अधिक प्रभाव महान् विचारक कन्फ्यूशियस की शिक्षाओं का पड़ा। उसका असली नाम "कुंग-फू-त्सी" था। उस समय में लोग उसे दार्शनिक कुंग कहते थे। कुंग का जन्म ५५० ई० पू० में हुआ था। अर्थात् वह महात्मा बुद्ध का समकालीन था। लाओत्से की भांति कन्फ्यूशियस की विचारधारा भी प्राचीन चीन के धार्मिक ग्रन्थों 'यू किंग' और 'शू किंग' पर अवलम्बित थी। परन्तु उसका दृष्टिकोण भिन्न था। उसने अपने देश के निवासियों के सम्मुख धर्म के सम्बन्ध में एक नूतन विचारधारा रखी। वह विविध देवी-देवताओं की उपासना के पक्ष में नहीं था, बल्कि सदाचारमय और पवित्र जीवन के पक्ष में था। वह कहता था कि कि मनुष्य के लिए इस प्रकार का जीवन व्यतीत करना अधिक हितकारी है। मनुष्य का सर्वप्रथम ध्येय यह होना चाहिए कि वह अपने जीवन को पवित्र व परोपकारी बनाये। संसार में सर्वत्र ही कष्ट की अनुभूति होती है और इस कष्ट को दूर करने का उपाय यही है कि संसार के सब मनुष्य परस्पर एक दूसरे की सहायता करें। उनके कष्टों को दूर करने में सहायक हों। मनुष्य केवल व्यक्तिगत स्वार्थ, उन्नति या कल्याण की कामना न करके सम्पूर्ण मानव जाति की उन्नति, कल्याण तथा सुख समृद्धि के लिए प्रयत्न करे। इस प्रकार की भावना मनुष्य में तभी प्रादुर्भूत हो सकती है जब कि वह अपना जीवन अधिक ऊँचा एवं मर्यादित करने में सफल हो सके। अपने विचारों के प्रचार के लिए कन्फ्यूशियस ने एक नये सम्प्रदाय की स्थापना की गुरु और शिष्य की परम्परा। कन्फ्यूशियस आदर्श गुणों का उपासक था और उसने जो कुछ भी लिखा [illegible] अर्थात् हृदय

कन्फ्यूशियस

कन्फ्यूशियस के उपदेशों ने चीन में आदर्श एवं शिष्ट जीवन के सिद्धान्तों को विकसित होने में अत्यधिक सहयोग प्रदान किया। लोगों की रुचि बढ़ने लगी और उसके साथ ही शिष्टाचार की प्रवृत्ति। उस समय धार्मिक कर्मकाण्डों का बहुत महत्व था और इस दिशा में कन्फ्यूशियस बहुत ही सतर्क था। वह देवताओं की तथा अन्य आत्माओं की विधिवत् पूजा का उसने प्रचार ही किया खण्डन नहीं। उसने माता पिता के प्रति सत्य सम्मान की स्पष्ट व्याख्या की–"उनके जीवन काल में उनकी आज्ञा पालन, उसकी मृत्यु के समय विधिवत् मृतक संस्कार तथा उत्सव और मृत्यु के उपरान्त उनकी उपासना।"

महात्मा बुद्ध की भाँति कन्फ्यूशियस का क्षेत्र भी ईश्वर या आत्मा न होकर मानवीय समाज था। उसने अपने उपदेश छोटी छोटी कहावतों एवं मुहावरों के रूप में दिये। जैसे "सतर्क व्यक्ति कभी गल्ती नहीं करता" "बिना विचार का अध्ययन व्यर्थ है।" "अध्ययन की सहायता के बिना विचार हानिकारक है" "सत्य को पहचानने के उपरान्त उसका प्रयोग न करना कायरता है।" कन्फ्यूशियस का सबसे महत्वपूर्ण उपदेश था—कोई बात यदि तुम पर लागू की जाय और तुम्हें अच्छी न लगे तो तुम वही बात दूसरों पर लागू न करो।"

लाओत्से और कन्फ्यूशियस

लाओत्से और कन्फ्यूशियस की शिक्षाओं में कुछ अन्तर या मतभेद था। लाओत्से का कथन था कि मनुष्य को भोग विलास से बच कर पवित्र व सादा जीवन व्यतीत करना चाहिए। कन्फ्यूशियस जीवन के नियंत्रण एवं विनय पर जोर देता था। लाओत्से त्याग और तपस्या का पक्षपाती था। कन्फ्यूशियस शिष्टता का। इन दोनों के उपरान्त बौद्ध धर्म का चीन में प्रवेश हुआ। धीरे धीरे सम्पूर्ण चीन में बौद्ध धर्म का प्रसार हो गया क्योंकि इस धर्म में दोनों महान् पुरुषों—लाओत्से और कन्फ्यूशियस की शिक्षा का समन्वय था। इस धर्म ने चीनी जनता को सन्तुष्ट कर दिया। चीनी लोगों ने इन तीनों को "त्रयोशान" कहा है।

चीन के निवासियों ने प्रारम्भिक काल में भी सभ्यता के क्षेत्र में काफी उन्नति कर ली थी। बहुत पुराने समय में ही उन्होंने लिखने का आविष्कार कर विभिन्न क्षेत्रों में लिया था। मिश्र के समान चीन वालों ने भी चित्रलिपि सभ्यता का विकास का प्रयोग किया। कला में भी वे प्रवीण थे। मिट्टी के चम-

चीनी बर्तन बनाने में वे अन्य लोगों से कहीं अधिक कुशल थे। रेशम के की
को पाल कर रेशम बनाने की कला का ज्ञान सर्व प्रथम उन्होंने प्राप्त किया
बहुत पुराने समय में भी चीन का रेशम दूर दूर विदेशों में बिकने के लि
जाता था। कृषि कार्य के लिये चीनी लोगों ने नहरों द्वारा सिंचाई की व्यव
की। ह्वांगहो तथा यांगसीक्यांग नदियों से अनेक छोटी छोटी नहरें निकाली
थीं। उस समय का चीनी किसान धरती को बिना बदले एक ही खेत से वर्ष मे
दो अथवा तीन फसल उत्पन्न करने की योग्यता रखता था। वे चावल, बाजरा,
और जौ उत्पन्न करते थे। चीन का प्रिय पेय चाय है। उस समय औषधि
रूप में इसका प्रयोग किया जाता था।

कृषि के अतिरिक्त चीन की हस्तकला भी प्राचीन युग में काफी उन्नत
चुकी थी। असंख्य प्रकार के उद्योग धन्धों का विकास हो चुका था। हस्तक
की सैकड़ों दुकानें थीं। मजदूरी मूल्य और कार्य के निरीक्षण हेतु श्रेणियां थीं
ये श्रेणियां अपने नियम बनाती थीं और उन्हें लागू करती थीं। प्रत्येक प्रकार
व्यवसाय की श्रेणियां थीं। प्राचीन चीन के लोगों का व्यापार वाणिज्य काफी
उन्नत था। चीन का विदेशी व्यापार अधिक उन्नत था। वे लोग मेसोपोटेमि
भारत, रोम तक व्यापार करते थे। रेशम, चाय, चीनी के बर्तन, कागज, ए
बारूद, तारा आदि वस्तुएँ विदेशों को भेजी जाती थीं व्यापार के लिए सिक्के तथ
ऋण की व्यवस्था थी। प्रथम बार प्राचीन सभ्यताओं के इतिहास में सिक्कों का
प्रचलन यहीं देखने को मिलता है।

विज्ञान के क्षेत्र में भी चीनी लोगों ने काफी उन्नति की। उन्होंने ही
सर्वप्रथम संसार को मुद्रणालय (छापाखाना) का आविष्कार करके चकित कर
दिया था। उन्होंने ही कागज तथा स्याही का आविष्कार किया। चीन निवासियों
ने ही बारूद का आविष्कार किया। चिकित्सा शास्त्र का विकास हुआ। नक्षत्र
की गतिविधि से पंचांग का निर्माण एवं सुधार किया गया। कुतुबनुमा का
आविष्कार किया।

(२) सभ्यता के विकास का द्वितीय सोपान

सातवीं शताब्दी चीन के इतिहास में अपना विशेष स्थान रखती है।

हानवंश के राजाओं का वैभव तीसरी सदी में समाप्त हो चुका था और बाकी की तीन शताब्दियों में चीन की भूमि पर अराजकता, राजनीतिक षड्यन्त्रों तथा राजवंशों की उथल-पुथल का जोर रहा। ६१८ ई. में तांग वंश ने इस स्थिति का अन्त किया। सम्पूर्ण चीन को एक विशाल साम्राज्य की अधीनता में लाया गया। अनाम और कम्बोडिया पर भी चीनी प्रभुत्व की स्थापना हुई। तांगवंश के सम्राटों की उदार नीति के कारण विदेशी व्यापार की उन्नति हुई, धर्म-प्रचारकों का आगमन हुआ। शिक्षा, शिल्प तथा उद्योग की उन्नति हुई। यही कारण है कि इस समय को चीन में "स्वर्णयुग" कहा जाता है। इस समय के लोग उतने ही सभ्य थे जितने कि इस समय के एक हजार वर्ष के बाद के लोग या आधुनिक समय के लोग। यही कारण है कि इस युग की सभ्यता का अध्ययन पृथक् रूप से करना पड़ता है।

राजनैतिक महत्व

चीन के तत्कालीन सैंतीस करोड़ लोग अपने कार्य व पेशे की दृष्टि से पाँच प्रमुख वर्गों में विभाजित थे-पंडित, कृषक, शिल्पी, व्यापारी तथा सेवक। प्रथम वर्ग पंडितों का था जिसे 'मंडारिन' भी कहा जाता था। जिस प्रकार भारत में पुरोहित वर्ग या ब्राह्मण वर्ग का प्रभाव एवं महत्व था उसी प्रकार चीनी समाज में पंडित वर्ग श्रद्धा एवं सम्मान का अधिकारी था। परन्तु जहाँ भारतीय पुरोहित वंशानुगत थे वहाँ चीन का पंडित वर्ग वंशानुगत नहीं था। पंडित वर्ग कोई पृथक् जाति नहीं थी और न ही कोई मनुष्य किसी कुल विशेष में उत्पन्न होने के कारण पंडित माना जाता था। चीन में पंडित पद को पाने के लिये विद्याभ्यास की आवश्यकता होती है। द्वितीय वर्ग किसानों का था। अधिकांश चीनी कृषक वर्ग से सम्बन्धित हैं। कृषक लोग गावों में रहते थे और कृषि के द्वारा अपनी जीविका का निर्वाह करते थे। कृषक वर्ग के लिए अपने परिवार का पालन करना सुगम नहीं था। अतः ये लोग निर्धन थे और झोंपड़ियों में निवास करते थे। तृतीय वर्ग शिल्पजीवियों का था। अभी तक चीन में पूंजीपति और श्रमिक की उत्पत्ति नहीं हुई थी। शिल्पी लोग अपने आवास पर ही

कार्य की दृष्टि से विभाजित समाज

कार्य करते थे। ये लोग आर्थिक श्रेणियों में संगठित थे। जुलाहे, मोची, तेली, रंगसाज, कागज बनाने वाले आदि अन्य प्रकार के शिल्पी थे। चतुर्थ वर्ग व्यापारियों का था। इस वर्ग की संख्या बहुत न्यून थी कारण कि शिल्पी लोग अपनी कलाकृतियों का क्रय विक्रय स्वयं ही कर लेते थे। परन्तु फिर भी व्यापारी वर्ग का विकास होना शुरू हो गया था। बड़े २ नगरों में बाजार लग गये थे। समुद्र तट के नगरों में व्यापार वाणिज्य अधिक सुगमता से उन्नत हुआ। अंतिम वर्ग सेवकों का था। इस वर्ग में वे लोग थे जो नौकरी द्वारा अपनी आजीविकार्जन करते थे। सैनिक वर्ग को चीन में विशेष सम्मान प्राप्त नहीं था। उनकी गणना भी सेवक वर्ग में की जाती थी। प्रसिद्ध इतिहासकार डेविस ने लिखा है—"चीन ही केवल ऐसा देश है, जहाँ पर सैनिक होना अपमान जनक समझा जाता है।"

परिवार का स्थान

चीनी समाज में परिवार का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता था। पितृमूलक प्रथा थी। पिता परिवार का मुखिया होता था। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसकी सम्पत्ति उसके पुत्रों में विभाजित हो जाती थी। शादी विवाह की व्यवस्था परिवार का मुखिया करता था। विवाह आवश्यक माना जाता था और कुंवारों को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। समाज में नैतिकता का प्रमुख महत्व था। चीनी समाज में तलाक की प्रथा थी। संतान न होने पर पुरुष दूसरा विवाह भी कर सकता था। बुरे व्यक्तियों को परिवार के अधिकारों से वंचित करके परिवार से बहिष्कृत कर दिया जाता था। राज्य परिवारों को वैधानिक रूप प्रदान करता था।

शिक्षा का विकास

सात साल की आयु में बालक शिक्षा को शुरू करता था। निर्धन तथा मातृ पितृहीन बालकों की शिक्षा का उत्तरदायित्व ग्राम-पंचायत पर होता था। पाठ्य विषय में प्राचीन ग्रन्थों और धर्म पुस्तकों का प्रमुख स्थान होता था। व्याकरण, कोश और धर्म ग्रन्थों को शिक्षा में प्रमुख स्थान दिया जाता था। जिले में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की परीक्षा ली जाती थी और उत्तीर्ण छात्रों को प्रदेश की परीक्षा में बैठने की स्वीकृति मिलती थी।

प्रदेश की परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को "हि स उत्सेई" (स्नातक) की उपाधि दी जाती थी। प्रांत की परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले को 'चू-जेन' (वाचस्पति) की उपाधि दी जाती थी। इस उपाधि को प्राप्त करने वाला व्यक्ति ही राजकीय पदों की परीक्षा में बैठ सकता था या सर्वोच्च परीक्षा 'चिन शाइ' (आचार्य) में बैठ सकता था। आर्थिक दृष्टि से आचार्यों, अध्यापकों एवं शिक्षकों की स्थिति अच्छी नहीं थी, परन्तु समाज में उनका सम्मान था।

भाषा

भाषा की दृष्टि से चीन में एकता नहीं है, वहाँ अनेक भाषाएं बोली जाती थीं। केन्टन की भाषा, फूचों की भाषा, तीन्टिसन भाषा इत्यादि। परन्तु फिर भी अधिकांश चीनी एक सर्वमान्य भाषा 'मन्दारिन' का प्रयोग करते थे। चीन की भाषाओं में विभिन्नता के होते हुए भी चीन की लिपि में समानता है। चाहे एक चीनी दूसरे चीनी की भाषा न समझता हो परन्तु उससे पत्र व्यवहार कर सकता था। चीनी लिपि के विविध चिन्ह—जिनकी संख्या सैकड़ों में है—भाव व वस्तु सूचक है।

साहित्य का विकास

कागज और मुद्रण कला का आविष्कार सब से पहले चीन में हुआ था। परन्तु इससे भी पहले चीन में पुस्तकें लिखी जाने लग गई थीं। मुद्रण के आविष्कार से तो चीनी साहित्य बहुत अधिक उन्नत हो गया। चीनी साहित्य की पुस्तकें प्रधानतया इतिहास, धर्म, दर्शन, काव्य और गद्य साहित्य के सम्बन्ध में थीं। इतिहास पर अनेकों ग्रन्थ लिखे गये थे। बौद्ध धर्म की अनेकों पुस्तकों का चीनी भाषा में अनुवाद किया गया और अनेक नवीन ग्रन्थ लिखे गये। चीनी पंडितों ने विश्व कोष के रूप में बहुत सी पुस्तकों का संकलन किया। विज्ञान के क्षेत्र में उन्होंने चिकित्सा शास्त्र, कृषि-विज्ञान और ज्योतिष पर अनेक ग्रन्थ लिखे।

कला

चीन की कला भी इस युग में उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गई थी। चीनी मिट्टी के बर्तन संसार में प्रसिद्ध होने लग गये थे। इसके अतिरिक्त रेशम के कपड़े की कला भी विकसित हुई। विशाल बौद्ध मंदिरों तथा मठों की निर्माण कला अपने ढंग की

अनोखी ही है । कन्फ्यूशियस का मंदिर और उसकी मूर्ति कला की दृष्टि से अति सुन्दर है । चीन की हस्तकला भी इस युग में निखर उठी थी । यही कारण था कि चीनी लोग किसी वस्तु के लिए अन्य देशों पर निर्भर नहीं थे । वे स्वावलम्बी लोग थे । पाश्चात्य देशों ने जब चीन के साथ व्यापार शुरू किया था तो उन्हें चीनी लोगों को सोना-चाँदी देना पड़ता था क्योंकि उस समय कोई वस्तु ऐसी नहीं थी जिसका ज्ञान या उत्पादन चीन में न होता था ।

(५) ईरान की सभ्यता एवं संस्कृति

आधुनिक ईरान का प्राचीन नाम फारस या पर्शिया था । सन् १६२५ ई० में फारस का नाम ईरान पड़ गया । फारस के उत्तर और दक्षिण में गगन-चुम्बी पर्वत श्रृंखलाएं हैं तथा दूसरी तरफ हिंदुकुश तथा अलबुर्ज की गिरि श्रेणियां । इसका विस्तार कैस्पियन सागर तक है । फारस का केन्द्र मरुस्थल है

भौगोलिक स्थित

परिपूर्ण है परन्तु जलाशयों का अभाव नहीं है। यहां का जलवायु शुष्क एवं स्वास्थ्यप्रद है। इस प्रांत की प्रमुख नदियां हर तथा आमू हैं। आधुनिक काल में ईरान एक स्वतन्त्र वैधानिक राजतन्त्र देश है।

मूल निवास व जाति

फ्रेंच विद्वान डा० जर्मन का कथन है कि ईरानी प्रारम्भ में भूमध्य-सागर के तट पर, सिन्धु तट पर, मिश्र तथा सुमेर में बसे हुए थे। परन्तु अन्य विद्वानों की धारणानुसार ईरानी लोग नार्डिग जाति के आर्य थे और इनका मूल निवासस्थान बाल्टिक सागर था। कुछ के मतानुसार कैस्पियन सागर से रवाना होने वाले आर्य समूह की एक शाखा ईरान में आ बसी और दूसरी भारतवर्ष में। कुछ का कथन है कि यह जाति कुर्दीस्थान में रहती थी। परन्तु इतना निर्विवाद सत्य है कि ईरानी लोग ई०पू० १५००-१६०० में ईरान में आ बसे थे।

राजनीतिक इतिहास

ईरान प्रदेश के पूर्वी भाग में ईरानी रहते थे और उत्तर-पश्चिमी भाग में मीड जाति के लोग। मीड़ जाति का प्रमुख नगर बतना था। ईरान का प्रारम्भिक इतिहास मीड़ जाति की उन्नति से प्रारम्भ होता है। ईसा से पूर्व ८ वीं शताब्दी में मीड़ जाति ने एलम निवासियों को पराजित कर अपनी सैनिक प्रतिभा का प्रदर्शन किया। इसके उपरांत मीड़ जाति ने अपने राजा साइजेरस की अधीनता में असीरिया पर आक्रमण किया और उसकी राजधानी निनेवेह् को ध्वस किया। साइजेरस के उपरांत मीड़ जाति और ईरानियों में ईरान की प्रभुता के लिए संघर्ष हुआ। ईरानी नेता साइरस अथवा कुरुष ने ईरान का एकीकरण करने में सफलता प्राप्त की। मीड़ और ईरानी एक हो गए। साइरस ने ईरानी साम्राज्य का विकास किया। लीडियां, बेबीलोनिया तथा मिश्र से संघर्ष हुआ। प्रथम दोनों देशों पर उसका अधिकार हो गया। सीरिया तथा फिलस्तीन के कुछ भू-भाग पर भी ईरानी लोगों ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया। साइरस के उपरान्त उसके पुत्र केम्बेसीज ने मिश्र पर ईरान का अधिकार स्थापित किया। उसके उपरान्त दारा या दाहिर महान् ने ईरान पर राज्य किया।

क्षत्रप कहते थे। इसकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा की जाती थी। क्षत्रप प्रांत की आंतरिक व्यवस्था, न्याय, प्रशासन आदि के विषय में उत्तरदायी होता था। क्षत्रप की देख-रेख के लिए सेनापति होता था। इन दोनों की देख-रेख के लिए सचिव की नियुक्ति की जाती थी। ये तीनों अधिकारी सम्राट् के प्रति उत्तरदायी होते थे। क्षत्रप को प्रशासन के लिए कुछ नहीं दिया जाता था अपितु उसे एक निश्चित द्रव्यराशि ईरान की राजधानी पार्सिपोलिश तक पहुँचानी पड़ती थी।

सम्पूर्ण साम्राज्य में चारों तरफ गुप्तचरों का जाल फैला हुआ था। गुप्तचर लोग राज कर्मचारियों व प्रजा की गतिविधि से सम्राट् को सूचित करते रहते थे। यह एक महत्वपूर्ण व प्रथम वस्तु थी जो सर्व प्रथम ईरानी प्रशासन के समय में विकसित हुई। आधुनिक युग में गुप्तचर विभाग का अत्यन्त महत्व है और हम ईरान के ऋणी हैं जिसने इस प्रथा की स्थापना की थी।

प्रशासन की सफलता की प्रमुख विशेषता थी—गमनागमन के लिए पक्की सड़कों का निर्माण। ईरान के सभी प्रांत सड़कों के कारण केन्द्रीय राजधानी पर्सिपोलिश से सम्पर्क कायम किए हुए थे। एक सड़क सूसा से सार्डिस तक १५०० मील लम्बी थी। सड़कों के दोनों ओर छायादार वृक्ष लगे हुए थे। प्रत्येक मील पर सराय बनी हुई थीं। इन सरायों पर डाक को

यातायात के उन्नत साधन

ले जाने के लिए घुड़सवार नियुक्त होते थे। ऐसा मालूम हुआ है कि डाक एक प्रांत से केन्द्र तक सात दिन और कभी २ दो तीन दिन में पहुंच जाती थी।

ईरान के सफल प्रशासन की आधारशिला उसकी न्याय व्यवस्था थी। राजा न्याय का सर्वोच्च अधिकारी होता था वह अपने इष्टदेव 'अहुरमज्द' की प्रेरणा से न्याय करता था। उसके नीचे एक प्रमुख न्यायाधीश तथा सात उप न्यायाधीश होते थे। जिन्हें 'दातवर' कहा जाता था। इसके अतिरिक्त स्थानीय न्यायालय थे। ग्राम में पंचों द्वारा न्याय किया जाता था। न्यायाधीश निष्पक्ष भाव से न्याय करते थे क्योंकि

संगठित न्याय प्रणाली

घूस आदि लेने के आरोप में पकड़े जाने पर उन्हें मृत्यु दण्ड दिया जाता था। स्त्रियों को भी न्यायाधीश बनाने की प्रथा थी। झगड़ों को विधिवत् समझाने के लिए वकील होते थे। वकीलों की उत्पत्ति सर्व प्रथम ईरान में हुई थी। ईरानी विधान उदार था परन्तु भयंकर अपराधों के लिए आतंक भी था। उस युग में शपथ लेने की प्रथा थी। अपराधियों को कठोर सजाएं दी जाती थीं।

विशाल ईरानी साम्राज्य सेना की शक्ति पर ही अवलंबित था। राजा सेना का सर्वोच्च सेनापति होता था। उस समय ईरान की सेना चार प्रमुख हिस्सों में विभाजित थी—अश्व सेना, पदाति सेना, जल सेना तथा रथारोही सेना। केन्द्रीय सेना तथा प्रान्तीय सेनाएं अलग अलग थीं।

अनिवार्य सैनिक शिक्षा

केन्द्र की सेना में भी सम्राट की अंगरक्षक सेना अलग होती थी। ईरान में अनिवार्य सैनिक शिक्षा थी। १५ साल की आयु से लेकर ५० वर्ष तक की आयु वाले व्यक्तियों को सैनिक शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें युद्ध में सम्मिलित होना पड़ता था। सम्राट् जेरेक्सेज़ ने यूनान के विरुद्ध १८ लाख सैनिक तथा १२०० जहाज एकत्र किये थे। सेना दस, सौ, हजार, दस हजार तथा एक लाख के झुण्ड में विभाजित होती थी। साधारणतया मीड और ईरानी जाति के व्यक्तियों को ही सेना में भर्ती किया जाता था।

ईरानी समाज स्वच्छता, पवित्रता तथा नैतिकता का उत्तम उदाहरण था। वे लोग मिलनसार प्रकृति के, मधुर भाषाभाषी, अतिथि-सत्कार करने वाले तथा बन्धुत्व की भावना का परिचय देने वाले थे। इसका कारण उनके हृदय की उदारता तथा धर्म का सिद्धान्त था। ईरानी समाज

सामाजिक स्थिति

में कुटुम्ब का विशेष महत्व था। परिवार के मुखिया का प्रत्येक सदस्य पर नियंत्रण रहता था। पांच वर्ष की आयु तक बालक माता के संरक्षण में, सात वर्ष की आयु तक पिता के तथा पन्द्रह वर्ष की आयु तक गुरु के संरक्षण में रहता था। ईरानी समाज में छोटों में बड़ों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना आवश्यक एवं नैतिक गुण माना था। वे लोग आर्यों की भाँति विविध धार्मिक त्यौहारों पर भी पूजा

का प्रयोग करते थे। दिन में एक बार भोजन करते थे। जनेऊ पहनते थे। मादक वस्तु के सेवन से दूर रहते थे।

समाज में विवाह का महत्व अधिक था। अविवाहित स्त्री पुरुषों को निम्न दृष्टि से देखा जाता था। १५ वर्ष की आयु में विवाह हो जाता था। लड़के लड़की को अपना जीवन साथी चुनने की स्वतन्त्रता थी। बहु विवाह की प्रथा का प्रचलन था। उपपत्नियाँ रखने की प्रथा भी थी। पुत्र का जन्म शुभ तथा पुत्री का अशुभ समझा जाता था। अनेक सन्तान वाले माता पिता का सम्मान होता था।

समाज में स्त्रियों की स्थिति उन्नत थी। वे स्वतन्त्रता पूर्वक विचरण कर सकती थी। उन्हें पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त थे। वे राजकीय पदों पर भी नियुक्त की जा सकती थीं। अपने पति का लेन-देन का व्यापार या अन्य कार्य भी कर सकती थीं तथा सम्पत्ति रख सकती थी। उन्हें व्यापार-वाणिज्य करने की स्वतन्त्रता भी थी। सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी भी हो सकती थीं। उपार्जन कर सकती थीं। पति के विरुद्ध मुकदमा चला सकती थीं बहुविवाह की प्रथा थी। परन्तु दारा के उपरान्त ईरानी स्त्रियों की स्थिति में पतन हुआ। वे पर्दे में बन्द कर दी गई। उनके विशेषाधिकार छीन लिए गए। शायद इस प्रकार की अवनति केवल धनिक वर्ग तथा सामन्त वर्ग की स्त्रियों की हुई क्योंकि यूनानी आक्रमण का भय लगा रहता था।

ईरानी समाज भी भिन्न २ वर्गों में विभाजित था। सामन्त, पुरोहित व्यापारी तथा शिल्पी, किसान तथा श्रमिक और दास तथा गुलाम। प्रथम दो का समाज तथा राज्य में बहुत सम्मान था। अंतिम दो की स्थिति दयनीय थी। उनका दमन व शोषण किया जाता था। परन्तु फिर भी वे काफी समृद्ध थे।

ईरानी समाज की आर्थिक स्थिति की आधारशिला कृषि थी। वे लोग व्यापार वाणिज्य से घृणा करते थे क्योंकि उसमें असत्य बोलना पड़ता था। अतः ईरान का व्यापार फोनीशियन, यहूदी आदि के हाथों में था। कृषि के लिये गेहूँ, जौ, तिल, मूँग, मटर आदि की खेती की जाती थी। वे लोग पशुपालन भी करते थे। अधिकांश भूमि पर स्थानीय सामन्तों का अधिकार था। कृषक खेती करते थे। और उपज का एक निश्चित भाग

आर्थिक स्थिति

उनकी कला अन्य देशों की कला से अधिक सुन्दर तथा चित्ताकर्षक है। विशाल भवनों के निर्माण में स्तम्भों का प्रयोग किया जाता था तथा बड़ी बड़ी सीढ़ियाँ बनाई जाती थीं। भवनों की छत लकड़ी की होती थी जिस पर चूने का प्लास्तर कर दिया जाता था। महलों के द्वारों पर विशालकाय जानवरों की पत्थर की मूर्तियाँ होती थीं। पंखदार बैलों की मूर्तियाँ अधिक होती थीं। इन मूर्तियों में सजीवता, सौन्दर्य तथा कलात्मक गुणों का अच्छा चित्रण होता था। भवनों को सजाने के लिए चित्रकारी का काम किया जाता था। दीवारों पर सम्राटों तथा सैनिकों के चित्रों के साथ साथ प्राकृतिक दृश्यों को भी चित्रित किया जाता था।

जोरास्टर के मकबरे के अवशेष

प्रारम्भ में अन्य जातियों की भाँति ईरानी लोग भी विविध देवी-देवताओं तथा प्राकृतिक शक्तियों की उपासना करते थे। उस समय उनके उपास्य देव थे। अहुरमज्जद, मित्र तथा अनाहित। अहुरमज्जद सब देवों का देव था। मित्र (सूर्य) प्रकाश का देवता था। अनाहित पृथ्वी की देवी थी। इसके अतिरिक्त अग्नि की उपासना भी की जाती थी। अन्ध विश्वास तथा जादू टोने में विश्वास था। देवी देवताओं की उपासना तथा धार्मिक उत्सवों के नेतृत्व का अधिकार 'अथर्वन' को प्राप्त था। अथर्वन भारतीय ब्राह्मणों की भाँति पुरोहित होते थे। और धर्म पर उनका पूर्ण अधिकार था। उनके बिना कोई कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता था। परन्तु ६०० ई० पू० के लगभग में 'जरथुस्त' ने ईरानी धर्म में क्रांति उत्पन्न कर दी। उसने बहुदेववाद तथा अन्ध-

धार्मिक विचारधारा

विश्वासों का खंडन करके ईरान में एकेश्वरवाद अर्थात् अद्वैतवाद अर्थात् एक परमात्मा की भावना जाग्रत की।

जरथुस्त, महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, लाओत्से तथा कन्फ्यूशियस का समकालीन थे। जनश्रुति के अनुसार उनका जन्म जंगल में पहाड़ियों के बीच हुआ था और दैत्य उन्हें ग्रस्त न कर सके। उनका विवाह बाल्यकाल में ही हो गया था परन्तु युवावस्था में ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति हेतु गृह त्याग कर दिया और जंगल में भटकने लगे। अनेक कठिनाइयों के बाद उन्हें इलहाम अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हुआ और वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपने नवीन ज्ञान का उपदेश देने लगे। परन्तु पुरोहितों के आडम्बर तथा जाल में फंसी हुई जनता को उनके सीधे सादे सिद्धान्त पसन्द न आये। जरथुस्त के विचारों का प्रभाव ईरान के तत्कालीन सम्राट् दारा पर पड़ा और वे उनके शिष्य हो गये। उनके शिष्य होते ही यह धर्म राजधर्म बन गया। जनता में भी यह धर्म लोकप्रिय होने लगा और इस्लामी धर्म के प्रचार के पूर्व तक ईरान का धर्म जरथुस्त का धर्म ही रहा। भारत के पारसी आज भी इस धर्म को मानते हैं। वे ईरान से भाग कर अपने धर्म की सुरक्षा हेतु भारत आये थे।

महात्मा जरथुस्त

जरथुस्त का धर्म एकेश्वरवाद की भावना पर अवलंबित था। उन्होंने विविध देवताओं की उपासना का विरोध किया। पुरोहितों द्वारा प्रचलित अंध-विश्वासों का खंडन किया। उन्होंने बतलाया कि अहुरमज्द सर्वव्यापक न्यायप्रिय बंधुवात्सल्य से परिपूर्ण देव है। उसका कोई रूप नहीं है। वह सत्य का, शुभकर्मों का देवता है। इसके अतिरिक्त अहिरमन, कुकृत्यों का, असत्य का, वैमनस्य का देवता है। जो मनुष्य शुभकर्म करते हैं, अहुरमज्द उनकी सहायता करता है और वे स्वर्ग पाते हैं। बुरे कर्म करने वाले अहिरमन के निवास स्थान नरक को प्राप्त होते हैं।

जरथुस्त ने लोगों को बतलाया कि आत्मा अमर है। शरीर नश्वर है। आत्मा में सत् और असत्, प्रकाश तथा अन्धकार में संघर्ष होता रहता है। शुभ कर्मों के द्वारा असत् की पराजय होती है। ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है। अहुर- के सात गुण हैं—ज्योति, ज्ञान, सत्य, आधिपत्य, पवित्रता, क्षेम और

कल्याण। कालान्तर में जरथुस्त के अनुयायियों ने उन्हें साकार रूप प्रदान किया।

जरथुस्त के विचारों में मनुष्य शरीर का कोई महत्व नहीं था। आत्मा अमर थी। शरीर नश्वर था। अतः मृत्यु के उपरान्त मृतक शरीर को पशु-पक्षियों के लिए छोड़ दिया जाता था। मनुष्य के इस लोक के आचरण उनके भावी जीवन का निर्माण करते हैं। इस प्रकार जरथुस्त ने एकेश्वरवाद, नैतिक एवं पवित्र; शुभकर्मों पर आधारित, उदारता, शिष्टाचार तथा बन्धुत्व से परिपूर्ण धर्म का प्रचार किया। उनके सिद्धान्त "अहुनवेती" तथा 'अवेस्ता' में संग्रहीत हैं। कालान्तर में, उसके अनुयायियों के भ्रष्टाचार से इस धर्म का पतन हो गया और इस्लाम का प्रचार हुआ।

(६) प्राचीन अमरीकी (मेक्सिको-पेरू) सभ्यता

बहुत से विद्वानों की धारणा है कि आज से करीब ५,००० साल पहले तक, अमेरिका महाद्वीप और एशिया का उत्तर पूर्वीय भाग जुड़ा हुआ था। एशिया और अमेरिका बेहरिंग और अलास्का के पास जुड़े हुए होंगे। कालान्तर में भौगोलिक परिवर्तनों के कारण ये दोनों महाद्वीप बेहरिंग स्टेट द्वारा पृथक् हो गये फिर यातायात के उन्नत साधनों के अभाव में दोनों का सम्पर्क भी टूट गया। १४९२ ई० में जब कोलम्बस ने अमेरिका का पता लगाया, तब फिर से विश्व को अमेरिका का ज्ञान प्राप्त हुआ। इस खोज के पूर्व अमेरिका विश्व के मानचित्र से लुप्त ही रहा। प्राचीन सभ्यता मध्य अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका के मेक्सिको तथा पेरू राज्यों में विकसित हुई थी।

भौगोलिक स्थिति

प्राचीन पाषाण काल में जबकि विश्व के अन्य भूखण्डों पर मानव ने पत्थरों, लकड़ी तथा अग्नि की सहायता से अपनी प्रारंभिक सभ्यता का विकास करना प्रारम्भ कर दिया था अमेरिका का विशाल भूखण्ड मानव प्राणी से शून्य था। उस युग में वहां पर विशालकाय जानवरों का शासन था। इन जानवरों में मेगाथेरियन और ग्लिप-टोडन प्रमुख थे। विद्वानों की धारणा है कि इसी युग के आस पास उत्तर पूर्वीय एशिया से कुछ लोगों ने बेहरिंग और अलास्का के मार्ग से उत्तरी अमेरिका में प्रवेश किया होगा। वे लोग धीरे २ दक्षिण की

इतिहास
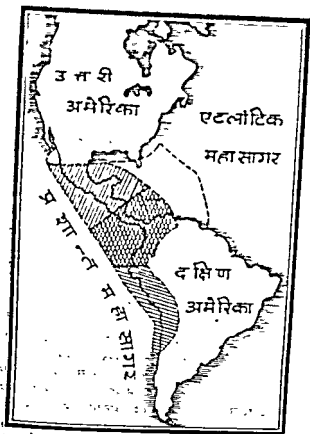
और धीरे २ राज्यों और सभ्यता का विकास किया। अमरीकी निवासियों की सभ्यता में पूर्व की पाषाण सभ्यताओं के बहुत से लक्षण मिलते हैं। इसी आधार पर विद्वानों का कहना है कि अमेरिका की सभ्यता का निर्माण करने वाले आदि मानव एशिया से अमेरिका पहुँचे।

मध्य अमेरिका में कई राज्यों का विकास हुआ जिन्हें मायापन राज्य कहते हैं और इन राज्यों की सभ्यता को 'माया-सभ्यता' कहते हैं। आधुनिक खोजों के कारण पता चला है कि ई० पू० १५०० के लगभग वहां पर एक सुन्दर नगर बसा हुआ था जिसका नाम 'पैलेन्सी' था। इसी प्रकार के कई नगर पेरू और मेक्सिको में बसे हुए थे। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ई० पू० ९ वीं या १० वीं शताब्दी में मेक्सिको की 'अजटक्स' जाति ने मायापन राज्यों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। यह सभ्यता शायद सहस्र वर्ष तक विकसित होती रही। अजटक्स जाति ने एक सुन्दर नगर का निर्माण किया था जिसका नाम टिलोचिल्टन था। कोलम्बस की खोज के समय में मेक्सिको और पेरू राज्यों में पृथक् २ सभ्यताओं का अस्तित्व था।

सन्-१५१६ ई० में स्पेन के लोग कोर्टेस के नेतृत्व में आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों सहित मैक्सिको पहुँचे और अपना राज्य स्थापित करने में सफल हुए। उन्होंने अजटक्स जाति के सम्राट् पद का अन्त कर दिया। सम्राट् पद की समाप्ति के साथ ही साथ उस प्राचीन सभ्यता का भी लोप हो गया। टिलोचिल्टन शहर ध्वंस हो गया। अचानक ही यह सब कैसे हो गया, इसका कोई कारण ज्ञात नहीं हो पाया है।

मेक्सिको की सभ्यता की भांति पेरू की सभ्यता भी बहुत समृद्ध थी। यह एक आश्चर्य की बात है कि मेक्सिको वालों को अपने पड़ौसी राज्य पेरू का ज्ञान नहीं था और पेरू को मेक्सिको का ज्ञान नहीं था। पेरू में सम्राट् को 'इन्का' कहा जाता था। सन् १५३० ई० में पीजारो (Pizaro) के नेतृत्व में स्पेन के लोगों ने पेरू पर अधिकार कर लिया। इन्का का अन्त कर दिया गया। मेक्सिको की भांति पेरू की सभ्यता भी अचानक ही लुप्त हो गई और दोनों प्राचीन राज्यों पर स्पेन का राज्य हो गया।

महान् भौगोलिक खोजें तथा पुनरुत्थान के उपरान्त यूरोप के असंख्य

धार्मिक विचार धारा

उनका सबसे बड़ा देवता 'कुकुलकान' था-अर्थात् पंख लगा हुआ सर्प । इसी देवता का स्वरूप कालान्तर में हाथों में सर्प तथा पक्षी लिये हुए मनुष्य के रूप में विकसित हुआ । वे लोग इसे जीवन का देवता मानते थे । उनका द्वितीय देव था-'इत्नायना' अर्थात् आकाश का देवता परन्तु जनसाधारण के अन्दर एक अन्य देवता की पूजा भी अधिक प्रचलित थी । इस देवता का नाम था-'चाक' । इसे वर्षा का देवता माना जाता था । इसी प्रकार वे लोग एक अन्य देवता की पूजा करते थे । इस अन्य देवता की पूजा भय के कारण की जाती थी । इसे वे लोग मृत्यु का देवता मानते थे । इसे वे लोग "खोपड़ी तथा अस्थियों के रूप में चित्रित करते थे । इसका सही नाम अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है । यद्यपि इस देवता के अनेक चित्र उपलब्ध हो चुके हैं । इनके अन्य देवताओं में "सूर्य" तथा 'मेज' का भी बहुत महत्व था । इनके देवताओं को देखते हुए हम कह सकते हैं कि विश्व की अन्य सभ्यताओं की भाँति यहाँ के लोग भी प्राकृतिक शक्तियों की उपासना करते थे । उनमें अभी तक एकेश्वर की भावना का विकास नहीं हुआ था ।

उस समय की धार्मिक क्रियाओं के बारे में हमें अधिक ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका है परन्तु पाश्चात्य जातियों के जाने के समय में वे लोग अपने मृतकों को जलाते भी थे । दफनाते भी थे । अर्थात् अग्नि संस्कार और भूमि-दाह दोनों प्रथाएं प्रचलित थीं । वे लोग अपने देवताओं को संतुष्ट करने के लिए पशु बलि या नर बलि नहीं देते थे बल्कि पुष्प, जवाहरात आदि भेंट चढ़ाते थे। परन्तु जहाँ तक व्यक्तिगत उपासना का सम्बन्ध है, उपासक अपने कान, जीभ इत्यादि छेद कर अपने उपास्य देव को रक्त चढ़ाता था । धार्मिक क्रियाओं को सम्पादित कराने वाला सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था । उसके उपरान्त पुजारी का स्थान था ।

अभी हाल ही में मैक्सिको सरकार ने पेलनक्वे नगर में अनेक अन्वेषण किए हैं । इन खोजों से पता चलता है कि उन लोगों ने अनेक भव्य मंदिर भी बनवाये थे । विधियों का मन्दिर (Temple of Laws) अति भव्य है । इसकी दीवारों पर धार्मिक चित्र अंकित किये हुए हैं । इन मन्दिरों में वे

अपने देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित करते थे और उनकी पूजा करते थे। शा
वे लोग भी अन्ध विश्वास, जादू टोने में विश्वास रखते होंगे।

कला-कौशल की उन्नति

माया संस्कृति ने कला के क्षेत्र में काफी उन्नति की थी। उस
शिल्पकला, लकड़ी और पत्थर पर नक्काशी तथा क
बनाने की कुशलता अनुपम थी। उस समय लोगों
लोहे का ज्ञान नहीं था और न ही वे कुम्हार की च
(जिससे मिट्टी के बर्तन बनाये जाते हैं)से परिचित थे
उनका कलात्मक ज्ञान उनकी चित्रलिपि, मूर्तिकला, तथा स्थापत्यक
में निहित था। वे लोग अति सुन्दर, सजीव और कलात्मक मूर्ति
का निर्माण करते थे। उनकी मूर्तियाँ धर्म से सम्बन्धित होती थीं। वे लो
स्वर्ण तथा जवाहरात के आभूषण बनाना भी जानते थे। वहाँ के लो
जवाहरातों को दाँतों में जड़वाया करते थे। पत्थर पर भी उन्हें अत्यन्त कुशलता
पूर्वक काम करने का अभ्यास था। उनके भवनों की शैली मिश्र के महान
पिरामिडों से मिलती जुलती थी। अन्तर इतना ही था कि पिरामिड समाधि
और माया के मन्दिर तथा भवन थे।

पेलनक्वे नगर की खुदाई में बहुत से मन्दिर और भवन मिले हैं।
विधियों के मन्दिर में सुन्दर कला के नमूने मिले हैं। इन नमूनों से स्पष्ट
ज्ञान होता है कि उनकी कला का ढंग बहुत ही विकसित था। कला-कृतियों
में जीवन के अनेक चित्र मिले हैं। युद्ध में रत सैनिक, समुद्र में तैर रहे
जानवर, दरबारों में व्यस्त रमणी इत्यादि। उनकी स्थापत्य कला मन्दिरों और
भवनों की बनावट में, उनके स्तम्भों में पत्थर में खोदे हुए सजावट के कामों में
निखर उठी थी।

शिक्षा, साहित्य तथा विज्ञान

माया सभ्यता शिक्षा, साहित्य तथा विज्ञान के क्षेत्र में भी काफी
आगे बढ़ी हुई थी। शिक्षा का क्या स्वरूप रहा होगा इसका तो ज्ञान नहीं
परन्तु हस्तलिखित पुस्तकों की प्राप्ति इस बात की प्रतीक है कि उस युग
में शिक्षा का विकास हो चुका था। साहित्य की
वृद्धि हो चुकी थी। उन लोगों की लिपि चित्रलिपि
थी। विज्ञान के क्षेत्र में भी काफी उन्नति की गई

थी।-मन्दिरों की दीवारों पर ज्योतिष सम्बन्धी तथा पंचांग संबन्धी खुदी हुई गणना इस बात की साक्षी है कि उन्हें नक्षत्रों की गतिविधि का ज्ञान था। शायद उनका ज्ञान और भी अधिक विकसित हो। संक्षेप में हम केवल इतना कह सकते हैं कि माया सभ्यता तथा मिश्र, सुमेर, सिन्धु सभ्यताओं में बहुत कुछ समानता है और शायद प्रारंभ में एक दूसरे से सम्बन्धित भी रही हों।

(७) यूनान की सभ्यता और संस्कृति

यूनान को प्राचीन समय में 'हेलाज' भी कहते थे। अपने कल्पित पूर्वज हेलन के नाम पर वे अपने आपको हेलन वंश का कहते थे। यूनान बाल्कन प्रायद्वीप के दक्षिण पूर्व में स्थित है। उस समय यूनान के अतिरिक्त, एशिया माइनर का समुद्र तट तथा एजियन सागर के द्वीप समूह भी इसमें सम्मिलित थे। इस प्रदेश के तीन तरफ सागर हैं। सारा समुद्र तट कटा फटा है इससे अनेकों खाड़ियाँ तथा बन्दरगाह बन गये। इंजियन उपसागर में असंख्य द्वीप आस पास में बिखरे पड़े हैं। यूनान की मुख्य भूमि पर हेलाज पर्वत की दुर्गम उपत्यकाओं ने सम्पूर्ण यूनान को अनेक हिस्सों में विभाजित कर रखा था। इस कारण इन उपत्यकाओं में विकसित होने वाले नगर एक दूसरे से शृंखलाबद्ध न हो सके और प्रत्येक नगर के रीति रिवाज स्वतन्त्र रूप से विकसित हुए। उनमें 'ओलम्पिक' खेलों तथा प्राचीन दंतकथाओं के सहारे ही एकता की भावना बनी हुई थी।

भौगोलिक स्थिति

हेलनीज निवासियों के आगमन के बहुत पहले एजियन सागर तथा द्वीपों पर 'भूमध्य सागरीय' या 'एजियन' जाति के मनुष्य निवास करते थे। इन निवासियों पर मिश्र तथा मध्य एशिया की सभ्यता का प्रभाव पड़ा और इन्होंने सुदृढ़ गढ़ों का, भव्य भवनों एवं प्राचीरों का निर्माण करवाया। उस समय इन लोगों की शक्ति के केन्द्र थे—क्रीट का 'नोसस' और एशिया तट पर स्थित 'ट्राय' नगर। क्रीट की सभ्यता 'मिनोआ की सभ्यता' कहलाती थी। ई० पू० २००० में काले सागर के तट पर नार्डिक आर्यों की उपजाति ने प्रवेश किया

प्रारंभिक इतिहास

ये लोग ग्रीस के आन्तरिक भाग तक आ पहुँचे। ये लोग अपने दलों में यूनान में प्रविष्ट हुए। सर्व प्रथम दल एकियन्स था। दूसरा डोरियन था जो ११०० ई० पू० दक्षिणी यूनान में आ बसा। डोरियन जाति ने एजियन जाति को पराजित किया और डोरियन जाति एजियन जाति में मिल गई जिसके फलस्वरूप 'आयोनियन' जाति की उत्पत्ति हुई जिसने यूनान में एक नवीन संस्कृति को जन्म दिया, जिसके प्रधान केन्द्र स्पार्टा, कोरिन्थ एजीना, एथेन्स, थीब्स, एफीसस, मिलेटस आदि थे।

आयोनियन जाति के उत्कर्ष के उपरान्त यूनान का इतिहास होमर के प्रसिद्ध रचनाएं—इलियड और ओडेसी से मालूम होता है। होमर सर्वप्रथम अन्धा कवि था। ये ग्रंथ शायद १००० ई. पू. में लिपिबद्ध किये गये होंगे इलियड का नाम एक नगर एलम या ट्राय पर पड़ा।

होमर का युग

और ओडेसी का नाम एक वीर पुरुष ओडेसियस —जिसने ट्राय को जीतने में सहयोग दिया था—के नाम पर पड़ा। होमर के ग्रन्थों में वर्णित घटनाओं में से अधिकांश काल्पनिक भी हो सकती हैं। इन ग्रन्थों से मालूम होता है कि ट्रोजन राजकुमार पेरिस स्पार्टा के राजा की पत्नी हेलन को भगा कर ट्राय नगर में ले जाता है। स्पार्टा का राजा यूनान के अन्य राजाओं के साथ मिल कर ट्राय पर आक्रमण करता है। दस वर्ष तक युद्ध जारी रहता है। अन्त में ओडेसियस की सहायता से ट्राय को नष्ट कर दिया जाता। इस युद्ध को ट्रोजन युद्ध कहते हैं।

१२०० ई. पू. से १००० ई. के मध्य में यूनानियों ने एजियन के दूसरी तरफ ट्राय तथा मध्य एशिया में उपनिवेश स्थापित किये। ७५० ई. पू. से ५५० ई. पू. तक उन्होंने कृष्ण सागर के तट पर उपनिवेश स्थापित किये फिर उन्होंने अफ्रीका के तट पर तथा इटली की भूमि पर भी अपने उपनिवेश स्थापित किये। आयोनियन जाति के यूनानियों ने पूर्वी हेलास, एजियन सागर तथा मध्य एशिया पर अधिकार किया। सामोस तथा किओस के द्वीप भी इनके [illegible] में थे। सबसे महत्वपूर्ण नगर मध्य एशिया में स्थित मिलेटस था।

यूनानियों का प्रसार

मिलेट्स के उपरान्त कारिन्थ तथा इरेट्रिया नगरों का विकास हुआ। सिसली द्वीप में स्थित साइराक्यूज उपनिवेश इसी नगर की देन था। फिर धीरे धीरे स्पार्टा का विकास हुआ, स्पार्टा नगर राज्य कुलीनतंत्र तथा सैनिक शक्ति का महत्वपूर्ण गढ़ था। उत्तरी यूनान में थैसली नगर राज्य का विकास हुआ। फिर एथेन्स के प्रजातांत्रिक नगर राज्य का अभ्युदय हुआ जिसने सम्पूर्ण विश्व को एक नवीन सभ्यता व संस्कृति का प्रकाश दिया।

नगर राज्यों के विकास काल में यूनान को ईरान से संघर्ष करना पड़ा। ईरान के साथ प्रथम संघर्ष मेराथन में लड़ा गया। इसमें यूनानी जीते। दूसरा युद्ध थर्मोपली में लड़ा गया। इस युद्ध में यूनानी वीर लियोडिनस ने वीरतापूर्वक लड़ते हुए प्राण गंवाए। यह युद्ध इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण है। इस युद्ध में ईरानी जीते। इन्होंने एथेन्स का ध्वंस किया। थीब्ज और मेसिडोनिया पर अधिकार किया परन्तु शीघ्र ही उन्हें सेलामिस के जलयुद्ध तथा प्लूटियस और मायकेल के स्थल युद्ध में पराजित होना पड़ा। यूनान पुनः स्वतन्त्रता की सांस लेने लगा। परन्तु शीघ्र ही स्पार्टा और एथेन्स में संघर्ष छिड़ गया और यद्यपि स्पार्टा विजयी रहा परन्तु वह भी निर्बल हो गया और उसे थीब्ज से पराजित होना पड़ा। थीब्ज को भी मेसिडोनिया के राजा फिलिप ने पराजित किया। उसने सम्पूर्ण यूनान को एकता के सूत्र में बांधा इस संयुक्त शक्ति की सहायता से उसके पुत्र सिकन्दर ने यूनानी साम्राज्य को विश्व का विस्तृत साम्राज्य बना दिया। कालान्तर में यूनान पर रोम का अधिकार हो गया।

सिकन्दर महान्

यूनानी सभ्यता की पृष्ठ भूमि—प्रसिद्ध इतिहासकार विलड्यूरा ने कहा है कि "मशीनों के अतिरिक्त हमारी संस्कृति का कदाचित ही कोई ऐसा लौकिक तत्व हो, जिसका उद्भव यूनान में न हुआ हो। हमारी संस्कृति में कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसकी प्रेरणा यूनान से न मिली हो।"

यूनानी पूर्वकालीन सभ्यता के अधिकारी थे। उन्होंने बहुत कु
सीखा और बहुत कुछ प्रदान किया। प्राचीन युगों

यूनानी संस्कृति को प्राचीन युगों की देन

भाषा, अग्नि; औज़ारों का प्रयोग, अस्त्र-शस्त्रों का
प्रयोग उन्हें प्राप्त हुआ। प्राचीन प्रस्तर युग
सिलाई, चित्रकला, पत्थर काटने की कला, आभूष
बनाने की कला का ज्ञान दिया। नवीन पाषाण यु
ने उन्हें अनाज उत्पन्न करने की विधि, पशुपालन, भवन निर्माण कला
सूत तथा कपड़ा बुनने की कला से परिचित किया। क्रीट, फोनेशिया, मिस्र
तथा असीरिया से उन्होंने कला, शिक्षा आदि ग्रहण की। भूमध्यसागरीय
देशों से भोग विलास, आमोद-प्रमोद, शृंगार-प्रसाधन का ज्ञान सीखा
अर्थात् ग्रीस ने विभिन्न युगों एवं विविध राष्ट्रों की सभ्यताओं के मौलिक
तत्वों का समन्वय कर के एक नवीन सभ्यता का न केवल निर्माण ही किय
बल्कि यूरोप की असभ्य जातियों में इसका प्रचार भी किया। यूनान को किसी
वस्तु की खोज नहीं करनी पड़ी परन्तु केवल ग्रहण भर करना पड़ा।

यूनान की सभ्यता दीर्घकाल तक फलती-फूलती रही। इतिहास के
युद्धों ने, नगर राज्यों के विकास ने, ईरान के साथ लड़े गये संघर्ष ने तथा
पुनरुत्थान प्राप्त यूनान एवं मेसिडोनियन साम्राज्यवादी यूनान के काल में
यूनान की सभ्यता परिवर्तित होती रही, प्रभावित होती रही और साथ ही
साथ विकसित भी होती रही। अतः अध्ययन की सुविधा के हेतु यूनानी सभ्यता
को तीन कालों में विभाजित करना अच्छा रहेगा—

(१) नगर राज्यों के काल में यूनानी सभ्यता।
(२) पेरीक्लीज महान् के समय में यूनानी सभ्यता।
(३) साम्राज्यवादी काल में यूनानी सभ्यता।

नगर-राज्यों के काल में यूनानी सभ्यता

भौगोलिक परिस्थितियों के कारण यूनान की भूमि पर विविध नगर
राज्यों का पृथक् पृथक् रूप से विकास हुआ था। अतः इन राज्यों के
रीति-रिवाज स्वतंत्र रूप से विकसित हुए। प्रत्येक राज्य ने यूनानी सभ्यता
और संस्कृति के निर्माण में कुछ न कुछ सहयोग अवश्य ही प्रदान किया।

अतः प्रमुख राज्यों की सभ्यता का पृथक् पृथक् रूप से अध्ययन करना ही उत्तम रहेगा।

(अ) मिलेटस नगर राज्य—मध्य एशिया में स्थित मिलेटस नगर सर्व प्रथम समृद्धिशाली यूनानी नगर था। ईसा पूर्व आठवीं शताब्दी में मिलेटस व्यापार वाणिज्य का केन्द्र हो गया था। उसका व्यापार मिश्र तथा इटली तक विस्तृत था। शिक्षा, ज्ञान तथा कला के क्षेत्र में भी इस नगर ने अत्यधिक उन्नति की। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक 'थेल्स' का जन्म भी मिलेटस नगर में ही हुआ। इस नगर ने अनेक उपनिवेश स्थापित किये।

(आ) स्पार्टा—आयोनियन नगरों में और स्पार्टा के सैनिक नगर में सूक्ष्म अन्तर न होकर महान् अन्तर था। दुर्भाग्यवश स्पार्टा कुलीन राजतंत्र तथा सैनिक शक्ति का प्रयोग करता था। कुलीन तंत्र के कारण प्रशासन कुछ व्यक्तियों के हाथों में था। सैनिक शक्ति का तात्पर्य युद्ध का विकास था। स्पार्टा के निवासियों ने यूरोटस घाटी की उपजाऊ जमीन को आपस में बांट लिया था। वहाँ के स्थानीय निवासियों को अपना दास बना लिया। स्पार्टा ग्राम के चारों तरफ दीवार नहीं थी परन्तु लोहे की तलवारों से सुसज्जित योद्धा दीवार का काम करते थे।

स्पार्टा के राजतंत्र की परिभाषा निराली थी। इसका अभिप्राय था उत्तम व्यक्तियों द्वारा प्रशासन। वे व्यक्ति जो सामन्त वर्ग या उच्च परिवार के सदस्य होते थे जो अपने आपको अन्य व्यक्तियों से उत्तम समझते थे और प्रशासन की बागडोर संभालते थे। स्पार्टा के राजतंत्र ने अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता की पूर्ति उपनिवेशों की स्थापना द्वारा नहीं की बल्कि पड़ोस के राज्यों की भूमि को हड़प कर की। कुछ समय के लिए उनका नगर धनिक वर्ग के भोग-विलास में डूबा रहा। परन्तु शीघ्र ही सैनिक शिक्षा तथा युद्ध का महत्व बढ़ गया।

स्पार्टा नगर की शिक्षा महत्वपूर्ण थी। शिक्षा का तात्पर्य वर्णाक्षर के ज्ञान से नहीं बल्कि जीवन की शिक्षा से है। बच्चे के जन्म लेने पर स्पार्टा के राजकर्मचारी उस नवजात शिशु का निरीक्षण करते और उसको जीवित रखने

अद्भुत शिक्षा

या मार डालने के सम्बन्ध में अपना निर्णय देते यदि बच्चा कमजोर या बदसूरत होता तो उसे पहाड़ की चोटी से नीचे फैंक कर मार दिया जाता था। पुरुष अपने घरों में न रह कर सैनिक छावनी में रहते थे। साल में एक बार बच्चों की कठोर एवं क्रूर रीति से शारीरिक शक्ति की जांच हेतु उनकी परीक्षा ली जाती थी। लड़कियों को कठोर शारीरिक शिक्षा दी जाती थी ताकि उनकी संतानें हृष्ट पुष्ट हों।

कृषि फार्मों पर काश्तकार दास रहते थे। उन्हें 'हैलाट' कहा जाता था। ये भूमि मालिक के दास या गुलाम होते थे और कहीं नहीं जा सकते थे। भूमिपति इन्हें बेच या मुक्त नहीं कर सकता था। स्पार्टा राज्य के चारों तरफ करीब सौ नगर बसे हुए थे। इन नगरों के निवासियों को परिआइसी कहते थे। इन निवासियों को व्यापार करने का अधिकार था और इनका कर्तव्य था कि शत्रु को स्पार्टा की सीमा से बाहर और गुलामों को स्पार्टा की सीमा के अन्दर रखने में सहयोग प्रदान करें।

स्पार्टा की इस प्रणाली के कारण स्पार्टा यूनान की सर्वोच्च सैनिक शक्ति बन गया। स्पार्टा के नाम के साथ ही कठोर अनुशासन तथा कष्टों को सहन करने की शक्ति से सम्पन्न व्यक्ति का चित्र उपस्थित हो उठता था। परन्तु स्पार्टा ने यूनानी कला, शिक्षा एवं साहित्य के विकास में नगण्य सहयोग दिया। उसने किसी अन्य नगर राज्य से कुछ नहीं सीखा और उसके इस मिथ्या अभिमान ने अन्त में उसके पतन के बीज बोये।

(६) एथेन्स की प्रारंभिक सभ्यता

प्राचीन यूनान के सम्पूर्ण नगर राज्यों में से एक राज्य ने, (जिसने प्राचीन जीवन को उन्नत करने में सर्वाधिक सहयोग दिया) एथेन्स था। एथेन्स ने न केवल साहित्य एवं संस्कृति का विकास ही किया परन्तु उसका प्रसार भी किया। वह सैनिक शक्ति में भी पूर्णतया परिचित था। एथेन्स

आदर्श नगर राज्य

की सभ्यता स्पार्टा की सभ्यता से सर्वथा भिन्न थी। एथेन्स उस युग के यूनान का — जिसका आदर्श नगर राज्य था — एक आदर्श नगर राज्य था। एक यूनानी दार्शनिक ने आदर्श राज्य की परिभाषा इस

प्रकार की है—"वह राज्य, जिसके समस्त नागरिक एक स्थान पर एकत्र हो सकते हों, एक दूसरे से सम्पर्क रखते हों, राज्य के धार्मिक, सामाजिक जीवन में रुचि लेते हों, अपने अपने राज्य के प्रति भक्ति रखते हों, राष्ट्रीय प्रेम हो"। एथेन्स इस कथन की पुष्टि करने वाला ही नगर राज्य था।

६१२ ई० पू० तक एथेन्स के नियम लिपिबद्ध नहीं थे और सामन्त लोग मनचाहा अर्थ लगा लेते थे। इसी कारण प्रारंभिक राजाओं को सामन्तों ने पदच्युत कर दिया और एथेन्स में कुलीन तंत्र की निरंकुशता स्थापित हो गई।

नियमों में सुधार

नियमों के ज्ञान के अभाव में कृषक तथा शिल्पकार असंतुष्ट होने लगे क्योंकि सबसे अधिक शोषण उन्हीं का होता था और प्रशासन में उनकी आवाज भी नहीं थी। अतः उन्होंने सुधारों की मांग की। ड्राको ने, जो कि एक राजकर्मचारी था। ६३१ ई० पू० में एथेन्स के नियमों को लिखित रूप प्रदान किया। यद्यपि ये नियम बहुत कठोर थे परन्तु इन नियमों से न्याय तथा प्रजातंत्र का द्वार उन्मुक्त हो गया। ५६४ ई० पू० में सोलोन नामक मजिस्ट्रेट (एरकान) ने इन नियमों में सुधार किया। उसने ऋणग्रस्त गुलामी प्रथा का निषेध किया। इससे गरीबों को सात्वना मिली। सर्व साधारण को कुछ राजनैतिक अधिकार मिले परन्तु प्रशासन की बागडोर सामन्त वर्ग तथा उसके द्वारा चुने हुए एरकान लोगों के हाथ में ही रही। कालान्तर में कुलीन तंत्र का पतन हुआ और एथेन्स में प्रजातन्त्र की स्थापना हुई। नियमों में सुधार हुआ। सर्व साधारण को राजनैतिक अधिकार मिले। प्रतिनिधि सभा का सूत्रपात हुआ। जनता को अपने प्रतिनिधियों को वापस बुलाने का अधिकार (ओस्ट्रासिज्म) भी दिया गया। एथेन्स का विकास पूर्ण हुआ।

पेरीक्लीज़ का युग व एथेन्स की सभ्यता

पेरीक्लीज़ के समय में एथेन्स अपनी उन्नति की चरम सीमा तक पहुंच गया था। उस समय के एथेन्स की सभ्यता सम्पूर्ण यूनान की सभ्यता की द्योतक बन गई थी। ईरान और यूनान के संघर्ष में जहां ईरान की पराजय हुई वहाँ एथेन्स भी ध्वंसित हुआ। इसके उपरान्त उसे स्पार्टा के साथ यूनान के प्रभुत्व के लिए संघर्ष

करना पड़ा। मध्य एशिया में स्थित यूनानी नगरों ने स्पार्टा से संरक्षण की माँग की। स्पार्टा ने जन शक्ति के अभाव के कारण या अदूरदर्शिता के अभाव के कारण इन्कार कर दिया। एथेन्स ने उन्हें नेतृत्व प्रदान किया और एशिया के यूनानियों का अभिभावक बन गया। इससे एथेन्स के गौरव में वृद्धि हुई।

ऐसे समय में जब कि एथेन्स के नेतृत्व में यूनान अपनी उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा था, पेरीक्लीज ने एथेन्स की राजनीति में प्रवेश किया और उसने अपनी योग्यता के द्वारा यूनान को विश्व का सर्वोच्च राष्ट्र बना दिया।

पेरीक्लीज का युग

उसके कार्यों ने यूनान की घटनाओं एवं सभ्यता तथा संस्कृति को इतना प्रभावित किया कि इतिहासकारों ने उनके सम्मानार्थ उस युग को "पेरीक्लीज का युग" कह कर संबोधित किया। पेरीक्लीज एथेन्स के एक प्रभावशाली नेता लक्सिन्दीनेज का पुत्र था। उसने ४६५ ई० पू० में एथेन्स की राजनीति में प्रवेश किया और शीघ्र लोकप्रिय हो गया। ४६१ ई० पू० में एथेन्स के प्रशासन की बागडोर उसके हाथ में आ गई। उस समय उसकी आयु केवल तीस वर्ष की थी। उसने एथेन्स के महापुरुषों की नीति—व्यापार वाणिज्य का विकास, सामुद्रिक शक्ति का विकास, कलात्मक प्रवृत्तियों का विकास, प्रजातांत्रिक पद्धति का विकास आदि को जारी रखा। वह अपने समय का प्रभावशाली वक्ता था। प्रजा को उत्साहित करने की दृष्टि से विश्व इतिहास में वह अपने ढंग का एक ही था।

एथेन्स का नगर राज्य प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का प्रतीक था। सम्पूर्ण एथेन्स की वयस्क जनता एक ही समय पर, एक स्थान पर एकत्र हो कर लोक सभा का कार्य सम्पादित करती थी। वास्तव में सभी को अधिकार प्राप्त थे परन्तु बहुत कम व्यक्ति इस सभा में उपस्थित होते थे। एथेन्स

प्रजातांत्रिक प्रशासन संगठन

राज्य का प्रशासन असेम्बली द्वारा नियुक्त कर्मचारी, असेम्बली द्वारा निर्देशित नीति के अनुसार चलाते थे। असेम्बली की सदस्यता राज्य के प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को प्राप्त थी। उपस्थित बहुमत के द्वारा निर्णय होते थे। असेम्बली को यह अधिकार था कि वह किसी भी राज्य कर्मचारी को अपदस्थ कर दे, प्राणदण्ड

दे दे। प्रशासन का विस्तृत कार्य ५०० व्यक्तियों की एक समिति (कौंसिल) के सुपुर्द था। इसके सदस्यों का चुनाव लाटरी पद्धति पर हर साल किया जाता था। न्याय सम्बन्धी कार्य जूरी के अधीन था। असेम्बली ही युद्ध, सन्धि, नियम, कर आदि विषयों का निर्णय करती थी।

जूरी के सदस्यों का चुनाव भी समस्त सदस्यों में से लाटरी प्रणाली के द्वारा किया जाता था। इसके सदस्यों की संख्या ४०१ या ५०१ तक होती थी।

न्याय व्यवस्था

अपराधी व्यक्ति जूरी के सामने स्वयं अपनी सफाई पेश करता था। वकील लोग उसको भाषण लिख कर दे सकते थे। असेम्बली में कोई भी सदस्य विधेयक प्रस्तुत कर सकता था। परन्तु वाद-विवाद के उपरान्त अन्तिम स्वीकृति के लिए विधेयक जूरी के सामने रखा जाता था। उसकी स्वीकृति के उपरान्त ही कोई विधेयक नियम माना जाता था, अन्यथा नहीं।

एथेन्स की सेना तथा विदेशी कार्य दस जनरलों के अधीन थे। जनरल का चुनाव असेम्बली करती थी। इनकी कार्यविधि एक साल होती थी। पेरीक्लीज अधिकतर वर्षों तक जनरल के पद पर ही रहा था।

४३० ई० पू० में एथेन्स के शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए पेरीक्लीज ने प्रजातान्त्रिक सिद्धांतों का विश्लेषण किया था—"यद्यपि व्यक्तिगत झगड़ों में नियम द्वारा सब को समानाधिकार प्रदान किया गया है परन्तु व्यक्तिगत

प्रजातांत्रिक सिद्धांतों का विश्लेषण

प्रतिभा या सर्वोच्च गुणों के अधिकार को भी मान्यता प्राप्त है। जब एक व्यक्ति अपनी योग्यता द्वारा अपने को अन्य व्यक्तियों से उत्तम प्रमाणित करता है, तो उसको राजकीय पद के लिए चुनने का प्रयत्न किया जाता है—किसी विशेष सुविधा या विशेषाधिकार के कारण नहीं बल्कि उसकी योग्यता के आधार पर। निर्धनता को हीन दृष्टि से देखना हमारे लिये अभाग्य नहीं है परन्तु वास्तविक अभाग्य इसको दूर करने के प्रयत्न न करने में है। हम उस व्यक्ति को जो जनता के कार्यों में रुचि नहीं लेता व्यर्थ का कीड़ा समझते हैं।" इससे पेरीक्लीज के महान विचारों का पता चलता है। उस समय की प्रजातांत्रिक भावना व उसके धरातल का पता चलता है।

पेरीक्लीज ने एथेन्स को 'हेलास की पाठशाला' कहा है। और कथन था भी ठीक। इसके बालकों को प्रारम्भ से ही आदर्श नागरिक का पाठ पढ़ाया जाता था। देश विदेश के विद्यार्थी और विद्वान एथेन्स प्रशिक्षण प्रणाली का अनुभव एवं मनन करने आते थे। इतना ही नहीं आधुनिक युग में भी यूनान के इतिहास में एथेन्स का अध्ययन अधिक किया जाता ताकि हम कुछ सीख सकें एथेन्स की सभ्यता से।

संगीत तथा नाटक

एथेन्स में संगीत तथा नाटक की शिक्षा धार्मिक उत्सवों से संबंधित थी। एथेन्स वाले साल भर में लगभग ६० उत्सव मनाते थे। इन उत्सवों पर संगीत-सम्मेलन होते, नाटकों का दिग्दर्शन होता और प्रथम श्रेणी के कलाकारों को पुरस्कार दिया जाता था। पेरीक्लीज ने एथेन्स वालों को इस दिशा में और अधिक उन्नति करने की प्रेरणा दी। जिसके फलस्वरूप संगीत तथा नाट्यकला उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गई। महान् दुःखान्त नाटककार एस्काइलस, सोफोक्लीज तथा यूरीपाइडस इसी युग में हुए थे। सुखान्त नाटककार ऐरिस्टोफेनीज भी, जिसे अब तक कोई पार न पा सका, इसी युग की महान् विभूति था।

कला की उन्नत्ति

एथेन्स की उन्नत कला की झांकी वहाँ के भव्य मन्दिरों में उपलब्ध होती है। विशेष कर एथेनादेव के पार्थीनॉन मंदिर में, जिसके भग्नावशेष आज भी विद्यमान हैं। इस मंदिर का निर्माण पेरीक्लीज के युग में हुआ था। इस मंदिर में वास्तुकला, स्थापत्य-कला तथा चित्रकला के सर्वोच्च नमूने दिखाई देते हैं। उस युग में एथेन्स के प्रमुख कलाकारों में फिडियस जो कि पेरीक्लीज का मित्र था, सब से अग्रणीय था। काव्यकला की दृष्टि से उस युग का महान कवि पिंडार था।

एथेन्स के इतिहासकार भी पेरीक्लीज के युग में पीछे नहीं रहे। इतिहास का पिता 'हैरोडोटस' जो कि विदेशी था इसी युग में एथेन्स आया और उसने प्रथम इतिहास की रचना की। उसने ईरानी युद्धों का वृत्तांत तथा यूनान के रहने वाली बर्बर जातियों का इतिहास अति सुयोग्यता से लिखा है।

इतिहास की रचना

हेरोडोटस का समकालीन तथा ग्रीस में उसी के समान महान् इतिहासकार थुसीडाइडिज भी इसी युग में हुआ। वह एथेन्स का नागरिक था और उसने एथेन्स तथा स्पार्टा के युद्धों का इतिहास लिखा।

यूनानी भवनों का चित्र

इतना होने के उपरान्त भी एथेन्स के प्रजातन्त्र में कुछ दोष थे जिनको पेरीक्लीज ने दूर करने का प्रयत्न किया था परन्तु वह असफल रहा। एथेनियन प्रजातन्त्र में स्त्रियों को राजनैतिक अधिकार नहीं थे।

प्रजातंत्र के दोष

निर्धन लोगों को राजनैतिक अधिकार प्राप्त थे परन्तु वे उच्च पदों के अधिकारी नहीं हो सकते थे। एथेन्स के अधिकांश गुलामों को भी राजनैतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। कोई भी विदेशी, चाहे वह कितने ही वर्षों से एथेन्स में निवास कर रहा हो, धन सम्पन्न, बुद्धि सम्पन्न, कला सम्पन्न हो, किंतु एथेन्स के प्रशासन में हिस्सा नहीं ले सकता था।

पेरीक्लीज के युग में ग्रीक समाज तीन वर्गों में विभाजित था–(१) उच्च वर्ग, (२) साधारण वर्ग तथा (३) दास वर्ग। प्रथम वर्ग को प्रशासनाधिकार व राजनैतिक दोनों प्रकार के अधिकार प्राप्त थे, द्वितीय

सामाजिक स्थिति

वर्ग को राजनैतिक अधिकार तो प्राप्त थे परन्तु प्रशासनाधिकार नहीं था। तृतीय वर्ग को दोनों में से किसी प्रकार का अधिकार प्राप्त नहीं था। यूनानी

समाज में स्त्री का सम्मान था। उसे शिक्षा दी जाती थी। परन्तु उसे पूर्ण रूप से स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी। वह सार्वजनिक कार्यों में भाग नहीं ले सकती थी। उसे राजनैतिक अधिकार भी प्राप्त नहीं थे। उसका स्थान घर के अन्दर था। साधारणतः बहुपत्नि विवाह की प्रथा नहीं थी। विवाह के पूर्व लड़के-लड़कियों के मिलने की प्रथा थी। समाज का संगठन ठोस था। परिवार का महत्व था। परिवार का मुखिया पिता होता था। लड़के-लड़कियों की शिक्षा, विवाह, पालन-पोषण का कार्य उसी के सुपुर्द होता था। लड़कों को शिक्षा प्राप्ति के लिए गुरुकुलों में भेजा जाता था। साधारणतः १५ वर्ष की अवस्था तक अध्ययन कार्य होता था। इसके उपरान्त उसे गृहस्थ जीवन में प्रवेश करना पड़ता था।

धार्मिक विचार

विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं की धार्मिक विचारधारा के समान ही यूनान की धार्मिक विचारधारा थी। यूनानी लोग भी नाना प्रकार के देवी-देवताओं की उपासना करते थे। उनके देवता मनुष्य ही थे परन्तु मनुष्य के दुर्गुणों से रहित। उनके हृदय में देवताओं के प्रति सम्मान, श्रद्धा तथा भय की भावना विद्यमान थी। उनके प्रमुख देवता थे जीयस (देवताओं के राजा) डेमीटर (पृथ्वी की माता) एथेना (विद्या तथा कला की देवी) हैडस (पाताल का स्वामी) एपोलो (धनुर्देव) डायोनीयस (मदिरा के देवता)। यूनानी लोगों की धारणानुसार जीयस अपने परिवार सहित ओलम्पस पहाड़ पर रहा करते थे। जीयस का सम्मान सम्पूर्ण यूनान में था।

देवताओं की उपासना-विधि यूनान में विचित्र ढंग की थी। वे अधिक समय व्यय नहीं करते थे। प्रत्येक घर में भोजन प्रारम्भ करने से पहले देवताओं को मदिरा और भोजन की भेंट चढ़ाई जाती थी। उत्सवों पर देवताओं की बलि भी चढ़ाई जाती थी। धार्मिक कार्य पुरोहित सम्पादित करवाते थे। पुरोहित वंशानुगत न होकर निर्वाचित किए जाते थे। प्रत्येक वर्ष जीयस के सम्मान में एक महान् धार्मिक उत्सव मनाया जाता था जिसमें यूनान के सभी राज्य सम्मिलित होते थे।

आत्मा के बारे में यूनानी लोग निराशावादी थे। उनके कथनानुसार मृत्यु के उपरान्त जीवन दुखमय हो जाता था। यह कैसे हो जाता था इसकी

विशेष व्याख्या नहीं की गई है। कुछ दार्शनिक मृत्यु के उपरान्त पुनः जीवन की भी कल्पना करते थे।

पेरीक्लीज के उपरान्त यूनानी सभ्यता

महान परिवर्तन

पेरीक्लीज की मृत्यु के उपरान्त एथेन्स की राजनैतिक शक्ति एवं साम्राज्य का अन्त हो गया परन्तु बौद्धिक क्षेत्र में एथेन्स आगे ही रहा। कला, साहित्य, दर्शन और विज्ञान के क्षेत्र में एथेन्स ने अद्भुत उन्नति की। पेरीक्लीज के बाद यूनान की राजनीतिक सामाजिक स्थिति तथा नियमों में महान परिवर्तन हुआ। प्रारम्भ में प्रत्येक नगर अपने नागरिकों को ही सेना में भर्ती करता था। अब विदेशी नगरों के नागरिकों को भी भर्ती किया जाने लगा। नागरिकता का क्षेत्र व्यापक किया गया। आर्थिक स्थिति गिरगिट की भाँति रंग बदलने लगी। निर्धन लोग दुखी हो उठे। अतः राजनीति के क्षेत्र में भी साधारण जनता के नेता अग्रणी होने लगे। इसके अतिरिक्त यूनान में दासों की संख्या बढ़ने लगी। एथेन्स की जनसंख्या में आधी से अधिक संख्या गुलामों की थी।

प्राचीन युग के अनुशासन तथा परम्परा की शृंखलाओं से नियंत्रित

प्राचीन एथेन्स का राष्ट्रीय नाट्यगृह

कला पेरीक्लीज के बाद के युग में स्वतन्त्र तथा विचारपूर्ण हो उठी। वास्तु कला तथा स्थापत्य कला अब मन्दिरों तक ही सीमित न रही

बल्कि व्यक्तिगत भवनों, मकबरों तथा थियेटरों में विकसित होने लगी। अब देव मूर्तियों का जगह जीवित पुरुषों की प्रतिमाएं बनाई जाने लगीं

कला में नवीन प्रवृत्ति

तथा देवताओं को मानवीय रूप से अंकित किया जाने लगा। प्राक्सीटिलेस आदि शिल्पकारों ने हरमीस तथा एफ्रोडाइट की विशाल मूर्तियाँ बनाने में अधिक रुचि ली। ये स्त्री सौंदर्य के आकर्षण से परिपूर्ण थीं। बहुत से कलाकारों ने नग्न सौंदर्य को अंकित करने में ही परमानन्द अनुभव किया। चित्रकारी के अवशेष हमें बिल्कुल नहीं मिले हैं। स्थापत्य कला में डोरिक शैली, आयोनियन शैली और कोरिन्थीयन शैली का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

अपोलो बेलवेडियर

साहित्य के क्षेत्र में भी यूनान आगे बढ़ा परन्तु अब परिवर्तन हो चुका था साहित्य की शैली में। अब नाटक खेले जाते थे राजनीतिज्ञों और नेताओं का मजाक उड़ाने को न कि धार्मिक कथानक को ले कर। प्रत्येक नगर में थियेटरों का निर्माण हो चुका था और रूपक तथा अभिनय-दिग्दर्शन दैनिक जीवन का अंग बन गया।

इस युग में भाषण का महत्व बढ़ने लगा। भाषण भी एक कला मान ली गई। अब प्रशासन प्रतिनिधि सभा तथा जूरी प्रथा द्वारा होता था, जहाँ पर अच्छे वक्ता ही सफल हो सकते थे। अतः भाषण कला की शिक्षा दी जाने लगी। उनका विषय क्षेत्र इतिहास, राजनीति, साहित्य तथा दर्शन तक विस्तृत था। उस युग का महान् वक्ता डीमोस्थनीज था। उसने भाषण कला की सूक्ष्म बातें यूनानियों को सिखलाईं।

इस युग में यूनान ने एक सिद्धांत को जन्म दिया कि प्रत्येक वस्तु का निर्माण चार तत्व—अग्नि, जल, वायु तथा पृथ्वी से हुआ है। प्रेम और क्रोध

न तत्वों को संयुक्त तथा पृथक् करते रहते हैं। ज्योतिष, खगोल, गणित तथा चिकित्सा के क्षेत्र में काफी उन्नति हुई। ग्रहण का कारण ज्ञात किया गया। चिकित्सा में हिप्पोक्रेटीस का नाम हमेशा अमर रहेगा। उसे चिकित्सा विज्ञान का पितामह कहा जाता है। यूनान की सभ्यता में सब से महत्वपूर्ण स्थान दार्शनिकों का है। उन्होंने मानवीय विचार क्षेत्र में अपना अमिट स्थान बना लिया है। इन दार्शनिकों में सर्व प्रमुख थे—सुकरात, प्लेटो और अरस्तू। क्रम से एक दूसरे के शिष्य। सुकरात सत्य की खोज में दिन रात एथेन्स की गलियों, बाजारों आदि में भ्रमण किया करते थे। वे ज्ञान का पाठ पढ़ाते थे। निर्धन हो चाहे अमीर। वे प्रत्येक से सवाल-जवाब करते थे। और इसी पद्धति से ज्ञान का प्रसार करते थे। एथेन्स उनकी प्रतिभा को नहीं समझ सका और उनकी हत्या कर दी गई। प्लेटो उनका शिष्य था।

विज्ञान तथा दर्शन

अरस्तू ई० पू०—चतुर्थ शताब्दी की मूर्ति

प्लेटो एक महान् शिक्षक और लेखक था। उसने ब्रह्म, सृष्टि आदि विषयों पर पुस्तकें लिखीं। उसकी सुप्रसिद्ध पुस्तक "The Republic" है। यह उस युग की राजपद्धति तथा प्रजातांत्रिक प्रणाली के ज्ञान से परिपूर्ण है।

अरस्तू प्लेटो का शिष्य था। अपने युग का सर्वप्रमुख मेधावी विद्वान् था। इस महापुरुष का ज्ञान अगाध था, प्रत्येक विषय पर इसका पूर्ण अधिकार था। यह सिकन्दर महान् का गुरु था। यह तर्कशास्त्र का प्रकाण्ड पण्डित था। इसने तर्कशास्त्र पर एक अमूल्य ग्रन्थ भी लिखा है। अरस्तू के तर्कों को आज भी नहीं भुलाया जा सकता। उसने विश्व-बन्धुत्व की भावना के विकसित होने में सहयोग दिया।

(८) रोम की सभ्यता एवं संस्कृति

पिछले अध्यायों में हम देख चुके हैं कि प्राचीन सभ्यताओं के विकास

गौल
स्पेन
रोम
सिसली द्वीप
भूमध्य सागर
काला सागर
अफ्रीका
मिस्र
अरब

में भौगोलिक परिस्थितियों का सदैव अप्रत्यक्ष रूप से और कभी कभी प्रत्यक्ष रूप से हाथ रहा है। इटली के प्रमुख नगर रोम का विकास भी इसी प्रकार के सहयोग से संभव हो सका था। इटली के तीन तरफ सागर है परन्तु यूनानी प्रायद्वीप की भांति समुद्र इटली की धरती पर दूर-दूर तक नहीं घुसा है और न इटली का सामुद्रिक तट यत्र तत्र फटा हुआ है, जिसके कारण इटली व्यापार के माध्यम से दूसरे देशों के सम्पर्क में शीघ्रता से नहीं आया। इसके अतिरिक्त इटली की भूमि उपजाऊ थी और कृषि तथा पशुपालन का कार्य सुगमता से किया जा सकता था। परन्तु इटली को पश्चिम की बर्बर जातियों से हमेशा संघर्ष करना पड़ा।

भौगोलिक प्रभाव

ईसा पूर्व १००० के लगभग इटली के अपेननाइन पहाड़ी की उपत्यका की उपजाऊ भूमि पर एक दूसरे से संबंधित लेटिन आर्यों की अनेक जातियाँ निवास करती थीं। ये निवासी खेती करते, पशुपालन का कार्य करते, अंगूर की शराब बनाते तथा ताम्र के अस्त्र शस्त्र बनाने का कार्य भी करते थे। इन लोगों में शिक्षा का अभाव था। भव्य भवनों की निर्माण कला से अपरिचित थे। परन्तु फिर भी ये काफी सभ्य थे। ६०७ ई० पू० के लगभग इटली के पश्चिमी तट पर लुटेरों का एक समूह उतरा। उन्होंने टाइबर नदी को पार कर उत्तर की ओर प्रस्थान किया। ये लोग मध्य एशिया की यूट्रास्कन या एट्रास्कन जाति के सदस्य थे। इस जाति ने लेटिन आर्यों को पराजित कर के इतिहास को एक नया मोड़ दिया; क्योंकि इसके पूर्व किसी जाति ने आर्य जाति को पराजित नहीं किया था। यूट्रास्कन जाति ने प्राचीरों से घिरे हुए अनेक नगरों (इटली के पश्चिमी भाग पर) की स्थापना की। यूट्रास्कन जाति स्वयं तो विशेष उन्नत नहीं थी परन्तु उसने यूनान तथा बेबीलोन की सभ्यता का अनुकरण कर उसे इटली में फैलाया। वर्णमाला, कला तथा युद्ध प्रणाली का ज्ञान इसी जाति ने इटली को प्रदान किया।

प्रारंभिक जातियाँ

८०० ई० पू० के लगभग यूनानी लोगों ने भी इटालियन भूमि पर अपने उपनिवेश स्थापित करने प्रारम्भ कर दिये। इटली के दक्षिणी भाग में सिसली

सिसली में उनके उपनिवेश स्थापित किये गये। इनमें साइराक्यूज़, (जो एथेन्स और स्पार्टा से किसी भाँति कम नहीं था) बहुत प्रसिद्ध था। ई० पू० छठी शताब्दी तक यूनानी लोगों ने इटली के सम्पूर्ण दक्षिण तट तथा सिसली पर अपना पूर्ण एकाधिपत्य स्थापित कर लिया और इसी कारण यह प्रान्त "बृहद् यूनान" के नाम से पुकारा जाने लगा। उस समय तक रोम का कोई विशेष महत्व नहीं था।

रोम का राजनैतिक इतिहास

जनश्रुति के अनुसार रोम नगर का निर्माण ७५३ ई० पू० में दो जुड़वाँ भाइयों रोम्यूलस और रेमस के द्वारा किया गया था। प्रारम्भ में रोम टाइबर नदी पर एक छोटा सा नगर था। कालान्तर में एट्रस्कन जाति ने रोम पर अधिकार कर लिया और रोम ने उनके शासन में उन्नति भी की। ई० पू० ५०९ में रोमन लोगों ने एट्रस्कन जाति को रोम से खदेड़ कर प्रजातन्त्र की स्थापना की। इसके बाद रोम उन्नति की ओर अग्रसर होने लगा। ३९६ ई० पू० में रोम ने एट्रस्कन जाति के शक्तिशाली दुर्ग वीआई पर अधिकार कर लिया। यह रोम की प्रथम विजय थी। ३३८ ई० पू० तक पड़ोसियों के साथ अनेक लड़ाइयाँ लड़ने के उपरान्त रोम ने सम्पूर्ण लेशियम प्रदेश पर अधिकार कर लिया। इसके उपरान्त रोम ने आगे पूर्व में स्थित सैमनाइट जाति तथा इट्रूरिया के निवासियों को पराजित कर मित्र बना लिया। इसी समय रोम को गाल जाति से भी संघर्ष करना पड़ा परन्तु विजय रोम की ही हुई।

इसके उपरान्त रोम और बृहद् यूनान का संघर्ष हुआ। यूनानी उपनिवेशों की सहायता के लिए एपिरस का राजा पिरस अपनी विशाल सेना के साथ इटली की तरफ बढ़ा। उसने रोमन सेना को दो महत्वपूर्ण युद्धों में पराजित किया। फिर उसने सिसली पर आक्रमण करने का विचार किया। [illegible] इस विचार ने [illegible] को रुष्ट कर दिया [illegible] की [illegible]। पिरस को [illegible] के कारण [illegible] इटली से वापस जाना पड़ा। रोम का आधिपत्य ही दक्षिण इटली तथा सिसली [illegible]।

अब रोम ने अपना ध्यान, फोनिशियन सभ्यता के केन्द्र तत्कालीन विश्व के सबसे अधिक समृद्धिशाली नगर कार्थेज की तरफ किया। लूट का माल हड़पने तथा अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने की दृष्टि से कार्थेज के साथ युद्ध लड़े गये। इतिहास में ये युद्ध 'प्यूनिक युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रथम युद्ध २३ वर्षों तक (२६४ से २४१ ई० पू०) लड़ा गया, इस बीच में कभी रोम की तो कभी कार्थेज की विजय होती रही परन्तु अन्त में कार्थेज पराजित हुआ। उसे बहुत सा सोना चाँदी देना पड़ा। साइराक्यूज उपनिवेश को छोड़ कर सम्पूर्ण पश्चिमी सिसली भी देना पड़ा। रोम के साम्राज्य का विकास हुआ। दूसरा युद्ध भी १७ वर्षों तक (२१८ से २०१ ई० पू०) लड़ा गया। इस युद्ध में कार्थेज के सेनापति हैनीबाल ने अद्भुत पराक्रम दिखलाया उसने स्पेन के आल्प्स पर्वत को पार करके फ्रांस, स्विटजरलैंड की राह उत्तर की तरफ से इटली पर आक्रमण किया। १५ वर्षों तक हैनीबाल रोम के प्रमुख सेनापतियों को पराजित करता रहा। *अन्त में उसकी पराजय हुई और उसने आत्म हत्या कर ली।* इस युद्ध से रोम को स्पेन का प्रान्त मिला और कार्थेज को केवल दस लड़ाकू जहाज रखने को विवश किया गया। तीसरा युद्ध बहुत ही भयानक हुआ। रोम ने कार्थेज नगर को भस्म कर दिया और उसके प्रान्तों पर अधिकार कर लिया।

प्यूनिक युद्धों का प्रभाव—(१) प्राचीन भूमध्य सागरीय संस्कृति का प्रसार अफ्रीका के माध्यम से न होकर यूरोप के माध्यम से हुआ (२) रोम जल व थल पर एक महान शक्ति के रूप में प्रगट हुआ। (३) रोम का साम्राज्य सिसली, कोर्सिका, सार्डिनिया, स्पेन तथा उत्तर पश्चिमी अफ्रीका तक फैल गया (४) यूनानी सभ्यता के प्रति रुचि उत्पन्न हुई और (५) रोम में निर्धन तथा अमीरों में, काश्तकारों तथा जमींदारों में, शासक तथा शासित में पारस्परिक कलह का सूत्रपात हुआ।

रोम ने पश्चिम की विजय के उपरान्त पूर्व की तरफ ध्यान दिया। सिकन्दर की मृत्यु के उपरान्त यूनानी साम्राज्य तीन हिस्सों में मिश्र, मेसिडोनिया तथा सीरिया में विभाजित हो गया था। रोम ने एक एक कर के इन सभी प्रांतों पर अपना अधिकार कर लिया। ८० ई० पू० तक रोम ने सम्पूर्ण यूनान तथा

मध्य एशिया को अपने अधिकार में कर लिया। इन युद्धों में रोम के दो प्रमुख सेनापतियों—सुला और पाॅम्पी—ने बहुत महत्व प्राप्त किया।

इसके उपरान्त रोम की राजनीति में सेनापतियों का प्रभाव बढ़ने लगा। उस समय रोम के प्रशासन में अनेक दोष थे। सर्वसाधारण को विशेष अधिकार प्राप्त नहीं थे। अतः जनता ने सुधारों की मांग की। सीनेट ने इस मांग को ठुकरा दिया। सेनापति मेरियस ने जनता का पक्ष लेकर सीनेट के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। सेनापति सुला ने सीनेट का पक्ष लेकर मेरियस को पराजित किया और स्वयं प्रथम तानशाह की भांति शासन करने लगा। सुला की मृत्यु के उपरान्त रोम के तीन प्रमुख सेनापतियों— पाॅम्पी, क्रेसस तथा जूलियस सीज़र ने मिल कर प्रथम 'ट्रायम विरेट' की स्थापना की और रोम का शासन चलाने लगे। सीज़र बहुत महत्वाकांक्षी था। उसने आठ वर्षों के निरन्तर संघर्ष में गाॅल जाति को पराजित किया और सम्पूर्ण जर्मनी, फ्रांस तथा इंग्लैंड पर रोम का अधिकार स्थापित किया। इसी बीच क्रेसस की मृत्यु हो गई और पाॅम्पी तथा सीज़र में मतभेद बढ़ने लगा। यद्यपि पाॅम्पी उसका दामाद था परन्तु सीज़र को उसे दूर रखना था। उसे सीनेट का भी समर्थन प्राप्त था। परन्तु पाॅम्पी तथा सीज़र के युद्धों में पाॅम्पी मारा गया और सीनेट ने सीज़र को 'देश का पिता' कह कर सम्मानित किया।

सेनापतियों का युग

मृत्यु आसन्न गाॅल

सीज़र ने रोम में निरंकुश शासन स्थापित किया। यद्यपि उसने राजा की उपाधि ग्रहण नहीं की। उसने बहुत से सुधार किये, उपनिवेश बसाये। इटली के निवासियों को रोम की नागरिकता प्रदान की। मताधिकार दिया।

सिक्कों में सुधार किया । पंचांग में सुधार किया । परन्तु फिर भी ब्रूटस और कैसियम ने एक षडयन्त्र द्वारा सीनेट की सीढ़ियों पर सीजर का कत्ल कर दिया । मार्क एन्टोनी (सीजर की दत्तक पुत्री का पति) तथा ओक्टेवियस (सीजर का दत्तक पुत्र) ने हत्यारों का पीछा किया । हत्यारों ने आत्म-हत्या कर ली । इसके बाद रोमन साम्राज्य का पश्चिमी भाग ओक्टेवियस के तथा पूर्वी भाग एन्टोनी के अधिकार में आ गया ।

मार्क एन्टोनी मिश्र की दुश्चरित्र रानी क्लिओपेट्रा के प्रेम में पड़ गया । उसने ओक्टेवियस की बहन को तलाक दे दिया । शीघ्र ही दोनों शासकों के बीच युद्ध हुआ । पराजित एन्टोनी ने आत्म हत्या करली । ओक्टेवियस एक-मात्र शासक रह गया । सीनेट ने उसे आगस्टस (देवता या सम्राट) की उपाधि से विभूषित किया । इस प्रकार प्रजातांत्रिक रोम का पतन हुआ और साम्राज्यवादी रोम का विकास हुआ ।

आगस्टस के उपरान्त उसके चार वंशजों—टाइबेरियस, केलियस, क्लाडियस तथा नीरो—ने ६८ वर्षों तक रोमन साम्राज्य पर निरंकुशता पूर्वक शासन किया । इसके उपरान्त रोमन साम्राज्य में उत्तराधिकार संघर्ष चलता ही रहा और सेना की शक्ति से सम्राट बनते बिगड़ते गये । सन् ३२४-३३७ ई० में कान्स्टेन्टाइन महान रोम का सम्राट हुआ । उसके समय में रोमन साम्राज्य के दो हिस्से किये गये—पूर्वी और पश्चिमी । पूर्वी रोमन साम्राज्य की राजधानी कुस्तुन्तुनियां (कोन्स्टेन्टीनोपाल) का निर्माण किया गया । कालान्तर में कुस्तुन्तुनिया रोम से से भी आगे बढ़ गया । इस सम्राट ने ईसाई धर्म को ग्रहण किया और इस धर्म को राज धर्म घोषित किया ।

प्रारम्भ में रोम एक निरंकुशात्मक प्रजातांत्रिक राज्य था । प्रजातांत्रिक व्यवस्था का संचालन सीनेट के हाथ में था । प्रारम्भ में सीनेट के सदस्यों को चुनने का मताधिकार, तथा चुने जाने का अधिकार रोम के उच्चवर्ग 'पेट्रीशियन' के सदस्यों को ही प्राप्त था । इस उच्च वर्ग के पास विशेषाधिकार थे । उस समय रोमन प्रशासन में, धार्मिक कार्यों में, नियमों की व्याख्या में इस श्रेणी के व्यक्ति ही भाग ले सकते थे । यह श्रेणी वंशानुगत

प्रशासन व्यवस्था

थी। साधारण जनता को 'प्लिबियन' कहा जाता था। असेम्बली की सदस्यता प्रत्येक नागरिक को प्राप्त थी। ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी में असेम्बली प्लिबियन लोगों की सभा थी। परन्तु असेम्बली के अधिकार सीमित थे। इसका कार्य उच्चाधिकारियों द्वारा रखे हुये प्रस्तावों, नियमों, नियुक्तियों का अनुमोदन करना मात्र था। असेम्बली के सभी प्रस्तावों, नियमों तथा नियुक्तियों के लिए सीनेट की स्वीकृति आवश्यक होती थी।

रोम के सर्वोच्च अधिकार दो व्यक्तियों के हाथ में थे जो कि कौंसल कहलाते थे। ये न्यायाधीश तथा सेनापति दोनों थे। पाचवीं शताब्दी के मध्य में दो और कर्मचारियों की नियुक्ति की गई। एक कोषाध्यक्ष का कार्य करता था और दूसरा प्राचीन रेकार्ड का प्रबन्ध रखता था। इन्हें "क्विसटोरज" कहा जाता था। कालान्तर में दो और उच्चाधिकारियों की वृद्धि की गई-(अ) सेन्सरस, जो कि जनगणना, करों का निर्णय, सार्वजनिक कार्यों के टेके देने आदि का कार्य करता था और (आ) ईदिल्ज, जो कि बाजार, गलियों, पानी की व्यवस्था आदि कार्य करता था। यह सभी कर्मचारी असेम्बली द्वारा नियुक्त किये जाते थे परन्तु केवल पेट्रीसियन लोग ही उम्मीदवार हो सकते थे।

सर्व साधारण के अधिकारों में वृद्धि

अपने निम्न अधिकारों से असंतुष्ट प्लिबियन लोगों ने रोम त्यागने की धमकी दी। इस पर ४६६ ई० पू० में उन्हें अपने 'ट्रिब्यून' के चार अधिकारियों को चुनने का अधिकार दिया गया जो कि साधारण जनता के अधिकारों की रक्षा कर सकें। कुछ समय उपरान्त नियमों को लिखित रूप दिया गया और असेम्बली का प्रजातांत्रिक ढंग पर पुनर्निर्माण किया गया। फिर 'क्विसटोरज' का पद प्लिबियन लोगों के लिए उन्मुक्त कर दिया गया। ई० पू० चौथी शताब्दी में कौंसल का पद भी उनके लिए उन्मुक्त कर दिया गया और प्रथम बार प्लिबियन कौंसल चुना गया। इसके बाद सीनेट की सदस्यता भी उनके लिए खोल दी गई। २८७ ई० पू० में असेम्बली को नियमों के निर्माण में अधिक अधिकार प्रदान किए गये। यह सर्व साधारण जनता की महत्वपूर्ण थी। उन्हें राजनैतिक अधिकार मिल गये।

प्यूनिक युद्धों का रोमन प्रशासन अवस्था पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। इन युद्धों के कारण धनवान और धनिक हो गए। निर्धन जनता की स्थिति दयनीय हो गई। फलस्वरूप सुधारों की मांग हुई जो कि सीनेट द्वारा ठुकरा दी गई। सेनापतियों में जनता और सीनेट का पक्ष ले कर युद्ध लड़ा गया। इसी समय से रोमन प्रशासन पर सेनापतियों का प्रभाव स्थापित हुआ। उन्होंने तानाशाहों की भाँति निरंकुश शासन किया। डिक्टेटरशिप या अधिनायकवाद का सूत्रपात हुआ। सीनेट तथा असेम्बली के अधिकार ताक पर रख दिये गये।

आगस्टस के प्रशासनिक सिद्धान्त

ओक्टेवियस आगस्टस ने इस अराजकता का अन्त किया परन्तु उसने वंशानुगत सम्राटों की परम्परा को जन्म दिया। उसके राजनीतिक सिद्धान्त अति सुन्दर थे। उसने समझ लिया कि शासन आवरण से परिपूर्ण होना चाहिए। शासन पर एक सुनहरा पर्दा होना चाहिए। सीजर महान् से भी अधिक योग्यतापूर्वक उसने प्रजातांत्रिक प्रणाली के द्वारा निरंकुशता की स्थापना की। सीजर की भांति वह कौंसल तथा पुरोहित था, ट्रिब्यून था और उसने सेनापति तथा आगस्टस और 'प्रिन्सेपस' की उपाधि ही स्वीकार की। आजन्म कौंसल पद और डिक्टेटर की उपाधि को अस्वीकार कर दिया।

रोमन प्रशासन में स्थानीय स्वराज्य का भी अत्यधिक महत्व था। बड़े बड़े नगरों की आंतरिक व्यवस्था यथा:—स्वास्थ्य, सफाई, जलव्यवस्था आदि नगरपालिकाओं के अधीन थी। नगरपालिका के सदस्यों का निर्वाचन नगर के निवासियों द्वारा होता था। स्त्री और पुरुष दोनों को वोट देने का अधिकार था। नगरपालिका के चुनावों में आधुनिक युग की भाँति राजनैतिक दलबन्दी की प्रथा थी। नगरपालिकायें आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर होती थीं। सदस्यों को वेतन नहीं मिलता था।

प्रारम्भिक प्रजातान्त्रिक रोम समाज वर्गों में विभाजित नहीं था। अधिकांश निवासी किसान थे और कृषि का कार्य करते थे। ये किसान युद्ध काल में रोम की सुरक्षा के लिए लड़ते थे। उनके निवास स्थान झोंपड़ों में होते थे। उन्हें पत्थरों द्वारा मकान बनाना नहीं आता था।

सामाजिक जीवन

यूनान तथा मध्य एशिया की सभ्यता के सम्पर्क से

प्रारंभिक अवस्था में

उन्होंने बहुत कुछ सीखा, धीरे धीरे रोमन समाज दो वर्गों में विभाजित हो गया—पेट्रीशियन और प्लिबियन अर्थात उच्च वर्ग और सर्व साधारण वर्ग अर्थात् धनिक वर्ग और निर्धन वर्ग। उच्च वर्ग भूमि का मालिक बन गया। जोतने वाले क्लाइन्ट कहलाये और साधारण जनता प्लिबियन कहलाती। फिर निरन्तर संघर्षों के द्वारा पराजित राष्ट्रों के सैनिकों को दासों के रूप में बेचा जाने लगा। इससे एक नवीन वर्ग—दास वर्ग— की उत्पत्ति हुई। दासों की स्थिति दयनीय थी। उन्हें रात दिन काम करना पड़ता था। मालिक उन्हें बेच सकता था। परन्तु दासों के पास किसी प्रकार के अधिकार नहीं थे। वे अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं रख सकते थे।

रोमन समाज पितृमूलक था। परिवार समाज की मूल इकाई थी। परिवार में पिता, पुत्र, कुमारी पुत्री, माता, पुत्र-वधू तथा दास होते थे। एक प्रकार से संयुक्त परिवार प्रणाली ही थी। परिवार का मुखिया पिता होता था। पिता के अधिकार असीमित थे। परिवार के प्रत्येक सदस्य पर उसका नियंत्रण होता था। लड़के लड़कियों की शिक्षा-दीक्षा तथा विवाह शादी का प्रबन्ध करना पिता का कार्य होता था। कहते हैं कि बच्चे के जन्म लेने ही उसे पिता के चरणों में डाल दिया जाता था। यदि वह उसे स्वीकार करता तो बच्चे का पालन पोषण किया जाता नहीं तो उसे मार दिया जाता था। पिता अपनी संतान को मार सकता था। उसे दास के रूप में बेच भी सकता था। परन्तु ऐसा व्यवहार बहुत ही कम और सो भी दुष्ट तथा मूर्ख संतान के साथ ही किया जाता था।

रोमन परिवार दो प्रकार के होते थे—प्रथम एगनेट, द्वितीय काग्नेट। एगनेट पिता के रक्त से सम्बंधित परिवार को कहते थे। काग्नेट परिवार के सदस्यों के रक्त से संबंधित कुटुम्ब को कहते थे।

प्रारम्भिक काल में स्त्रियों को विशेषाधिकार नहीं थे। पति अपनी पत्नी को यातना, तलाक और यहां तक कि प्राण दण्ड भी दे सकता था। स्त्रियों को विशेष शिक्षा-दीक्षा भी नहीं दी जाती थी। पति की मृत्यु के उपरान्त उसे अपने बड़े पुत्र के नियंत्रण में रहना पड़ता था। परन्तु फिर भी यूनानी नारी से रोमन

नारी का समाज में अधिक सम्मान था। वह सार्वजनिक कार्य में हिस्सा ले सकती थी। राज्य के प्रशासन में रुचि रखती थी। अपने पति के व्यवसाय, व्यापार आदि कार्यों में हाथ बटाती थी। उसकी स्थिति इतनी हीन नहीं थी जितनी कि यूनान की नारी की।

प्रारम्भिक अवस्था में रोमन समाज में विवाह का बहुत महत्व था। विवाह धार्मिक नियमों के अनुसार तथा माता पिता की सम्मति से किया जाता था। तलाक प्रथा यद्यपि प्रचलित थी परन्तु बहुत कठिन थी। सुगमता से तलाक नहीं दिया जा सकता था। प्रायः एक पति एवं एक पत्नी की प्रथा थी। बहु विवाह का प्रचलन बहुत ही कम था। विवाह की कम से कम आयु लड़के के लिए चौदह वर्ष तथा लड़की के लिए बारह वर्ष मानी जाती थी।

रोम निवासियों की वेशभूषा यूनानियों से मिलती जुलती थी। रंग बिरंगे कपड़ों का अधिक प्रयोग किया जाता था। प्रायः रक्तपीताभ कपड़ा अधिक पहना जाता था। सोलह वर्ष की आयु प्राप्त होने पर लड़के को सफेद वस्त्र धारण करने पड़ते थे। यह उसके पौरुष का प्रतीक होता था। लड़कियां या स्त्रियां प्रायः 'स्टोला' नामक वस्त्र धारण करती थीं।

साम्राज्यवादी काल में रोमन समाज में महान् परिवर्तन आ गया। प्रारम्भिक अवस्था में जिस नैतिक एवं आदर्श समाज का उल्लेख मिलता है, वह समाज रसातल को चला गया। इस युग में धनिक वर्ग, सामन्त वर्ग तथा पुरोहित वर्ग का समाज में प्रमुख स्थान था। ये वर्ग यूनान की दार्शनिकता से प्रभावित हो कर भोग विलास की ओर अग्रसर हो रहे थे। सांसारिक भोग विलास के कारण रोमन समाज में अनैतिक्ता, अधर्म तथा भ्रष्टाचार का विकास हो गया था। खेल के मैदान में कुश्ती लड़ कर धन उपार्जन करना गौरव की बात मानी जाने लगी थी। रक्तपात से अपना आमोद प्रमोद करना श्रेष्ठ माना जाने लगा था। फलस्वरूप खेल के मैदान में ग्लेडियेटर (दास सैनिकों को) को लड़ाना उस समय तक जब तक कि एक की मृत्यु न हो जाय, साधारण बात थी। कभी कभी इन दासों को हिंसक जानवरों से भी लड़ाया जाता था।

सामाजिक जीवन साम्राज्यवादी काल में

परिवार की नैतिक भावना नष्ट हो चुकी थी। विवाह को दो दिलों का मेल व स्त्री पुरुष का अस्थायी सम्बन्ध माना जाने लगा। विवाह की धार्मिक प्रणाली का लोप हो गया। समाज में वेश्यावृत्ति का विकास हुआ। कोई भी पुरुष किसी भी स्त्री से विवाह कर सकता था। कितने ही विवाह कर सकता था। स्त्री भी इस पुण्य कार्य में पुरुष से पीछे नहीं रही थी। वह भी चाहे जितने पति बना सकती थी, विवाह कर सकती थी। तलाक देना तो दैनिक जीवनचर्या का सामान्य अंग बन गया था। स्त्री पुरुष के मध्य का पवित्र बंधन टूट चुका था। आत्म हत्याएं तो होती ही रहती थीं क्योंकि वह अपराध नहीं माना जाता था।

आगस्टस ने अपनी शक्ति भर प्राचीन समाज को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया परन्तु विशेष सफलता नहीं मिली। उसने नियमों द्वारा शादीशुदा व्यक्तियों तथा परिवारों को विशेष सुविधाएं देने की घोषणा की। प्रणय गीतों के कवि ओविड को देश निर्वासन की सजा दी। यहां तक कि अपनी पुत्री को जो कि अत्यधिक प्रेम व्यापार के लिए सुप्रसिद्ध हो रही थी देश निकाले की सजा दी। परन्तु उसके प्रयत्न असफल रहे। प्राचीन समाज महानिद्रा में मग्न था।

धार्मिक विचार प्रारंभिक काल में

प्रजातांत्रिक रोम विविध देवताओं की उपासना करता था। धार्मिक उपासना के केन्द्र घर और चरागाह थे। प्रत्येक घर का पृथक् पृथक् देवता होता था। 'लारेस' पूर्वजों की आत्माएं थीं। 'पिनेट्स' भंडार का देवता था। 'वेस्ता' अग्नि का देवता, जुपिटर आकाश का सर्वोच्च देवता था और रोम की सुरक्षा करता था 'जुनो' स्त्रियों की देवी थी। 'मारस' युद्ध का देवता था। इसके अतिरिक्त प्रत्येक नगर, ग्राम और कुटुम्ब के अलग अलग देवता थे। रोमन लोगों ने यूनानी देवताओं का नाम संस्करण कर अपना लिया था जैसे यूनानी देवता 'जीयस' का रूपान्तर 'जुपिटर' तथा हरमीज का मरकरी आदि।

रोमन लोग अपने देवताओं को अर्घ्य चढ़ाते थे। कहीं-कहीं बलि भी दी जाती थी। देवताओं की पूजा का कार्य पुरोहित करता था पुरोहित वंशानुगत नहीं होते थे बल्कि निर्वाचित किये जाते थे। पुरोहितों में 'पोन्टिफ' का पद सब से महत्वपूर्ण होता था। वह राजधर्म की देखभाल करता था। रोमन लोगों में आध्या-

मिक प्रेरणा का अभाव था। वे लोग अनेक उत्सव मनाते थे। दिसम्बर में सैटर्न (कृषि देवता) के सम्मान में सात दिन तक उत्सव मनाया जाता था। यह रोमन लोगों का सब से प्रमुख एवं महत्वपूर्ण धार्मिक उत्सव होता था। रोमन लोगों पर दार्शनिक विचारधारा का बहुत कम प्रभाव पड़ा था। कालान्तर में इपिक्यूरिज दार्शनिक की विचारधारा ने उन्हें प्रभावित किया परन्तु रोमन लोगों ने इस विचारधारा का गलत अर्थ लगाया। उन्होंने इन्द्रिय सुखों को ही सर्वस्व माना।

धार्मिक विचार आगस्टस युग में

आगस्टस के युग में रोमन देवता यूनानी धर्मसाहित्य के देवताओं की भांति भुला दिये गये थे। क्योंकि जनता का विश्वास कम हो गया था। जनता अपने लारस, पिनेटस, जुपिटर तथा मारस को विस्मृत कर चुकी थी। विशेषकर धनिक, पुरोहित तथा सामन्त वर्ग यूनानी दर्शन की तरफ अर्थात् सांसारिक भोग-विलास की तरफ अग्रसर हो चुका था। आगस्टस ने प्राचीन धर्म को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया परन्तु विशेष सफलता नहीं मिली। कालान्तर में इटली में क्रमशः जुड़ावाद, मिश्रावाद तथा ईसाई धर्म का प्रवेश हुआ। ईसामसीह का जन्म आगस्टस युग में ही हुआ। था। परन्तु ईसाई धर्म का प्रभाव २५० ई० तक नहीं पड़ा। ईसाई लोगों को आग में जलाया गया। उन्हें घोर यातनाएं दी गईं। अन्त में सम्राट् कोन्स्टेन-टीन के समय में ईसाई धर्म की उन्नति हुई। वह राजधर्म बन गया।

प्रारंभिक प्रजातांत्रिक रोम के निवासी शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र में बहुत पीछे थे। बहुत कम लोग लिख सकते थे। यूट्रास्कन जाति के सम्पर्क से रोम वालों ने बहुत कुछ सीखा। वर्णमाला का ज्ञान जोकि यूनानी वर्णमाला के आधार पर था उन्होंने यूट्रास्कन जाति से ही सीखा था। प्रारंभ में शिक्षक साधारण दास या साधारण व्यक्ति होता था। प्रत्येक परिवार के साथ एक शिक्षक होता था जो उस परिवार तथा उसके पड़ौसी परिवार के बच्चों को पढ़ाता था।

शिक्षा तथा साहित्य प्रजातांत्रिक काल में

उस युग में व्याकरण, इतिहास, अंकगणित तथा नैतिक शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाता था। अनुशासन का महत्व भी सिखलाया जाता था। वे लोग कलम और स्याही का प्रयोग करते थे। परन्तु उस समय तक कागज की खोज नहीं हो पाई थी। वे कोमल पत्तों, पेड़ की छालों तथा मोम लगे लकड़ी के टुकड़ों पर लिखा करते थे।

साहित्य के क्षेत्र में भी रोमन लोगों ने यूनानी साहित्य का अनुकरण किया। होमर की 'ओडेसी' तथा 'इलियड' का लेटिन भाषा में अनुवाद किया गया। कैटेलस लेटिन भाषा के गीतों का रचयिता था। रोम ने नाटकों के क्षेत्र में सुखान्त नाटकों को अधिक महत्व दिया। टेरेन्स तथा प्लेटस सफल नाटककार थे। सिसरो एक प्रभावशाली वक्ता तथा गद्य का सुप्रसिद्ध लेखक था। उसे लेटिन का पिता भी कहा जाता है। जूलियस सीजर ने भी 'गैलिक युद्ध' नामक एक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा। इस प्रकार हम देखते हैं कि रोम की संस्कृति की आत्मा यूनानी और शरीर रोमन था।

शिक्षा तथा साहित्य साम्राज्यवादी काल में

साम्राज्यवादी युग में बालक को सात वर्ष की अवस्था के उपरान्त शिक्षा प्राप्त करने के लिए विद्यालय भेज दिया जाता था। प्रारम्भ में उसे मोम लगे लकड़ी की स्लेट पर लिखना पढ़ना सिखाया जाता था। उस समय की शिक्षा प्रणाली पर यूनानी शैली का प्रभाव था। अतः रोमन के साथ साथ लेटिन भाषा का अध्ययन भी करना पड़ता था। प्रारम्भिक श्रेणी को 'ग्रामर स्कूल' (व्याकरण पाठशाला) तथा उच्च श्रेणी को 'रेहटोरिक स्कूल' कहते थे। बच्चों को कहावतें तथा नियमों की धाराएं कंठस्थ करनी पड़ती थीं। भाषण कला, अध्ययन का प्रमुख विषय थी। उच्च वर्ग में स्त्री शिक्षा का प्रचलन भी था।

साहित्य के क्षेत्र में आगस्टस् का युग 'स्वर्ण युग' था। उस युग का सर्व प्रमुख कवि 'वरजिल' था। उसने होमर के ग्रन्थ 'ओडेसी' के आधार पर 'एनीड'

महाकाव्य लिखा'। उसकी दूसरी प्रमुख रचना 'जारजीज' थी। वरजिल के अतिरिक्त 'होरेस' भी एक प्रसिद्ध कवि था। उसने अनेकों कविताएं लिखीं। उसकी प्रमुख रचना 'ओडस' थी। ओवड ने प्रणय की कविताओं से काफी सुयश कमाया। लिवि एक सरल गद्य लेखक था। उसने गणतांत्रिक रोम का इतिहास लिखा।

रोमन निवासी सभ्यता के व्यावहारिक रूप के उपासक थे। अतः विज्ञान के क्षेत्र में विशेष उन्नति नहीं कर पाये परन्तु यूनानियों से ग्रहण की गई विज्ञान की विद्या को कायम रखा तथा यथासाध्य उन्नति करने का प्रयत्न किया। उस युग का सबसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक एल्डर प्लिनी हुआ जिसने "प्राकृतिक इतिहास" लिखा। सेनेका ने अपने ग्रन्थों में ज्योतिष, भूगर्भ विज्ञान तथा खगोल विद्या के सिद्धान्तों का विश्लेषण किया। यह एक आश्चर्य की बात थी कि चिकित्सा क्षेत्र में विशेष उन्नति न होते हुए भी रोमन लोगों ने अनेक चिकित्सालयों का निर्माण करवाया। गेलेन उस युग का सर्व सिद्ध चिकित्सक गिना जाता था। टोलेमी ने यूनानियों के भौगोलिक मानचित्र का सुधार करके दूसरा मानचित्र बनाया। इसी प्रकार एक अन्य विद्वान एग्रिप ने रोमन साम्राज्य की प्रदक्षिणा करके एक नवीन मानचित्र बनाया।

विज्ञान की प्रगति

प्रारंभिक काल में रोमन लोग कला के क्षेत्र में विशेष उन्नति नहीं कर सके थे। उन्होंने यूनान से बहुत कुछ सीखा। रोम ने ज्वालामुखी से निकली हुई मिट्टी, पत्थर, और ईंटों के सहयोग से निर्मित 'कंक्रीट' का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। इस नूतन प्रयोग से भवनों की भव्यता तथा सौन्दर्य निखर उठा। तथा इसकी सहायता से निराधार गुम्बदों तथा मेहराबों को बनाया जाता था। रोमन शिल्पकारों ने यूनानी, यूट्रास्कन तथा भूमध्यसागरीय कला के मूलतत्वों का समन्वय करके एक नवीन शैली का आविष्कार किया। इस नवीन रोमन शैली ने सम्पूर्ण यूरोप को प्रभावित किया। रोम की वास्तु कला तथा स्थापत्य कला की झलक मंदिरों, विजय तोरणों तथा नाट्य भवनों में प्रत्यक्ष परिलक्षित है। उस युग का सर्व सुन्दर मन्दिर पेन्थीयन मन्दिर था जिसमें नूतन

कला का विकास

रोमनशैली का कलात्मक चमत्कार देखने योग्य था। इसी प्रकार गई प्रसिद्ध इमारत "सरकस मैक्सिमस" भी अपने ढंग की निराली थी। इस भव्य एवं विशाल भवन में ढाई लाख व्यक्ति बैठ सकते थे। कोलोसियम नामक भवन तो
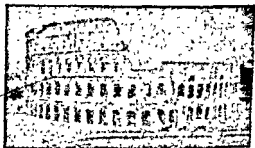
कोलोसियम रोम की महानता का चिन्ह

कलात्मक गुणों के कारण विश्व विख्यात हो गया था। आज भी इन भव्य भवनों के अवशेष उनकी स्मृति को ताजा कर रहे हैं।

यूनानी कला ने रोमन कला को बहुत ही प्रभावित किया था परन्तु मूर्ति-कला के क्षेत्र में रोमन लोगों ने यूनान के सौंदर्य को ग्रहण न करके वास्तविक भाव मुद्रा को अंकित करने का प्रयत्न किया। मार्क्स औरेलियस की मूर्ति अत्यन्त ही उच्च कोटि की है।

रोमन चित्रकला ऐतिहासिक तथा राजनीतिक विषयों तक ही सीमित न रह कर प्रकृति के सौन्दर्य-क्षेत्र में भी स्वच्छन्द विचरण करती थी। पाम्पी नगर के भग्नावशेष से प्राप्त चित्रकला के नमूने रोमन चित्रकला की उत्तमता को प्रमाणित करते हैं। रोमन लोग प्राकृतिक चित्रण में यूनानियों से आगे बढ़े हुए थे।

संगीत के क्षेत्र में रोमन लोगों ने यूनानियों का अनुकरण किया। बाँसुरी और लायर नामक तार वाद्य का विशेष प्रचलन था। संगीत के क्षेत्र में रोमन संगीतज्ञ अपनी मौलिकता को कायम रखने से असफल हुए।

रोम ने राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, कला, शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्र में अद्भुत उन्नति की थी और इसी कारण रोमन सभ्यता रमणीय गौरव का युग मानी जाती है।

प्रारम्भिक प्रजातान्त्रिक रोम के अधिकांश निवासी किसान थे और कृषि का कार्य करते थे। अल्प व्यापार भी होता था। उस युग में सिक्कों का प्रचलन नहीं हुआ था और रोमन लोग पशुधन तथा ताँबे के द्वारा क्रयविक्रय करते थे।

आर्थिक स्थिति

कृषि के साथ गृह-उद्योग द्वारा कृषक अपनी आवश्यकताओं को पूरा करता था। उनका धातुज्ञान चांदी, लोहा, तांबा, जस्ता और टिन तक सीमित था। प्रशासन का समस्त खानों पर एकाधिकार था और उच्च वर्ग पेट्रीशियन का अधिकांश उपजाऊ भूमि पर (जिसे वे दासों की सहायता से जीतते थे) प्रारम्भ में व्यापार करना हीन समझा जाता था और अधिकांश व्यापार यूनानियों के हाथों में था। ३३८ ई० पू० में तांबे के सिक्के प्रचलित किये गये। २१७ ई० पू० में सोने का सिक्का जारी किया गया। बैंकों की स्थापना हुई। सड़कों का निर्माण किया गया। यातायात के अन्य साधनों में सुधार किया गया।

प्यूनिक युद्धों ने रोम की आर्थिक स्थिति पर गहरा प्रभाव डाला। उन किसानों की (जो युद्धों में लड़ने गये थे) भूमि पर भूमिपतियों ने अधिकार कर लिया। धनिक व्यापारियों ने भारी मुनाफा कमाया। निर्धन लोगों की स्थिति दयनीय हो गई। इस आर्थिक समस्या का समाधान करने के लिये टाइबेरियस ग्रेकस ने प्रस्ताव रखा कि सम्पूर्ण भूमि को किसानों में बांट दिया जाय। प्रशासन

ग्रेकस बन्धुओं के सुधार कार्य

कृषि की उन्नति हेतु औजार खरीदे परन्तु सीनेट ने उसके प्रस्तावों को ठुकरा दिया और कुछ समय बाद यह कत्ल कर दिया गया। उसकी मृत्यु के नौ साल बाद उसके भाई गैयस ग्रेकस ने पुनः कृषि सुधार के प्रस्तावों को रखा। उसने रोमन नागरिकों को सस्ती कीमत पर अन्न दिये जाने की व्यवस्था की। इसका बहुत बुरा परिणाम हुआ। अन्त में गैयस ग्रेकस ने आत्महत्या कर ली। सुधार कार्य ठप्प पड़ गये।

आगस्टस् का समय रोमन व्यापार वाणिज्य का स्वर्ण युग था। आर्थिक स्थिति समृद्ध हो चुकी थी। व्यापार मार्गों द्वारा देश विदेश में रोम की वस्तुएं आने जाने लगीं। उद्योग धन्धों का विकास हुआ। श्रमिक लोग अपनी श्रेणियों में संगठित होने लगे। शिल्पकारों को अच्छा पारिश्रमिक मिलने लगा। यातायात के साधनों को और अधिक उन्नत किया गया। रोम शीघ्र ही सम्पूर्ण विश्व का प्रमुख औद्योगिक केन्द्र बन गया।

कानून व्यवस्था का संगठन

रोमन संस्कृति की महत्वपूर्ण देन उसकी विकसित कानून व्यवस्था है। विलड्ंरा का कथन है "जिस प्रकार यूनान ने स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्र और दर्शन तथा व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य के सिद्धांत स्थापित किये उसी प्रकार रोम ने प्रशासन के सिद्धान्त और कानून व्यवस्था का उपहार दिया।" 'ट्वलेप टेबिल्स' रोमन कानून का अविकसित तथा प्रारम्भिक रूप था। प्रारम्भिक कानून लिखित रूप में नहीं थे। सिसरो ने कानूनों को कण्ठस्थ करने की प्रथा चलाई। यद्यपि रोमन कानून सभी के लिए समान था परन्तु उच्च वर्ग उसका अभिप्राय समय समय पर परिवर्तित करते रहते थे। सम्राट जस्टीनियन ने कानून व्यवस्था को निश्चित एवं संगठित रूप दिया। उसने एक आयोग नियुक्त किया था। जिसने सात वर्षों के कठिन परिश्रम से विधि संग्रह प्रस्तुत किया। यह विधि संग्रह इतिहास में 'जस्टीनियन विधि-संग्रह' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस विधि संग्रह के कुछ कानून इस प्रकार के थे—"कट्टर ईसाई धर्म को वैधानिक रूप दिया जाना, दास और नागरिकों का समानाधिकार देना, स्त्रियों को अधिक अधिकार, उत्तराधिकार के नियम, कोई भी व्यक्ति बिना मजिस्ट्रेट की आज्ञा के बन्द नहीं रखा जा सकता था।"

सिडग्विक—"यदि यूनान ने एक परिष्कृत संस्कृति को जन्म दिया तो रोम ने उसकी रक्षा की और उसे दूर दूर तक फैलाया। यूनानियों के आदर्शवाद को उन्होंने व्यावहारिक रूप प्रदान किया और अपनी अद्वितीय व्यावहारिक प्रतिभा की सहायता से विश्व को एक विकसित न्याय शास्त्र प्रदान किया।"
(सिनहा)

रोम की सभ्यता और संस्कृति ने आधुनिक संसार को बहुत कुछ प्रदान किया है और बहुत कुछ अशों में आधुनिक सभ्यता और संस्कृति की आधार-शिला रोमन सभ्यता के मौलिक तत्व हैं। आज हम प्रशासन की शक्तियों में जो पृथक्कीकरण देखते हैं। अर्थात कार्यपालिका, विधान सभा तथा न्याय पालिका उसका सर्वप्रथम प्रयोग रोम ने ही किया था। रोम ने ही लिखित विधान की आवश्यकता को स्पष्ट किया था। रोम ने सर्व प्रथम दास तथा नागरिकों को समानाधिकार दिया। यद्यपि रोम ने इन सिद्धान्तों का मूल तत्व भूमध्यसागरीय सभ्यताओं से ग्रहण किया था परन्तु उसने व्यावहारिक क्षेत्र में इन सिद्धान्तों की मौलिक प्रणालियों को विकसित किया। रोमन लोगों ने शिक्षा के क्षेत्र में भी कोई विशेष प्रगति नहीं की थी परन्तु उसने शिक्षा पर राजकीय नियन्त्रण का प्रयोग हमारे सामने रखा। रोम ने सर्वप्रथम कानून व्यवस्था का संगठन किया। सम्पूर्ण देश के लिए एक समान विधि-संग्रह का निर्माण किया। विधि-संग्रह को लिखित रूप दिया। प्रजातन्त्र की प्रमुख संस्थाएं निम्न सदन (असेम्बली या लोक सभा) और उच्च सदन (सीनेट या राज्य सभा) का प्रयोग किया। बहुमत प्रणाली का प्रयोग किया। मानव और मानव के मध्य-बन्धुत्व की भावना को विकसित किया। पूर्व और पश्चिम की विचारधाराओं का समन्वय किया तथा एक दूसरे को अधिक समीप लाने का प्रयत्न किया। यह थी रोम की सभ्यता और संस्कृति की देन, जिसको अपना कर आधुनिक युग आगे बढ़ रहा है।

पंचम अध्याय

प्राचीन सभ्यताओं पर एक दृष्टि

गत अध्यायों में हमने प्राचीन प्रस्तर युग के शिकारी जीवन से सभ्य मानव की कलाकृतियों का अध्ययन किया है। इस अध्ययन से हमने प्राचीन प्रस्तर युग की कठिनाइयां नूतन प्रस्तर युग के कृषि प्रधान ग्रामों, पशु पालन व्यवस्था तथा अन्य आविष्कारों का कांस्य और लोह युग के प्रगतिशील राज्यों और साम्राज्यों का उत्थान तथा पतन और उसके बाद महान संस्कृतियों का अभ्युदय, प्रसार और अवसान का अवलोकन किया है। हमारे अध्ययन में विश्व के सभी लोगों का समस्त सभ्यताओं का समावेश नहीं किया गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इस प्रकार की सभ्यताओं का प्रभाव नगण्य था, उनमें मानव सभ्यता को उन्नतिशील बनाने की शक्ति न थी।

महान प्राचीन सभ्यतायें

निकट पूर्व में, मिश्र, बेबीलोन और असीरिया, क्रीट और एजियन, सीरिया और पर्शिया की महान सभ्यतायें, सुदूरपूर्व में भारत और चीन की उच्च सभ्यता, सुदूर पश्चिम में मय सभ्यता, भूमध्य सागरीय संसार की रोम, कार्थेज और यूनान की महान् सभ्यतायें सभी प्राचीन इतिहास के स्वर्ण स्थान पर खड़ी हैं, क्योंकि अधिकांश स्थलों पर उन्होंने न केवल राजनीतिक साम्राज्यों को जन्म दिया बल्कि उससे भी अधिक स्थायी और महत्वपूर्ण परिणामों—उद्योग, व्यापार, कला, साहित्य, धर्म और दर्शन को जन्म दिया है।

प्राचीन सभ्यताओं की कमजोरियाँ

दास प्रथा

कला साहित्य धर्म और दर्शन में प्राचीन सभ्यताओं की की उपलब्धियां सर्वोच्च थीं परन्तु उनका निर्माण असंतुलित आर्थिक स्थिति और वर्गाभिन्न सामाजिक प्रणाली से हुआ था। साधारण जनता से अधिक से अधिक काम लिया जाता था और कम से कम सुविधायें प्रदान की जाती थीं। चूंकि उत्पादन

हाथ के परिश्रम से किया जाता था और कृषि के लिये अत्यधिक परिश्रम की आवश्यता पड़ती थी, इसलिये समस्त प्राचीन सभ्यताओं के अधिकांश व्यक्ति अपने सम्पूर्ण समय को अपनी जीविकार्जन में और उच्च वर्ग की विलासिता की सामग्री को जुटाने में व्यतीत करते। समूहों का अस्तित्व वर्गों के लाभ के लिये था। किसी न किसी रूप में दासत्व और कृषक दासता प्रत्येक प्राचीन सभ्यता व समाज की आधारशिला थी यह सबसे बड़ी कमजोरी थी।

उच्च वर्ग में भ्रष्टाचार

अत्यधिक गुलामों पर अधिकार रखने तथा कृषक दासों को नियंत्रण में रखने से भी मालिकों और भूस्वामियों को संतोष प्राप्त नहीं होता था। निर्धनों और साधारण जनों से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से धन बटोरने के उपरान्त भी धनिक लोगों में पवित्र कार्य करने की प्रवृत्ति नहीं आई थी। बार बार समाज का शोषण करते हुये शासक वर्ग भोग-विलास, भ्रष्टाचार, फिजूल खर्ची, अनैतिकता आदि दुर्गुणों का शिकार होता था। यूनान और रोम के बारे में यह कथन शत प्रतिशत सही था। जब यूनान और रोम क्रम से संसार के अगुआ बने थे और संसार की दौलत एथेन्स और रोम के बाजारों की तरफ खिंची आ रही थी तब वे लोग झूठी शान शौकत और दिखावे के चक्कर में उलझ गये। वे लोग द्रव्य की चमक से अन्धे बन गये और उसका सही उपयोग करने का मार्ग भूल बैठे। उच्च वर्ग की इस विलासिता और भ्रष्टाचार के कारण ही प्राचीन सभ्यताओं का एक के बाद दूसरी का पतन हुआ था।

साम्राज्यवादी सरकार की असफलता

प्राचीन साम्राज्यों की अन्य निर्बलता राजनीतिक थी। स्वेच्छाचारी निरंकुश और एक व्यक्ति से प्रभावित सरकार पूर्ण रूप से कभी सफल व स्थायी नहीं हो सकती। आखिर उसका अस्तित्व केवल एक व्यक्ति पर अवलंबित होता है। प्राचीन साम्राज्य इसी प्रकार के स्वेच्छाचारी निरंकुश राज्य थे। एक व्यक्ति, प्रधान सरकार उस समय अच्छी हो सकती है जब कि यह व्यक्ति अशोक महान, आगस्टस या कन्स्टेंटाइन की भाँति विद्वान, उदार तथा समझदार हो। परन्तु अक्सर ऐसा नहीं होता था और अयोग्य व अत्याचारी व्यक्ति के द्वारा भयंकर परिणाम निकलते थे।

नैतिक अधिकारों एवं स्थानीय समितियों के अभाव में एक व्यक्ति द्वारा निर्देशित प्रशासन व्यवस्था से परिपूर्ण होता था क्योंकि इस व्यक्ति द्वारा नियुक्त अधिकारी की इच्छा ही कानून होती थी। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के शासन में षड़यन्त्रों की कमी नहीं होती। प्रान्तीय सूबेदार, सेनापति तथा राजदरबारी इस एक व्यक्ति की कमजोरी की भनक पाते ही सत्ता हस्तगत करने को अधीर हो उठते और सम्पूर्ण साम्राज्य षड़यन्त्रों का अखाड़ा बन जाता था। इतिहास में हम देख चुके हैं कि एक व्यक्ति प्रधान निरंकुश शासन ने इस समस्या का (कि प्रशासन के लिये सुयोग्य व्यक्ति का, एक व्यक्ति का कैसे निर्वाचन किया जाय) हल करने में असफल ही रहा है।

एथेन्स और प्रारम्भिक रोम में प्रजातान्त्रिक पद्धति को विकसित करने के प्रयत्न विदेशी युद्धों और साम्राज्य के प्रसार के प्रयत्न के कारण असफल साबित हुए। ज्यों २ नवीन प्रांत विजित हुए, सर्व प्रचलित अधिकार समाप्त होते गये और नैतिक शक्ति का प्रभाव घटने लगा। इस प्रकार की स्थिति में प्रजातन्त्र का जीवित रहना असम्भव हो गया।

विदेशी शत्रु

प्रत्येक प्राचीन राष्ट्र जिनके पास उपजाऊ भूमि थी। समृद्धिशाली नगर थे, बाह्य देशों के लिए आकर्षण का एक प्रमुख कारण बन गया और शत्रुओं ने अवसर मिलते ही उसे हथियाने का प्रयत्न किया। इस वस्तुस्थिति से बहुत से महान् साम्राज्यों के पतन के कारणों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है, प्राचीन युग में हर समय ऐसे ही बर्बर व असभ्य लोगों—हूण, जर्मन, असीरियन का उल्लेख मिलता है जो अपने पड़ोसी मालदार व सभ्य राष्ट्र को हड़पने को तैयार रहते थे। परन्तु एक बात का ध्यान रखना चाहिये कि आक्रमणकारियों की भी यही स्थिति होती गई जब वे स्वयं सभ्य व समृद्ध बन गये।

यह एक आश्चर्य की बात है कि, प्राचीन राष्ट्रों के निवासी धीरे धीरे होते गये और उनमें स्वयं को सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति व साहस का भी गया। मिश्र क्रम से असीरियन, पर्शियन, मेसिडोनियन, रोमन,

मानवता व देश प्रेम का विघटन

अरब और तुर्क लोगों के सामने नतमस्तक होता गया। इसी प्रकार असीरियन अपने से कम सभ्य पर्शिया के आगे झुका। पर्शिया ने सिकन्दर के आगे घुटने टेके। यूनानियों ने रोमन लोगों से हार खाई। रोमन लोग जर्मनों से पराजित हुए। चीन मंगोल लोगों से पराजित हुआ और भारत को अरब व तुर्कों से अपमानित होना पड़ा।

ऐसा प्रतीत होता है कि द्रव्य और विलासिता ने उच्च वर्ग को खोखला बना दिया जिसके परिणाम स्वरूप सरकार में भ्रष्टाचार बढ़ा, षड्यन्त्रों की संख्या बढ़ी और शासक जाति में योग्यता तथा साहस का अभाव हो गया। दूसरी तरफ निम्न वर्ग जो कि कठिन परिश्रम से अपनी जीविकार्जन करता था, उच्च वर्ग के भोग-विलास की सामग्री जुटाता था। हर प्रकार के अधिकारों से वंचित था। अतः उसने संकट के समय अपने मालिकों को बचाने में विशेष रुचि नहीं दिखलाई। रोम साम्राज्य के पतन में निम्न वर्ग का प्रत्यक्ष हाथ था। उसने आक्रमणकारियों का स्वागत किया था ताकि रोमन शासन के अत्याचारों से मुक्ति मिले। यदि मालिकों ने, शासकों ने मानवता को तिलांजलि दे दी थी और उनके गुलामों ने, कृषकदासों ने स्वामिभक्ति और देश प्रेम का परित्याग कर दिया। यही साम्राज्यों के पतन का कारण बना।

नारी की अवनत स्थिति

जिन तत्वों के कारण प्राचीन समाज अवनति की तरफ अग्रसर हुआ था उसमें एक प्रमुख तत्व नारी की स्थिति व स्थान भी था। यद्यपि प्राचीन सभ्यताओं में कुछ ऐसी स्त्रियों का उल्लेख है जिन्होंने अपने पुत्रों और पतियों को प्रेरणा दी। कभी कभी देश की बागडोर भी अपने हाथ में ली। बहुत से घरों में वे माता तथा स्त्री के रूप में आदर व सम्मान की अधिकारिणी बनी परन्तु फिर भी सामान्य तौर पर प्राचीन युग में भारत को छोड़ कर अन्य देशों में नारी की स्थिति अति दयनीय थी; गिरी हुई थी।

पराजित लोगों की स्त्रियां बाजारों में गुलामों के रूप में बेची जाती थीं। मिश्र, यूनान और सम्पूर्ण एशिया में धनिक तथा शासक वर्ग के लोग असंख्य स्त्रियां रखते थे। इन्हें रनिवास या जनानखाना में बन्द रखा जाता था। स्वच्छन्द

अभ्यास के लिये प्रश्न

(१) राज्य के निर्माण और विकास में कौन से तत्व सहायक सिद्ध हुए ? विस्तार से समझाइये !

(२) राज्य की उत्पत्ति पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिए !

(३) संसार की प्राचीनतम सभ्यताओं का जन्म और विकास कहाँ २ और कब-कब हुआ ? इन प्रदेशों की भौगोलिक स्थिति का वर्णन करो।

(४) "मिश्र नील नदी का वरदान है।" इस कथन की व्याख्या करो।

(५) प्राचीन मिश्रियों के रहन—सहन, धर्म, विद्या, कला के बारे में क्या जानते हो ?

(६) "मैसोपोटेमिया एक जलाशय के समान है, जिस में भिन्न २ मानव जातियों की धाराओं का संगम हुआ है।"—(बार्न्स) इस कथन की व्याख्या कीजिए।

(७) दजला और फरात की घाटी में कौन २ सी सभ्यताएं विकसित हुईं। उनमें कौन २ सी समानताएं तथा असमानताएं विद्यमान थीं। विस्तार से समझाइये !

(८) सुमेरिया की सभ्यता की क्या विशेषताएं थीं ! उनकी धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था का वर्णन करो।

(९) सुमेर और मिश्र की लेखन कला पर एक निबन्ध लिखिए।

(१०) बेबीलोनिया की सभ्यता का वर्णन कीजिए। इस सभ्यता पर सुमेरियन सभ्यता का क्या प्रभाव पड़ा ?

(११) ज्ञान, विज्ञान तथा कला के क्षेत्र में बेबीलोन सभ्यता की क्या देन है !

(१२) मिश्र, सुमेर और बेबीलोन सभ्यताओं के पारिवारिक जीवन और स्त्रियों की दशा की तुलनात्मक समीक्षा कीजिए।

(१३) "यद्यपि ईरान की विश्व सभ्यता की देन उतनी महत्वपूर्ण नहीं थी जितनी की पश्चिमी एशिया के अन्य देशों की तथापि विशिष्ट क्षेत्र में ईरान की देन महत्वपूर्ण थी।" इस कथन के आधार पर ईरान की सभ्यता का वर्णन कीजिये।

(१४) प्राचीन ईरान के साहित्य, कला-कौशल और आर्थिक जीवन का संक्षिप्त विवरण लिखो।

(१५) प्राचीन ईरानियों के रहन सहन, धर्म तथा प्रशासन के बारे में क्या जानते हो?

(१६) यूनान की भौगोलिक स्थिति का वहां के प्राचीन जीवन और राज्य संगठन पर क्या प्रभाव पड़ा? विस्तार से समझाइये।

(१७) साहित्य, कला तथा विज्ञान के क्षेत्र में यूनानियों का क्या दृष्टिकोण था और इनमें वे कहां तक सफल हुए?

(१८) स्पार्टा और एथेन्स की सभ्यता में क्या अन्तर था? इन राज्यों का पतन कैसे हुआ?

(१९) पेरीक्लीज के युग का यूनान की सभ्यता में क्या स्थान है?

(२०) पेरीक्लीज के उपरान्त यूनान की सभ्यता ने क्या उन्नति की?

(२१) "यूनानी संस्कृति यूरोपीय संस्कृति की आधारशिला है।" इसकी व्याख्या कीजिए।

(२२) प्रजातांत्रिक रोम की सभ्यता का वर्णन करो। साम्राज्यवादी युग की सभ्यता और प्रजातांत्रिक सभ्यता में क्या अन्तर था?

(२३) "आगस्टस युग रोम का स्वर्ण-युग था।" इस कथन का स्पष्टीकरण कीजिए।

(२४) रोम की सभ्यता के मूल तत्वों का वर्णन कीजिए। यूरोप की वर्तमान सभ्यता पर उसका क्या प्रभाव पड़ा?

(२५) चीन की प्राचीन सभ्यता का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

(२६) कन्फ्यूशियस कौन था? उसकी शिक्षाएं समझा कर लिखो। लाओत्से की शिक्षाएं उससे कहां तक भिन्न थीं?

(२७) संसार को चीनी सभ्यता की क्या देन है?

(२८) प्राचीन अमेरिका की सभ्यताओं के बारे आप क्या जानते हैं? विस्तार से समझाइये।

(२९) प्राचीन युग सभ्यताओं की विशेषताओं का वर्णन कीजिए। वे एक दूसरे से कहां तक प्रभावित थीं।

छटा अध्याय

फिलिस्तीन में महान् धर्मों का उद्भव

धर्म की उत्पत्ति कब और कैसे हुई ? इस समस्या का समाधान आज तक नहीं हो पाया है। आदि मानव की उत्पत्ति के साथ ही साथ हमें धर्म की चर्चा सुनाई देती है और सभ्यता के विकास के साथ ही धर्म का विकास भी स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। धर्म की परिभाषा दार्शनिकों ने भिन्न भिन्न युगों में भिन्न भिन्न प्रकार से की है यथा-मोक्ष के साधक कर्म ही धर्म हैं; विहित कर्मों का पालन और निषिद्ध कर्मों का त्याग धर्म का सार है। यह सब तो ठीक है परन्तु आदि मानव के हृदय में धर्म या धर्म की भावना का उद्भव कैसे हुआ होगा ? अधिकांश विद्वानों की धारणा है कि प्रारंभिक अवस्था में आकाश पृथ्वी, सूर्य-चन्द्र, वर्षा पवन, भूचाल आंधी-तूफान, बिजली आदि मानव के लिए आश्चर्य और रहस्य के कारण थे। उसे इनसे आराम भी मिलता, दुख भी होता था। उसने इस रहस्य को जानने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु सफल न हो सका। लाचार होकर उसने इन तत्वों के पीछे किसी अलौकिक दिव्य शक्ति की कल्पना की। ऐसी शक्ति या शक्तियां जो इनके कार्यों को सचालित करती थीं। अतः इन प्राकृतिक बाधाओं से सुरक्षित रहने के लिए मानव ने इन शक्तियों की पूजा करनी प्रारम्भ कर दी ताकि इन शक्तियों के प्रतिनिधि तत्व उसे हानि न पहुँचायें। मानव का इन अलौकिक शक्तियों में विश्वास ही धर्म की मूल जड़ थी।

आदि धर्म का उद्भव

कुछ लोगों का विश्वास है कि धर्म के उद्भव में चार प्रमुख बातों स्त्री-पुरुष के जननेंद्रिय, रुधिर, मृतक-व्यक्तियों के स्वप्न तथा पूर्वज अर्थात् परिवार के मुखिया का आतंक का बहुत बड़ा सहयोग है। आदि मानव ने देखा कि स्त्री के गर्भ से बच्चा उत्पन्न होता है। स्त्री उसे अपने स्तन से दूध पिला कर बड़ा करती है। अपनी संतान के लिए अपना प्राण तक न्यौछावर कर देती है। फिर

उसने देखा कि शरीर से रुधिर के निकलते ही मनुष्य बेहोश हो जाता है और कभी कभी मर भी जाता है। सोते समय उसे मृतक सम्बन्धियों के स्वप्न आने लगे और घर में परिवार के मुखियों का आतंक भयभीत करने लगा। इस प्रकार के वातावरण ने उसे भयभीत कर दिया और साथ ही साथ उसमें सम्मान तथा श्रद्धा की भावना भी उत्पन्न हुई। फलस्वरूप उसमें स्त्री-पुरुष के जननेन्द्रिय के कारण मातृ-देवी, शिव-लिंग, रुधिर-बलिदान, मृत व्यक्तियों के कारण भूत-प्रेत जादू टोना तथा प्राकृतिक संकटों के कारण प्राकृतिक शक्ति उपासना, मुखिया के आतंक के कारण पूर्वज पूजा की आराधना के भाव उत्पन्न हुए। फिर धीरे धीरे स्वर्ग और नरक की कल्पना का भी विकास हुआ। इन सभी प्रारम्भिक विश्वासों ने एक संगठित धार्मिक-पद्धति का रूप धारण किया।

धार्मिक पद्धति के रूप के प्रादुर्भाव के साथ ही साथ काल्पनिक शक्तियों का काल्पनिक रूप भी घड़ लिया गया और इस रूप को मूर्तियों के रूप में रूढ़ कर दिया गया। इन मूर्तियों के लिये मन्दिर बने। इनकी पूजा के लिए विधि-विधान बने और पूजा करने वाले पुरोहितों का भी उद्‌भव हुआ। धीरे धीरे इन अलौकिक शक्तियों की संख्या बढ़ने लगी। इनके साथ ही साथ पुरोहितों ने अपने आपको इन शक्तियों का प्रतिनिधि घोषित किया। फलस्वरूप आदि मानव समाज पर पुरोहित का प्रभुत्व बढ़ने लगा। पुरोहितों ने अपने प्रभुत्व को कायम रखने के लिये नाना प्रकार के आडम्बरों तथा अन्ध विश्वासों, जादू-टोना, मंत्र-तावीज आदि का प्रचार किया।

राज्यों की उत्पत्ति तथा साम्राज्यवादी युग में पुरोहितों की सत्ता प्रशासन के अधिकारी के हाथ में चली गई। धर्म और राजनीति में समन्वय हो गया। फिर क्या था यथा राजा तथा धर्म। मिश्र, सुमेर, बेबीलोन आदि देशों में हमें इसी विकसित धर्म के बहुदेवतावाद, धार्मिक कर्म-काण्ड, बलिप्रथा आदि का चित्र दिखाई पड़ता है। अभी तक इन देशों में एकेश्वर की भावना का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। भारत और चीन में अवश्य एक सर्वशक्तिमान परमात्मा का आभास मिलता है। परन्तु पाश्चात्य देशों में इस भावना को प्रसारित करने का श्रेय तीन धर्मों को है—यहूदी, ईसाइयत तथा इस्लाम। ये तीनों धर्म एशिया के प्रांत फिलिस्तीन की भूमि पर उत्पन्न हुए।

धर्म का मानव जीवन में बहुत महत्व है। जिस प्रकार किसी बीज के विकास के लिए, उर्वर भूमि, जल तथा रक्षा की भित्ति की आवश्यकता होती है उसी प्रकार मानव जीवन को विकसित तथा उन्नत बनाने के लिए धर्म एक दैवी आविष्कार है। धर्म-रहित जीवन मृत्यु का पूर्व रूप है। अपने अधिकारों तथा कर्त्तव्यों को समझना तथा उनका उपभोग और पालन करना ही तो धर्म है। धर्म के बन्धन में रहने वाला अपने माता-पिता, परिवार, ग्राम, नगर तथा देश का सम्मान कर सकता है, धर्म के डर से माता-पिता हमारा पालन करते हैं। परिवार बनता है और इसी परिवार में जिसकी आधार शिला धर्म है, मानव मानव के सम्पर्क में आता है। अनुशासन सीखता है। प्रेम तथा बन्धुत्व एवं सहानुभूति की भावना का विकास होता है। परिवार के कारण ही ग्राम बनता है, जाति बनती है और अन्त में राष्ट्र का निर्माण होता है। धर्म के कारण ही मनुष्य शुभ कर्मों की तरफ ध्यान देता है। प्रारम्भिक मानव सभ्यता का यदि हम सूक्ष्म अध्ययन करें तो प्रत्यक्ष परिलक्षित हो जाता है कि उसके विकास में भी धर्म का सहयोग छिपा पड़ा है। मानव जीवन में धर्म का बहुत महत्व था, है और शायद भविष्य में भी रहेगा।

धर्म का महत्व

[१] यहूदी धर्म की उत्पत्ति

प्राचीन संसार के बहुदेवतावाद, जादू-टोना तथा अन्य विश्वास का खण्डन कर, विश्व को सर्व प्रथम एकेश्वरवाद के ज्ञान से परिचित कराने का श्रेय यहूदी धर्म को है। इस धर्म का उद्भव फिलिस्तीन में हुआ था। इस धर्म को जुडावाद भी कहते हैं।

यहूदी या हिब्रू जाति अरब के मरुस्थल में यायावर जीवन व्यतीत करने वाली सेमेटिक जाति थी। प्रारम्भ में यह जाति मिश्र के अधीन थी। कालान्तर में इस जाति ने अपने सर्व प्रथम महान् नेता अब्राहम के नेतृत्व में मिश्री अधीनता से मुक्ति पा, मिश्र में ही निवास करना प्रारम्भ कर दिया। उस समय मिश्र में हिक्सास जाति का शासन था। यहूदी जाति ने इस जाति के सहयोग से

प्रारम्भिक इतिहास

बहुत उन्नति की परन्तु जब इस जाति का पतन हुआ तो यहूदियों को भी मिश्र छोड़ कर भागना पड़ा। इस समय इनके नेता हजरत मूसा थे। उन्होंने अपने अनुयायियों को जुडिया (दक्षिणी फिलिस्तीन) में अपना राज्य स्थापित करने की प्रेरणा दी। वह स्वयं तो रास्ते में ही मर गये परन्तु उनके अनुयायियों ने अनेक संकटों के उपरान्त लगभग ११५० ई० पू० में जुडिया में अपने राज्य की स्थापना की। इस राज्य की राजधानी जेरुसलेम थी।

राजनीतिक इतिहास

इस समय तक यहूदियों का कोई राजा नहीं होता था। वे बारह दुर्ग कबीलों में विभक्त थे। परन्तु निरन्तर युद्धों का योग्यतापूर्वक सामना करने के लिए उन्होंने १००० ई० पू० सॉल नामक सेनापति को अपना प्रथम राजा नियुक्त किया। दाऊद (David) तथा सुलेमान के शासन काल में यहूदियों ने बहुत उन्नति की। टायर के राजा हिरम से मित्रता स्थापित की गई। सुलेमान ने मिश्र के फरोहा की कन्या से विवाह कर मिश्र से मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया। सुलेमान अपनी न्यायप्रियता के कारण बहुत प्रसिद्ध हुआ। सुलेमान की मृत्यु के उपरान्त उत्तरी फिलिस्तीन के यहूदियों ने जुडिया से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और "इजरायल" नामक नवीन राज्य की स्थापना की। ७२२ ई० पू० में असीरिया ने इजरायल पर अधिकार कर लिया। ५८६ ई० पूर्व में नवीन बेबीलोन वंश के राजा नेबूचन्दनेज़ार द्वितीय ने असीरिया, इजरायल तथा जुडिया पर अपना अधिकार कर लिया। उसने जेरुसलम को नष्ट कर दिया तथा १०,००० यहूदियों को बेबीलोन में कैद कर के रखा। इसी कैद काल में यहूदियों ने सभ्यता सीखी।

५३८ ई० पू० में ईरान के सम्राट साइरस द्वितीय ने बेबीलोनिया पर अधिकार कर लिया। उसने यहूदियों को कैद से मुक्त किया तथा पुनः जेरुसलम भेजा। परन्तु यहूदियों की स्वतन्त्रता अधिक समय तक नहीं रही। उन्हें शीघ्र ही यूनानी विजेता सिकन्दर के आगे झुकना पड़ा। इसके उपरान्त भी फिलिस्तीन पर विदेशियों का शासन बराबर बना रहा। यूनानियों के बाद रोमन लोगों का, उनके बाद अरब लोगों का, फिर तुर्कों का। सन् १९१७ ई० में इंगलैण्ड के लार्ड बालफोर ने पुनः यहूदियों के अधिकार को स्वीकार किया और इंगलैण्ड

की सहायता से ही १४ मई १६४८ ई० को पैलिस्तीन को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। एक बार पुनः यहूदियों को अपना देश प्राप्त हुआ। परन्तु आज भी यहूदी तथा अरब देशों के मध्य तनाव है।

यहूदी जाति ने न तो किसी वैभवशाली साम्राज्य का ही निर्माण किया था और न कला तथा विज्ञान के क्षेत्र में ही अद्भुत कौशल का प्रदर्शन किया। परन्तु फिर भी विश्व की प्रमुख सभ्यताओं में अपना स्थान बना लिया। इस रहस्य का कारण उनका धार्मिक चिन्तन था। एकेश्वरवाद की नूतन भावना का प्रदर्शन था। धार्मिक सिद्धान्तों को लिपिबद्ध पुस्तक में संग्रहीत करना था।

प्रारंभिक धार्मिक विचारधारा

इस पुस्तक को "ओल्डटेस्टामेन्ट" या पुरानी बाइबल भी कहते हैं। इन सिद्धान्तों का विकास बेबीलोन में कैद के समय में हुआ था। शायद इसीलिए पुस्तक का नाम भी बाइबल रखा गया हो। यहूदी जाति अपने धार्मिक चिन्तन के कारण ही महान् बनी थी। परन्तु उनके धार्मिक सिद्धान्त अचानक ही परिपक्व नहीं हो पाये थे। धीरे धीरे उनके धर्म का विकास हुआ। प्रारम्भ में जब वे अरब के मरुस्थल में भ्रमणशील जीवन व्यतीत करते थे, उस समय, अन्य जातियों की भांति वे भी प्राकृतिक शक्तियों, जानवरों तथा वृक्षों की पूजा किया करते थे। जुडिया में बस जाने के उपरान्त भी यह परम्परा जारी रही। कालान्तर में यहूदी राज्य के विभाजन के साथ ही साथ यहूदी धर्म में भी परिवर्तन हुआ। नव निर्मित इजरायल राज्य के निवासियों ने धर्म के भौतिकवादी तत्व को ग्रहण किया परन्तु जुडिया प्राचीन परम्परा को ही मानता रहा।

यहूदी धर्म का वास्तविक विकास 'जेहोवा' की उपासना से होता है। जेहोवा उनका इष्टदेव था। प्रारम्भ में यहूदी लोग अन्य देवताओं की भी उपासना करते थे। 'तम्मुज' उनके चरागाह का देवता था। इसी प्रकार अन्य देवता भी थे। "जेहोवा" की उत्पत्ति के पश्चात् यहूदी धर्म में एकेश्वरवाद का प्रादुर्भाव हुआ। अन्य देवताओं की उपासना बन्द कर दी गई। प्रारम्भ में वे जेहोवा को युद्ध का देवता मानते थे तथा मानवीय रूप में उसकी कल्पना की जाती थी। परन्तु धीरे धीरे उनके धार्मिक नेताओं (पैगम्बरों) के द्वारा जेहोवा के गौरव एवं शक्ति की स्थापना की गई और जेहोवा सर्व व्यापक, सर्व शक्तिमान,

का सबसे बड़ा पाप है। इससे यहूदी जाति में सामाजिक समानता तथा सौहार्द की उत्पत्ति हुई। 'आईसेआ' पैगम्बर ने यहूदी धर्म के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को जन्म दिया। उसने कहा कि जेहोवा केवल यहूदी जाति का ही देवता नहीं है बल्कि वह सम्पूर्ण जातियों का देवता है। वह मनुष्य को उसके पापों का दण्ड देता है। वह न्यायप्रिय है। इसी कारण वह जुडा के मनुष्यों को उनके पाप कर्मों का दण्ड दे रहा है। (यह घटना उस समय की है जब असीरिया ने जुडिया पर आक्रमण किया था और यहूदी पराजित हो रहे थे और जेहोवा में उनका विश्वास कम होने लग गया था) उसने यह भी आश्वासन दिया कि शीघ्र ही एक तेजोमय मसीहा का जन्म होगा और वह विभिन्न राज्यों का पारस्परिक वैमनस्य समाप्त कर देगा। इस प्रकार आईसेआ ने जेहोवा को सर्व व्यापक, सर्व प्रचलित, न्यायप्रिय के रूप में उपस्थित किया। इसके साथ ही साथ उसने यह सिद्धान्त भी बना दिया कि मनुष्य की मुक्ति उसके अच्छे कर्मों पर निर्भर है।

अन्य पैगम्बरों के सुधार-कार्य

आईसेआ के उपरान्त यहूदी जाति में जरेमिया पैगम्बर हुआ। उसने जेहोवा को निराकार बतलाया। उसके अनुसार ईश्वर एक पवित्र और सर्व शक्तिमान आत्मा की कोई आकृति विशेष नहीं। वह ईश्वर को महान समझता था।

उपर्युक्त पैगम्बरों के अतिरिक्त अनेक विद्वानों ने समय समय पर यहूदी धर्म के बारे में अपने विचार व्यक्त किये तथा जेहोवा की शक्ति, न्यायप्रियता आदि के बारे में विविध तर्क उपस्थित किये। इन सब विचारों का संग्रह 'तालमुद' नामक ग्रन्थ में किया गया है। यहूदी जाति में इस ग्रंथ के प्रति अगाध श्रद्धा है।

इस प्रकार हम देखते है कि यहूदी धर्म ने सर्व प्रथम अद्वैतवाद की भावना को विकसित किया। इसके पूर्व विश्व की सभी जातियां द्वैतवाद के भ्रम-जाल में पड़ कर नाना प्रकार के देवी देवताओं, प्राकृतिक शक्तियों तथा वृक्षों की उपासना कर रही थीं। यहूदी जाति ने बतलाया कि ईश्वर एक है। वह निराकार है, एक पवित्र आत्मा है। वह सर्वव्यापक, न्यायप्रिय तथा कृपासिन्धु है। उसका अस्तित्व मन्दिर और मूर्तियों में नहीं बल्कि मानव के मानस में है। उसके

सिंहावलोकन

शुभ कर्मों में है। इस प्रकार यहूदी धर्म ने शताब्दियों से अंध विश्वास तथा जन्त्र तन्त्र के मिथ्या जाल में फँसी हुई मानव जाति को नवीन ज्ञान प्रदान किया, विश्व में प्रथम बार सामाजिक समानता, न्याय के सम्मुख समानता, सौहार्द्र आदि भावनाओं का प्रादुर्भाव हुआ। यही कारण है कि यहूदियों ने अन्य क्षेत्रों में उन्नति न करने के उपरान्त भी, उनका कोई स्वतन्त्र राज्य नहीं होने पर भी अनेक शताब्दियों तक यायावर जीवन व्यतीत करने के उपरान्त भी अपने महत्व को बनाये रखा। कुछ विद्वानों की तो यहां तक धारणा है कि ईसाइयत तथा इस्लाम ही नहीं बल्कि भारत का बौद्ध धर्म भी यहूदी धर्म से प्रभावित है। इन धर्मों के प्रवर्तकों ने इसी धर्म से प्रेरणा ग्रहण की, अपने अपने देश में सनातन से चले आ रहे धर्मों के विरुद्ध क्रान्ति की।

यहूदी जाति का साहित्य भी धर्म प्रधान था। उनके ग्रंथों में प्रमुख ग्रंथ हैं—ओल्डटेस्टामेंट (यहूदी बाइबल), तालमूद रूथ की कथा, आइजेक और रेबेका, सेमसन और डिलेला तथा मूसा का विधान।

(२) ईसामसीह और ईसाइयत की उत्पत्ति

ईसाई धर्म का प्रादुर्भाव जेरुस के जुडिया आगमन के साथ ही साथ हुआ। जुड़िया यहूदी जाति का राज्य था परन्तु उस समय इस राज्य पर रोमन साम्राज्य का अधिकार था। रोमन साम्राज्य ने अपने प्रांतपति के संरक्षण में इस राज्य को स्थानीय स्वशासन प्रदान कर रखा था। उस समय हीरोड नामक यहूदी स्थानीय प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी था और पाइलेटस नामक रोमन इस राज्य का प्रांतपति (राज्यपाल) था। यहूदी लोग अपने पैगम्बरों की भविष्यवाणी के आधार पर एक मसीहा की प्रतीक्षा कर रहे थे जो कि उन्हें विदेशी शासन से मुक्त कर पुनः यहूदी राज्य की स्थापना करने वाला था।

मसीह की प्रतीक्षा

जुडिया राज्य के बेतलहम गांव के बढ़ई यसुफ के घर ईसा का जन्म हुआ वह 'माता मरियम' के गर्भ से उत्पन्न हुआ। उनके जन्म की निश्चित तिथि का ज्ञान उपलब्ध नहीं है परन्तु ऐसी धारणा है कि रोमन शासक आगस्टस के शासनकाल में ४ ई० पू० के आसपास उसका जन्म हुआ था। कुछ लोगों का मत है कि ईसा का जन्म कुमारी मरियम के गर्भ से अलौकिक

ईसा मसीह का प्रारंभिक जीवन

दिव्यशक्ति के कारण हुआ था। यूसुफ उनका पिता नहीं था। परन्तु इतना निर्विवाद सत्य है कि उनका बाल्यकाल नासरत (नजरत) शहर में व्यतीत हुआ था, वहां जॉन नामक यहूदी के विचारों का उन पर प्रभाव पड़ा और तीस वर्ष की अवस्था के उपरान्त उन्होंने सत्य की खोज में भ्रमण करना प्रारम्भ किया। दस वर्षों की भ्रमणशील अवस्था के उपरान्त उन्हें सत्य का प्रकाश मिला और उन्होंने उपदेश देना शुरू कर दिया। प्रारम्भ में ईसा ने जूडिया और उसके आसपास के प्रान्तों में अपने उपदेशों का प्रचार किया। उसके सात्विक, क्रांतिकारी, उदार तथा विश्व-बन्धुत्व से परिपूर्ण नैतिक उपदेशों से यहूदी नेता तथा रोमन अधिकारी दोनों ही चिंतित हो उठे।

ईसा का जेरूसलम में प्रवेश, गिरफ्तारी तथा मृत्यु की सजा

सन् २९ ई० में ईसा ने जेरुसलेम में प्रवेश किया। उस समय यहूदी लोग अपना धार्मिक उत्सव "फीस्ट आफ पासओवर" मना रहे थे। यहूदी लोग अपने इष्टदेव जेहोवा की सन्तुष्टि के लिए अनेक पशुओं को व्यापारियों के फन्दे से द्रव्य के उपलक्ष्य में मुक्ति दिलवा रहे थे। ईसा ने व्यापारियों की वस्तुएं फेंक दीं, पशु-पक्षियों को मुक्त कर दिया और यहूदियों को कोमल व प्रेमपूर्ण वाणी में प्रतारणा दी। उनकी वाणी ने यहूदियों को मन्त्रमुग्ध कर दिया। सम्पूर्ण यहूदी समाज में हलचल मच गई। उन्होंने अपना मसीहा पहिचान लिया। यहूदियों के प्रधान पुजारियों व पुरोहितों को यह अच्छा नहीं लगा। वे एक निर्धन सन्त मसीहा की प्रतीक्षा नहीं कर रहे थे बल्कि एक शक्तिशाली सैनिक योद्धा के रूप में मसीहा की प्रतीक्षा कर रहे थे जो कि उन्हें रोमन शासन से मुक्ति देकर समृद्धि और सम्मान प्रदान करता यह मसीहा तो उनके पद व सम्मान, दोनों को ही मिट्टी में मिला रहा था। फिर यह कैसा मसीहा ? अतः इन पुजारियों ने रोमन राज्य के प्रति स्वामिभक्ति का परिचय देते हुए रोमन अधिकारियों को ईसा की कुत्सित इच्छा—यहूदी साम्राज्य की स्थापना—से परिचित करवाया। हालांकि ईसा ने कभी इस इच्छा का विचार भी नहीं किया था। रोमन अधिकारी स्वयं भी चिंतित थे। उन्होंने ईसा को पकड़ लिया और शायद २८ दिसम्बर २९ ई० को गुलगोथा की पहाड़ी पर, क्रास पर लटका कर ईसा को सूली चढ़ा दी।

ईसा स्वयं अपना क्रॉस ले कर गये थे। इसके पूर्व उनके दोनों हाथों की हथेलियों पर कीलें ठोकी गई थी। तीसरी कील हृदय पर ठोकी गई। उस समय रक्त की धारा बह निकली और अति करुण स्वर में ईसा चिल्लाया—हे ईश्वर! क्षमा करना!! क्योंकि ये लोग अज्ञानी हैं!!! ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं!!!!

ईसा को यहूदी लोग 'जोशुआ' और यूनानी 'जेसन' कहते थे। नेउ प्राचीन धार्मिक विचारों का खंडन किया तथा मानवीय संसार को नवीन विचार सामग्री प्रदान की। उसने न्याय, प्रेम, कर्त्तव्य तथ बन्धुत्व का प्रचार किया। उसने मानवीय मानस को टटोला। उसने इस बात पर ज़ोर दिया कि मनुष्य की सर्वप्रथम आवश्यकता ईश्वर उपासना व प्रेम के उपरान्त; मनुष्य का सर्वोच्च कर्तव्य अपने ही समान अन्य मनुष्यों को प्रेम करना है। उसने स्वर्ग नियम तथा 'हमारा पिता' की प्रार्थना के प्रारम्भ में मनुष्य मनुष्य का सम्बन्ध तथा मनुष्य और ईश्वर के सम्बन्ध में अत्यधिक ज़ोर दिया।

ईसा के उपदेश और उनका महत्व

ईसा मसीह ने अपने आपको 'मसीहा' (सुरक्षा करने वाला) तथा 'सम्राट' (बादशाह) बतलाया जो कि यहूदी पैगम्बरों की भविष्यवाणी का परिणाम था। परन्तु उसने स्पष्ट कहा कि उसका साम्राज्य सांसारिक नहीं है बल्कि स्वर्ग का साम्राज्य है, जो कि देखा नहीं जा सकता परन्तु जिसका अनुभव किया जा सकता है क्योंकि उसका अस्तित्व प्रत्येक मनुष्य के हृदय में है। जो मनुष्य अपने पापों का प्रायश्चित करेगा और ईश्वर की इच्छानुसार सुकर्म करेगा वह 'स्वर्ग के साम्राज्य' में प्रवेश पाने का अधिकारी होगा।

ईसा ने धनिकवर्ग पर बहुत व्यंग कसा। उसने कहा कि ऊंट के लिये शायद यह संभव हो जाय कि वह सुई की नोंक से निकल सके परन्तु धनिक वर्ग के व्यक्तियों के लिये यह संभव नहीं कि वे स्वर्ग के द्वार में प्रवेश पा सकें। इसलिये उन्हें चाहिए कि वे अपना धन ईश्वर के बन्दों में बांट दें। इसके साथ ही साथ ईसा ने निर्धन लोगों को सांत्वना दी कि यदि तुम गरीब हो तो तुम सुखी हो क्योंकि ईश्वर का राज्य तुम्हारा है। यदि तुम भूखे हो तो तुम सुखी हो क्योंकि शीघ्र ही तुम्हारी क्षुधा शान्त हो जायेगी। यदि तुम रोते हो तो तुम

सुखी हो क्योंकि शीघ्र ही तुम हंसोगे। इस प्रकार उसने निर्धन लोगों को प्रकाश की एक नूतन किरण दिखलाई। ईसा के उपदेशों का सब से अधिक प्रभाव प्रारम्भ में निर्धन यहूदियों पर पड़ा।

ईसा ने ईश्वर की महत्ता का भी उल्लेख किया। उसने सर्व प्रथम इस बात को बतलाया कि ईश्वर किसी एक जाति का, राष्ट्र का, समूह का नहीं है अपितु सर्वव्यापक है, सर्वप्रिय है। जो उसकी उपासना करता है और सुकर्म करता है ईश्वर उसका है। प्रथम बार ईसा ने यहूदी धर्म पर आघात किया। क्यों कि यहूदी लोगों का विश्वास था कि ईश्वर अब्राहम की संतान (यहूदी जाति) का शुभचिंतक है और ईश्वर ने उन्हें विशेषाधिकार दे रखे हैं। यहूदियों की सौदेबाजी पर भी ईसा ने प्रहार किया। ईश्वर की उपासना के बदले में उस से मांगना घृणा का काम है।

ईसा मसीह की मृत्यु के साथ ही साथ यहूदी पुजारियों और रोमन अधिकारियों का भय जाता रहा। उन्होंने इसे एक सामान्य घटना माना और उन्हें विश्वास था कि शीघ्र ही लोग ईसा और ईसा के उपदेशों को भूल जायेंगे।

ईसाइयत का विकास

स्वयं ईसा के समर्थकों का विश्वास टूटने लगा था और उस समय जबकि ईसा को सूली पर लटकाया गया था उसके समर्थक न जाने कहाँ अन्तर्ध्यान हो गये थे। परन्तु जब दूसरे रोज मेरी मेगडालेन ने ईसा की कब्र को देखा तो उसका मृत शरीर वहाँ नहीं था। लोगों को विश्वास हो गया कि ईसा सशरीर स्वर्ग को प्रस्थान कर गया। उसके समर्थकों का खोया हुआ विश्वास पुनः लौट आया। और जब निरन्तर चालीस दिवस तक ईसा की आत्मा उनके मध्य विचरण करती रही और उन्हें उपदेश देती रही तो उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि ईसा अमर हो गया। फिर क्या था। उसके समर्थकों की संख्या बढ़ने लगी। ईसाई धर्म का प्रचार बढ़ने लगा।

यद्यपि महात्मा ईसा के उपदेशों का प्रचार करने का सर्वप्रथम प्रयत्न ईसा के निकट सम्पर्क में रहने वाले बारह शिष्यों द्वारा किया गया था परन्तु पॉल का कार्य उनसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। पॉल का यहूदी नाम 'सॉल' था। वह रोमन नागरिक था। पढ़ा लिखा विद्वान् पुरुष था और उसके कार्यों का प्रभाव बहुत

महात्मा पॉल और ईसाइयत का विकास तथा संगठन

दूर दूर तक पड़ा। ईसाई धर्म के विकास में सीरिया के प्रमुख नगर एन्टियाक का भी बहुत महत्व है। सन् ४२ ई० में ईसा के समर्थकों को इसी नगर में 'ईसाई' नाम से संबोधित किया गया तथा इसी नगर से महात्मा पॉल ने ईसा के सिद्धान्तों को प्रचारित करने के लिए दूर-दूर की यात्राएं प्रारम्भ कीं। बाईस वर्ष तक पॉल ने ईसा के उपदेशों का प्रचार किया। इस दीर्घ काल में उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उनकी सम्पत्ति लूट ली गई, उन्हें पीटा गया, कैद किया गया परन्तु वे अपने कर्तव्य पथ पर डटे रहे। अन्त में ६२ ई० में पाल को धर्म की बलिवेदी पर अपने प्राणों को भेंट करना पड़ा। नीरो के शासन काल में पॉल को रोम में प्राण-दण्ड दिया गया। परन्तु पॉल ने मरने से पूर्व ईसा के उपदेशों को सीजर के घरानों के प्रासादों तक पहुँचा दिया।

संत पॉल का महत्व उसके ईसाई धर्म के सिद्धांतों को संग्रहीत करने में है। उसने इस सिद्धांत की स्थापना की कि ईसाई धर्म सम्पूर्ण मानव जाति के लिये है। उसने ईसाई प्रचारकों एवं नेताओं में सहयोग तथा संगठन का निर्माण किया और एक निश्चित मर्यादा पूर्ण परम्परा को जन्म दिया। इसके अतिरिक्त उसने वास्तविक लगन तथा सामर्थ्य से भिक्षुक का अर्थात् धर्म प्रचारक का कार्य किया। उसने लोगों को गिरजा का महत्व बतलाया। गिरजा को ईसा का प्रतीक बतलाया। 'क्रॉस' मानवीय पापों के लिए ईसा का प्रायश्चित्त या बलिदान का प्रतीक है। इस प्रकार उसके प्रयत्न से गिरजाघरों का निर्माण एवं संगठन हुआ। उसके विचार बाइबल के प्रथम चार अध्यायों के बाद में दिये गये हैं।

ईसाई धर्म के संकट एवं उनके कारण

ईसाइयत का विकास सुगमतापूर्वक नहीं हो पाया। अन्य धर्मों की तरह इस धर्म को भी घोर संकटों तथा यातनाओं का सामना करना पड़ा। प्रारम्भ में यहूदी धर्म के पुजारियों ने इसका विरोध किया था तथा ईसाइयों का दमन किया गया। इसके उपरान्त अनपढ़ तथा अज्ञानी मूर्तिपूजकों के हाथों इसको अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और अन्त में रोमन अधिकारियों ने नृशंसतापूर्वक ईसाइयों का दमन किया। इस दमन चक्र के कई कारण थे (१) ईसाई धर्म को लोगों ने समझने में गलती की। उन्हें इस धर्म

का वास्तविक उद्देश्य ज्ञात नहीं था (२) निर्धन यहूदियों ने ही प्रारम्भ में इस धर्म को ग्रहण किया था। अतः उच्चकुलीन तथा धनिक लोगों ने इसे अपना विरोधी धर्म समझा। (३) जनता इसे यहूदी धर्म की शाखा समझती थी और रोमन लोग यहूदियों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। (४) ईसाई तत्कालीन युग के आमोद प्रमोद के प्रमुख मनोरंजन—"ग्लेडिएटर" युद्ध को पाप समझते थे और उसका विरोध करते थे। (५) अंतिम कारण यह था कि वे अपने धर्म का प्रचार शक्ति, हिंसा के द्वारा नहीं अपितु—प्रेम, अहिंसा, बन्धुत्व आदि के माध्यम से करते थे।

उपर्युक्त कारणों के से ही ईसाई धर्म का दमन किया गया। रोमन सम्राट अपने आप को ईश्वर का प्रतिनिधि मानते थे परन्तु ईसाई उनके इस उत्तराधिकार को स्वीकार नहीं करते थे। इसीलिए नीरो के शासनकाल में जहाँ स्वयं ईसा को सूली पर चढ़ाया गया वहीं असंख्य व्यक्तियों को मृत्युदण्ड दिया गया। ईसाई धर्म के अधिकांश प्रचारकों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। ईसाई उन्हें शहीद समझने लगे। वे अमर हो गए क्योंकि उन्होंने धर्म के प्रचार हेतु अपने प्राणों का त्याग किया। अनेकों सम्राटों ने निश्चत योजनानुसार सम्पूर्ण साम्राज्य में दमनचक्र चलाया। हजारों व्यक्तियों को फांसी दी गई। हजारों को कठोर यातनायें दी गईं परन्तु इस नारकीय कांड के उपरांत भी ईसाइयत का प्रचार बढ़ता ही गया।

ईसा की प्रथम शताब्दी के अन्त तक रोमन साम्राज्य के समस्त प्रमुख नगरों में ईसाई धर्म तथा गिरजाघरों की स्थापना हो चुकी थी। द्वितीय शताब्दी के अन्त तक रोमन साम्राज्य की ५ प्रतिशत जनता ईसाई धर्म ग्रहण कर चुकी थी और तीसरी शताब्दी के अन्त तक ईसाई धर्म के सदस्यों की संख्या २० प्रतिशत हो गई और उसने एक सुसंगठित जाति का रूप ले लिया। इसके उपरान्त ईसाई धर्म का भाग्य परिवर्तन हुआ। ३११ ई० में सम्राट गेलेरियस ने सुप्रसिद्ध "एडिक्ट ऑफ मिलॉन" की घोषणा की, जिसके द्वारा ईसाई धर्म पर अत्याचार करना रोक दिया गया तथा उन्हें धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की गई। फिर महान् सम्राट कान्सटेनटीन का युग आया। सन् ३१२ ई० में वह अपने सिंहासन के अस्तित्व के लिए युद्ध कर रहा था। ईसा मसीह ने स्वप्न में उसे

ईसाई धर्म के पटटर सिद्धान्त

तिपित थे-(१)त्रिमूर्ति-ईश्वर के एक रूप के तीन व्यक्ति पिता, पुत्र और पवित्र भूत अर्थात् होली घोस्ट। (२) अवतार-ईसा मानव के रूप में ईश्वर का अवतार था। (३) पतन-आदम के पापों ने मरणशीलों को ईश्वर के साहचर्य से वंचित कर दिया। (४) कुमारी जननी-ईसा की माता मरियम के गर्भ से रहस्यमय जन्म। (५) द्वैध रूप-ईसा का रूप दो प्रकार का है—मनुष्य और ईश्वर का रूप। (६) प्रायश्चित्त-ईश्वर, ईसा के रूप में सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिए मर गये। (७) कृपा—मानव को पापों से बचाने के लिए ईश्वर आध्यात्मिक सहयोग प्रदान करता है। (८) पुनर्जन्म ईसा ने कब्र से उठ कर अपने अनुयायियों को अमरत्व प्रदान किया। (९) गिरजाघर की अलौकिक स्थापना—ईश्वर ने ईसा के माध्यम से गिरजाघर की स्थापना करवाई जिसके माध्यम से मानव और परमेश्वर के बीच सम्पर्क स्थापित हो सके। (१०) द्विरागमन—मृतकों के निरीक्षण के लिए ईसा लौट सकता है।

•

कालान्तर में सम्पूर्ण रोमन साम्राज्य का ईसाई साम्राज्य में परिवर्तन कर दिया गया। सम्पूर्ण ईसाई नेताओं की एक महान सभा "कुस्तुनतुनिया, पूर्वी रोमन साम्राज्य की राजधानी, में हुई और मतभेदों को समाप्त कर के ईसाई धर्म की एकता तथा सिद्धान्त पुनः स्थापित किये गये। इस समय तक गिरजाघरों का महत्व बढ़ गया उन्हें भूमिकर तथा अन्य राजकीय करों से मुक्त किया गया। साधुओं के लिये भव्य मठों का निर्माण किया गया। मध्यकाल में

ईसाई धर्म में विभाजन

ईसाई धर्म दो भागों में विभक्त हो गया-ग्रीक चर्च तथा रोमन चर्च। जो लोग "होली घोस्ट" का प्रादुर्भाव पिता (God) से मानते थे वे रोमन चर्च के अनुयायी कहलाये। और जो लोग पिता एवं पुत्र (Christ) से मानते थे वे ग्रीक चर्च के अनुयायी कहलाये। कालान्तर में रोमन चर्च में पुनः विभाजन हुआ और प्रोटेस्टेन्ट, प्रेस बीटेरियन, प्यूरिटन आदि उपशाखाओं की उत्पत्ति हुई। परन्तु फिर भी ईसाई धर्म उन्नति की ओर अग्रसर होता रहा और विश्व धर्म बन गया। आज भी ईसाई धर्म विश्व का सर्वाधिक मान्य धर्म है। सम्पूर्ण यूरोप, रूस, अमेरिका, आस्ट्रेलिया पर इसका

अत्यधिक प्रभाव है। यहाँ तक कि एशिया और अफ्रीका महाद्वीप में भी इस धर्म को मानने वालों की संख्या करोड़ों में है।

ईसाई धर्म का पवित्र ग्रन्थ "न्यूटेस्टामेंट" (नवीन बाइबल) है। इस ग्रन्थ में ईसाई धर्म के सिद्धान्तों का संकलन है। पॉल द्वारा लिखित अध्याय शायद सर्वप्रथम रचना है। इसके पूर्व के चार "गोस्पल" जो कि मैथ्यू, मार्क, लुके और जॉन के लिखे हुए हैं के बारे में हमें निश्चित ज्ञान नहीं है। इतना सत्य है कि ये प्रथम शताब्दी तक लिखे गये हैं।

(३) इस्लाम की उत्पत्ति एवं विकास

'इस्लाम' अरबी शब्द है जिसका अर्थ है "आत्म-समर्पण" तथा इस धर्म को मानने वाले को 'मुस्लिम' कहते हैं जिसका अभिप्राय है "आत्म समर्पण करने वाला। इस्लाम, जिसका प्रादुर्भाव हुये अभी बहुत अधिक समय नहीं हुआ है; विश्व का एक व्यापक एवं महान् धर्म बन गया है। आधुनिक काल में इसके समर्थक प्रमुख रूप से उत्तरी अफ्रीका के भूमध्यसागरीय तट, यूगोस्लाव के भाग पर, अल्बीनिया, मिश्र, तुर्की, सम्पूर्ण निकट तथा मध्यपूर्व, पाकिस्तान, भारत के अधिकांश भाग पर, मलाया, हिन्देशिया, फिलि पाइन द्वीप पुंज रूमी मध्य एशिया तथा चीन के भाग पर फैले हुए हैं।

इस्लाम तथा मुस्लिम

प्रत्येक धर्म की उत्पत्ति एवं विकास ऐतिहासिक परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के द्वारा होता है। इतिहास इस्लाम के प्रादुर्भाव एवं उसके विकास का कारण "तलवार की शक्ति" बतलाता है। यद्यपि मुस्लिम इतिहासकारों ने इस सत्य आरोप को हटाने का असफल प्रयत्न किया है। जहाँ जहाँ इस्लाम के उपासक गये उन्होंने विरोधी सम्प्रदाय के सामने तीन रास्ते रखे। "या तो कुरान लो और इस्लाम को कबूल करो, या कर दो और अधीनता स्वीकार करो, अथवा दोनों में से कोई बात पसन्द नहीं हो तो तुम्हारे गले पर गिरने के लिए हमारी तलवार प्रस्तुत है। ये बड़े ही कारगर उपाय रहे होंगे, किंतु यह समझ में नहीं आता कि सिर्फ इन्हीं उपायों से इस्लाम इतनी जल्दी कैसे फैल . । (रामधारीसिंह 'दिनकर' कृत संस्कृति के चार अध्याय से उद्धृत)

उत्पत्ति व विकास के सहायक तत्व

परन्तु केवल शक्ति के आधार पर ही इस्लाम का अद्भुत विकास सम्भव नहीं हुआ क्योंकि शक्ति में उनके पड़ोसी यूनानी, ईरानी तथा रोमन उनसे कम नहीं थे इस विकास को सरल बनाने में ऐतिहासिक परिस्थितियाँ भी थीं। तथा तत्कालीन अरब जहाँ इस्लाम का प्रादुर्भाव हुआ था जड़तावादियों का प्रमुख केन्द्र था। वहां की अधिकाश जनता निर्धन थी और निर्धनता के कारण स्वार्थ तथा लालच का बोलबाला था। धन-उपार्जित करने के लिये निम्न से निम्न तथा भ्रष्ट से भ्रष्ट उपायों का प्रयोग किया जाता था। समाज में जुआ, शराबखोर, वेश्यागमन का प्रचार कहीं अधिक था। भ्रष्टाचार, व्यभिचार तथा दुराचार की प्रधानता के कारण स्त्रियों की स्थिति दयनीय थी। वे पुरुषों के भोगविलास का साधनमात्र थी। अरबी जनता घोर मूर्तिपूजक थी। हजारों की संख्या में उनके देवता थे। सबसे बड़ी प्रतिष्ठा मक्का के मन्दिर में स्थित एक काले पत्थर की थी, जिसे वे लोग 'काबा' कहते थे। ऐसी परिस्थिति थी अरब की जब मुहम्मद ने अन्ध विश्वास रहित, आडम्बर हीन, सीधे-साधे ढंग से एक ईश्वर की उपासना हेतु इस्लाम को जन्म दिया था।

अरब की अस्त परिस्थितियों के कारण इस्लाम का जन्म हुआ और उसके पड़ौसी राज्यों की अव्यवस्था, निर्बलता तथा भोगविलासिता से उत्पन्न पतन ने उसके विकास में सहायता दी। अरब के पश्चिम में स्थित विशाल रोमन साम्राज्य भोग विलास तथा भ्रष्टाचार के कारण खोखला हो चुका था। इसी तरह अरब के पड़ौसी ईरानी साम्राज्य का भी पतन हो चुका था। इसके अतिरिक्त इन दोनों राज्यों के मध्य होने वाले निरन्तर संघर्षों के कारण उनकी शक्ति का भी अन्त हो चुका था। साधारण जनता राजनीतिक संघर्षों, सामाजिक भ्रष्टाचार तथा दयनीय आर्थिक स्थिति एवं धर्म की अपवित्रता के कारण मानसिक संतुलन खो बैठी थी और जब इस्लाम का शांतिदायक संदेश--धार्मिक तथा सामाजिक समानता एवं कर्त्तव्य निष्ठ उपासना, पहुँचा तो जनता ने उसे स्वीकार कर लिया। बाकी ने उसकी शक्ति का विरोध करने में अपनी असमर्थता को देख कर उसे स्वीकार कर लिया।

इसके अतिरिक्त इस्लाम के प्रवर्त्तक तथा उसके उत्तराधिकारियों के व्यक्तित्व का प्रभाव भी इस्लाम के विकास में सहायक हुआ। मुहम्मद साहब

इलहाम की प्राप्ति व प्रचार

उनके उपदेश अच्छे नहीं लगे क्योंकि उनके उपदेश क्रांतिकारी थे-सहस्त्रों शताब्दियों से चले आ रहे धार्मिक विश्वास तथा परम्परा के विरोधी थे । बाध्य हो कर मुहम्मद को मक्का छोड़ कर मदीना भागना पड़ा। (६२२ ई० में)

मुहम्मद के मक्का से मदीना प्रस्थान को मुस्लिम लोग 'हिजर' या 'हिजरत' कहते हैं । मदीना के निवासियों ने मुहम्मद का स्वागत किया और उनके धर्म के उपासक बन गये । इस कारण इस नगर को नबी का नगर' तथा नागरिकों को 'अंसार' कहते हैं । इसी साल से इस्लामी संवत् 'हिजरी' का प्रचलन हुआ। इसी साल मक्का वालों ने उन पर चढ़ाई की परन्तु वे असफल रहे। इस घटना से मदीना तथा अन्य स्थानों के निवासियों का मुहम्मद में विश्वास बढ़ गया। फिर मुहम्मद ने मक्का पर आक्रमण किया,व्यापारियों को लूटना प्रारम्भ कर दिया। मुहम्मद के आक्रमणों और लूट मार से तंग आकर मक्का वालों ने मुहम्मद की अधीनता स्वीकार कर ली। ६३० ई० में एक विजेता के रूप में मुहम्मद ने मक्का में प्रवेश किया तथा काले पत्थर के 'काबा' के अतिरिक्त सम्पूर्ण मूर्तियों को तोड़ दिया। इसके बाद अरब का राजनैतिक तथा धार्मिक एकीकरण का कार्य प्रारम्भ हुआ। इसी बीच ६३२ ई० में मदीना में मुहम्मद की मृत्यु हो गई।

मुहम्मद साहब ने इस्लाम का प्रादुर्भाव निश्चित योजनानुसार नहीं किया था अपितु उन्हें अचानक ही इलहाम (समाधि अवस्था में ज्ञान) हुआ।

मुहम्मद के उपदेश

'कुरान' में उन आयतों का उल्लेख है जो कि ईश्वर ने देवदूतों के माध्यम से समय समय पर मुहम्मद के पास भेजी थी। ये आयतें (पद) मुहम्मद साहब को २३ वर्ष के दीर्घ समय में प्राप्त हुई थीं, जिन्हें उन्होंने लिखवा रखा था। अबूबकर-जो कि उनकी मृत्यु के उपरांत प्रथम खलीफा बना ने इन आयतों को संग्रह कर कुरान की पोथी तैयार की।

हजरत मुहम्मद के माध्यम से ईश्वरीय संदेश पृथ्वी पर पहुँचा, इसलिये उन्हें पैगम्बर (संदेशवाहक) कहा जाता है। उन्होंने इस्लाम जैसे पवित्र ज्ञान की घोषणा की इसलिए उन्हें नबी कहा जाने लगा परमात्मा और मनुष्य के बीच दूत का कार्य किया अतः वे 'रसूल' कहाये।

ईश्वर के अतिरिक्त इस्लाम ईश्वरीय दूतों (फरिश्ता या मलक) में भी विश्वास करता है। यद्यपि ईश्वर की भांति वे निराकार तो नहीं हैं परन्तु वे मनुष्यों से सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकते और मनुष्य उन्हें केवल आध्यात्मिक शक्ति के ज्ञान से ही देख सकता है। ये देवदूत मनुष्यों की आध्यात्मिक उन्नति में सहयोग प्रदान करते हैं देवदूत के साथ साथ इस्लाम शैतान के अस्तित्व को भी मानता है परन्तु उसमें विश्वास रखने से मना करता है।

मुहम्मद ने जिस धर्म का उपदेश दिया वह सरल, सुगम तथा आडम्बर-हीन था। इसी कारण जनता उत्साह के साथ इस्लाम की तरफ अग्रसर हुई। इसके अतिरिक्त एक अन्य कारण भी था समानता का अधिकार। इस्लाम में

धार्मिक तथा सामाजिक समानता

प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक तथा धार्मिक अधिकार समान थे। इस क्षेत्र में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था। ईश्वर के सन्मुख अमीर और निर्धन, राजा और रंक बराबर थे। इसलिए यह धर्म निम्न वर्ग के मनुष्यों में बहुत शीघ्रता से फैला।

इस्लाम सांसारिक धर्म था। इसमें यतिधर्म की प्रधानता वैराग्य की प्रमुखता तथा लौकिक सुखों के त्याग का महत्व नहीं है। इतिहासकार गिब ने सत्य ही कहा था कि 'पूर्वी एशिया के सभी धर्मों में इस्लाम ही ऐसा है जो सांसा-

सांसारिकता तथा वैराग्य का समन्वय

रिकता के बहुत समीप और वैराग्य से अधिक दूर है।' परन्तु फिर भी इस्लाम में वैराग्य की भावना का आभास मिलता है। रोजा रखना तप से कम महत्व का कार्य नहीं है और जकात द्वारा सांसारिक भोग विलास को सीमित करने का प्रयत्न किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मुहम्मद ने सांसारिकता तथा वैराग्य का समन्वय करने का प्रयत्न किया है। यही कारण है कि इस्लाम गृहस्थ धर्म के समीप दिखलाई पड़ता है।

इस्लाम धर्म का मूल ग्रंथ 'कुरान' है। इस ग्रन्थ में ईश्वर द्वारा मुहम्मद को भेजे हुए संदेश का सकलन है। कुरान के अतिरिक्त इस्लाम के दो अन्य

धर्मग्रन्थ

धार्मिक ग्रन्थ हैं—सुन्नत और हदीस। सुन्नत में मुहम्मद साहब की दैनिक जीवन-चर्या का उल्लेख है और हदीस में उनके उपदेश हैं।

इस्लाम के विकास का कारण आज भी रहस्य के अंधकार में पड़ा हुआ है। जनश्रुति के अनुसार मुहम्मद साहब ने सर्व प्रथम अरब का एकीकरण किया और वहां के निवासियों को धार्मिक उत्साह तथा जोश से परिपूर्ण करके यह आदेश दिया कि सम्पूर्ण संसार को इस्लाम का उपासक बना लो। दूसरा कारण आर्थिक दृष्टिकोण है। अरब के रेगिस्तान का विस्तार हो रहा था और उपजाऊ भूमि की कमी होने लग गयी अतः अरब निवासियों ने जीविका निर्वाह के साधनों को ढूंढने के लिये विदेशों को प्रस्थान किया। विदेश विजय के साथ ही साथ इस्लाम का भी प्रचार होने लगा।

इस्लाम का विकास तथा विभाजन

इस्लामी साम्राज्य का विकास

सर्व प्रथम सीरिया और पर्शिया का पतन हुआ और इस्लाम का इ[illegible] देशों में प्रचार हुआ। ६३६ ई० में जेरूसलेम, ६४१ ई० में [illegible] राज्यों का पतन हुआ और इस्लाम का विकास। ६८९ ई० से ७१० ई० त[illegible] अरब ने मिश्र, बाइजेन्टाइन का अधिकांश [illegible] तट, साइप्रस तथा रोड के द्वीप पर अधिकार कर के सिसली तथा इटली की तरफ बढ़ता हुआ [illegible]

६६८ ई० में कार्थेज पर तथा ७११ ई० में सेनापति तारिक के नेतृत्व में स्पेन पर अधिकार कर लिया गया। इसी समय में रूसी तुर्किस्तान, भारत के सिन्धु प्रान्त तथा चीन के पश्चिमी सीमान्त तक अरब का अधिकार और इस्लाम का प्रचार हुआ। धीरे धीरे इस्लाम का प्रचार बढ़ता ही गया।

मुहम्मद के बाद उत्तराधिकार के लिए संघर्ष प्रारम्भ हो गया क्योंकि मुहम्मद अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करके नहीं मरे थे। आखिर में मुहम्मद के अन्तरंग मित्र तथा सहयोगी अबूबकर (अबूबक्र) खलीफा (मुहम्मद का प्रतिनिधि निर्वाचित हुआ। अबूबकर दो साल के बाद मर गया और उपरांत दो अन्य खलीफाओं उमर तथा इब्न अफकन क्रमशः निर्वाचित किया गया। परन्तु इनका शासनकाल भी ६५६ ई० में समाप्त हो गया। ये सभी मुहम्मद के वंशज नहीं थे। अतः अधिकांश मुसलमानों की इनमें श्रद्धा नहीं थी। और यह युग राजनीतिक षड्यंत्रों का युग कहलाया। उमर तथा इब्न अफकन दोनों को ही कत्ल किया गया था।

६५५ ई० में इस्लाम में प्रत्यक्ष रूप से दो दल हो गये। एक दल मुहम्मद के जामाता अली तथा मुहम्मद की लड़की फातिमा एवं उनके वंशजों के पक्ष में था। यह दल कुरान में संशोधन या टीका को नहीं चाहता था। इसलिए शिया (Secterian) कहलाया। इसके विरोध में दूसरा दल था जो कि किसी भी सुयोग्य व्यक्ति को खलीफा के पद पर निर्वाचित करने के पक्ष में था और कुरान की अभिवृद्धि, संशोधन तथा टीका के पक्ष में था। इसलिए यह दल सुन्नी (Tradition alists) कहलाया।

६५६ ई० में गृह युद्ध लड़ा गया। शिया दल ने अली को खलीफा घोषित कर दिया और सुन्नी दल ने दमिश्क में मुवैया को खलीफा घोषित कर दिया। ६६१ ई० में अली को कत्ल कर दिया गया। जिस स्थान पर अली की मृत्यु हुई वह शिया लोगों के लिए पवित्र तीर्थ बन गया। मुवैया ने उमैया वंश की स्थापना की। ६८० ई० में पुनः गृह-युद्ध हुआ और कर्बला के युद्ध में अली का पुत्र हुसेन मारा गया। ७५० ई० में अबू अल्ल अब्बास ने मुवैया वंश को समाप्त कर के अब्बासिया वंश की स्थापना की। इसी समय दमिश्क से बगदाद केन्द्र बना। १०५८ ई० में सैल्जुक तुर्कों ने खलीफा पद पर अधिकार कर लिया।

१२५८ ई० में मंगोलों ने अन्तिम खलीफा को मार कर खलीफाओं के वंश का अन्त कर दिया।

इस्लाम की उत्पत्ति एवं विकास तथा खलीफाओं की शक्ति का उत्थान एवं पतन आज भी एक रहस्यमय पहेली के समान लगता है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) धर्म से आप क्या समझते हैं? धर्म का मनुष्य के जीवन में क्या महत्व है?

(२) आदि मानव की धार्मिक भावनाओं का क्या रूप था?

(३) "अलौकिक में विश्वास ही धर्म की बुनियाद है," इस कथन की सत्यता पर प्रकाश डालिये।

(४) धर्म की उत्पत्ति व विकास में कौन २ से तत्व सहायक हुए? विस्तार समझाइए।

(५) यहूदी धर्म की उत्पत्ति व विकास पर एक लेख लिखिये?

(६) यहूदी धर्म पर यहूदियों के पैगम्बरों का क्या प्रभाव पड़ा? समझाइए

(७) "एकेश्वरवादिता यहूदी धर्म की एक विशेषता है।" स्पष्ट कीजिये।

(८) महात्मा ईसा के जीवन-चरित्र और उपदेशों का वर्णन कीजिये।

(९) ईसाई धर्म के विकास में क्या क्या कठिनाइयाँ थीं। उनके क्या कारण थे?

(१०) यूरोप में ईसाई धर्म का प्रचार कैसे हुआ? इस धर्म का जीवन सभ्यता पर क्या प्रभाव पड़ा?

(११) ईसाई धर्म में मतभेद के बीज कब और कैसे उत्पन्न हुए?

(१२) इस्लाम की उत्पत्ति एवं विकास में तत्कालीन परिस्थितियों ने कहां तक सहयोग प्रदान किया?

(१३) हजरत मुहम्मद के उपदेशों का आलोचनात्मक वर्णन कीजिये।

(१४) खलीफा कौन थे? उन्होंने किस प्रकार इस्लाम का प्रचार किया? उनका पतन कैसे और कब हुआ?

(१५) फिलिस्तीन में उत्पन्न एकेश्वरवादी धर्मों में क्या २ समानतायें तथा असमानतायें हैं। विस्तार से समझाइए।

सातवां अध्याय
प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति

अपनी अद्भुत विशेषताओं के कारण प्राचीन युग में भारतीय संस्कृति का उत्तरोत्तर विकास होता गया और गुप्त काल तक वह अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गई परन्तु इसके बाद संकीर्णता, अनुदारता धर्म, तथा परलोक के अत्यधिक चिन्तन, अन्धविश्वास, मिथ्याभिमान, संकुचित मनोवृत्ति तथा मोहनिद्रा के कारण वह पतनोन्मुख हो गई। अब स्वतन्त्र भारत के अनुकूल वातावरण में उसके उत्थान का पुनः प्रयास किया जा रहा है। इस कार्य में अत्यधिक सतर्कता तथा सावधानी की आवश्यकता है अर्थात् हमें अपनी संस्कृति के पुनरुत्थान के प्रयास में संकीर्ण और अनुदार भावों को त्यागना पड़ेगा, मिथ्याभिमान तथा अन्धविश्वासों के बन्धन से मुक्त होना पड़ेगा। तभी हम प्राचीन भारतीय संस्कृति के उन्नत रूप का दर्शन करने में सफल हो सकेंगे।

संस्कृति क्या है?

संस्कृति क्या है? शब्द कोष उलटने पर इसकी अनेक परिभाषायें मिलती हैं। एक बड़े लेखक का कहना है कि "संसार भर में जो भी सर्वोत्तम बात जानी या कही गई है, उनसे अपने आपको परिचित करना संस्कृति है।" एक दूसरी परिभाषा में यह कहा गया है कि "संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढ़ीकरण या विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था है।" "यह मन, आचार अथवा रुचियों की परिष्कृति या शुद्धि है। यह सभ्यता का भीतर से प्रकाशित हो उठना है।" (पं० जवाहरलाल नेहरू)

भारतीय संस्कृति के बारे में देश के विचारकों की प्रायः परस्पर विरुद्ध या विभिन्न दृष्टियाँ दिखाई देती हैं। इस विषय में प्रथम दृष्टि उन लोगों की है जो परम्परागत अपने अपने धर्म या सम्प्रदाय को ही 'भारतीय संस्कृति' समझते हैं। यह अत्यन्त संकीर्ण दृष्टि है। दूसरी दृष्टि उन लोगों की है, जो

भारतीय संस्कृति के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण

भारतीय संस्कृति को, भारतान्तर्गत समस्त सम्प्रदायों में व्यापक न मान कर कुछ विशिष्ट सम्प्रदायों से ही सम्बद्ध मानते हैं। तीसरी दृष्टि के विचारक भारतीय संस्कृति को, देश के किसी विशिष्ट एक या अनेक सम्प्रदायों से परिमित या बद्ध न मान कर, समस्त सम्प्रदायों में एकसूत्र रूप से व्यापक, अतएव सब के अभिमान की वस्तु भारी, लचीली, और सहस्रों वर्षों से भारतीय परम्परा से प्राप्त संकीर्ण साम्प्रदायिक भावनाओं और विषमता को दूर करके राष्ट्र में एकात्मता की भावना का फैलाने का एकमात्र साधन समझते हैं। स्पष्टतः इसी दृष्टि से भारतीय संस्कृति की भावना देश की अनेक विषम समस्याओं के समाधान का एकमात्र साधन हो सकती है।"

(डा० मंगलदेव शास्त्री)

भारतीय संस्कृति के मौलिक आधार

प्राचीन भारतीय संस्कृति का महत्व उसकी विशेषताओं में उसके मौलिक आधारों में निहित है। इस संस्कृति का प्रथम मौलिक आधार है समन्वयात्मक रूप। परम्परागत हिन्दूधर्म या सभ्यता का आधार केवल 'निगम' (वेद) न होकर 'आगम' (प्राग्वैदिक) भी था। अर्थात् निगम आगम धर्मों का समन्वित रूप। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्राचीन भारतीय संस्कृति का मूल आर्यों से पूर्व, मोहनजोदड़ो आदि की सभ्यता तथा द्रविड़ों की महान् सभ्यता तक पहुँचता है। वैदिक तथा पूर्व वैदिक तत्वों का समन्वय बहुत प्राचीन काल में ही प्रारम्भ हो गया था। इन दोनों तत्वों के समन्वय से एक नवीन संस्कृति का उद्भव हुआ जिसे हम पौराणिक हिन्दू संस्कृति कह सकते हैं। पुराण शब्द का अर्थ ही उपर्युक्त प्राग्वैदिक संस्कृति की ओर निर्देश करता है। इस संस्कृति का आधार 'श्रुति' न होकर 'पुराण' था। यूरोपीय विद्वानों के प्रभाव से हमारे देश के कुछ लोगों में आर्य, अनार्य, वैदिक, अवैदिक शब्दों को लेकर जो एक प्रकार का क्षोभ उत्पन्न हुआ है, वह वास्तव में निराधार है।

हमारी संस्कृति का दूसरा मौलिक आधार है अन्य प्रवृत्तियों को आत्मसात् करने की शक्ति। मतमतान्तर [illegible] को लेकर जैन, बौद्ध, वैष्णव और शैव आदि सम्प्रदायों की उत्पत्ति और प्रसार हुआ। परन्तु इस काल में भी भारतीय

संस्कृति इन नवीन आन्दोलनों से प्रभावित होती हुई और क्रमशः उन धाराओं को आत्मसात् करती हुई, नवीनतर गम्भीरता, विस्तार और प्रवाह के साथ, आगे बढ़ती रही। इतना ही नहीं बल्कि इस्लाम और ईसाइयत के आन्दोलनों को भी हम भारतीय संस्कृति की धारा के प्रवाह से बिल्कुल अलग नहीं समझते। हम सहिष्णुता से काम लेते हुए, उनकी वास्तविक धार्मिक भावनाओं को ठेस न पहुँचाते हुए, भारतीयों की सुप्त भारतीयता को जगा सकने में समर्थ हुए हैं। क्यों कि भारतीय संस्कृति स्वभावतः सदा से प्रगतिशील रही है और रहेगी। हालांकि हमारी संस्कृति में स्थिर शीलता का अभाव है परन्तु परिवर्तन-शीलता का नहीं। संक्षिप्त रूप में हम इतना ही कह सकते हैं कि "अपने अन्तरात्मा की संदेश-रूप मानव कल्याण की सच्ची भावना से आगे बढ़ती हुई, वर्तमान प्रबुद्ध भारत के ही लिए नहीं, किन्तु संसार भर के लिए उन्नति और शान्ति के मार्ग को दिखाने में सहायक हो सकती है।"

(१) सिन्धुघाटी की सभ्यता

सन् १६२१ ई० तक भारतीय सभ्यता के इतिहास का ज्ञान आर्यों के आगमन तक सीमित था और हमें आर्यों के पूर्व भारत में बसने वाली मूल जातियों की सभ्यता के बारे में विशेष ज्ञान उपलब्ध नहीं था। परन्तु सिन्धु उपत्यका की खुदाई से प्राप्त अवशेषों ने भारत की सभ्यता को और अधिक प्राचीन प्रमाणित कर दिया है। यहां तक कि विश्व की प्राचीनतम सभ्यताएं---मिश्र, सुमेर, बेबीलोन आदि उसके सन्मुख शिशु समान प्रतीत होती हैं। इस सभ्यता का प्रारम्भिक काल ४५००--३५०० ई० पू० के मध्य माना जाता है। सिन्धु सभ्यता को खोजने का श्रेय भारत के पुरातत्व-विभाग के दो प्रमुख विद्वानों—श्री राखालदास बनर्जी तथा श्री दयाराम साहनी को दिया जाता है।

विश्व की प्राचीनतम सभ्यता

सिंधु की उन्नत सभ्यता के भग्नावशेष हड़प्पा और मोहनजोदड़ो नामक स्थानों पर प्राप्त हुए हैं। अभी अहमदाबाद के पास 'लोथेल' नामक स्थान पर

भौगोलिक स्थिति

भी इस सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिनकी विशेष जानकारी प्राप्त होना बाकी है। हड़प्पा पंजाब में लाहौर से १०० मील दक्षिण पश्चिम में रावी नदी के तट पर है और मोहनजोदड़ो कराची से २०० मील उत्तर में सिन्धु नदी के तट पर स्थित है। दोनों नगरों में ३५० मील का अन्तर है। पुरातत्व सम्बन्धी खोज के कारण सिन्धु सभ्यता का विशद वर्णन करना सम्भव हो गया है। परन्तु आधुनिक समय में भारत विभाजन के उपरान्त, प्राचीन भारतीय संस्कृति के ये दोनों प्रमुख केन्द्र पाकिस्तान की सीमा में हैं।

नगर एवं सड़कों की बनावट देखने से पता चलता है कि नगर की रचना एक निश्चित योजनानुसार की गई है। सड़कें पूर्व से पश्चिम की ओर उत्तर से दक्षिण की ओर से सीधी रेखा में जाती हैं। प्रधान सड़कों की चौड़ाई ३३ फीट है। सहायक सड़कें ६ से १८ फीट तक चौड़ी हैं।

निश्चित योजनानुसार नगर रचना-दूषित जल निकालने की प्रणाली

गलियों की चौड़ाई ३ से ५ फीट तक है। सड़कें कच्ची थीं। परन्तु मुख्य राजपथ पर कुछ स्थानों पर ईंटों का प्रयोग किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय में भी पक्की सड़क बनाने का प्रयत्न अवश्य किया गया होगा। सड़कों और गलियों के दोनों तरफ मकानों का निर्माण किया गया था। मकानों की दीवारें अब भी भग्नावशेष के रूप में विद्यमान हैं। ये मकान भी एक निश्चित क्रम से बने हुए हैं। इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि उस समय में नगर रचना के लिए एक ऐसा संगठन अवश्य बना हुआ होगा जिसका सब लोग पालन करते रहे होंगे।

सिन्धु सभ्यता की सबसे अधिक आश्चर्यजनक वस्तु है—गन्दे पानी को नगर से बाहर निकालने वाली नाली प्रथा। प्रत्येक मकान में यत्र तत्र नालियां लगी हुई थी। ये नालिया गलियों की नालियों में मिल जाती थीं और गलियों की नालियां सहायक सड़कों की नालियों से सम्बन्धित थीं, जो प्रमुख सड़कों की नालियों में मिलती थी। ये नालियां पक्की बनी हुई हैं। फर्श चूने और पत्थर की मिट्टियों से बना हुआ है। उसके उपरान्त चूने की सहायता से ईंटों की [illegible] की गई है। नालियों के ऊपर पत्थर की पटिया रखी गई थीं जो सुगमता-

पूर्वक हटाई भी जा सकती थीं। ताकि उसे सुगमता से साफ किया जा सके। उस युग की यह प्रथा आज के युग से काफी मिलती जुलती है। इस प्रकार की व्यवस्था सिन्धु सभ्यता की अपनी मौलिक देन थी क्यों कि उस समय तक विश्व की अन्य सभ्यताओं में ऐसी प्रथा का विकास नहीं हो पाया था। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि उस युग के निवासी पानी का अत्यधिक प्रयोग करते थे अर्थात उस युग में सिन्धु प्रांत पानी से परिपूर्ण था। आज की तरह पानी की कमी नहीं थी।

सिन्धु सभ्यता के इन नगरों में पानी के लिए कुए विद्यमान थे। ये कुए व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक प्रकार के पाये जाते हैं। इन कुओं के व्यास की चौड़ाई २ फीट से ले कर ७ फीट तक की है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन कुओं से रस्से की सहायता से पानी खींचा जाता था क्योंकि कुओं पर रस्सों के निशान आज भी विद्यमान हैं।

उस युग के मकानों का निर्माण ईंटों द्वारा किया जाता था। ईंटें कई प्रकार की मिली हैं। कुछ लम्बी और कुछ छोटी साइज की। शायद छोटे माप की ईंटें छोटे मकानों के निर्माण के लिए तथा बड़े आकार की बड़े मकानों के प्रयोग में लाई जाती थीं। दीवार में ईंटों को चुनने के लिए मिट्टी का गारा और अधिक मजबूती के लिए चूने का प्रयोग किया जाता था। मकानों का

भवनों की रचना

आकार प्रायः २६×३० फीट होता था। परन्तु एक दो विशाल भवन भी मिले हैं। इन मकानों की ऊंचाई २५ से लेकर ३० फीट तक होती थी और अधिकाश मकान दो मंज़िले होते थे। मकान की छत लकड़ी की होती थी और उस पर चूने तथा मिट्टी का पक्का फर्श होता था। ऊपर की मंजिल तक जाने के लिए लकड़ी की सीढ़ियां होती थी। इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि सिन्धु सभ्यता के निवासी कम से कम जगह में सुविधाजनक घरों के निर्माण में अत्यन्त ही दक्ष रहे होंगे। मकान में अलमारियां तथा खूंटियों एवं चटखनियों का भी प्रयोग होता था। शायद बढ़िया फर्नीचर का भी प्रयोग किया जाता था। मकानों के बीच में प्रायः सहन [आंगन] होता था जिसके मध्य भाग में यज्ञ वेदी के समान कुछ मिला है। शायद तुलसी का वृक्ष लगाया जाता होगा। मकान के

एक हिस्से में रसोई घर, स्नान घर, पूजागृह, शयनकक्ष आदि होते थे और दूसरी तरफ शौचालय। दो विशाल भवनों का पता चला है। ये भवन या तो सचिवालय रहे होंगे या सार्वजनिक मंत्रणागृह अथवा वाचनालय और कौन कह सकता है कि इनमें महान् शासकों अथवा धनिकों के बच्चों की किलकारियों का उल्लुनन ही न रहा हो। अभी कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

महान स्नानागार

मोहनजोदड़ो की सबसे अधिक आकर्षक और भव्य इमारत है, एक विशाल जलाशय या महान् स्नानागार जिसका आकार है—३६।'×२३॥'×८'। यह जलाशय पक्की ईंटों का बना हुआ है। इसमें नीचे जाने के लिए तीन तरफ से सीढ़ियां बनी हुई हैं। जलाशय के चारों तरफ एक गैलरी है जो १५ फीट चौड़ी है। जलाशय के तरफ आठ कमरे बने हुए हैं वे कमरे शायद निवास के काम में या वस्त्र बदलने के काम में आते होंगे। एक
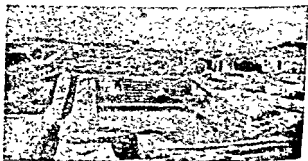
मोहनजोदड़ो का स्नानागार

तरफ एक विशाल कमरा है जो कि हम्माम के काम में आता होगा। जलाशय में पानी पहुँचाने के लिए पास ही एक कुएं से पक्की नाली बनी हुई है। जलाशय के पास वाले कमरों में शायद गर्म पानी करने का प्रबन्ध या रसोई बनाने का कार्य होता होगा क्योंकि वहां पर जली हुई लकड़ी मिली है, हम निश्चित रूप से

नहीं कह सकते कि यह जलाशय सार्वजनिक था या विशेष धार्मिक उत्सवों के कार्य के लिये था अथवा किसी धनिक का जल विहार क्रीड़ा क्षेत्र।

सिन्धु सभ्यता के इन नगरों के चारों तरफ परिखा और प्राकार के भी अवशेष उपलब्ध हुए हैं। जिससे ज्ञात होता है कि बाह्य आक्रमणों से बचने के लिये नगरों को दुर्ग का रूप प्रदान किया गया होगा। प्रमुख सड़कों पर दुकानों के खंडहर भी मिले हैं। इन नगरों के बाहर छोटे छोटे ग्रामों का भी अस्तित्व रहा होगा।

धार्मिक विचार धारा

सिन्धु सभ्यता के निवासियों के धर्म के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि किसी पूजा स्थान या मंदिर के अवशेष हमें प्राप्त नहीं हुए हैं। केवल उपलब्ध अवशेषों के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है क्योंकि जो मूर्तियां मिली हैं वे भी खंडित अवस्था में मिली हैं। इस प्रकार के अवशेष निम्न हैं—(१) पत्थर की मूर्ति जिसकी लम्बाई सात इंच है और जो कमर के नीचे से टूटी हुई है। इसकी विशेषताएं निम्न हैं—(अ) चोगा पहने हुए है परन्तु बायें कधे के ऊपर और दांई भुजा के नीचे है, (आ) भाल पर तीन छिद्रों वाली पुष्पाकृति बनी है, (इ) मूर्ति के पुरुष की मूंछे मुंडी हुई हैं और दाढ़ी विद्यमान है (ई) ध्यानमग्न मुद्रा। मूर्ति की विशेषताओं को देखते हुए यह मानना पड़ता है कि उपर्युक्त मूर्ति किसी देवता की प्रतिमा है परन्तु किस धर्म के देवता की है सो नहीं कह सकते क्योंकि इसमें सुमेरियन, असीरियन तथा वैदिक धर्मों की विशेषताओं का समन्वय है। (२) देवी मूर्तियां मिट्टी की बनी स्त्री मूर्तियां बहुत बड़ी संख्या में मिली हैं। कुछ मूर्तियों का अग्रभाग धूम्र कालिमा से आच्छादित है जिससे यह अनुमान लगाया जाता है कि आधुनिक हिन्दू धर्म की भांति उस समय भी दीप-पूजा या धूप-पूजा की प्रथा प्रचलित रही होगी। इसके अतिरिक्त मूर्ति का कमर से ऊपर का भाग नग्न है और नीचे के भाग पर बहुत ही बारीक आवरण दिखलाया गया है। मूर्ति पर बहुत से आभूषण भी अंकित किये गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उस युग में मातृ-देवता की उपासना की जाती रही होगी। आधुनिक हिन्दू धर्म में आज भी

(आ) मातृशक्ति की उपासना (इ) दीपक उपासना (ई) प्राकृतिक उपासना (उ) पशुपति शिव की उपासना (ऊ) जादू टोना, मन्त्र-तावीज में विश्वास तथा (ए) पुष्पांजलि, तुलसी पूजा आदि।

विशाल नगरों की सत्ता उस युग की समृद्धि की प्रतीक है। लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि था। गेहूँ और जौ की प्रधानता थी। इसके कुछ अवशेष भी पाये गये हैं इसके अतिरिक्त वे माँस, मछली तथा अण्डे का भी प्रयोग करते थे। दूध, दही, घी की कमी नहीं थी। फलों का प्रयोग भी किया जाता था। खजूर बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध था। वे लोग पशुपालन का कार्य भी करते थे और पालतू पशुओं में गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी, सूअर, आदि प्रमुख थे। ऊंट तथा बिल्ली के बारे में निश्चित ज्ञान नहीं है। परन्तु वे लोग हाथी, शेर, घोड़े, भालू, बन्दर, गैंडे, बाघ आदि से परिचित थे।

आर्थिक स्थिति कृषि, व्यवसाय तथा उद्योग-धंधे

उस समय में कपास की भी खेती की जाती थी। कपास से सूत तैयार किया जाता था और उससे कपड़ा। एक कलश के चारों तरफ लिपटा हुआ सूती कपड़ा मिला है। इसके अतिरिक्त सूत कातने की 'तकलियां' भी प्राप्त हुई हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि सिन्धु लोग कपड़े का व्यापार दूर दूर तक करते थे। प्राचीन ईराक में सूती कपड़े को 'सिन्धु' कहते थे।

सिन्धु निवासी मिट्टी के बर्तन बनाने की कला में बहुत निपुण थे। बहुत से अवशेष भी मिले हैं। कुम्हार के चाक—जिस पर इन बर्तनों को बनाया जाता था—भी प्राप्त हुए हैं। इन बर्तनों पर विविध प्रकार के चित्रों एवं आकृतियों को अंकित किया जाता था। उन्हें भट्टी में पकाया जाता था और चमकाने के लिये विशेष प्रकार का लेप किया जाता था। कटोरे-कटोरियाँ, रकाबियां, सुराहियां आदि के अवशेष भी मिले हैं।

उस युग के निवासी हाथी दांत की कला में बहुत कुशल थे। एक फूलदान जो कि हाथी दाँत का बना हुआ है प्राप्त हुआ है। यह अति सुन्दर है और इस पर अनेक रेखाचित्र अंकित हैं। हाथी दांत शिल्प के क्षेत्र में लोकप्रिय था।

मूर्तिकला में सिन्धु सभ्यता के कलाकार बहुत आगे बढ़ चुके थे। बहुत सी मूर्तियों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त एक कांसे की निर्मित नर्तकी की नृत्यमुद्रा में मूर्ति मिली है जो अति सुन्दर है। भावों का चित्रण बहुत सफलतापूर्वक किया गया है। पशु प्रतिमाओं का चित्रण भी उच्चकोटि का था।

सिन्धु सभ्यता के निवासियों को आभूषणों में विशेष रुचि थी। स्त्री एवं पुरुष दोनों आभूषणों को पहनते थे। आभूषणों पर जड़ाई का कार्य अति सुन्दर होता था। एक मकान के फर्श के नीचे से एक आभूषणों का कलश मिला है। उसमें लगभग ५१० प्रकार के आ[illegible] मिले हैं। इन आभूषणों में स्वर्ण निर्मित बाजूबन्द से ले[illegible] छोटे २ मनके तक सम्मिलित हैं अर्थात् बाजूबन्द, नेक[illegible] अंगूठी, कर्णफूल, चूड़ियां, पायजेब, करधनी इत्यादि। कला की दृष्टि से आभूषण अत्यन्त सुन्दर हैं। इन आभूषणों में बहुमूल्य पत्थरों—लाल मा[illegible] पन्ना, मूंगा, मोती आदि का भी प्रयोग किया गया है।

आभूषणों का प्रयोग

सिन्धु निवासियों को अनेक धातुओं का ज्ञान था और वे अपने दै[illegible] व्यवहार के लिये इन धातुओं से निर्मित वस्तुओं का प्रयोग करते थे। प[illegible] उन्हें लोहे का ज्ञान नहीं था। स्वर्ण, चाँदी, तांबा, कांसा, टी[illegible] आदि धातुओं का ज्ञान था। चांदी के केवल तीन बर्तन ही मि[illegible] हैं। तांबे की एक कुल्हाड़ी—जो कि ११ इंच लम्बी है व[illegible] वजन में दो सेर है—मिली है। इसी प्रकार तांबे का एक आरा भी मिला है १६॥ इंच लम्बा है। अन्य शस्त्रों में तलवार, परशु, कटार, धनुष बाण, भा[illegible] भाला छुरी आदि मिले हैं।

धातु ज्ञान

सिन्धु सभ्यता के निवासी व्यापार में अधिक रुचि रखते थे। तौल बहुत से बाट भी उपलब्ध हुए हैं। ये पत्थर के बने हैं और [illegible] घन के [illegible] में हैं। यदि सबसे छोटे बाट को जो कि तौल में १३.६४ ग्रा[illegible] ([illegible]) है, एक इकाई मान लिया जाय तो १,२,४,८,१६ ३२, ६४, १६०, २००, ३२० और ६४० इकाइयों के [illegible] बाट प्राप्त हुये हैं। आधुनिक [illegible] प्रणाली भी सम्भवतः इन्हीं [illegible] [illegible] की है।

नाप तौल के बाट

उपलब्ध मुद्राओं में से अनेक मुद्राओं पर अंकित लेख तथा ताम्रपत्रों और मिट्टी के बर्तनों पर उत्कीर्ण लेख इस बात के साक्षी हैं कि उस युग के निवासियों को लेखन कला ज्ञात थी। मोहंजोदड़ो की लिपि अभी लिपि और तक पढ़ी नहीं जा सकी है और इसी कारण इस सभ्यता का लेखन कला इतिहास अंधकार में है। ये लेख चित्रलिपि में हैं जिसका प्रत्येक चिन्ह किसी विशेष शब्द या वस्तु को प्रकट करता है। इस प्रकार के कुल चिन्हों की संख्या ३९६ है जबकि प्राचीन सुमेरियन लिपि में लगभग ६०० और उरुक की प्राचीन लिपि में लगभग २००० चिन्ह हैं। ज्यों ज्यों लेखन कला विकसित होती जाती है, लिपि चिन्ह कम होते जाते हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि इस स्थिति में आने के पूर्व सिन्धु सभ्यता को हजारों वर्षों में से गुजरना पड़ा होगा। सिन्धु सभ्यता की लिपि की प्रथम पंक्ति दाहिनी ओर से बाईं ओर, और दूसरी पंक्ति बाईं ओर से दाहिनी ओर लिखी जाती थी। उस युग में कलम-दवात का भी प्रयोग जारी हो चुका था।

सिन्धु सभ्यता नगर सभ्यता थी। अतः यह स्वाभाविक ही था कि वहाँ के लोग आमोद-प्रमोद में विशेष रुचि लें। उस युग में आमोद-प्रमोद के प्रमुख साधन थे—नृत्य, संगीत, रथदौड़, घुड़दौड़, मल्लयुद्ध, शिकार, आमोद-प्रमोद चौपड़-पासा इत्यादि। उपलब्ध अवशेषों में नर्तकी की प्रतिमा मिली है तथा एक मुद्रा पर नृत्य-मंडली भी अंकित है। इसी प्रकार एक अन्य मुद्रा पर आखेट करते हुये मनुष्य की आकृति अंकित है। चौपड़ खेलने के पासे भी प्राप्त हुये हैं और पहियेदार गाड़ी के अवशेष भी। इसके अतिरिक्त और भी साधन रहे होंगे जिनका हमें पूर्ण ज्ञान नहीं है।

सिन्धु सभ्यता के निवासी अपने मृत सम्बन्धियों का अग्नि-संस्कार करते थे। मिट्टी के बहुत से घड़ों में भस्म मिली है। शायद ये लोग भी भस्म को जल प्रवाहित करते थे। मृतकों को भूमि में दफनाने के चिन्ह भी मिले हैं। लाशों के साथ खाने पीने की वस्तुएं रखी जाती थीं। शायद लाशों को पहाड़ों की चोटियों पर या मैदानों में जानवरों के लिये भी छोड़ दिया जाता था और कभी-कभी जल समाधि भी दे दी जाती थी।

आधुनिक हिन्दुत्व में सिन्धु सभ्यता के निम्न लक्षण पाये जाते हैं— बहुदेवतावाद, मातृशक्ति की उपासना, दीपक-प्रथा, तुलसी-पूजा पशु-पूजा, मूर्ति-पूजा, शिव उपासना, लिंग उपासना, पुष्पांजलि, ठाकुरजी [शालिग्राम] पूजा, मृतकों का अग्नि-संस्कार, जादू-टोना, मन्त्र-तन्त्र, तावीज आदि, देवताओं का मानवीकरण, यज्ञ-अनुष्ठान, जल पूजा, सूर्य-पूजा आदि। बहुत से विद्वानों की धारणा है कि हमारा हिन्दू-धर्म एवं सभ्यता सिन्धु सभ्यता की ऋणी है— उससे प्रभावित है।

सिन्धु सभ्यता एवं वैदिक सभ्यता

बहुत से विद्वानों का कथन है कि सिन्धु सभ्यता तथा वैदिक सभ्यता में विशेष सम्बन्ध एव समानता है। सर जॉन मार्शल ने इन दोनों सभ्यताओं में निम्नलिखित अन्तर बतलाया है (१) सिन्धु सभ्यता नागरीय तथा व्यापार प्रधान थी परन्तु वैदिक सभ्यता ग्रामीण और कृषि प्रधान थी। सिन्धु निवासी मरु निर्मित विशाल भवनों में निवास करते थे और वैदि लोग व नों से निर्मित पर्ण कुटीर में।

(२) धातु के प्रयोग में भी अन्तर था। सिन्धु वालों को लोहे का ज्ञा नहीं था। वे सोने-चांदी, तांबे, शीशे तथा कांसे का प्रयोग करते थे। वैदि काल में इन धातुओं के अतिरिक्त उन्हें लोहे का भी ज्ञान था। अतः सिन् सभ्यता उससे कहीं अधिक प्राचीन थी।

(३) अस्त्र-शस्त्र, विशेष कर रक्षा के अस्त्र-शस्त्र में महान् अन्त था। वैदिक काल के लोग कवच तथा शिरस्त्राण का प्रयोग करते थे। सिन्धु सभ्यता वाले इनसे अनभिज्ञ थे।

(४) मांसाहार की दृष्टि से भी अन्तर था। वैदिक आर्य मांस को घृणा की दृष्टि से देखते थे। जब कि सिन्धु निवासी अत्यन्त रुचि के साथ इसका प्रयोग करते थे।

(५) सिन्धु निवासी व्याघ्र और हाथी से परिचित थे और उनका आखेट तथा पालन करते थे परन्तु वैदिक कालीन लोग इनसे विशेष परिचित नहीं थे।

(६) गाय की महत्ता में भी अन्तर था। वैदिक लोग इसे पूज्य मानते थे। सिन्धु लोग बैल को ज्यादा महत्व देते थे।

(७) वैदिक लोग मूर्ति पूजक नहीं थे परन्तु सिन्धु निवासी मूर्ति-पूजक थे।

(८) सिन्धु निवासी लिंग-पूजा के उपासक थे, वैदिक लोग लिंग पूजा के घोर विरोधी थे।

(९) सिन्धु लोगों को लेखन कला का उतना ज्ञान नहीं था जितना कि वैदिक लोगों को। दोनों की लिपि में रात दिन का अन्तर था।

इस महान सभ्यता के निर्माता लोग कौन थे? इस प्रश्न का उत्तर सुगमतापूर्वक नहीं दिया जा सकता क्योंकि न तो इस सभ्यता की लिपि ही पढ़ी जा सकी है और न ही अस्थि-कंकालों का अध्ययन ही। जो कुछ अध्ययन किया गया है उसके आधार पर केवल इतना ज्ञात हो सका है कि सिन्धु सभ्यता के निवासी विभिन्न जातियों के वंशज थे। किसी एक जाति के द्वारा इस महान सभ्यता का निर्माण नहीं हुआ था। ठीक इसी तरह इस सभ्यता के विनाश या लुप्त हो जाने के कारण भी भू-गर्भ में छिपे पड़े हैं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) सिन्धु सभ्यता के लक्षण बतलाते हुए उस पर एक निबन्ध लिखिए।

(२) सिन्धु सभ्यता के नगर, भवन तथा विशाल जलाशय के बारे में क्या जानते हो? विस्तार से समझाइए।

(३) सिन्धु सभ्यता और वैदिक सभ्यता में क्या समानता या असमानता पाई जाती है?

(४) आधुनिक हिन्दुत्व में सिन्धु सभ्यता के कौन कौन से लक्षण पाये जाते हैं?

(२) आर्यों की सभ्यता

आर्यों का आगमन

आर्यों के आगमन के पूर्व भारत में द्राविड़ जाति का निवास था २००० ई० पूर्व के लगभग उत्तर पश्चिम की राह से एक नवीन जाति ने भारत में प्रवेश किया। इस जाति के लोग लम्बे डील डौल, हृष्ट पुष्ट, गौर वर्ण के, लम्बी नासिका वाले वीर तथा साहसी थे। उन्होंने द्राविड़ जाति को पराजित करके उत्तर से दक्षिण की ओर खदेड़ दिया। इन लोगों ने अपने आप को 'आर्य' कह कर पुकारा। आर्य शब्द का अर्थ है—उच्चवंश का। आर्य जाति के मूल निवास स्थान के बारे में विद्वानों के भिन्न २ मत हैं।

मूल निवास स्थान

आर्यों का मूल निवास स्थान आज भी एक समस्या बनी हुई है जिसका समुचित समाधान नहीं हो पाया है। विद्वानों ने भाषा विज्ञान, पुरातत्व निरीक्षण जातीय विशेषताओं एवं शब्दार्थ भाषा विज्ञान के आधार पर अपने अपने मत स्थापित किये हैं। इन मतों को चार प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है—[१] यूरोपीय सिद्धान्त [२] मध्य एशिया का सिद्धान्त [३] आर्कटिक प्रदेश का सिद्धान्त तथा [४] भारतीय सिद्धान्त।

(१) यूरोपीय सिद्धांत—विद्वानों का मत है कि इंगलैण्ड, जर्मनी ईरान, भारत आदि में बसने वाले आर्यों के पूर्वज किसी एक समय में एक निश्चित स्थान पर रहे होंगे और फिर कुछ विशेष कारणों से अलग-अलग दिशाओं एवं देशों में बस गये। इस प्रकार की धारणा का कारण विभिन्न भाषाओं के विविध शब्दों की समानता है:—जैसे माता तथा पिता शब्दों की समानता।

संस्कृत	पारसक	यूनानी	लैटिन	अंग्रेजी
पितृ	पितर	पेटर	पेटर	फादर
मातृ	मतर	मेटर	मेटर	मदर

(अ) हंगरी का मैदान—डा० पी० गाइल्स के अनुसार आर्यों का मूल निवास-स्थान हंगरी का मैदान था। आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थों— ऋग्वेद तथा अवेस्ता में वर्णित वृक्ष, पशु, प्राकृतिक स्थिति इस मैदान से मिलती जुलती है।

हंगरी से आर्य लोग ईरान की ओर आये और वहाँ पर उनमें मतभेद हो गया। ईरानी लोग अहुर मज्द की पूजा करने लग गये और दूसरे आर्य इन्द्र, वरुण, मरुत, सोम आदि की। अहुर मज्द के उपासक असुर कहलाये और प्राकृतिक शक्तियों के उपासक देव कहलाये। देव-असुर संग्राम में असुर विजयी हुये और उन्होंने देवों को भारत में खदेड़ दिया।

(आ) जर्मनी प्रदेश—पेन्का ने जर्मन प्रदेशों को आर्यों का मूल निवास स्थान बतलाया है। उसमें जातीयता को आधार माना है। जर्मनी की स्कैन्डनेवियन जाति पर कभी किसी ने अधिकार नहीं किया और उसकी भाषा अन्य भाषाओं के अधिक निकट है।

(इ) दक्षिणी रूस—नेहरिंग तथा पोकार्नी ने दक्षिणी रूस के स्टेप्स के मैदानों को आर्यों का मूल स्थान माना है त्रिपोल्जे (युक्रेराइन) स्थान पर प्राप्त ३००० ई० पू० के पात्रों के आधार पर इस मत की स्थापना की गई है।

यूरोपीय सिद्धान्त के समर्थकों का कहना है कि सभ्यता का आगमन हमेशा पश्चिम से पूर्व को हुआ है न कि पूर्व से पश्चिम को। इसके अतिरिक्त यूरोप की प्राकृतिक स्थिति गमनागमन के अनुकूल भी है।

(२) मध्य एशिया का सिद्धान्त—जर्मन इतिहासकार व दार्शनिक मैक्समूलर ने मध्य एशिया को मूल निवास स्थान माना है। अनेक विद्वानों ने इस मत का समर्थन भी किया है। उनका कथन है कि आर्यों के बारे में ज्ञान हमें वेदों तथा अवेस्ता से होता है। भारतीय आर्यों ने वेदों की तथा ईरानी आर्यों ने अवेस्ता की रचना की और इन दोनों ग्रन्थों में काफी समानता है। अतः मध्य एशिया ही आर्यों का मूल निवास स्थान होना चाहिये। यहाँ से ईरान, यूरोप, भारत तीनों जगह जाना सम्भव है।

(३) आर्कटिक प्रदेश का सिद्धान्त—लोकमान्य बालगंगाधर के मत से आर्यों का मूल निवास स्थान उत्तरी ध्रुव प्रदेश था। तिलक जी ने वेदों में उल्लिखित लम्बी रातों और दिनों के आधार पर अपना मत स्थिर किया था। ये बातें उत्तरी ध्रुव में पाई जाती हैं।

(४) भारतीय सिद्धान्त—अनेक भारतीय विद्वानों के अनुसार आर्यों का मूल निवास स्थान सप्त सैन्धव प्रदेश था। इन विद्वानों में श्री अविनाशचन्द्र-

वैदिक भारत
English Miles
विदेह
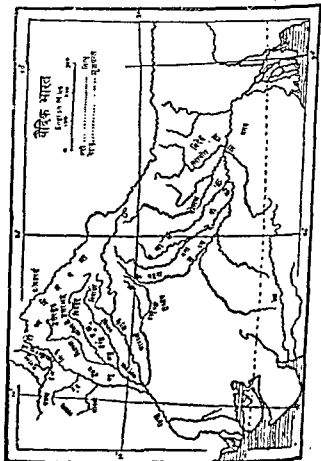
दास, श्री गंगानाथ झा, श्री डी. एस. त्रिवेदी तथा श्री एल. डी. कल्ला प्रमुख हैं। वे अपने पक्ष में निम्न प्रमाण देते हैं—(अ) आर्यों को विदेशी ठहराने का कोई ठोस प्रमाण नहीं है। (आ) संस्कृत भाषा से अन्य भाषाओं की उत्पत्ति का सिद्धान्त (इ) वैदिक साहित्य का आर्यों का आदि साहित्य होना (ई) सोम की बूटी का पाया जाना (उ) भौगोलिक परिस्थिति की अनुकूलता। परन्तु इस मत को अभी तक सर्व सम्मत नहीं माना गया है। साधारणतया मध्य यूरोप को आर्यों का मूल निवास स्थान माना जाता है।

भारतीय आर्यों की सभ्यता एवं संस्कृति का ज्ञान हमको अनेक धार्मिक ग्रन्थों—ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद, ब्राह्मण, अरण्यक तथा उपनिषदों से मिलता है। ऋग्वेद तथा अन्य ग्रन्थों में सैकड़ों वर्षों का अन्तर है इसलिये आर्य सभ्यता को दो भागों में विभाजित कर दिया है—(१) ऋग्वैदिक सभ्यता जिसका ज्ञान ऋग्वेद से मिलता है। तथा (२) उत्तरवैदिक सभ्यता—जिसका ज्ञान बाद के ग्रन्थों में मिलता है। परन्तु अध्ययन की दृष्टि से हम दोनों कालों की सभ्यता के पृथक् अंगों का विकास साथ ही साथ करेंगे।

ऋग्वैदिक एवं उत्तर वैदिक सभ्यता

ऋग्वैदिक काल में आर्यों का प्रसार सप्त सैन्धव प्रांत काबुल, अफगानिस्तान तथा पंजाब तक सीमित था। परन्तु उत्तरवैदिक काल में उनका प्रसार *गंगा यमुना के मैदान, अग एवं बंग तथा मध्य प्रदेश तक हो चुका था।*

राजनीतिक स्थिति—ऋग्वैदिक कालीन आर्यों का राजनीतिक विकास प.च संगठनों के द्वारा हुआ। (अ) गृह अथवा कुल सामाजिक एव राजनीतिक संगठन की मूलभूत इकाई थी। कुल के मुखिया को पिता कहा जाता था.। (आ) कई कुलों के समूह की संज्ञा को ग्राम कहते थे। अर्थात् कई परिवारों को मिलाकर ग्राम बनता था। ग्राम का मुखिया 'ग्रामणी' कहलाता था। (इ) कई ग्रामों के समूह को मिलाकर 'विश' बनता था। कुछ का मत है कि रक्त से संबंधित कबीले को 'विश' कहा जाता था। इसका मुखिया 'विशपति' कहलाता था। (ई) विश से बड़े समूह को 'जन' कहा जाता था। जन का मुखिया 'गोप्ता' या 'रक्षक' होता

संगठन

था। (३) कई 'जन' मिलकर देश या राष्ट्र का रूप लेते थे। इसके मुखिया को 'राजा' कहा जाता था।

उत्तर्वैदिक काल में भी राजनीतिक संगठन की यही प्रणाली थी। ऋग्वैदिक काल के राजतंत्र के लक्षण भिन्न २ देशों में पृथक् २ थे। कहीं कहीं पर वंशानुसार राज्याधिकार की प्रथा थी। अर्थात् राजा की मृत्यु के उपरान्त सबसे बड़े पुत्र को राजा बनाया जाता था। कहीं-कहीं निर्वाचन प्रणाली का प्रचलन था अर्थात् प्रजा द्वारा राजा का निर्वाचन किया जाता था। कहीं-कहीं पर सामूहिक राजतंत्र की पद्धति थी अर्थात् प्रमुख कुलीन वर्गों के प्रमुख व्यक्तियों का शासन और कहीं कहीं पर प्रजातन्त्र की झलक भी दिखाई पड़ती थी।

राजतन्त्र के लक्षण

उत्तरवैदिक काल में वंशानुगत राज्याधिकार की प्रथा का विकास हुआ और सामूहिक राजतंत्र का अवसान। निर्वाचन पद्धति जारी थी, परन्तु निर्वाचन का अधिकार राज्यवंश के व्यक्तियों तक ही सीमित हो गया था प्रजा का अधिकार लुप्त हो गया। प्रजातांत्रिक पद्धति की झलक तो मिलती है परन्तु महत्व कम हो गया था।

ऋग्वैदिक काल में छोटे-छोटे राज्यों का उल्लेख मिलता है और वह भी न्यून संख्या में। उस समय केवल पांच जनों का उल्लेख है पुरु,तुर्वस, यदु, अनुस तथा द्रुहु। यद्यपि राज्य छोटे-छोटे होते थे परन्तु राजाओं के अधिकार एवं वैभव बड़े-बड़े थे।

प्रमुख राज्य

उत्तरवैदिक काल में बड़े-बड़े राज्यों का विकास हुआ। इन राज्यों में प्रमुख राज्य थे-कुरु, पांचाल, कौसल, काशी, विदेह, मगध, अंग आदि। छोटे २ राज्यों की संख्या में तो अत्यधिक वृद्धि हुई।

प्रारम्भिक काल में राजा के पद की उन्नति के बारे में श्री राधा कुमुद मुकर्जी ने लिखा है—"वैदिक राजतंत्र आर्य लोगों का एक विरोधी देश में आक्रमणकर्ता के रूप में घिरी हुई परिस्थितियों की स्वाभाविक उपज था।" प्रत्येक गण का एक राजा होता था राजा के कर्तव्यों का निश्चित रूप से निरूपण नहीं मिलता। राविलसन के कथनानुसार "दयालुता की

राजा तथा उसके कर्त्तव्य

दृष्टि से उसे 'मित्र' के समान गुणों में वरुण के समान तथा पराक्रम में इन्द्र के के समान होना आवश्यक था।" उस समय राजा के निम्न कर्तव्य थे– (अ) प्रजा की रक्षा (आ) शत्रु से युद्ध (इ) शांति काल में यज्ञों का अनुष्ठान (ई) प्रजा की भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति (उ) गुप्तचर व्यवस्था की स्थापना (ऊ) अपराधियों को दंड आदि। प्रजा राजा को उसके उपलक्ष में बलि (कर) देती थी। यह एक प्रकार का संविदा था जो राजा और प्रजा के मध्य में होता था। अर्थात् राजा प्रजा की सुरक्षा करे और प्रजा कर देगी।

उत्तरवैदिक काल में राजा के स्थान पर कई उपाधियां प्रचलित हो गई थीं। सम्राट् (पूर्व में) भोज (दक्षिण में) स्वराट् (पश्चिम) विराट् (उत्तर में) इस युग को दूसरे शब्दों में साम्राज्यवादी युग कह सकते हैं। क्योंकि साम्राज्य-वाद का प्रादुर्भाव हो चुका था। राजा के कर्तव्य वही थे परन्तु अधिकार बढ़ गये थे। उत्तरदायित्व के स्थान पर व्यक्तिगत भोग विलास की अभिवृद्धि हुई। स्वच्छन्द प्रवृत्ति की प्रधानता बढी, ब्राह्मण वर्ग का उत्थान हुआ। प्रजा पर करों का बोझ बढा। राजसूय यज्ञ, अश्वमेघ यज्ञ, राज्याभिषेक यज्ञ आदि यज्ञों का प्रचार हुआ।

राजा के अधिकारी

ऋग्वैदिक काल में राजा के प्रमुख अधिकारी पुरोहित, ग्रामणी और सेनानी होते थे। पुरोहित का महत्व बहुत अधिक था। वह राजा का शिक्षक, पथ प्रदर्शक और मित्र होता था। उत्तरवैदिक काल में राजा के कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि हुई। उपर्युक्त कर्मचारियों के अतिरिक्त-महिषी, वात्राता, परिवृत्ति, भूत दौवारिक संग्रहीता; माग यधु कूं, अक्षावाप आदि और नये अधिकारी नियुक्त किये गये।

सभा और समिति

ऋग्वैदिक काल में राजा की सत्ता को नियंत्रित करने का कार्य जनता की प्रतिनिधि संस्थायें—सभा और समिति के पास था। सभा के स्वरूप तथा कार्यों का निश्चित रूप अप्राप्य है। शायद यह वृद्ध एवं प्रौढ़ लोगों की परिषद् थी और इसकी सदस्यता भी सीमित होती थी। सभा के निर्णयों का काफी प्रभाव होता था और राजा को सभा के निर्णय को मानना पड़ता था। सभा राजा को

पदच्युत करने की शक्ति भी रखती थी। समिति वयस्क नागरिकों की परिषद् थी। इसमें विविध वक्ता लोग राज कार्यों पर विचार विमर्श करते थे। परन्तु इसके निर्णयों का महत्व सभा से कम था।

प्रसिद्ध विद्वान लुडविग का कथन है कि "समिति एक विस्तृत परिषद् थी जिसमें न केवल साधारण लोग बल्कि ब्राह्मण तथा सामन्त लोग भी सम्मिलित थे तथा सभा वृद्ध लोगों की या कुलीन सामंतों की परिषद् थी।"

उत्तर वैदिक काल में इन संस्थाओं का महत्व कम हो गया तो भी पूर्ण रूप में भी हीन नहीं हुई थी। सभा अब भी न्याय का कार्य करती थी। अब भी इन संस्थाओं में राजा को पदच्युत करने की शक्ति बाकी थी।

ऋग्वैदिक कालीन न्याय व्यवस्था के बारे में बहुत ही कम ज्ञान प्राप्त है। राजा स्वयं या पुरोहित की सहायता से न्याय करता था। संभवतः राजा के न्याय सम्बन्धी अधिकार सीमित थे। निम्न अपराधों का उल्लेख आता है—चोरी डकैती, सैंध लगाना, जानवरों की चोरी, पर-स्त्री का

न्याय व्यवस्था

विचार, ऋण न चुकाना आदि। अपराधियों को क्या दंड दिया जाता था, इस विषय पर भी मतभेद है। मारे गये मनुष्यों के सम्बन्धियों को धन देकर समझौता हो सकता था। अर्थात् प्राण दण्ड के लिये द्रव्य देकर मुक्ति प्राप्त हो सकती थी। गेल्डनर के विचार से तप्त परशु से अपराधियों की परीक्षा होती थी। लुडविग के अनुसार अग्नि तथा जल परीक्षा होती थी।

उत्तर वैदिक काल में न्याय के क्षेत्र में राजा के अधिकारों में वृद्धि हुई। गाँवों में न्याय का कार्य ग्राम सभा के हाथ में आ गया। ब्राह्मण वर्ग को विशेषाधिकार प्राप्त हुए। उत्तराधिकार का नियम भी प्रचलित हुआ। पितृ प्रधान युगों में सम्पत्ति का विभाजन स्वीकृत हुआ। अहिंसा का सिद्धान्त अभी विकसित नहीं हुआ था। अपराध एवं उनकी सजाएँ लगभग ऋग्वैदिक काल की ही थीं।

ऋग्वैदिक काल में सेना के संगठन का विशेष महत्व नहीं था। सारा कबीला [illegible] ही युद्ध करने में परन्तु राजा एवं प्रमुख सेनानी स्वयं ही युद्ध

करते थे। अश्वसेना की कमी थी और हाथियों का प्रयोग भी साधारण था।

युद्ध-विधि

कवच, शिरस्त्राण, बाहुरक्षक, धनुष बाण, भाला, परशु, तलवार आदि का प्रयोग किया जाता था। युद्ध प्रायः नदियों के तटों पर या मैदानों में लड़े जाते थे। युद्ध धर्मानुसार लड़े जाते थे।

उत्तर कालीन युग में युद्ध विधि में तथा अस्त्र-शस्त्रों में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। परन्तु पारस्परिक युद्धों की संख्या बढ़ गई। इससे सैनिक शक्ति एवं संगठन का महत्व भी बढ़ा तथा इसकी आवश्यकता भी बढ़ी।

युद्ध के अस्त्र शस्त्र

सामाजिक स्थिति

ऋग्वैदिक आर्यों की सामाजिक व्यवस्था पितृ मूलक थी। पिता परिवार का मुखिया होता था उसके अधिकार विस्तृत थे। संयुक्त परिवार प्रणाली की प्रथा थी। अतिथि सत्कार पर जोर दिया जाता था। उस युग में बहु विवाह प्रथा का अभाव था परन्तु राजवंशों में बहु विवाह प्रथा थी। भाई बहन तथा पिता पुत्री में विवाह निषेध था। वर कन्या को जीवन साथी चुनने की स्वतन्त्रता थी। विवाह का प्रधान लक्ष्य संतानोत्पत्ति था, दहेज प्रथा तथा कन्या मूल्य दोनों प्रथा का प्रादुर्भाव हो चुका था। विधवा विवाह का निषेध तो नहीं था परन्तु उल्लेख नहीं मिलता। नियोग प्रथा न्याय संगत मानी जाती थी। सती प्रथा का राजवंशों में उल्लेख मिलता है। विवाह विच्छेद असंभव था। अंतर्जातीय विवाह होता था। स्त्री की स्थिति बहुत उन्नत थी। विवाह के पूर्व पिता के नियंत्रण में, विवाहोपरान्त पति के तथा पति की मृत्यु के उपरान्त पुत्र के नियंत्रण में रहती थी। शिक्षा का पूर्ण प्रबन्ध था। पर्दा प्रथा का अभाव था। स्त्री सार्वजनिक कार्यों में हिस्सा लेने की अधिकारिणी थी। कानून की दृष्टि से वह स्वतंत्र नहीं

थी। बहुत सी स्त्रियों ने 'मुनि' की पदवी भी प्राप्त कर ली थी और ऋग्वेद के मंत्रों की रचना की थी। उसमें गार्गी प्रमुख थी।

उत्तरवैदिक काल में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। गोद लेने की प्रथा का अभ्युदय हुआ। विवाह के लिये तीन चार पीढ़ियों को छोड़ दिया जाने लगा तथा गोत्र में ही विवाह करना पसन्द किया जाने लगा। विवाह के लिये जन्म का महत्व बढ़ा। बड़ों की शादी पहले करने की प्रथा का विकास हुआ। बहु-विवाह प्रथा का भी विकास हुआ। बाल विवाह का भी श्री गणेश हुआ।

इस युग में स्त्रियों की स्वतन्त्रता तथा उनके अधिकारों का हनन हुआ। पुत्री की उत्पत्ति दुःख का कारण मानी जाने लगी। सार्वजनिक सभाओं में भाग लेने पर प्रतिबन्ध लगाया जाने लगा।

आर्यों की वेशभूषा साधारण थी। वे मनोहर वस्त्रों अलंकारों तथा शृंगार का प्रयोग करते थे। उनके वस्त्रों में तीन वस्त्र प्रमुख होते थे— अधोवस्त्र [नीवी से नीचे का] अधिवस्त्र [उत्तरीय], तथा वेशास [परिधान]। वे सोग सूत ऊनी कपड़ों का प्रयोग करते थे। सोने का काम किया जाता था। मृग चर्म का प्रयोग भी किया जाता था।

आर्यों का भोजन साधारण होता था। दूध, दही, घी, मांस अण्डे आदि का प्रयोग किया जाता था। फलों और सब्जियों का भी प्रयोग किया जाता था। गेहूँ, जौ, चावल, बाजरा का भी काफी प्रयोग था। पेय पदार्थों में सोम का उत्सवों पर तथा सुरा का दैनिक जीवन में प्रयोग किया जाता था।

आमोद प्रमोद के साधनों में नृत्य तथा संगीत, चौपड़, शतरंज, शिकार, मल्लयुद्ध, रथदौड़, अश्वदौड़ आदि प्रमुख थे। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के साधनों से भी वे अपना मनोरंजन करते थे।

मृतक संस्कार प्रणाली के चार रूप मिलते हैं (१) अग्नि संस्कार (२) जल प्रवाह (३) भूमि समाधि तथा (४) पशु भक्षण। प्रथम संस्कार की प्रथा सर्व मान्य एवं सर्व प्रचलित प्रथा थी।

शिक्षा मौखिक होती थी। शिक्षा का प्रधान लक्ष्य बौद्धिक विकास तथा [illegible] की निर्मलता का विकास था। शिक्षा का आधार सारा जीवन और

शिक्षा उच्च विचार होता था। उस युग की शिक्षा ज्ञान के उच्चतम छोर का स्पर्श करती थी। प्रत्येक ऋषिकुल एक वैदिक विद्यालय का स्वरूप होता था। शिक्षा में धार्मिक ग्रन्थों के पठन-पाठन पर अधिक जोर दिया जाता था।

उत्तर वैदिक काल में गुरुकुलों का विकास हुआ। शिष्य के लिये गुरु आश्रम में रहना अनिवार्य हो गया। गुरु-दक्षिणा का विकास हुआ। अंकगणित, व्याकरण तथा वैदिक साहित्य के अध्ययन पर अधिक जोर दिया गया।

आर्थिक स्थिति ऋग्वैदिक काल में आर्थिक स्थिति की आधार शिला कृषि थी। हल का प्रयोग किया जाता था। धान तथा जौ की खेती अधिक की जाती थी। खाद का प्रयोग भी किया जाता था। सिंचाई की उत्तम व्यवस्था थी। इसके अतिरिक्त पशुपालन की प्रवृत्ति का भी विकास हो चुका था। गाय, बैल, भैंस, बकरी, भेड़, घोड़े, कुत्ते आदि पाले जाते थे। कला कौशल के बारे में विशेष जानकारी नहीं है। परन्तु फिर भी गृह निर्माण कला, रथ तथा गाड़ियां, नाव निर्माण कला आदि में उस युग के निवासी निपुण थे। उस युग में सिक्कों का प्रचलन नहीं हुआ था। वस्तु विनिमय की प्रथा जारी थी।

उत्तर वैदिक काल में महान् परिवर्तन हुआ। नगरों का विकास हुआ। जिसके फलस्वरूप व्यापार-वाणिज्य का विकास हुआ। कृषि के लिये भारी हलध तथा विविध प्रकार की खाद का प्रयोग जारी हुआ। अनेक नवीन उद्योग-धंधे का विकास हुआ। आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार का विकास हुआ।

धार्मिक स्थिति ऋग्वैदिक काल के आर्य प्राकृतिक शक्तियों की उपासना करते थे। सूर्य, चन्द्र, वायु, मेघ, अग्नि आदि विविध शक्तियों की उपासना की जाती थी। इसके अलावा प्रकृति के नियन्ता एक अनादि, अनन्त परमात्मा की उपासना भी की जाती थी। अर्थात् बहु देवतावाद तथा एकेश्वरवाद का समन्वय था। उस युग के निवासी मूर्ति पूजक नहीं थे। वे देवताओं की प्रतिमाएं स्थापित करने के विरुद्ध थे। ऋग्वेद में कुल ३३ देवताओं का उल्लेख आता है। यज्ञ तथा बलिदान का बहुत महत्व था। गायत्री तथा सावित्री मंत्र का अधिक प्रयोग किया जाता था।

उत्तर वैदिक काल में धार्मिक क्षेत्र में महान् परिवर्तन हुआ। ब्राह्मणों की स्वार्थ बुद्धि के कारण यहीं यज्ञ-कर्म काण्डों का अधिकाधिक प्रचार तथा महत्व बढ़ा। बलिदान तथा बलि प्रथा का विकास हुआ। पुनर्जन्मवाद के सिद्धांत का प्रादुर्भाव हुआ। कर्मवाद के सिद्धांत का महत्व बढ़ा। इसके अतिरिक्त भूत-प्रेत, तंत्र-मंत्र, जादू-टोना का भी विकास हुआ। विविध देवताओं की उत्पत्ति भी इसी युग में हुई। रुद्र तथा विष्णु का महत्व अधिकाधिक बढ़ने लगा।

वैदिक संस्कृति की विशेषताएं—

(१) सहिष्णुता तथा सामंजस्य का भाव।
(२) ओजस्विता अथवा प्रगतिशीलता जिसमें पराक्रम तथा प्रबल आशावाद के स्फूर्तिदायक विचारों का प्राबल्य है।
(३) ज्ञान विज्ञान का विकास।
(४) तपोवन पद्धति।
(५) वर्णाश्रम व्यवस्था तथा,
(६) नारियों की प्रतिष्ठा।

अभ्यास के लिये प्रश्न

(१) वैदिक सभ्यता से क्या समझते हो। उस युग की शासन व्यवस्था, तथा राजा की स्थिति पर एक लेख लिखिए।
(२) ऋग्वैदिक और उत्तर वैदिक सभ्यता में क्या अन्तर था? समझाए।
(३) ऋग्वैदिक काल की सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक स्थिति का उल्लेख कीजिए।
(४) वैदिक काल में 'शिक्षा' पर एक निबन्ध लिखिए।

(३) महाकाव्यों का युग-सभ्यता एवं संस्कृति

रामायण और महाभारत के युग को भारतीय इतिहास में महाकाव्यों का का युग कहा जाता है। दोनों ग्रन्थ उत्तम श्रेणी के महाकाव्य हैं। काव्यकला की दृष्टि से तो श्रेष्ठ हैं ही, परन्तु इन ग्रन्थों से तत्कालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। रामायण की रचना महर्षि वाल्मीकि तथा महाभारत की महर्षि पराशर ने की थी। परन्तु बहुत से विद्वानों की ऐसी धारणा है कि इन ग्रन्थों की रचना एक व्यक्ति का कार्य न होकर अनेक व्यक्तियों के द्वारा हुई है। रामायण में अयोध्यापति श्रीराम का चरित्र चित्रण एवं इतिहास का वर्णन किया गया है। महाभारत में कौरव पांडव बन्धुओं का चरित्र चित्रण तथा द्वारिकाधिपति श्रीकृष्ण का चरित्र-चित्रण एवं महायुद्ध का उल्लेख किया गया है।

रामायण की रचना का काल

रामायण महाकाव्य की रचना कब हुई यह निश्चित रूप से नहीं बतलाया जा सकता। प्रसिद्ध विद्वान जैकोबी ने यह प्रमाणित कर दिया है कि मूल रामायण में केवल पांच काण्ड थे। प्रथम और अन्तिम काण्ड बाद में जोड़े गये हैं। पांच काण्ड वाली रामायण में राम का मानवीय चित्रण ही उपलब्ध होता है। परन्तु दो नये काडों के द्वारा राम को विष्णु का अवतार माना गया है और उसी रूप में राम का चित्रण भी किया गया है। इसके अतिरिक्त मूल रामायण की संस्कृत भाषा वैदिक भाषा के उपरान्त की परन्तु पाणिनि के समय के पूर्व की ज्ञात होती है। इससे विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि रामायण की रचना का काल बौद्ध भारत के पहले रहा होगा या आसपास रहा होगा।

रामायण की कथा

रामायण में अयोध्या नगरी के इक्ष्वाकु राजवंश के राजा दशरथ तथा उनके पुत्रों की कथा है। राजा दशरथ के तीन महिषियाँ थीं कौशल्या, सुमित्रा तथा कैकेयी। उनके चार पुत्र उत्पन्न हुये। कौशल्या ने श्रीराम को, सुमित्रा ने लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न को, तथा कैकेयी ने भरत को जन्म दिया। राम सबसे बड़े और शत्रुघ्न सबसे छोटे थे। किसी समय राजा दशरथ

ने कैकेयी को दो वर दिये थे। कैकेयी ने मन्थरा दासी के बहकाने में आकर इन वरों का प्रयोग उस समय किया जब कि राम का राज्याभिषेक सम्पन्न होने वाला था। उसने प्रथम वर मांगा राम को चौदह वर्ष का वनवास और दूसरा था—भरत को राज्यसिंहासन। दशरथ क्षत्रिय थे अपने वचनों को निभाने वाले और राम आज्ञाकारी थे–पिता के वचनों का पालन करने वाले। राम ने वनवास स्वीकार किया। उनकी धर्मपत्नी सीता ने तथा भाई लक्ष्मण ने भी राम के साथ ही वन को प्रस्थान किया। इधर राजा दशरथ पुत्र वियोग में परलोकवास सिधारे और भरत ने राजगद्दी पर बैठने से इन्कार कर दिया और राम को पुनः अयोध्या लिवा लाने हेतु चित्रकूट जहां पर राम ठहरे हुये थे पहुँचे। राम ने वापस लौटने से इन्कार कर दिया। भरत ने राम की चरण-पादुका को सिंहासन पर रख कर शासन संचालन किया। उधर राक्षसों के राजा रावण ने जो कि त्रिभुवन विजयी था, सोने की लंका का स्वामी था, सीता का छल से हरण कर लिया। राम और लक्ष्मण उन्हें खोजते हुए दक्षिण की तरफ बढ़े। यहाँ वानरों के राजा सुग्रीव से उनकी मित्रता हुई। राम ने सुग्रीव के बड़े भाई बालि को मारकर सुग्रीव का राज्याभिषेक किया। सुग्रीव के प्रमुख सेनापति हनुमान, अंगद, जामवन्त आदि की सहायता से राम ने रावण के विरुद्ध युद्ध किया। घोर समर के उपरान्त विभीषण को छोड़कर जो कि राम की शरण में आ गया था, रावण का सम्पूर्ण परिवार मारा गया। सीता पुनः राम को प्राप्त हुई। राम, लक्ष्मण, सीता, हनुमान फिर अयोध्या वापस आये और सुखपूर्वक राज्य करने लगे। उनका शासन इतना अच्छा था कि जनता आज भी राम राज्य कह कर उसको याद करती है।

महाभारत का रचना काल

रामायण की भांति महाभारत महाकाव्य की रचना का काल भी निश्चित करना कठिन है। विद्वानों का विश्वास है कि आधुनिक महाभारत एक व्यक्ति की रचना का फल नहीं है परन्तु समय समय पर अनेक विद्वानों द्वारा परिवर्धित किया गया है। मूल महाभारत में केवल बीस सहस्र श्लोक थे। महाभारत की भाषा रामायण की भांति उन्नत नहीं है। कहीं कहीं पर इसकी भाषा ब्राह्मण ग्रन्थों तथा 'उपनिषदों' से मिलती जुलती है। शायद इसकी रचना ई० पू० १००० वर्ष में हुई थी। परन्तु इसका परिवर्तन ई० पू० पांचवी से प्रथम तक होता रहा।

महाभारत में भरतवंशी कौरवों तथा पाण्डवों के संघर्ष का चित्रण है। हस्तिनापुर के राजा शान्तनु के तीन पुत्र थे–भीष्म, चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य। भीष्म आजन्म ब्रह्मचारी रहे। चित्रांगद निःसन्तान वीर गति को प्राप्त हुए। विचित्रवीर्य दो पुत्रों—धृतराष्ट्र तथा पाण्डु को छोड़कर परलोकवासी हुए। धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे। अतः पाण्डु राजा हुए। उनके पाँच पुत्र थे–युधिष्ठिर, भीम,

महाभारत की कथा

अर्जुन, नकुल तथा सहदेव। धृतराष्ट्र के सौ पुत्र थे जिनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था। पाण्डु युवावस्था में ही परलोक सिधारे। अन्धे धृतराष्ट्र ने शासन भार संभाला। राजकुमारों की शिक्षा-दीक्षा आचार्य द्रोणाचार्य को सौंपी गई। पाण्डव शस्त्र विद्या में निपुण हो गये। युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र का मन जीत लिया। दुर्योधन को यह असह्य हो गया। उसने षड्यन्त्र रचे। पाण्डवों ने हस्तिनापुर छोड़ दिया। अर्जुन ने पाञ्चाल देश की राजकुमारी द्रौपदी को स्वयंवर में अपनी धनुर्विद्या के कौशल से वरण किया। द्रौपदी पाँचों भाइयों की पत्नी बनी। इसी समय अर्जुन ने द्वारकापति श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा से भी विवाह किया। कुछ समय बाद धृतराष्ट्र ने उन्हें खाण्डव-वन का प्रदेश दिया। पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ को राजधानी बनाया और राज्य करने लगे। उन्होंने मगध को जीत लिया। फिर राजसूय यज्ञ किया। भगवान् श्रीकृष्ण के सहयोग से उनका राज्य दिन-रात चौगुनी उन्नति करने लगा। इसी बीच दुर्योधन ने कपट से द्यूत-क्रीड़ा में युधिष्ठिर से सब कुछ छीन लिया और उन्हें बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष का अज्ञातवास दिया। इस समय की समाप्ति पर पाण्डवों ने अपने राज्य की माँग की। दुर्योधन ने एक इंच भूमि देने से भी इन्कार कर दिया। श्रीकृष्ण ने सन्धि कराने का अथक प्रयत्न किया परन्तु वे भी असफल रहे। इस पर महाभारत के युद्ध का सूत्रपात हुआ। इस युद्ध में भारत के लगभग सभी राजाओं ने किसी न किसी पक्ष में सम्मिलित होकर भाग लिया। पाण्डवों की तरफ निःशस्त्र श्रीकृष्ण ने भाग लिया। अठारह दिन घमासान युद्ध हुआ। युद्ध के पूर्व, युद्ध मैदान में अपने ही सम्बन्धियों के विरुद्ध शस्त्र उठाने की कल्पना से अर्जुन भयभीत हो गया। इस पर भगवान श्रीकृष्ण ने उसे उपदेश दिया। सृष्टि की उत्पत्ति, आत्मा तथा परमात्मा का सम्बन्ध, मानव के कार्यों पर

विधि का निरूपण भली भाँति समझाया। ये उपदेश भगवद्गीता में संकलित हैं। हिन्दू जाति आज भी गीता को पवित्र भावना से देखती है। इस युद्ध में कौरवों की पराजय हुई। उनका वंश ही समाप्त हो गया। पाण्डव राजा बने परन्तु युधिष्ठिर राजपाट का परित्याग कर अपने पौत्र परीक्षित को राज सौंप करके हिमालय की शरण में चले गये और अपने सभी भाइयों तथा द्रौपदी के साथ वहीं अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी।

यद्यपि रामायण और महाभारत के काल में शताब्दियों का अन्त
। परन्तु इन दोनों महाकाव्यों के काल की व्यवस्थायें एक सी थीं। अतएव इ
वर्णन भी एक साथ ही किया जाता है। इन महाकाव्यों से तत्कालीन राजनैं
सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक दशा का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अब
महाकाव्यों के काल की सभ्यता एवं संस्कृति का वर्णन करेंगे।

राजा की स्थिति

तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था में राजा का प्रमुख स्थान था। राजा नि
कुश अथवा स्वेच्छाचारी नहीं होता था। उसे अपने परिवार के सदस्यों, विद्वा
मन्त्रियों तथा जनमत की इच्छा का ध्यान रख
पड़ता था। उसे लोक कल्याण की दृष्टि से शा
करना पड़ता था। प्रजा को कष्ट पहुँचाने वाले रा
को पदच्युत कर दिया जाता था। यद्यपि उत्तराधिकार वंशानुगत था परन्तु युवर
में दोष पाये जाने पर उसे उत्तराधिकार से वंचित कर दिया जाता था। 'सभ
का महत्व कम हो गया था और शक्ति के सामने कभी कभी मंत्रियों तथा विद्वा
एवं प्रजा को भी झुकना पड़ता था। उदाहरण के लिए दुर्योधन द्वारा भ
सभा में द्रौपदी के अपमान का प्रसंग ही लीजिए किसी ने इस अन्याय के विरु
आवाज नहीं उठाई थी।

विदेशी आक्रमणों से प्रजा की सुरक्षा करना राजा का प्रमुख कर्तव
जाता था। अतः राजा को एक विशाल सेना रखनी पड़ती थी। सेना के
...न के लिए बहुत से अधिकारी होते थे। उस युग में सेना चा
...थी—पैदल, घोड़े, रथ तथा हाथी। इसके अतिरिक्त
निर्देशक आदि भी होते थे। जल सेना का भी उल्लेख मिलता

सेना का संगठन

है। सेना हजार, दस हजार, लाख आदि इकाइयों में विभाजित होती थी। उस युग में तलवार, भाले, बरछी, धनुष-बाण के अतिरिक्त असंख्य विनाशकारी अस्त्रों का भी प्रयोग किया जाता था। जल, अग्नि, आंधी, विषैली गैस आदि शक्तियों को उत्पन्न करने वाले अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। यहाँ तक की वायु में उड़ने वाले वाहनों का भी ज्ञान था। 'पुष्पक विमान' का उदाहरण मिलता है जिस पर बैठकर वायु मार्ग द्वारा श्रीराम लंका से अयोध्या आये थे। उस युग में सैनिकों को नकद वेतन मिलता था। युद्ध में काम आने वाले सैनिकों की विधवाओं को राज्य की तरफ से जीवन-वृत्ति मिलती थी।

कूटनीति तथा छल-बल का प्रयोग

महाकाव्यों के अध्ययन से यह प्रत्यक्ष परिलक्षित हो जाता है कि उस समय युद्ध में कूटनीति तथा छल-कपट से काम लिया जाता था और अनीति के अवलम्ब से शत्रु का सफाया किया जाता था। राम ने बालि को पेड़ की ओट से मारा था। भगवान श्रीकृष्ण तो पूरे कुटिल कूटनीतिज्ञ थे। उन्होंने कर्ण का वध भी उस समय करवाया था जब वह महारथी अपने रथ का पहिया भूमि से निकाल रहा था। अश्वत्थामा हाथी की मृत्यु से लाभ उठाकर द्रोणाचार्य के हृदय पर आघात पहुंचाने के लिए धर्मनिष्ठ युधिष्ठिर से मिथ्या संभाषण करवाते हैं "अश्वत्थामा हतो नरो वा कुञ्जरो" क्योंकि अश्वत्थामा द्रोणाचार्य का सुपुत्र था। इसी प्रकार दुर्योधन द्यूत क्रीड़ा में छल-कपट से सब कुछ हथिया लेता है। अभिमन्यु का वध भी छल-कपट का उदाहरण है। इससे मालूम हो जाता है कि आर्यों के प्रारम्भिक धर्मयुद्ध का महत्व घट गया था। कूटनीति तथा अनीति का प्रयोग किया जाने लगा था।

मन्त्रि-परिषद् का सङ्गठन

महाकाव्यों के युग में राजा प्रधान अधिकारी होता था परन्तु उसकी सहायता के लिए मन्त्रि-परिषद् भी होती थी। महाभारत मन्त्रि-परिषद् के संगठन पर प्रकाश डालता है। इसके अनुसार मन्त्रि-परिषद् में चार ब्राह्मण, आठ क्षत्रिय, इक्कीस वैश्य, तीन शूद्र, और एक सूत जाति का होता था। प्रधान मन्त्री भी होता था। मन्त्रियों के अतिरिक्त अन्य भी बहुत से सहायक तथा परामर्शदाता होते

थे । इनमें पुरोहित, चमूपति, द्वारपाल, धर्माध्यक्ष, दण्डपाल, नगराध्यक्ष, कारागाराधिकारी, दुर्गपाल आदि प्रमुख थे ।

शासन व्यवस्था

ग्राम शासन की मूल इकाई थी । ग्राम का प्रधान ग्रामीणी कहलाता था । ग्राम को स्वायत्त शासन का अधिकार भी प्राप्त था । दस गाँवों के समूह को दशग्राम, बीस गाँवों को विंश, सौ गाँवों को शतग्रामी कहते थे । इन पर क्रमशः दशग्रामीणी, विंशपति तथा शतग्रामी नामक पदाधिकारी होते थे । इन पदाधिकारियों का कार्य राजस्व कर वसूल करना, शांति स्थापित करना, अपराधियों का पता लगाना आदि था । न्याय प्रशासन का मुख्य अंग था । न्याय करते समय राजा को कुल जाति तथा स्थान के नियमों का पालन करना पड़ता था । राजा न्याय का सर्वोच्च अधिकारी होता था परन्तु न्याय का कार्य न्यायाधीश द्वारा किया जाता था । अग्नि तथा जल परीक्षा द्वारा अपराधियों की पवित्रता का पता लगाया जाता था । सीता को भी अग्नि परीक्षा के द्वारा अपनी पवित्रता की साक्षी देनी पड़ी थी । ब्राह्मणों को मृत्यु दण्ड नहीं दिया जाता था । राजा को भी इस दण्ड से वंचित रखा गया था । नियम व्यवस्था कठोर भी थी और उदार भी थी ।

सामाजिक स्थिति

महाकाव्यों के युग में समाज भिन्न भिन्न वर्गों में विभाजित था । यद्यपि जाति प्रथा का विकास प्रारम्भ हो गया था परन्तु अभी उसमें कठोरता नहीं आ पाई थी । इस युग में भी जाति परिवर्तन की जा सकती थी । क्षत्रिय विश्वामित्र ब्राह्मण बन गया था । राजनैतिक शक्ति क्षत्रियों के हाथ में थी । इसलिये उनका प्रभाव बढ़ रहा था और समाज में ब्राह्मणों का प्रभुत्व घट रहा था परन्तु फिर भी अन्धविश्वास तथा धार्मिक क्रियाकाण्डों के संपादन के कारण उनका प्रभुत्व क्षीण नहीं हुआ था । इसके अतिरिक्त क्षत्रियों की भाँति ब्राह्मण भी कई वर्गों में विभाजित हो गये थे । व्यापारियों अर्थात् वैश्यों की भी यही स्थिति थी । उन्होंने भी अपने को विभिन्न श्रेणियों में संगठित कर लिया था । प्रत्येक श्रेणी का एक प्रमुख होता था जिसे श्रेष्ठिन के नाम से पुकारा जाता था । कृषक वर्ग भी इसी वैश्यवर्ग के सदस्य थे परन्तु

उनको न्यून-कोटि का समझा जाता था। दास वर्ग की स्थिति दयनीय थी। यह लोग विजित अनार्य थे। असभ्य और जंगली थे।

क्षत्रिय वर्ग का कार्य जनता की रक्षा करना, ब्राह्मण का भिक्षाटन, वैश्य का पशुपालन, कृषि तथा द्रव्योपार्जन और दास का कार्य श्रम करना था। ब्राह्मण कितना ही दरिद्र क्यों न हो अन्य वर्ग में नहीं जा सकता था। परन्तु दास बुद्धि, शक्ति तथा द्रव्य से सम्पन्न होने पर अन्य वर्ग में विशेष कर वैश्य वर्ग में प्रवेश पा सकता था।

अधिकतर लोग गांवों में दुर्ग के चारों ओर निवास करते थे। आपत्ति काल में वे दुर्गों में शरण लेते थे। ग्राम में बड़े निवास स्थान को खरवट कहते थे। खरवट से बड़ा नगर होता था। गांवों को पर्याप्त स्वतन्त्रता थी।

उस युग में वर्णाश्रम धर्म का बहुत महत्व था। जनता इसका पालन करती थी। आयु के चार भाग किये गये थे। २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य रखना पड़ता था। २५ से ५० वर्ष की अवस्था तक गृहस्थ धर्म चलाना पड़ता था। ५० से ७५ वर्ष तक की अवस्था में वानप्रस्थ धर्म का तथा अंतिम भाग में सन्यास धर्म का पालन करना पड़ता था।

उस युग में शिक्षा का बहुत महत्व था। नगरों तथा गांवों में विद्यालय होते थे। लड़के-लड़कियों को एक साथ विद्याभ्यास कराया जाता था। शिक्षा निःशुल्क दी जाती थी। अध्यापकों को वेतन नहीं दिया जाता था। उनकी जीविका दान तथा भेंट से चलती थी। मानसिक, आचरण तथा स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुये शिक्षा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त वनों में ब्राह्मणों के विद्यालय या गुरुकुल होते थे। यहां विद्यार्थियों को धर्म तथा दर्शन की शिक्षा दी जाती थी। शायद इस काल के विश्वविद्यालयों की स्थापना भी शुरू हो गई थी। गुरुकुलों में विद्यार्थियों को अपने खाने पीने का सामान जुटाना पड़ता था। शिक्षा की समाप्ति पर गुरु को दक्षिणा भी देनी पड़ती थी जिसे गुरु-दक्षिणा कहते थे। विद्यार्थियों का समाज तथा राज-सभा में बहुत सम्मान था।

शिक्षा की व्यवस्था

महाकाव्यों के युग में वैवाहिक व्यवस्था भी अच्छी थी। विवाह के नियम सरल एवं उत्तम थे। २५ वर्ष की अवस्था के उपरान्त बालकों का विवाह किया

जाता था। लड़की का विवाह १८ या १६ वर्ष की अवस्था के बाद में किया जाता था। राजवंशों में स्वयंवर की प्रथा थी। कभी कभी स्वयंवर में शर्तें भी रक्खी जाती थीं और शर्तों को पूर्ण करने वाले व्यक्ति से लड़की का विवाह किया जाता था। राम और अर्जुन के विवाह इसी तरह हुये थे। कभी-कभी अपहरण भी किया जाता था। अर्जुन ने श्रीकृष्ण की बहिन सुभद्रा का अपहरण किया था। बहु विवाह की प्रथा थी। महाभारत की प्रमुख नायिका द्रौपदी के पांच पति थे। अर्थात् बहु-पति की प्रथा भी थी। परन्तु सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति में यही एक ज्वलन्त उदाहरण है—बहुपति का। अन्यथा इसका उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता। रक्त से सम्बन्धित लड़के लड़कियों का विवाह नहीं होता था। न ही बाल विवाह का उल्लेख मिलता है। विधवा विवाह का उल्लेख मिलता है। सती प्रथा का प्रचलन भी था। विवाह धार्मिक बन्धन माना जाता था।

वैवाहिक व्यवस्था

महाकाव्यों के युग में स्त्रियों की स्थिति उतनी उन्नत नहीं थी जितनी वैदिक काल में परन्तु फिर भी साधारण रूप से सन्तोषजनक थी। स्त्रियों को तिरस्कार की दृष्टि से देखा भी जाता था और कहीं कहीं उन्हें अपमानित भी किया जाता था। दुर्योधन ने द्रौपदी का, लक्ष्मण ने शूर्पणखा का अपमान किया था। उसके साथ दुर्व्यवहार किया था। परन्तु रावण ने अनार्य होते हुए भी सीता के साथ सभ्य व्यवहार किया। स्त्रियों को भी शिक्षा दी जाती थी। पर्दे की प्रथा नहीं थी। वे स्वतन्त्रतापूर्वक इधर उधर आ जा सकती थीं। वाद विवाद में भाग ले सकती थीं। युद्धक्षेत्र में भी वे पुरुषों के साथ जाती थीं। सीता, सावित्री, सुभद्रा, द्रौपदी आदि स्त्रियों का सतीत्व तथा पति प्रेम का आदर्श प्रस्तुत करता था। परन्तु इसके साथ ही साथ [illegible] स्त्रियों के भी उदाहरण मिलते हैं। स्त्री का पद महत्त्वपूर्ण समझा जाता था। वे पुरुष की सहयोगिनी समझी जाती थीं।

स्त्रियों की दशा

महाकाव्यों के युग में लोगों का रहन सहन भी [illegible] था। वे लोग [illegible] प्रकार के वस्त्राभूषण, [illegible], घी तथा [illegible] का प्रयोग करते थे। [illegible]

हार का भी प्रयोग किया जाता था। परन्तु धीरे धीरे यह कम होता जा रहा था मद्य-पान तथा द्यूत क्रीड़ा का भी रिवाज था। रंग बिरंगे वस्त्रों का प्रयोग अधिक किया जाता था।

उस समय की आर्थिक स्थिति मनोरञ्जक थी। देश धन धान्य से समृद्ध था। लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि था। वाणिज्य तथा व्यापार भी उन्नत दशा में था। व्यापारी अपनी अपनी श्रेणियों में सगठित थे और उनका प्रधान महाजन कहलाता था। मुख्य उद्योगों में बढ़ई, लोहार, सोनार तेली, धोबी, कुम्हार, जुलाहे, रंगसाज, चर्मकार, गुलाल, धनुर बाण, बनाने वालों के उद्यम थे। वस्तुओं का मूल्य राज्य द्वारा निर्धारित किया जाता था। क्रय विक्रय पर राज्य को चुंगी देनी पड़ती थी। कर हल्के तथा साधारण होते थे। सौदागर दूर दूर स्थानों से वस्तुएं लाते थे। राज्य की ओर से उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध होता था। नाप-तोल के माप भी थे। संक्षिप्त रूप में, उस युग की आर्थिक स्थिति उन्नत थी।

आर्थिक स्थित

उस युग की धार्मिक विचारधारा वैदिक विचारधारा से दूर न थी परन्तु उसमें परिवर्तन होने शुरू हो गये थे। जनता में अब भी ब्राह्मण धर्म का प्रचार था। वैदिक काल के देवताओं की पूजा इस युग में की जाती थी परन्तु इस युग में प्राकृतिक शक्तियों की उपासना का त्याग कर दिया गया। सूर्य की आराधना अवश्य की जाती थी। अब त्रिमूर्ति ब्रह्मा विष्णु, और शिव का महत्व अधिक बढ़ गया। गणेश, पार्वती दुर्गा, आदि की पूजा भी प्रारम्भ हो गई थी। इस युग में वीर पूजा तथा अवतार पूजा का महत्व बढ़ता जा रहा था। राम और कृष्ण को विष्णु का अवतार माना जाता था। गीता में भी श्री कृष्ण ने स्वयं कहा है 'हे अर्जुन! संसार में जब धर्म का ह्रास होता है, अधर्म की वृद्धि होती है तब मैं शरीर धारण करता हूँ। सज्जनों की रक्षा तथा दुर्जनों के विनाश के लिये मैं प्रत्येक युग में उत्पन्न होता हूँ।"

धार्मिक विचारधारा

इस युग में न केवल पशु बलि ही दी जाती थी अपितु मानव बलि भी दी जाती थी। यह ठीक है कि धीरे-धीरे इस युग में अहिंसा का प्राबल्य बढ़ रहा था। यज्ञों में प्राणियों की जगह पर आटे से निर्मित प्राणियों की बलि दी जाने

की प्रथा प्रारम्भ हो गई थी। इस काल में कर्मवाद तथा पुनर्जन्मवाद में सिद्धांतो का विकास हो रहा था और भक्ति मार्ग पर बड़ा जोर दिया जा रहा था। इस विचारधारा का तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने कर्मों का फल भोगता है और इस जन्म के कर्मों के अनुसार मनुष्य को आगामी जन्म में सुख दुःख, वंश-स— मिलता है। परन्तु ईश्वर की अनुकम्पा से बुरे कर्म भी अच्छे कर्म बन सकते ईश्वरीय कृपा की प्राप्ति का एक मात्र साधन भक्ति अर्थात् ईश्वर-आराधना

वैदिक सभ्यता दर्शन

इस युग में विज्ञान तथा दर्शन की भी प्रगति हुई। खगोल विद्या त ज्योतिष के ज्ञान में काफी उन्नति हुई। वैद्य तथा जर्राह भी काफी संख्या में प जाते थे। पशुओं तथा पक्षियों का भी उपचार किया जा था। मनुष्य तथा अन्य प्राणियों की चिकित्सा के लिए औ षधालय बने हुये थे। उस युग में औषधियों का मूल्य अधि नहीं होता था और साधारण जनता भी सुगमता के सा उनका प्रयोग कर सकती थी। विद्वानों का ऐसा विश्वास है कि शल्य चिकित्स के अन्य शस्त्र इतने तेज होते थे कि बाल के भी दो टुकड़े किये जा सकते थे।

किसी ने सत्य ही कहा है कि समय परिवर्तनशील है। न केवल समय ही परिवर्तनशील है परन्तु समय के साथ साथ मानव स्वभाव और विचार तथा इनके माध्यम से बनने बिगड़ने वाली सभ्यता तथा संस्कृति भी परिवर्तनशील है। यही कारण है कि एक ही देश तथा जाति की सभ्यता होने के उपरान्त भी आर्यों की

वैदिक सभ्यता सभ्यता

मूल वैदिक सभ्यता महाकाव्यों के युग की सभ्यता से काफी भिन्न थी। इन दोनों सभ्यताओं में काफी अन्तर था। धार्मिक एवं महाकाव्यों की क्षेत्र में जहाँ वैदिक लोग प्राकृतिक शक्तियों के सूचक इन्द्र वरुण, उषा आदि देवताओं की उपासना करते थे वहीं महाकाव्यों के युग में ब्रह्मा, विष्णु, शिव की उपासना जोर पकड़ रही थी और लोग प्राकृतिक शक्तियों को विस्मृत करने लग गये थे। इसके अतिरिक्त और पुरुषों के-राम कृष्ण की उपासना भी बढ़ रही थी। वैदिक काल में कर्मकाण्ड पर अधिक जोर दिया जाता था परन्तु इस काल में उपनिषदों में ज्ञान की प्रधानता का दर्शन मिलता है। अब कर्मकाण्डों के स्थान पर भक्ति का प्रचार बढ़ रहा था

पशु बलि तथा मानव बलि की जगह आत्म शुद्धि का मार्ग दिग्दर्शित किया जा रहा था। इस युग में नैतिकता पर अधिक जोर दिया जा रहा था।

सामाजिक संगठन की दृष्टि से भी बहुत बड़ा अन्तर था। प्रारम्भिक वर्ण-व्यवस्था अब जाति व्यवस्था के रूप में निखर उठी। अन्तर्जातीय सम्बन्ध समाप्त हो रहे थे। जाति-परिवर्तन की प्रथा तो थी परन्तु बहुत कठोर। स्त्रियों की स्थिति गिर रही थी। उन्हें परतन्त्रता की ओर अग्रसर किया जा रहा था। बहुपत्नी विवाह का रोग फैल रहा था। परन्तु इस युग में धन धान्य की वृद्धि हो रही थी। देश समृद्ध था। छोटे छोटे राज्यों की जगह विशाल साम्राज्यों की स्थापना हो चुकी थी।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) महाकाव्यों के युग से आप क्या समझते हैं ? इन महाकाव्यों की रचना कब हुई थी ?

(२) रामायण और महाभारत की कथा को विस्तार के साथ समझाइए।

(३) रामायण और महाभारत के समय की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक स्थिति का वर्णन कीजिए।

(४) महाकाव्यों के युग की सभ्यता तथा वैदिक सभ्यता में क्या समानताएं हैं ?

(५) 'महाकाव्यों के युग में शिक्षा' पर एक निबन्ध लिखिए।

---

(४) बौद्ध व जैन मत

श्री रमेशचन्द्र मजूमदार के कथनानुसार "ई० पू० छठी शताब्दी को भारतीय संस्कृति के इतिहास में एक महत्वपूर्ण सीमा चिन्ह माना जा सकता है। इसने नवीन विचारों तथा दार्शनिक सिद्धान्तों की एक भूमिका का विकास किया, जिसके द्वारा असंख्य धार्मिक सम्प्रदायों की स्थापना हुई, जो कि भारत में इसके पूर्व या उपरान्त कभी नहीं उत्पन्न हुए।" वास्तव में ईसापूर्व छठी शताब्दी ने सम्पूर्ण विश्व में धार्मिक क्रान्ति को उत्पन्न किया सम्पूर्ण विश्व में अनेकों आचार्य उत्पन्न हुए, जिन्होंने मोक्ष प्राप्ति के नये २ मार्ग मानवीय समाज के सन्मुख प्रस्तुत किये। चीन में लाओत्से तथा कनफ्यूशियस यूनान में सुकरात, प्लेटो, फिलिस्तीन में ईसा मसीह, ईरान में जैरथुस्त्र, भारत में चार्वाक, महावीर तथा बुद्ध प्रमुख थे।

नवीन विचारों की पृष्ठ भूमि

बौद्ध धर्म के संस्थापक, कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन के पुत्र सिद्धार्थ अथवा गौतम बुद्ध थे। इनकी माता का नाम महामाया था। युवावस्था में इनका पाणिग्रहण 'यशोधरा' से हुआ और शीघ्र ही उनके पुत्र 'राहुल' का जन्म हो गया। गौतम प्रारम्भ से ही सत्य की खोज में खोये रहते थे। सांसारिक दुःखों को देखकर दुःखी होते थे और इन दुःखों को दूर करने का उपाय सोचा करते थे। इनकी इस चिन्तन प्रवृत्ति से घबड़ाकर ही उनके पिता ने उनका विवाह कर दिया था। परन्तु पत्नी और पुत्र का प्रेम और स्नेह भी उन्हें चिन्तन मार्ग से पृथक् न कर सका और २८ वर्ष की आयु में महात्मा बुद्ध ने सन्यास लेकर गृह त्याग कर दिया। सर्व प्रथम वैशाली के आलार कालाम की शिष्यता ग्रहण की तदुपरान्त राजगृह के रुद्रक की शिष्यता ग्रहण की। परन्तु ज्ञान प्राप्ति में असफल रहे। इसके उपरान्त उन्होंने उरुवेला के जंगल में ६ साल की कठोर तपस्या पाँच ब्राह्मण सन्यासियों के साथ की, परन्तु इस कठोर तपस्या के उपरान्त भी ज्ञान का प्रकाश नहीं मिला। इस पर गौतम ने तपस्या का परित्याग

गौतम की जीवनी

कर दिया। उनके साथी उन्हें पथ-भ्रष्ट समझने लगे। एक दिन बोधि वृक्ष के नीचे ध्यान मग्न हो बैठे थे कि उन्हें बोधिसत्व या 'ज्ञान' की प्राप्ति हुई। उन्हें बौद्धिक प्रकाश दिखाई दिया। तभी से वे बुद्ध एवं अनुयायी बौद्ध कहलाये। सारनाथ में उन्होंने अपना सर्वप्रथम उपदेश दिया जो कि धर्म चक्र परिवर्तन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके उपरांत विधि स्थानों पर धर्म प्रचार का कार्य करते रहे। ४८३ ई. पू. में कुशीनगर में महात्मा बुद्ध निर्वाण प्राप्त हुए अर्थात् परलोकवास सिधारे।

भगवान् बुद्ध

बौद्ध धर्म सम्पूर्ण रूप से कोई मौलिक धर्म नहीं है। शताब्दियों से चले आ रहे रीति-रिवाजों, विचारों एवं संस्थाओं का संशोधित तथा परिवर्तित रूप मात्र है। इस सम्प्रदाय का सर्वप्रथम सिद्धान्त है—चार आर्य सत्य—दुःख, दुःख का कारण, दुःख निरोध तथा दुःख निरोध का मार्ग।

बौद्ध धर्म के सिद्धान्त

(१) चार आर्य सत्य

संसार के दुःखों को बुद्ध ने केवल दो शब्दों में प्रकट किया है—जरा और मृत्यु। इन दुःखों का कारण होता है। इसका कारण है जन्म। जन्ममय अर्थात् उत्पन्न होने की इच्छा से होता है। उत्पन्न होने की इच्छा सांसारिक वस्तुओं से सम्बन्ध रखने के कारण होती है। सम्बन्ध का कारण तृष्णा है। तृष्णा इन्द्रियों के पूर्व अनुभव अर्थात् वेदना के कारण उत्पन्न होती है। वेदना की उत्पत्ति स्पर्श के द्वारा। स्पर्श की उत्पत्ति ६ आयतन अर्थात् पांच

इन्द्रियाँ एवं मनस के कारण—६ आयतनों की उत्पत्ति शरीर तथा मस्तिष्क के द्वारा—शरीर तथा मस्तिष्क की उत्पत्ति चेतना के कारण होती है। चेतना माता के गर्भ में उत्पन्न होती है। यह चेतना पूर्व संस्कारों एवं सांसारिक दुःखों से मुक्ति का मार्ग है।

उपर्युक्त बारह कारणों के अन्त होते ही निर्वाण प्राप्त हो जाता है। निर्वाण इसी संसार में प्राप्त हो सकता है। अविद्या का विनाश एवं ज्ञान की प्राप्ति ही निर्वाण है। राग–द्वेष मोह, माया, ममता से रहित व्यक्ति बन्धन में नहीं पड़ता और न पुनर्जन्म होता है। निर्वाण का तात्पर्य मनुष्य के अस्तित्व की समाप्ति नहीं बल्कि सांसारिक दुःखों की समाप्ति तथा पूर्ण शान्ति है।

(२) अष्टांग मार्ग

सांसारिक दुःखों से मुक्ति प्राप्त करने तथा निर्वाण प्राप्त करने में 'आठ मार्ग' का बहुत महत्व है। ये आठ मार्ग निम्नलिखित हैं। (१) सम्यक् दृष्टि अर्थात् अच्छी दृष्टि। किसी को तरफ बुरी नजर से न देखा जाय। (२) सम्यक् संकल्प—अच्छे विचार और संकल्प किये जायें। (३) सम्यक् वाक्—अच्छी बोली का प्रयोग किया जाय। मधुर वचनों का उपयोग किया जाय (४) सम्यक् कर्मान्त—अच्छे कर्म किये जायं बुरे कामों से दूर रहे। (५) सम्यक् आजीविका—जीवन निर्वाह के लिये अच्छे कार्यों का अवलम्बन किया जाय। (६) सम्यक् व्यायाम (७) सम्यक् स्मृति (८) सम्यक् समाधी। इन नियमों को 'अष्टांग–मार्ग' भी कहते हैं। इन मार्गों का अनुकरण करने से मनुष्य दुःखों से मुक्त हो शांति को प्राप्त करता है और आंतरिक शांति को प्राप्त करना ही निर्वाण पद को पहुँचना है।

(३) मध्य मार्ग

बुद्ध भगवान ने मानवीय जीवन की मुक्ति के लिये मध्य–मार्ग का पथ–प्रदर्शित किया है। कठोर तप की पराकाष्ठा का बहिष्कार किया गया है, क्योंकि शारीरिक कष्ट मानसिक व आत्मिक विकास के लिये हानिकारक होता है। दूसरी तरफ उन्होंने अधिक भोगविलास का भी बहिष्कार किया है क्योंकि इससे दुःखों की उत्पत्ति होती है। मध्य [illegible] प्रकार के

दुःख या कष्टः की उत्पत्ति नहीं होती। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह कठोर तप तथा अति भोग-वासना का बहिष्कार करे।

बौद्ध धर्म धार्मिक क्रांति न होकर व्यवहार में सामाजिक क्रांति थी। समाज में जो कुरीतियाँ उत्पन्न हुई थी उन्हें दूर करके समाज में समानता की स्थापना करना ही महात्मा बुद्ध का मुख्य ध्येय था। बौद्ध धर्म ने समाज के नैतिक आदर्शों को उन्नत करने का प्रयत्न किया।

(४) शील तथा आचरण इसी कारण महात्मा बुद्ध ने शील तथा आचरण की प्रधानता पर ज़ोर दिया। बौद्ध धर्म में दस आचरणों का पालन करना आवश्यक माना गया है। ये आचरण निम्नलिखित हैं—अहिंसा सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, सुरापान का त्याग, सुगंधित मालादि का त्याग, असमय में भोजन का त्याग, कोमल शय्या का त्याग तथा कामिनी कंचन का त्याग। बौद्ध धर्म ने गृहस्थ एवं मुनि तथा भिक्षु सभी सम्मिलित थे। अतः गृहस्थ उपासकों के लिये प्रथम पाँच आचरणों को मानना ही आवश्यक था। भिक्षु वर्ग के लिये दसों आचरण आवश्यक थे।

बौद्ध धर्म कोई नवीन धर्म नहीं था महात्मा बुद्ध ने केवल तत्कालीन वैदिक धर्म में फैले मिथ्यावादों का खंडन किया था उनकी शिक्षा प्राचीन वैदिक धर्म से ही प्रभावित थी। अतः बुद्ध भी कर्मवादी थे।

(५) कर्मवाद की भावना कर्म को प्रधानता दी। जैसा कर्म करोगे वैसा ही फल पाओगे। अन्तर केवल इतना ही था कि जहाँ हिन्दू धर्म यज्ञ तथा बलि को अच्छा कर्म मानता था और इससे बुरे कर्मों से भी छुटकारा मिल जाता था वहीं बौद्ध धर्म यज्ञ तथा बलि को बुरा कर्म मानता था और उसका विश्वास था कि इन कर्म-काण्डों से बुरे कर्मों को अच्छे कर्मों में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। इसीलिए बुद्ध ने यज्ञ तथा बलि की प्रथा का बहिष्कार किया। उनका कहना था कि इनसे पूर्व जन्म के पापों से मुक्ति नहीं मिल सकती। इसके लिये तो इसी युग में सुकर्म करने चाहिए।

(६) अनीश्वरवाद महात्मा बुद्ध ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं रखते थे। संसार की उत्पत्ति के लिये किसी सत्ता की आवश्यकता नहीं है। कार्य और कारण की शृंखला से सृष्टि की प्रक्रिया का संचालन होता रहता

है। बौद्ध धर्म नास्तिक धर्म था। शायद यह प्रथम धर्म था जिसने ईश्वर की सत्ता में अविश्वास व्यक्त किया।

बौद्धधर्म ईश्वर के साथ ही साथ आत्मा के अमरत्व में भी विश्वास नहीं करता। इस धर्म के अनुसार आत्मा अपने में पूर्ण मौलिक वस्तु नहीं है बल्कि विभिन्न गुणों और प्रवृत्तियों का समूह है, जो प्राकृतिक कारणों की प्रक्रिया का उत्पादन मात्र है। इस धर्म के अनुसार मनुष्य का व्यक्तित्व परिवर्तनशील है। उसका अन्तर (आत्मा) पंचस्कन्धों का समुदाय है जिसे 'पुग्गल' या 'पुद्गल' कहते हैं। ये पंचस्कन्ध हैं—रूप, संज्ञा, संस्कार व विज्ञान। इन तत्वों के अलग अलग हो जाने पर आत्मा नाम का कोई स्थायी तत्व शेष नहीं रहता। आत्मा में उनका विश्वास बिल्कुल नहीं था।

(७) अनात्मवाद

महात्मा बुद्ध के अनुसार संसार क्षणिक है, स्थायी नहीं। संसार की कोई वस्तु स्थायी नहीं है। स्वयं जीवन भी क्षणभंगुर है। प्रतिक्षण परिवर्तन जारी है।

यह एक आश्चर्य की बात है कि आत्मा तथा परमात्मा में विश्वास न रखते हुए तथा संसार को क्षणभंगुर मानते हुये भी बुद्ध का पुनर्जन्म में विश्वास था वैदिक धर्म की तरह आत्मा का पुनर्जन्म नहीं बल्कि अनित्य अहंकार एवं तृष्णा का नूतन जन्म होता है जो कि कर्म के नियम से संचालित होता रहता है। इस प्रकार आत्मा के पुनर्जन्म में विश्वास न करके उन्होंने अहंकार एवं तृष्णा के पुनर्जन्म की भावना को जन्म दिया।

(८) पुनर्जन्म

बौद्ध धर्म सामाजिक-क्रांति थी। महात्मा बुद्ध ने समाज में प्रचलित असंख्य प्रकार की जातियों एवं उपजातियों का बहिष्कार किया। उनके कथनानुसार सम्पूर्ण मानव समाज मुक्ति का अधिकारी है। जाति प्रथा तो विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग की देन है। कर्मानुसार नहीं बल्कि वंशानुगत भी नहीं है मनुष्य मनुष्य में कोई अन्तर नहीं है। केवल जन्म से ही कोई व्यक्ति उच्च हो सकता था बल्कि कर्म से उच्च व नीच होता है। समाज में ब्राह्मणों

(९) जाति प्रथा

प्रभुत्व था, उस प्रभुत्व का उन्होंने खंडन किया था सभी जातियों के सदस्यों का जो अपना अनुयायी बनाया और बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के बाद जाति का कोई सवाल नहीं था।

प्राणी मात्र को पीड़ा पहुंचाना महापाप है। यह बौद्ध धर्म का मूल मंत्र है। परन्तु समय और परिस्थितियों को देखते हुए उसने इस सिद्धान्त को स्थूल रूप प्रदान किया। कट्टरता के साथ इस सिद्धांत का पालन करना आवश्यक नहीं समझा गया है परन्तु जहां तक हो सके अहिंसा के पालन पर जोर दिया गया है। जैनियों की भांति बौद्ध लोग उग्रवादी नहीं थे। महात्मा बुद्ध ने साधारण जनता की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये ही इसका त्याग किया था।

(१०) अहिंसा

बौद्ध धर्म वेदों को प्रमाणिक ग्रन्थ नहीं मानते थे। उनके अनुसार वेद वर्कशास्त्र थे। उन्होंने यज्ञ, संस्कार, बलि आदि का बहिष्कार किया। वैदिक देवताओं में अविश्वास व्यक्त किया। वेद तो स्वार्थी ब्राह्मणों की रचना थी परमात्मा की नहीं। इसी कारण बौद्ध धर्म में दार्शनिक विचार धारा को भी विशेष स्थान प्राप्त नहीं हो सका। कल्पना शक्ति से विशेष लाभ नहीं है। केवल प्रत्यक्ष ज्ञान को महत्व दिया गया। अप्रत्यक्ष कल्पनाओं का बहिष्कार किया गया। यही महात्मा बुद्ध की शिक्षा थी।

(११) दार्शनिक उपेक्षा

अन्तिम सिद्धांत त्रिरत्न हैं। प्रत्येक बौद्ध उपासक को इनके प्रति श्रद्धा रखनी पड़ती है। ये निम्न है—बुद्ध धर्म एवं संघ। प्रत्येक सदस्य को दीक्षा देते समय व लेते समय इन मंत्रों का उच्चारण करना पड़ता है—बुद्धं शरणं गच्छामि संघं शरणं गच्छामि।

महात्मा बुद्ध के समय में ही बौद्ध धर्म का विकास हो गया था परन्तु उनकी मृत्यु के उपरान्त बौद्ध धर्म शीघ्र ही सम्पूर्ण भारत में फैल गया। फिर धीरे धीरे चीन, जापान, तिब्बत, लंका, मलाया, जावा, सुमात्रा, मध्य एशिया तक फैल गया और विश्व का प्रमुख धर्म बन गया। यद्यपि आधुनिक युग में बौद्ध धर्म अपनी मातृभूमि भारत में लुप्त हो गया परन्तु विश्व

उन्नति के कारण

इसका प्रकार बढ़ता ही रहा है। बौद्ध धर्म की इस रहस्यमय द्रुतगति से विकसित होने के निम्नलिखित कारण हैं—तर्क का अवलम्बन, आचरण की प्रधानता, साधारण भाषा का प्रयोग, उच्चवर्ग का सहयोग, उच्चादर्श, श्रेष्ठ संगठन, प्रचारकों की लगन, समयानुकूल धर्म प्रचारशैली की रोचकता, भेदभाव का परित्याग, वैदिक धर्म के दोषों से रहित, जाति प्रथा का बहिष्कार, बुद्ध का प्रभावशाली व्यक्तित्व, धर्म की सरलता, मध्य मार्ग का अवलंबन, बौद्ध मतावलंबियों का प्रभाव, आकर्षणशीलता, उन्नत तथा विशाल साहित्य; लोकमत से समन्वय, परिवर्तन शीलता, प्रबल प्रतिद्वन्द्वियों का अभाव, नालन्दा विश्वविद्यालय का सहयोग। इसके अतिरिक्त बहुत से अन्य कारण थे जिनके कारण बौद्ध धर्म की उन्नति संभव हो सकी थी।

अवनति के कारण

भारत की भूमि पर जिस द्रुत गति से बौद्ध धर्म का विकास हुआ उसी गति से उसका पतन भी हुआ। ऐसा पतन कि भारत में बौद्ध धर्म का सर्वथा लोप हो गया। इसके कारण निम्न थे—सम्राटों के आश्रय तथा संरक्षण की समाप्ति, ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान, अन्य धर्मों के साथ प्रतिस्पर्धा, भिक्षुओं के आचरण का पतन, सम्प्रदायवाद का विकास, विदेशियों के आक्रमण तथा बौद्ध धर्म की कायरता, राजपूत राजाओं का उत्कर्ष, भिन्न भाषाओं का प्रयोग, संघ में स्त्रियों का प्रवेश, बुद्ध के रूप में देवत्व की स्थापना, मूर्तियों की स्थापना, धर्म प्रचारकों का अभाव तथा लगन की [illegible]।

बौद्ध धर्म की अवनति के उपर्युक्त बहुत से कारण थे परन्तु भारतीय बौद्ध धर्म के पतन का प्रमुख कारण उसका आंतरिक कमजोर एवं [illegible] [illegible]। इसके कारण ही उसका पतन [illegible] कि विदेशियों के आक्रमण से। परिस्थिति से लाभ उठाकर वैदिक धर्म ने [illegible] [illegible] के नेतृत्व में पुनः [illegible] बौद्ध धर्म के कुछ [illegible] [illegible] भी कर लिया जिसके फलस्वरूप बौद्ध धर्म का [illegible] [illegible] भूमि से लुप्त हो गया।

[illegible] बौद्ध धर्म [illegible]

कहा जाता था। प्रारम्भ में बौद्ध भिक्षु पर्यटनशील थे। गुफाओं और जगलों में निवास करते थे तथा भिक्षावृत्ति द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते थे। बाद में

बौद्ध संघ का संगठन

विहार तथा मठ में रहने की अनुमति प्राप्त हो गई और इसके साथ ही साथ बौद्ध भिक्षुओं को धर्मनिष्ठों द्वारा प्रदान भोजन एव वस्त्रों के उपयोग की स्वतन्त्रता भी प्राप्त हो गई। भिक्षुओं की सख्या बढ़ने लगी लगी इसके नियंत्रण के लिये तथा पथ-प्रदर्शन हेतु नियम बनाये गये और इन्हीं नियमों के आधार पर बौद्ध संघ का निर्माण किया गया। बौद्ध सघ के मुख्य नियम निम्न थेः—

(१) संघ प्रवेश—महात्मा बुद्ध द्वारा 'एहि भिक्षु' कह कर दीक्षा दी जाती थी। बुद्ध के उपरान्त संघ में दीक्षा देने का कार्य अनुयायियों को प्राप्त हो गया। संघ में प्रवेशाधिकार के लिये माता-पिता की स्वीकृति आवश्यक थी। कम से कम १५ वर्ष की आयु योग्यता भी आवश्यक मानी जाती थी। प्रवेशाधिकार के पहले मूंछ-दाढ़ी तथा सिर के मुंडवाने पड़ते थे; पीले वस्त्र धारण करने पड़ते थे।

(२) मठ—बौद्ध भिक्षुओं तथा साधुओं के निवास तथा चिन्तन के लिए मठों का निर्माण किया जाता था। मठों का निर्माण कब, कहां और किस प्रकार से हो, हो इसका पूर्ण सविधान था। मठों की सम्पत्ति पर संघ का पूर्ण अधिकार होता था।

(३) वस्त्र-भोजन-औषधि—प्रत्येक बौद्ध भिक्षु के लिये तीन चीवर पहिनने आवश्यक थे। भोजन का प्रबन्ध भिक्षा द्वारा करना पड़ता था परन्तु विशेष भिक्षा मांगने का निषेध था। रुग्णावस्था में औषधि का प्रयोग करने का भी अधिकार था।

(४) प्रतिपक्ष सभा—बौद्ध भिक्षुओं के आचरण पर नियंत्रण रखने वाली सभा थी। सभा की कार्यवाही में उपस्थिति आवश्यक होती थी। रुग्ण सदस्य को अपना प्रतिनिधि भेजना पड़ता था। सर्व प्रथम संघ स्थवर का निर्वाचन होता था, फिर दो वक्ताओं का चुनाव होता था और अन्त में उन भिक्षुओं का जिन्होंने संघ के नियमों का उल्लंघन किया था, निर्णय किया जाता था।

(५) वर्षावास—वर्षा ऋतु के तीन मास एक निश्चित निवास स्थान में व्यतीत करने पड़ते थे।

(६) भिक्षुणियों के विशेष नियम—प्रारम्भ में महात्मा बुद्ध स्त्रियों के प्रवेशाधिकार के विरुद्ध थे परन्तु अपने प्रिय शिष्य 'आनन्द' के कहने पर उन्होंने अनुमति तो दे दी परन्तु उनके पर्यटन, निवास आदि के लिये सख्त निरीक्षण तथा नियमों का भी निर्माण किया गया।

(७) संगठन—बौद्ध संघ के संगठन में मृत्यु के उपरान्त व्यक्तिगत उत्तराधिकारी निर्वाचन प्रथा का अभाव था। अनुयायियों द्वारा निर्वाचन किया जाता था। शलाकाओं द्वारा गुप्त रूप से निर्वाचन व्यवस्था का प्रबन्ध था। निर्वाचन सभा में निश्चित संख्या की उपस्थिति आवश्यक थी।

बौद्ध तथा ब्राह्मण धर्म

बौद्ध धर्म की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों में कई मत हैं। कुछ का कथन है कि बौद्ध धर्म नूतन धर्म था, कुछ का कहना है कि यह केवल सामाजिक क्रान्ति थी तो कुछ इसे तत्कालीन हिन्दू धर्म का ही संशोधित एवं परिवर्तित रूप मानते हैं। वास्तव में बौद्ध धर्म भारत के लिए नूतन नहीं था। उसके सिद्धान्तों का प्रादुर्भाव उपनिषद् काल में हो चुका था। केवल सामाजिक कुरीतियों एवं असमानता तथा नैतिक पतन के विरुद्ध विद्रोह था। परन्तु जहाँ तक दैनिक जीवन की समस्याओं का सम्बन्ध था, एक बौद्ध हिन्दू ही बना रहता था। क्योंकि बौद्ध धर्म ने ब्राह्मणों का बहिष्कार तो किया परन्तु उनके स्थान पर अन्य व्यक्ति या वर्ग की नियुक्ति नहीं की। बौद्ध और ब्राह्मण धर्म में काफी समानता थी और मतभेद भी थे। जहाँ तक समानता का सम्बन्ध है वे इस प्रकार थीं—दोनों धर्मों का अन्तिम लक्ष्य समान था अर्थात् एक के अनुसार मोक्ष और दूसरे के अनुसार निर्वाण। दोनों धर्म शान्ति तथा सहिष्णुता के प्रतीक थे और दोनों का इतिहास धार्मिक अत्याचारों से मुक्त था। दोनों धर्म पुनर्जन्म तथा कर्मवाद के सिद्धांत को मानते थे। दृष्टिकोण अवश्य भिन्न थे। दोनों धर्मों में शील तथा आचरण के नियम की प्रधानता थी। दोनों धर्मों का विश्वास था कि संसार दुखों से परिपूर्ण है और इन दुखों को दूर करने के उपाय भी ढूंढने चाहिएं। बौद्ध धर्म ने इस तत्व को भी हिन्दू धर्म से ही ग्रहण किया था।

*उपर्युक्त समानताओं के साथ ही साथ दोनों धर्मों में मतभेद भी था। ब्राह्मण धर्म का वेदों में विश्वास था जबकि बौद्ध धर्म वेदों को प्रामाणिक ग्रंथ नहीं मानता और केवल तर्क शास्त्र मानता है तथा स्वयं भी तर्क को सर्वप्रधान स्थान देता है। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म ने ब्राह्मण धर्म के प्रमुख कार्यों—हिंसात्मक बलि, यज्ञ, अनुष्ठान आदि का बहिष्कार किया। ब्राह्मण धर्म द्वारा निर्देशित वर्ण व्यवस्था एवं जाति पाँति का बहिष्कार किया। बौद्ध धर्म की उदार बन्धुत्व की भावना ही इस बात की प्रतीक है कि बुद्ध जाति पाति के विरुद्ध थे। बौद्ध धर्म में संगठन पद्धति थी; संघ संवैधानिक आधारशिला पर टिका हुआ था परन्तु हिन्दू धर्म में किसी प्रकार का कोई संगठन नहीं था। बौद्ध धर्म सदाचार द्वारा निर्वाण प्राप्ति का मार्ग बतलाता है परन्तु ब्राह्मण धर्म ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्ति। ब्राह्मण धर्म अग्नि पूजा करता था परन्तु बौद्ध धर्म इस पूजा का विरोधी था। बौद्ध धर्म के अनुसार ईश्वर तथा मनुष्य में प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित किया जा सकता था परन्तु हिन्दू धर्म में मध्यस्थ की आवश्यकता थी। हिन्दू धर्म में ब्राह्मणों का प्रभुत्व था बौद्ध धर्म ने इस प्रभुत्व को अस्वीकार किया। ब्राह्मणों का धर्म शूद्रों को मोक्ष का अधिकारी नहीं मानता परन्तु बौद्ध धर्म मानव मात्र को मोक्ष का अधिकारी समझता था। ब्राह्मण धर्म का ईश्वर तथा आत्मा के अमरत्व में विश्वास था। बौद्ध धर्म इन दोनों में विश्वास नहीं रखता।

बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म

बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म में इतनी समानतायें है कि कुछ विद्वानों ने जैन धर्म को बौद्ध धर्म की ही उपशाखा मान लिया। परन्तु यह धारणा गलत है। जैन धर्म बौद्ध धर्म से कहीं पुराना है। यह ठीक है कि इन दोनों धर्मों में काफी समानताएं है। बौद्ध धर्म के प्रवर्तक क्षत्रिय थे जो जैन धर्म के अंतिम तीर्थन्कर महावीर, जिन्होंने जैन धर्म को तत्कालीन रूप दिया, भी क्षत्रिय थे। बुद्ध तथा महावीर दोनों ने घोर तपस्या की थी। दोनों के धर्म का प्रचार केन्द्र मगध था। दोनों ने हिन्दू धर्म को सुधारने का प्रयत्न किया था। दोनों नास्तिक धर्म थे, दोनों धर्मों ने यज्ञों तथा बलिदानों का बहिष्कार किया था। दोनों ने ब्राह्मणों के आडम्बरों का विरोध किया। दोनों ने अहिंसा के पालन पर जोर दिया। दोनों धर्मों का प्रचार साधुओं द्वारा हुआ। दोनों धर्मों ने

१

उपनिषदों से शिक्षा ग्रहण की। दोनों ने कर्म, पुनर्जन्म तथा मोक्ष के सिद्धान्तों को स्वीकार किया। दोनों धर्मों ने सदाचार को प्रधानता दी। दोनों धर्मों में साधु तथा गृहस्थ उपासकों के लिये पृथक पृथक नियम थे। दोनों धर्म के विरुद्ध थे। दोनों धर्मों ने देववाणी संस्कृत का त्याग करके जनसाधारण की भाषा को प्रधानता दी थी। दोनों धर्म कालान्तर में उपशाखाओं में विभक्त हो गये। परन्तु दोनों धर्मों के अनुयायियों के लिये यह आवश्यक नहीं था कि वे वैदिक देवताओं का त्याग करें। दोनों धर्मों ने जाति प्रथा का बहिष्कार किया था। दोनों धर्म एक ही उद्देश्य से—संसार दुखों से परिपूर्ण है और दुखों को दूर करने का उपाय ढूंढना चाहिए—उत्पन्न हुए थे। दोनों धर्मों में संगठन पद्धति पर जोर दिया गया था। कालान्तर में दोनों धर्मों में मूर्तिपूजा का विकास हुआ।

उपर्युक्त समानताओं के अतिरिक्त दोनों धर्मों में मतभेद भी था। जैन धर्म मोक्ष का अर्थ आत्मा का दुखों से मुक्त हो जाना मानता था परन्तु बौद्ध धर्म निर्वाण का अर्थ व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से समाप्त कर देना मानते थे। मोक्ष प्राप्ति के साधन भी भिन्न भिन्न थे। जैन घोर तपस्या में विश्वास करते थे, बौद्ध मध्य मार्ग का अवलम्बन करते थे। जैन लोगों के अनुसार मोक्ष मृत्यु के उपरांत प्राप्त होता था जबकि बौद्ध धर्म का निर्वाण इसी युग में प्राप्त किया जा सकता था। जैन लोग अहिंसा का पालन कठोरता के साथ करते थे परन्तु बौद्ध धर्म तथा साध्य अहिंसा का पालन करता था। डा. स्मिथ का कथन है कि 'जैन लोग गृहस्थ को बड़ा महत्व देते थे—परन्तु बौद्ध लोग संघ को बहुत महत्व देते थे। बौद्ध आत्मा तथा परमात्मा को नहीं मानते थे परन्तु जैन धर्म का दोनों में विश्वास था। यद्यपि जैन लोग परमात्मा को सृष्टि का कर्त्ता नहीं मानते थे क्योंकि वे निराकार ईश्वर में विश्वास रखते थे और निराकार व्यक्ति आकार की उत्पत्ति नहीं कर सकता था। बौद्ध लोग अष्टांग मार्ग पर जोर देते थे और जैन लोग त्रिरत्न पर। जैन धर्म ने हिन्दू धर्म से सम्पर्क रख छोड़ा था परन्तु बौद्ध धर्म का स्वतन्त्र विकास हुआ। बौद्ध धर्म को विश्व रूप प्राप्त हुआ जबकि जैन धर्म भारत तक ही सीमित रहा। जैन लोगों द्वारा तीर्थंकरों में विश्वास किया जाता था और बौद्ध लोग बुद्ध तथा बोधिसत्व में विश्वास करते

थे। बौद्ध धर्म भारत से लुप्त हो गया परन्तु जैन धर्म आज तक भारत में विद्यमान है।

कालांतर में बौद्ध धर्म में आतरिक मतभेद की उत्पत्ति हुई जिसके परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म दो हिस्सों मे विभाजित हो गया—हीनयान और महायान। हीनयान बौद्ध धर्म के प्राचीन स्वरूप को मान्यता देता था। ईश्वर में विश्वास नहीं करता था। बुद्ध के अनुसार ही मुक्ति पाने का पथ स्वीकार करता था। हीनयान स्वावलम्बन की शिक्षा पर जोर देता था। प्रत्येक व्यक्ति को अपने उद्योग से निर्वाण प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। आध्यात्मिक एवं नैतिक सिद्धातों पर अधिक जोर देता था। बुद्ध की पूजा करता था। स्वर्ग व नरक की भावना में भी विश्वास रखता था। इस शाखा की संख्या कम थी। महायान शाखा की संख्या अधिक थी। यह परिवर्तन स्वीकार करता था। प्राचीन कट्टरता का त्याग करके विश्व कल्याण के सिद्धान्त पर अधिक ज़ोर दिया। इसके अनुसार बोधिसत्व की प्राप्ति प्रमुख उद्देश्य थी और बोधिसत्व का तात्पर्य पृथक् ज्ञान की प्राप्ति था। इसके उपरात उसे अन्य प्राणियों को दुख से मुक्त करने का कार्य करना चाहिए। बुद्ध को परमात्मा मानता था। उपयोगिता पर अधिक ज़ोर देता था। पञ्च स्कन्धों को सत्य नहीं मानता था। संसार पूर्णतया मिथ्या है तथा भूततथ्य या धर्म कार्य ही जीवन का सार है। यह विचार-स्वातन्त्र्य को स्थान देता था। वैदिक देवताओं को भी स्थान दिया भक्ति भावना को ग्रहण किया। यह अति लोकप्रिय हो गया।

बौद्ध धर्म का विभाजन

बौद्धधर्म की भारतीय जन संस्कृति को स्थायी देन:—

बौद्धधर्म ने जहां एक तरफ प्राचीन भारतीय संस्कृति की विचार सरणी को परिवर्तित व प्रभावित किया है वहीं दूसरी तरफ उसने भारतीय जन संस्कृति को स्थायी देन भी दी है। स्थाई देन के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं:—

(१) जीवन का उत्थान स्वकर्म पर आधारित है, भगवत कृपा पर नहीं।

(२) जाति-पांति, ऊंच-नीच, भेद-भाव अनादि नही है बल्कि मानव निर्मित हैं। सभी व्यक्ति निर्वाण (आनन्द स्थिति) को प्राप्त करने के अधिकारी हैं।

(३) परस्पर व्यवहार में अहिंसा एवं करूणा का भाव एवं।

(४) अद्भुत स्थापत्य, मूर्ति एवं चित्रकला।

जैन धर्म—जैन धर्म की उत्पत्ति को लेकर विद्वानों में काफी समय तक मतभेद रहा था परन्तु अब सर्व समान्य रूप से यह स्वीकार किया जाने लगा है कि जैन धर्म बौद्ध धर्म की शाखा नहीं है। इसकी उत्पत्ति वैदिक काल से है।

जैन धर्म की उत्पत्ति व विकास

यद्यपि महावीर वर्धमान जैन धर्म के जन्मदाता माने जाते हैं परन्तु वे जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकर थे। उनके पूर्व २३ तीर्थंकर हुए जिन्होंने समय-समय पर इस धर्म का प्रसार किया। इसकी उत्पत्ति राजा ऋषभ से हुई थी जिन्होंने अपने पुत्र भरत को राज पाट देकर सन्यास ग्रहण कर लिया और जैन धर्म चलाया। २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ जी थे जिनकी मृत्यु महावीर से २५० वर्ष पूर्व हो चुकी थी। पार्श्वनाथ जी ने जैन धर्म का सूत्रपात किया। उस समय तक जैन धर्म "निर्ग्रंथ" कहलाता था। यह धर्म अहिंसा में विश्वास करता था और वैदिक धर्म को हिंसा का धर्म बतलाता था। महावीर के पूर्व निर्ग्रन्थ धर्म काफी फैल चुका था यद्यपि सम्पूर्ण भारत में लोकप्रिय हो गया था।

जैन धर्म की वास्तविक प्रगति महावीर वर्धमान के नेतृत्व में हुई उन्होंने ही निर्ग्रंथ धर्म को जैन धर्म का रूप दिया। इसी कारण वे जैन धर्म के प्रवर्तक माने जाते हैं। महावीर का जन्म वैशाली के समीप कुण्ड ग्राम में ज्ञातृगण के क्षत्रिय कुल के राजा सिद्धार्थ के घर हुआ था। उनकी माता लिच्छवी वंश के राजा चेटक की बहिन त्रिशला थी। वर्धमान का विवाह यशोदा के साथ हुआ था। उनके एक कन्या भी हुई थी। तीस वर्ष की अवस्था

महावीर की जीवनी

में ज्ञान की खोज में उन्होंने गृह त्याग करके वन पथ का आश्रय लिया और कठोर तपस्या की। वे निर्वस्त्र नग्न होकर तपस्या करने लगे। भूख, प्यास और शारीरिक क्लेश से उनका शरीर सूख गया। एक दिन विम्भिक ग्राम के बाहर ऋजुपालिका नदी के तट पर महावीर को 'कैवल्य' (मोक्ष का ज्ञान) प्राप्त हुई। तभी से वे अर्हत (पूज्य) जिन (विजेता) निर्ग्रन्थ (बन्धन हीन)

कहलाने लगे और जैनियों ने उन्हें अपना चौबीसवां तीर्थंकर मान लिया। ज्ञान प्राप्ति के उपरांत महावीर मगध, अंग, मिथिला, श्रावस्ती, वैशाली, राजगृह आदि स्थानों पर उपदेश देते रहे और अपने धर्म का प्रचार करते रहे। बुद्ध उनके समकालीन थे और प्रायः दोनों महापुरुषों में शिष्यों में पारस्परिक झगड़ा या वाद-विवाद हो जाया करता था। ७२ वर्ष की अवस्था में ईसा के ४६८ वर्ष पूर्व राजगृह के निकट पावा नामक नगर में उनकी मृत्यु हो गई। ऐसा विश्वास है कि वे बुद्ध के १५ वर्ष बाद निर्वाण प्राप्त हुए।

जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

जैन धर्म का मूल सिद्धांत पंच महाव्रत है। महावीर के पूर्व केवल चार महाव्रत थे—सत्य, अहिंसा, अस्तेय तथा अपरिग्रह। महावीर ने इसमें 'ब्रह्मचर्य' और जोड़ दिया। अहिंसा जैन धर्म का प्रमुख सिद्धांत है। प्राणी मात्र की हिंसा पाप समझा जाता था। मन, वचन तथा तन से किसी भी प्राणी को क्लेश पहुँचाना भी हिंसा माना जाता था। जैन धर्म के अनुयायियों में गृहस्थ तथा साधु दोनों थे। अतः गृहस्थ लोगों को स्थूल रूप से अहिंसा का पालन करने का उपदेश दिया गया। अर्थात् केवल जंगम जीव की हिंसा से बचने का उपदेश परन्तु साधु तथा भिक्षु वर्ग के लिए जंगम तथा स्थावर (वृक्षादि) दोनों जीव की हिंसा से बचने का उपदेश है।

(१) पांच महाव्रत
अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य

अहिंसा के उपरांत सत्य का स्थान था। सत्य यदि कटु हो तो उसका भी उल्लेख नहीं किया जाना चाहिए। सुन्दर तथा मधुर सत्य का उल्लेख करना चाहिए। इसके लिये क्रोध, भय, लोभ तथा मोह का त्याग करना आवश्यक था। ब्रह्मचर्य के अनुसार सभी प्रकार की काम-वासना का त्याग कर देना चाहिए। अपरिग्रह के अनुसार किसी वस्तु में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। आवश्यकता से अधिक किसी वस्तु का संग्रह नहीं करना चाहिए गृहस्थों को चाहिए कि वे अपनी कमाई का एक निश्चित भाग धर्म कार्य में लगा दें इससे द्रव्य के प्रति उनकी लालसा कम हो जायेगी। अस्तेय के अनुसार चोरी करना पाप था।। दूसरों की वस्तु को बिना पूछे अपने पास रखना भी पाप था और राह में मिली हुई वस्तु का उपयोग करना भी पाप था।

(२) त्रिरत्न, ज्ञान, दर्शन, चरित्र

जैन धर्म 'त्रिरत्न' में विश्वास करता था। ये त्रिरत्न थे सम्यक् ज्ञान सम्यक् दर्शन और सम्यक् चरित्र। सम्यक् ज्ञान का तात्पर्य था सात्विक ज्ञान की प्राप्ति, अच्छे ज्ञान का संग्रह तथा प्रसार एवं अनैतिक का त्याग। अच्छा ज्ञान वही है जिससे मन को शांति मिले, नैतिकता का विकास हो। मानव-समाज की कल्याण भावना हो। सम्यक् दर्शन का तात्पर्य अच्छी विचारधारा है अर्थात् नैतिक विचार—ज्ञान से परिपूर्ण विचार। सम्यक् चरित्र का तात्पर्य इन्द्रियों का दमन है। नैतिक चरित्र से आशय है, अच्छा चरित्र हो। जैन लोगों का 'त्रिरत्न' में अगाध विश्वास है। ठीक उसी तरह जैसे कि बौद्ध लोगों का अपने धर्म, संघ तथा बुद्ध है।

(३) ईश्वर के विश्वास में सन्देह

जैन लोग ईश्वर में विश्वास नहीं करते हैं। वे ईश्वर को सृष्टि का कर्ता व हर्ता नहीं मानते। वे तीर्थंकरों की पूजा करते हैं और तीर्थंकरों में ईश्वर का आभास पाते हैं। वे तीर्थंकरों की पूजा दया या दान के लिये नहीं करते। वे कर्म में विश्वास करते हैं मनुष्य की मुक्ति ईश्वर के हाथ में नहीं बल्कि उसके सत्कर्मों में निहित है। संक्षेप में जैन धर्म स्वावलम्बन की शिक्षा देता है।

(४) आत्मा में विश्वास

परन्तु इसके विपरीत जैन लोग आत्मा के अस्तित्व तथा अमरत्व में विश्वास करते हैं। आत्मा को वे सर्व शक्तिमान पवित्र प्रकाश का द्योतक मानते हैं। मानवीय कर्म के कारण आत्मा की शक्ति घटती बढ़ती रहती है। आत्मा पूर्ण तथा निर्विकार है परन्तु इन्हीं कर्मों के कारण विकार वाली हो जाती है। बन्धनों में पड़ जाती है। इसका अस्तित्व है और यह शरीर से अलग है। इसमें ज्ञान का भण्डार है। इसी के कारण सुख दुख की अनुभूति होती है।

बौद्ध धर्म की भांति जैन लोग भी कर्मवादी थे। वे कर्म को बहुत महत्व देते थे। कर्म में उनका विश्वास था। अच्छे कर्मों के द्वारा मनुष्य मुक्ति प्राप्त

कर सकता है। कर्मों की योग्यतानुसार ही हमारा जन्म होता है। सुख-दुख सहन करना पड़ता है। कर्मों के द्वारा ही हमारी शारीरिक रचना होती है। इसी के द्वारा वंश, जाति, आयु आदि का निर्णय होता है।

(५) कर्म की प्रधानता

परन्तु जैन धर्म यज्ञ, बलि तथा अनुष्ठान को अच्छा कर्म नहीं मानता है। जब मनुष्य में बुरे विचार उत्पन्न होते हैं तो वह बुरे कर्म करता है और बुरे कर्मों के कारण उसकी आत्मा माया, मोह, राग, द्वेष आदि विकारों की शिकार बन जाती है; जिससे मनुष्य का पतन होता है।

जैन धर्म विषयों का विनाश आवश्यक मानता है। मनुष्य को चाहिए कि वह आत्मा के चारों ओर घिरे हुये कर्म के बन्धनों को काटकर आत्मा को मुक्त करने का प्रयत्न करे। जैन धर्म के अनुसार सांसारिक इच्छाएं हमारी आत्मा को मलिन कर देती हैं। अतः सासारिक इच्छाओं का दमन करना चाहिए। ये इच्छाए इन्द्रियों की सहायता से आत्मा में प्रवेश करती हैं। अतः इन्द्रियों का दमन किया जाना चाहिए। इनको रोकना चाहिए और जो इच्छाएं आत्मा में प्रवेश पा चुकी हैं उन इच्छाओं को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

(६) विषयों का विनाश

जैन धर्म आत्मा को कर्मों के बन्धनों से मुक्त करने का मार्ग भी बतलाता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि नये विषयों को आत्मा में प्रवेश करने से रोके और पुराने विषयों को दूर करने का प्रयत्न करे। इस कार्य को सुगमतापूर्वक करने के लिये सात साधन बतलाये गये हैं। इन साधनों के द्वारा मनुष्य कर्म के बन्धनों को दूर करता है। ये सात साधन निम्न हैं—(१) पांच महाव्रतों का पालन जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। (२) समिति अर्थात चलने, बोलने, भिक्षा प्राप्त करने, शौच आदि में सतर्कता रखी जाय ताकि किसी जीव की हिंसा न हो। (३) गुप्ति-अर्थात् अपने विचारों, भाषणों तथा शरीर के विचरण पर पूर्ण नियंत्रण रखा जाय। (४) दस आचरण-धर्म, क्षमा, नम्रता, सौजन्य, सत्य, स्वच्छता, आत्मसंयम, पवित्रता, त्याग तथा अविवाहित जीवन को अधिक महत्व

(७) आत्मा को कर्म के बन्धनों से मुक्त करने के साधन

दिया जाय। (५) आत्मा तथा सृष्टि एवं उससे संबंधित समस्याओं का अध्ययन किया जाय। विचार किया जाय। (६) सामयिक क्रिया अर्थात् मन को किसी भी तरह विचलित न होने दिया जाय और समान संतुलन में रखा जाय। (७) प्रतिक्रमण अर्थात् मनुष्य को अच्छे कर्म करने चाहिएं। नैतिक चरित्र बनाना चाहिए। अनैतिक तथा बुरे कर्मों से दूर रहना चाहिए। इन साधनों के पालन से आत्मा कर्म के बन्धनों से मुक्त हो सकती है और कर्म के बन्धनों से मुक्त आत्मा को निर्वाण या कैवल्य प्राप्त होता है।

कालान्तर में जैन धर्म दो प्रमुख शाखाओं श्वेताम्बर तथा दिगम्बर में विभाजित हो गया। दिगम्बर संप्रदाय जैन धर्म के सिद्धान्तों का कट्टरता के साथ पालन करता है परन्तु श्वेताम्बर स्थूल रूप से पालन करता है और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन भी स्वीकार कर लेता है। दिगम्बर संप्रदाय कपड़े पहनना भी पसन्द नहीं करता। दिगम्बर मत के अनुसार स्त्री को उस समय तक मुक्ति नहीं मिल सकती जब तक कि वह पुरुष की योनि में जन्म न ले। मनुष्य को भोजन की आवश्यकता नहीं रखनी चाहिए ताकि समस्त इन्द्रियों से मुक्त हो सके। परन्तु श्वेताम्बर संप्रदाय उनकी इस विचारधारा से सहमत नहीं है। आधुनिक समय में जैन धर्म अनेक उपशाखाओं में विभाजित है।

जैन धर्म में विभाजन

कालान्तर में जैन धर्म पर पौराणिक हिन्दू धर्म का भी प्रभाव पड़ा यह प्रमुख रूप से निम्नलिखित था—

(१) तीर्थंकरों के मंदिर स्थापित होने लगे।
(२) तीर्थंकरों की मूर्तियों की पूजा होने लगी।
(३) वर्ण भेद की भावना उत्पन्न हुई।

जैन धर्म का भारतीय जन संस्कृति पर निम्न प्रभाव पड़ा —

(१) अनेकान्तवाद मत के प्रवेश का होना है।
(२) जीवन में मनुष्य के कर्म पर ही निर्भर रहने की भावना।
(३) प्राणिमात्र के प्रति अहिंसा की भावना का विकास।
(४) अनेक कलात्मक मंदिर एवं मूर्तियों का निर्माण।

बुद्धकालीन सभ्यता एवं संस्कृति—

प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों तथा जैन ग्रन्थों से ई० पू० छठी शताब्दी के भारत की सभ्यता और संस्कृति का आभास मिलता है। उस युग में भारत में १६ प्रमुख राज्यों का अस्तित्व था। ये राज्य महाजन पद कहलाते थे। कौशल, मगध, अवन्ती, वत्स, वैशाली आदि प्रमुख महाजनपद थे। उस युग ने राजतन्त्रात्मक तथा प्रजातन्त्रात्मक दोनों प्रकार की व्यवस्थाएं थी। अधिकांश महाजनपदों में राजतन्त्रात्मक व्यवस्था थी। राजा वंशानुगत होता था परन्तु उसका शासन निरंकुश या स्वेच्छाचारी नहीं होता था। उस पर मंत्रि-परिषद् का अंकुश होता था। कभी-कभी मंत्रि-परिषद अयोग्य या अत्याचारी राजाओं को पदच्युत भी कर देती थी। राजा के अधिकार असीमित थे। वह न्याय, सेना, धर्म, समाज तथा प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी व सम्मानित व्यक्ति होता था।

राजनैतिक स्थिति

गणतन्त्रात्मक व्यवस्था में भी राजा का स्थान था। कई राज्य मिलकर अपना एक संघ बना लेते थे और फिर आपस में मिलकर एक राजा' का निर्वाचन करते थे। परन्तु इस राजा को गणपरिषद की सम्मति के अनुसार कार्य करना पड़ता था। गणपरिषद् का संविधान होता था और संविधान के नियमानुसार कार्य किया जाता था। संविधान के नियमों का उल्लंघन करने वाले को कठोर सजा दी जाती थी। कहीं कहीं पर राजा के स्थान पर 'गणपति' या 'गणाध्यक्ष' का निर्वाचन होता था। गणपरिषद में युवक तथा वृद्ध सभी सम्मिलित होते थे। गणपरिषद का एक सभापति भी होता था जो सभी की बैठक में अध्यक्ष का कार्य करता था। निर्णय बहुमत से किये जाते थे। न्यायालयों की पर्याप्त स्वतन्त्रता थी। अभियुक्त को निम्न न्यायालय से लेकर राजा तक अपील करने का अधिकार था।

प्रारम्भिक बुद्ध कालीन समाज में अनेक कुरीतिया विकसित हो गई थी। समाज जाति, उपजाति के जाल में फंसा हुआ था। ब्राह्मणों का प्रभुत्व चरम सीमा पर पहुंच चुका था। क्षत्रिय भोग-विलास में डूबे हुये थे और अपने कर्त्तव्य से विमुख हो गये थे। वैश्यवर्ग-द्रव्य बढ़ाने की चिन्ता में था। इस वर्ग
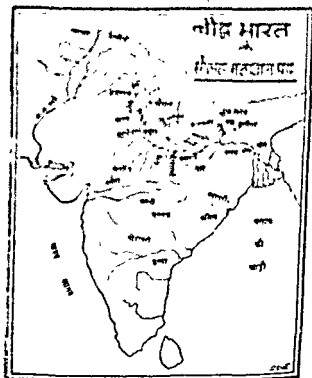
था। स्त्रियों की स्थिति बहुत गिर चुकी थी! इस युग में आठ प्रकार विवाह के ब्राह्म, गान्धर्व स्वयंवर, आर्ष, असुर राक्षस, पैशाचिक आदि का उल्लेख

मिलता है। सगोत्र में विवाह करने की प्रथा नहीं थी। मामा तथा बुआ के लड़के लड़कियों से भी सम्बन्ध करने की प्रथा कम हो रही थी। स्त्रियों को शील तथा लज्जा के कारण पुरुषों से आवरण रखना पड़ता था यद्यपि पर्दा का प्रारम्भ नहीं हुआ था। बहुविवाह का रोग बढ़ गया था। महात्मा बुद्ध तथा महावीर के प्रयत्नों से समाज की कुरीतियां दूर हो गई। यद्यपि जाति प्रथा का पूर्ण उन्मूलन न हो सका परन्तु पुनर्जाग्रत हिन्दू धर्म ने शूद्रों को भी सम्मान प्रदान किया। प्रारम्भ में स्त्रियों को भिक्षुणी बनने का अधिकार प्राप्त नहीं था परन्तु बाद में मिल गया।

बौद्ध ग्रंथों तथा जैन ग्रंथों से उस युग की आर्थिक स्थिति पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। उस युग में अधिकांश लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि था।

आर्थिक स्थिति

कृषि के सहारे वे अपने परिवार का भरण पोषण करते थे। कृषि योग्य भूमि पर किसानों का अधिकार होता था। उस युग में सामन्त प्रथा या जागीर प्रथा का सूत्रपात नहीं हो पाया था। राजा किसानों से अपने कर्मचारियों के माध्यम से उपज का दसवां हिस्सा ले लेता था। कृषि के लिए सिंचाई का प्रबन्ध था। सिंचाई के लिये नहरें थी। सरोवरों, नदियों, झीलों तथा बांधों की सहायता से सिंचाई की जाती थी। गांव वालों की स्थिति मध्यम वर्ग की भांति थी। न अमीर और न गरीब। देश धन धान्य से परिपूर्ण था।

नगरों की आर्थिक स्थिति समृद्ध थी। यहाँ के व्यापारी धनिक थे। इनके भवन विशाल तथा भव्य होते थे। गरीब नागरिकों के भवन अवश्य छोटे छोटे होते थे। उस समय वाराणसी, राजगृह, कौशाम्बी, श्रावस्ती, वैशाली, चम्पा, तक्षशिला, अयोध्या, उज्जैन, मथुरा आदि प्रमुख नगर थे। जहा धन धान्य की कोई कमी नहीं थी।

कृषि के अतिरिक्त अन्य प्रकार के उद्योग धंधों का भी विकास हो चुका था। इस युग में मुख्य व्यवसायी थे–बढ़ई, लोहार, सुनार, चर्मकार, कुम्हार, तेली, जुलाहा, हाथी दांत का काम करने वाले, रंगरेज, जौहरी, चित्रकार आदि। प्रत्येक व्यवसायी अपने अपने–अपने संघ या श्रेणी में संगठित था। इन श्रेणियों का प्रधान 'प्रमुख' कहलाता था और यह राजदरबार का माननीय सदस्य माना

जाता था। व्यापारी शिल्पी और अन्य व्यवसायी निर्भीकता से व्यापार, व्यवसाय तथा कार्य की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते थे। किसी प्रकार की रुकावट नहीं थी।

सिकन्दर महान के आक्रमण के फलस्वरूप भारत यूनान के सम्पर्क में आ चुका था। जहाँ भारतीय सभ्यता ने यूनानी सभ्यता को प्रभावित किया था वहीं यूनानी सभ्यता का भी प्रभाव पड़ा। भारत ने ज्योतिष, गणित के साथ ही साथ यूनान से मुद्रण प्रणाली को भी ग्रहण किया जिसके फलस्वरूप उस युग में भारत में मुद्रा का प्रचलन हो चुका था। सबसे निम्न सिक्का ताँबे का होता था जो 'कहापण' कहलाता था 'निष्क' और 'सुवर्ण' सोने के सिक्के थे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय की आर्थिक स्थिति अच्छी थी।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) बौध धर्म की उत्पत्ति कब और कैसे हुई ? इसके प्रवर्तक कौन थे ?

(२) महात्मा बुध की जीवनी पर एक लेख लिखिए।

(३) बौध धर्म के प्रमुख सिधान्त क्या थे ? विस्तार से समझाइये।

(४) "बौध धर्म सामाजिक क्रांति थी।" आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं। अपने पक्ष के समर्थन में अपने विचार बतलाइए।

(५) बौध धर्म तथा वैदिक धर्म में क्या क्या समानताएं एवं असमानताएं हैं ?—समझाइए।

(६) बौध धर्म और जैन धर्म में क्या क्या समानताएं तथा विभिन्नताएं हैं ?

(७) जैन धर्म का प्रवर्तक कौन था ? उसकी जीवनी के बारे में आप क्या जानते हैं ?

(८) जैन धर्म के सिधान्तों की व्याख्या कीजिए।

(९) बुधकालीन युग में लोगों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति का उल्लेख कीजिए।

(१०) बौद्ध धर्म की उन्नति तथा पतन के कारणों पर एक लेख लिखिए।

---

(५) मौर्यकालीन भारतीय सभ्यता

प्राचीन भारत में सबसे प्रथम सुसंगठित शासन के रुप में जिसने संपूर्ण उत्तरी भारत पर आधिपत्य स्थापित करके एक छत्र साम्राज्य स्थापित किया, वह
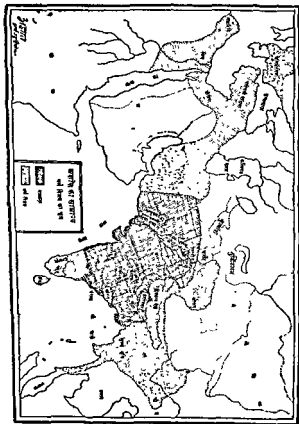
मौर्य शासन था। किन्तु मौर्यों के पूर्व भारत में सोलह महाजनपद थे। धीरे धीरे साम्राज्यवादी भावना का विकास हुआ और महत्वाकांक्षी राज्यों ने निर्बल राज्यों को हड़पने का कार्य प्रारम्भ किया और इन सोलह राज्यों में से अन्त में केवल चार राज्य रह गये—(१) मगध (दक्षिणी बिहार) (२) कोशल (अवध) (३) वत्स (कौशाम्बी या इलाहाबाद) और (४) अवन्ती (मालवा) मगध साम्राज्य का जन्मदाता बिंबसार था। नन्द वंश के शासनकाल में मगध के साम्राज्य का विस्तार हुआ। उसकी विशाल सेना का हाल सुनकर विश्व विजेता सिकन्दर महान् भी व्यास नदी से लौट गया था। नंदवंश का अन्त करके चन्द्रगुप्त मौर्य ने मौर्य वंश की नींव डाली।

मगध का उत्कर्ष

मौर्य वंश का संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य वीर तथा पराक्रमी सम्राट् था। सिकन्दर के आक्रमण ने सीमान्त राज्यों की शक्ति को कुचल दिया था। चन्द्रगुप्त ने इस अवसर से लाभ उठाकर सीमान्त प्रान्तों पर अधिकार कर लिया और सिकन्दर द्वारा नियुक्त यूनानी क्षत्रपों को मार भगाया। इसके उपरान्त उसने पंजाब और मगध पर अपना अधिकार किया। फिर गुजरात, मालवा पर भी अधिकार किया। ई. पू. ३१२ में सिकंदर के उत्तराधिकारी सेनापति सिल्यूकस ने भारत पर आक्रमण किया। चन्द्रगुप्त ने उसे पराजित किया। सिल्यूकस ने अपनी पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त से किया और दहेज में कंधार, हिरात, बिलोचिस्तान तथा काबुल के प्रान्त दिये। चन्द्रगुप्त न केवल पराक्रमी सम्राट् था बल्कि कुशल प्रशासक भी था। उसने एक संगठित संगठित शासन व्यवस्था को जन्म दिया। उसका पुत्र बिन्दुसार भी कुशल शासक था। उसने दक्षिण भारत के कई प्रान्त विजय किये। बिन्दुसार का पुत्र अशोक बहुत ही योग्य शासक निकला। अपने प्रारंभिक शासन काल में उसने कलिंग पर अधिकार किया। परन्तु कलिंग युद्ध की विभीषिका से उसका कठोर हृदय पिघल गया और उसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया इस युद्ध के उपरान्त अशोक का सम्पूर्ण समय बौद्ध धर्म की उन्नति तथा प्रजा के हित में व्यतीत हुआ। अशोक को महान् की उपाधि से विभूषित करते हैं। विश्व के महान सम्राटों और धर्म प्रचारकों में

मौर्य वंश का राजनैतिक इतिहास

अशोक की लाट

अशोक का स्थान सर्वोपरि है। १८३ ई० पू० में मौर्य वंश के अन्तिम सम्राट् बृहस्पति मित्र को मारकर ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने शुंग वंश की स्थापना की।

मौर्य सम्राट् निरंकुश शासक थे परन्तु स्वेच्छाचारी नहीं थे। उनकी शक्ति एवं अधिकार पर नियंत्रण रखने का कार्य मन्त्रि परिषद् के हाथ में था। मंत्रि-परिषद् के सदस्यों की संख्या कार्य भार के अनुसार घटती-बढ़ती रहती थी। यद्यपि मन्त्री लोगों का कार्य सम्राट् को केवल परामर्श देना था परन्तु सम्राट इस परामर्श को सम्मान की दृष्टि से देखता था और कभी कभी ही उलंघन कर पाता था। मन्त्रि-परिषद् के कार्य थे—जो कार्य प्रारम्भ नहीं हुए उन्हें प्रारम्भ करना, जो काम अपूर्ण हो उसे पूर्ण करना तथा कार्यों की पूर्ति के लिए जिन साधनों की आवश्यकता हो उन्हें जुटाना राज्य का केन्द्रीय शासन कई भागों में बंटा हुआ था। प्रत्येक विभाग को 'तीर्थ' कहते थे। प्रत्येक
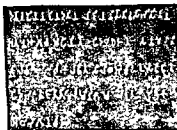
अशोक का एक शिला लेख

विभाग की देख रेख के लिए एक श्रामात्य होता था। श्रामात्यों की कुल संख्या १८ थी।

मौर्य साम्राज्य बहुत विशाल था। सम्राट् या केन्द्रीय शासन के लिए इतने बड़े भू-भाग पर शासन करना सम्भव नहीं था। इसलिए प्रशासन की सुविधा के लिए सम्पूर्ण साम्राज्य पाच प्रांतों में विभाजित था। प्रान्तों का शासन भार 'कुमारों के नियंत्रण में था। ये कुमार प्रायः राजवंश से संबंधित होते थे।

शासन-व्यवस्था

इन कुमारों की नियुक्ति सम्राट् करता था। कुमारों की सहायता के लिए प्रत्येक मन्त्रिपरिषद् होती थी। कुमार तथा मन्त्रिपरिषद् का कार्य प्रांत में शांति स्थापित करना, न्याय प्रदान करना, संकट के समय में सम्राट् की सहायता करना तथा राजस्व कर वसूल करके केन्द्र को भेजना था।

चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' में प्रान्तों के भी उपविभाग दिये गये हैं। जनपद, स्थानीय, द्रोणमुख, खार्वटिक, संग्रहण तथा ग्राम। ग्राम शासन की मूल इकाई थी। ये विभाग राजस्व (Revenue) तथा न्याय को ध्यान में रख कर किये गये थे।

उस युग में जमींदार प्रथा नहीं थी। सम्पूर्ण भूमि राज्य की मानी जाती थी। राज्य की ओर से कृषकों के लिए नहरें, तालाब, कुएं आदि बनाये जाते थे। राजा सदैव उनके हित का ध्यान रखता था। कृषकों को राज्य की ओर से सहायता दी जाती थी। राज्य की ओर से कई कर्मचारी नियुक्त थे जो कृषकों की देख भाल करते थे। भूमि की उपज का चौथा हिस्सा राज्य का माना जाता था।

इस काल में साम्राज्य सैनिक शक्ति पर निर्भर था। सेना का संगठन बहुत अच्छा था। सेना बड़ी शक्तिशाली थी। चन्द्रगुप्त मौर्य ने बिना किसी अधिकार के राज्य गद्दी पर अधिकार कर लिया था। इसलिए उसे कठोर नीति को अपनाना पड़ा। कठोर नीति के बिना देश पर नियंत्रण रखना सुगम कार्य नहीं था और इसके लिए सेना की आवश्यकता थी। चन्द्रगुप्त की सेना—जल सेना' पदति अश्वारोही सेना, रथारोही सेना तथा हाथियों की सेना में विभाजित थी।

सैनिक प्रबन्ध

सैन्य प्रबन्ध के लिये एक पृथक् परिषद् थी। इस परिषद् में तीस सदस्य थे जो ६ विभागों में विभाजित थे। ये लोग पैदल, अश्वारोही, रथारोही, हाथी तथा जल सेना के अतिरिक्त सेना का वेतन, रसद तथा अन्य आवश्यकताओं का प्रबन्ध करते थे।

मौर्य काल में न्याय व्यवस्था का संगठन बहुत अच्छा था। सम्राट् न्याय की दृष्टि से सर्वोच्च न्यायाधीश था और स्वयं न्याय के क्षेत्र से बाहर था अर्थात् उसके विरुद्ध अभियोग उपस्थित नहीं किया जा सकता था। सम्राट् भी अपीलों की सुनवाई करता था और निर्णय देता था। उस युग में दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के न्यायालय होते थे। दीवानी को धर्मस्थ तथा फौजदारी को 'कटकशोधन' न्यायालय कहा जाता था। न्याय मंत्री के नीचे क्रमशः धर्मस्थीय, प्रदेष्टा, राजुक, पुरुष, युक्तास आदि न्यायाधीश होते थे। न्याय की अन्तिम इकाई ग्राम-पंचायत होती थी। निम्न न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध उनसे उच्च न्यायालय में अपील की जाती थी। अंतिम अपील सम्राट् के पास की जाती थी। सम्राट् के निर्णय के विरुद्ध कहीं भी अपील नहीं की जा सकती थी क्योंकि उसका निर्णय अंतिम होता था।

न्याय-व्यवस्था का संगठन

उस समय के नियम बहुत कठोर थे। न्याय के समय किसी के साथ पक्षपात नहीं किया जाता था। झूंठी गवाही देने वाले के अंग काट लिये जाते थे। गुरुतर अपराधों के लिए प्राणदंड दिया जाता था। छोटे-बड़े अपराधों के लिए नाक, हाथ या पैर काट लिये जाते थे। इन कठोर नियमों का परिणाम बहुत ही अच्छा होता था। अपराध कम होने लगे।

मौर्य काल में नागरिकों को स्थानीय स्वशासन का अधिकार था। मेगस्थनीज ने पाटलीपुत्र के नगर प्रबन्ध का उल्लेख किया है। सम्पूर्ण नगर का प्रबन्ध एक स्थानीय संस्था के हाथ में था जिसे नगरपालिका कहा जाता था। इस संस्था के सदस्यों की कुल संख्या तीस थी। ये सदस्य ६ समितियों में विभक्त थे। प्रत्येक में ५ सदस्य होते थे। इन समितियों का कार्य पृथक् पृथक् था। पहली समिति उद्योग व्यवसाय, दूसरी समिति का काम कर वसूल करना, तीसरी समिति का

स्थानीय स्वशासन

जन्म-मरण लिखना, चौथी समिति का दस्तकारी, पांचवी समिति का वाणिज्य व्यापार तथा अंतिम समिति का विदेशियों का सत्कार एवं उन पर नियंत्रण रखना था। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक इमारतों का निर्माण तथा मरम्मत, स्थानीय स्वास्थ्य, सफाई आदि का प्रबन्ध सम्पूर्ण समितियों का सामूहिक कार्य था। नगरपालिका का निजी कोष भी था। अपराधियों को दंड दिया जाता था। सड़क, पुल, तालाब आदि का निर्माण नगर पालिका के हाथ में था।

नगरपालिका की भांति प्रत्येक ग्राम के शासन के लिए एक ग्राम सभा होती थी। इस ग्राम सभा के सदस्य जनता द्वारा ही निर्वाचित होते थे। इन सभाओं को गांव का शासन चलाने के लिए काफी अधिकार प्राप्त थे इन सभाओं का भी निजी कोष था ये भी अपराधियों को दंड देती थीं। ग्राम की सफाई, स्वास्थ्य, सड़क पुल, तालाब आदि का प्रबन्ध गांव वालों के हाथ में था। इस प्रकार हम देखते हैं कि युग में केन्द्रीय तथा प्रांतीय शासन के होते हुये भी नगरों तथा ग्रामों का भी जनता को अपने गांव तथा नगरों का स्थानीय शासन करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था।

मेगस्थनीज लिखता है कि लोग बड़ी सादगी से रहते थे। चोरी बहुत कम होती थी। कानून बहुत सरल थे। धन सम्पत्ति की रक्षा के लिए पहरेदार नहीं रखे जाते थे। लोग घरों में ताले नहीं लगाते थे। दासता का नाम भी नहीं था। जाति-पांति का भेद भाव था। इसके उपरान्त वह लिखता है कि भारतीय समाज सात प्रमुख वर्गों में विभाजित था। पहली जाति दार्शनिकों की है जो संख्या से कम होते हुए भी समाज में प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते हैं। यह वर्ग सभी सार्वजनिक कार्यों से मुक्त है। न किसी का दास और न किसी का स्वामी! गृहस्थ लोग इन्हें यज्ञ, अनुष्ठान तथा बलि के कार्यों को संपादित करने के लिए नियुक्त करते हैं। इस काम के उपलक्ष्य में उन्हें बहुमूल्य दान मिलता है। यह वर्ग देवताओं का प्रिय है। ये लोग भविष्य की घटनाओं का पहिले ही बता देते हैं। दूसरी जाति किसानों की है। इनकी संख्या बहुत अधिक है। ये लोग कृषि कार्य करते हैं और राजा को भूमि कर देते हैं। गांवों में अपने ... के साथ रहते हैं तथा नगरों में जाने से घबराते हैं। तीसरी जाति के ... अहीर, गड़रिये तथा सब प्रकार के चरवाहे आ जाते हैं। ये लोग

सामाजिक अवस्था

न नगरों में बसते हैं और न गांवों में, बल्कि जंगल में अपने, डेरों में रहते हैं। ये लोग प्रायः शिकार करते हैं और देश को हानिकारक पशुओं से मुक्त रखते हैं। चौथी जाति कारीगर लोगों की है। ये लोग नाना प्रकार के उद्योग-धन्दे करते हैं। पांचवी जाति सैनिकों की है। यह हमेशा युद्ध के लिए संगठित रहती हैं। संख्या में इसका दूसरा स्थान है। शांति काल में यह वर्ग आलस्य तथा आमोद प्रमोद में डूबा रहता है। छटी जाति निरीक्षक लोगों की है। ये लोग साम्राज्य में होने वाले सम्पूर्ण कार्यों, योजनाओं, षड्यन्त्रों आदि की सूचना राजा को देते रहते हैं। सातवीं जाति सभासदों तथा अन्य राज कर्मचारियों की है। मेगस्थनीज द्वारा वर्णित भारतीय समाज के इन सात वर्गों को हम क्रमशः ब्राह्मण, कृषक, गोपाल, स्वगणिक, कारू शिल्प वैदेसक, भट, प्रतिवेदक-मंत्रि-सचिव कह सकते हैं।

मौर्यकालीन समाज में बहुविवाह की प्रथा का काफी विकास हो चुका था। यूनानी लेखक मेगस्थनीज ने लिखा है—"वे बहुत सी स्त्रियों से विवाह करते हैं। कुछ को तो वे दत्तचित सहधर्मिणी बनाने के लिए घर में लाते हैं और कुछ को केवल आनन्द के हेतु तथा घर को लड़कों से भर देने के लिए।" इसी प्रकार कौटिल्य ने भी लिखा है "पुरुष कितनी ही स्त्रियों से विवाह कर सकता है, स्त्रियाँ सतान उत्पन्न करने के लिए ही है।" उस युग में दहेज प्रथा का प्रचलन भी था यद्यपि जन साधारण इस प्रथा को घृणा की दृष्टि से देखता था। पुरुष और स्त्री दोनों को पुनर्विवाह का अधिकार था परन्तु इसके लिए विशेष परिस्थितियों का तथा नियमों का उल्लेख मिलता है। जैसे यदि किसी स्त्री के आठ साल बच्चा न हो, या जिसके पुरुष संतान न हो, या स्त्री की मृत्यु हो जाय तो पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है। इसी प्रकार पति के मरने पर, लापता हो जाने पर या असाध्य रोग से ग्रस्त हो जाने पर स्त्री को दूसरा विवाह करने का अधिकार था। उस युग में नियोग प्रथा भी जारी थी अर्थात् पति की जीवित अवस्था में किसी अन्य पुरुष से संतान उत्पन्न करने का अधिकार।

उपर्युक्त वर्णन से यह पता चलता है कि स्त्रियों की स्थिति सतोषजनक नहीं थी। विशेष सम्मानीय नहीं थी। मेगस्थनीज ने तो स्त्रियों के क्रय विक्रय का भी उल्लेख किया है। उन्हें विशेष स्वतन्त्रता नहीं थी और घर के भीतर

'ही पुरुष के नियंत्रण में रहना पड़ता था। शायद पर्दे की प्रथा का प्रचलन हो गया था।

भारतीयों के भोजन के सम्बन्ध में यवन यात्री ने लिखा है कि "प्रत्ये व्यक्ति के सामने मेज रहती है जो कि तिपाई की शक्ल होती है। इन ऊपर एक सोने का प्याला रखा जाता था, जिसमें सबसे पह चावल परोसे जाते थे। इसके बाद अन्य बहुत से पक्वा परोसे जाते थे। वे सदैव अकेले में भोजन करते हैं। वे कोई ऐसा नियत समय नहीं रखते जबकि इकट्ठे मिलकर भोजन किया जाय। जिस समय जिसकी इच्छा होती है, वह तभी भोजन कर लेता है।' मेगस्थनीज ने शायद राज परिवार या उच्चवंश के लोगों की भोजन पद्धति पर प्रकाश डाला है। उस युग में भोजन के लिए बहुत से पशु-पक्षियों को मार जाता था। भिन्न भिन्न वस्तुओं को पकाने के लिये अनेक पाचक होते थे। अशोक के समय में मांसाहार बहुत कम हो गया था।

भोजन और पान

शराब का प्रचार भी बहुत था। शराब बेचने व पीने के लिए बड़ी-बड़ी दुकानें होती थीं। इन दुकानों में अलग-अलग कमरे होते थे। शराब के अतिरिक्त दुकानों पर ग्राहकों के भोग के लिए सुन्दर रूपवाली दासियाँ व वेश्याएं भी पेश की जाती थीं। उस युग में भी शराब केवल शराबखानों में बैठ कर ही या अपने घर में बैठकर ही पी जाती थीं। सार्वजनिक स्थानों पर बैठ कर शराब पीना मना था।

आमोद-प्रमोद के साधनों में—नृत्य, संगीत, मल्लयुद्ध, शिकार, घुड़दौड़, चौपड़ आदि प्रमुख थे। बहुत से व्यक्तियों का व्यवसाय ही अन्य लोगों का जी बहलाना था। ऐसे नट, नर्तक, गायक, वादक, वाग्जीवक, कुशीलव, प्लवक (रस्सी पर नाचने वाला) मदारी और चारणों का उल्लेख मिलता है। ये सब नगर के बाहर अपना तमाशा दिखाया करते थे। नाट्यगृहों का भी निर्माण हो चुका था और नाटकों का अभिनय भी किया जाता था। तमाशा दिखाने वालों को राज्य से आज्ञा लेनी पड़ती थी और तमाशा देखने वालों को शुल्क चुकाना था। इसके अतिरिक्त आमोद-प्रमोद के अन्य साधन भी थे।

आमोद-प्रमोद

मौर्य काल में शिक्षा का कार्य आचार्य, पुरोहित, तथा श्रोत्रिय करते थे। शिक्षकों को राज्य की ओर से सहायता दी जाती थी। विद्यार्थियों से शुल्क नहीं लिया जाता था। राज्य अध्यापकों को कर से मुक्त भूमि प्रदान करता था जिससे कि शिक्षकों का जीवन-निर्वाह सुगमता से हो सके। परन्तु कई शिक्षक विद्याध्ययन के लिए फीस भी लेते थे और निर्धन विद्यार्थियों से दिन में काम लेते थे और रात्रि को उन्हें पढ़ाते थे। मौर्य काल का सबसे प्रसिद्ध शिक्षा-केन्द्र तक्षशिला था, जहाँ आचार्य चाणक्य नीति-शास्त्र का अध्यापन करते रहे थे। इनके अतिरिक्त भारत में अनेक शिक्षा केन्द्र थे जिनमें काशी, कोशल भी प्रमुख थे। इन शिक्षा-केन्द्रों में तीनों वेद, अष्टादश विद्या, विविध शिल्प,, धनुर्विद्या, हस्ति विद्या, मन्त्र-विद्या, प्राणियों की बोलियों को समझने की विद्या और चिकित्सा-शास्त्र की विशेष रूप से शिक्षा दी जाती थी। तक्षशिला में विश्व विख्यात विद्वान शिक्षा दान का कार्य करते थे।

शिक्षा की प्रगति

मेगस्थनीज लिखता है—"यज्ञ व श्राद्ध में कोई मुकुट धारण नहीं करता। वे बलि के पशु को छुरी से धंसाकर अपितु गला घोंटकर मारते हैं, जिससे देवता को खण्डित वस्तु भेंट न करके पूरी वस्तु भेंट में दी जाय। एक प्रयोजन जिसके लिए राजा अपना महल छोड़ता है, बलि प्रदान करना है।" इससे यह विदित हो जाता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में यज्ञ, श्राद्ध, बलि आदि वैदिक कालीन धार्मिक विश्वास प्रचलित था। अशोक के समय में जब बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ तो पशु-हिंसा तथा अन्य वध कम हो गये परन्तु पूर्ण रूप से बन्द नहीं हुये थे। मौर्य काल में भिन्न-भिन्न देवताओं की पूजा प्रचलित थी और उनके लिए अलग-अलग मन्दिर बने होते थे। तीर्थ यात्रा का भी रिवाज था। तीर्थ यात्रा करने वाले यात्रियों से कर लिया जाता था।

धार्मिक विश्वास

देवताओं और मन्दिरों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। उनके प्रति किसी प्रकार के अपशब्द कहने पर कड़े दण्ड की व्यवस्था थी। लोग तन्त्र-मन्त्र में विश्वास रखते थे। अनेक लोग धर्म के विचित्र ढोंग बनाकर जनता को ठगा भी करते थे। उस युग में अशोक के प्रयत्नों से बौद्ध धर्म का

मुख्य हिस्सों में विभाजित किया जाता है—स्तूप, स्तम्भ गुहाभवन तथा भवन और राजप्रासाद । स्तूपों का निर्माण ठोस ईंटों और पत्थरों द्वारा होता था। तत्कालीन शिल्प कला की सूक्ष्म पद्धति से उनके गुम्बजों की रचना की गई थी। इन स्तूपों का निर्माण धार्मिक दृष्टि के द्वारा ही सम्भव हो सका। कोई-कोई स्तूप ७७॥ फीट लम्बा होता था और उसका व्यास १२१॥ फीट तथा गुम्बद के मेहराब दार पत्थरों की ऊंचाई ११ फीट होती थी। सांची का महान् स्तूप आज भी उस युग की उन्नत कला की स्मृति को ताजा कर रहा है। स्तम्भ तीन हिस्सों मे विभाजित किये जा सकते हैं—भूगर्भ भाग, तना और शीर्ष भाग। प्रथम भाग जमीन में गाड़ा जाता था। द्वितीय भाग तना निम्न भाग से शीर्ष की तरफ अण्डाकार रूप में था और इसकी लम्बाई लगभग ५० फीट होती थी और इस पर चित्ताकर्षक लेप किया जाता था। यह तना एक ठोस पत्थर का होता था। इसके ऊपर केवल एक ही पत्थर से काटकर शीर्ष भाग लगाया जाता था। शीर्ष भाग पर बैल, सिंह, कमल के पुष्प आदि की आकृतियां अंकित होती थीं। इसके नीचे धर्म चक्र परिवर्तन का चित्र अंकित होता था। उस युग में जब कि यातायात के साधन उन्नत नहीं थे, विज्ञान की उन्नति नहीं हुई थी, शिल्पकारों ने कैसे कठोर पाषाणों को, भारी वजन के पत्थरों को जिनका वजन लगभग ५० टन होता था, दूर स्थानों से लाकर तराशा
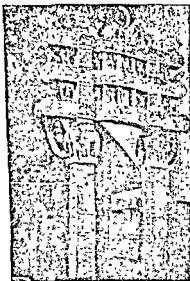
सांची स्तूप

होगा, एक आश्चर्य की बात है। इस पर अंकित कला-कृतिया तो सजीव प्रतीत होती हैं। इन मूर्तियों में सृजन शक्ति का ज्ञान एवं कलात्मक शैली का सौन्दर्य एवं आकर्षण निखर उठा है। इसके अतिरिक्त गुहा भवनों का कलात्मक निर्माण भी आश्चर्य की वस्तु है। ये गुहाभवन लगभग ५० फिट लम्बे और २० फीट चौड़े होते थे। और इनमें विभिन्न प्रकार के कमरे होते थे। इनकी दीवारों पर सुन्दर चित्रकारी होती थी। नागार्जुन तथा बाराबर की पहाड़ियों पर आकर्षक गुह-भवन बने हुये थे। [illegible] और

सारनाथ के स्तम्भ का शीर्ष भाग

वन तो कलात्मक प्रगति की चरम सीमा थे। इन प्रसादों के सामने पर्सिपोलिस या सूसा के प्रसाद कुछ नहीं थे। फाहियान ने लिखा था कि इन प्रासादों में जिस कलात्मक उन्नति का आभास मिलता है वह मानव के हाथों से निर्मित होना असंभव प्रतीत होता है।

मौर्यकाल की कला के उद्गम केन्द्र के बारे में इतिहासकारों की विभिन्न राय है। परन्तु यह सत्य है कि इसकी प्रेरणा शक्ति विदेशी कला थी। यह विदेशी शक्ति चाहे एचीमिनियन शैली रही हो परन्तु मौर्य कलाकारों ने उसकी पूर्ण नकल कभी नहीं की। उस युग की कला की आत्मा तथा शरीर दोनों भारतीय थे।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) मगध का अभ्युदय किस प्रकार हुआ? विस्तारपूर्वक समझाइए।

(२) मौर्यवंश का संस्थापक कौन था? इस वंश का सबसे प्रसिद्ध सम्राट कौन हुआ?

(३) मौर्यकाल में जन-जीवन पर एक लेख लिखिए।

(४) भारतीय संस्कृति के इतिहास में मौर्यकालीन संस्कृति का स्थान निश्चित कीजिए।

(५) मौर्यकालीन कला पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

(६) विचार प्रगट कीजिए और बतलाइए कि आधुनिक युग के बारे में अपने विचार प्रगट कीजिए और बतलाइए कि आधुनिक युग के स्वायत्त शासन और उस युग के स्वायत्त शासन में क्या अन्तर था!

(६) गुप्तकाल—भारतीय संस्कृति का पुनरुत्थान

अशोक की मृत्यु के उपरांत भारत की राजनैतिक एकता छिन्न भिन्न होनी आरम्भ हो गई थी। विदेशी आक्रमणों के आघात से भारत छिन्न भिन्न हो गया था और अनेक छोटे-छोटे राज्यों की उत्पत्ति हो गई। सात वाहन सम्राट् गौतमी पुत्र शातकर्णि ने शकों, यवनों तथा पहलवों से सफलतापूर्वक स्पर्धा किया और उनका दमन भी किया परन्तु उन्हें भारत से बाहर निकालने में असमर्थ रहे। शक, कुशाण तथा नाग जातियों ने भारत में अपने राज्य स्थापित

कर लिये थे। गुप्तवंश के सम्राटों ने पुनः भारत की राजनैतिक एकता को स्थापित किया।

गुप्तवंश का प्रारंभिक इतिहास अंधकार में छिपा पड़ा है। सर्वप्रथम हमें श्री गुप्त का उल्लेख मिलता है जिसे महाराज की उपाधि प्राप्त थी। उसके पुत्र श्री घटोत्कच गुप्त को भी यह सम्मान प्राप्त था। गुप्त जाति के बारे में डा. जायसवाल का कहना है कि वे पंजाब के करसकार जाट थे। प्रोफेसर आर. डी. बनर्जी के विचार में गुप्त लोग लिच्छवि वंशीय क्षत्री थे। इस वंश का सर्वप्रथम प्रभावशाली शासक चन्द्रगुप्त प्रथम था। यह एक स्वतंत्र शासक था और उसने 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की। उस समय मगध में सिथियन क्षत्रपों का शासन था। चन्द्रगुप्त ने

गुप्तवंश का राजनैतिक इतिहास

उन्हें पराजित करके मगध पर अपना अधिकार स्थापित किया। इस प्रकार चार शताब्दियों की घोर निद्रा के उपरांत मगध का पुनरुत्थान हुआ। चन्द्रगुप्त ने वैशाली के लिच्छवि वंश से वैवाहिक संबंध स्थापित किया। इस विवाह को बहुत बड़ा सामाजिक तथा राजनैतिक महत्व दिया जाता है। उसके उपरान्त समुद्रगुप्त सिंहासन पर बैठा वह एक पराक्रमी वीर शासक था। वीरता की दृष्टि से वह सिकन्दर महान् के समान् था। यूरोप का नेपोलियन तो उसके सामने तुच्छ नहीं था। उसने अपने जीवन काल में असंख्य युद्ध लड़े परन्तु कभी पराजित नहीं हुआ। अपनी विजयों के द्वारा उसने सम्पूर्ण उत्तरी भारत तथा दक्षिणी भारत पर गुप्त साम्राज्य का अधिकार स्थापित किया। उसका साम्राज्य पूर्व में हुगली से पश्चिम में यमुना तथा चम्बल तक और उत्तर में हिमालय की तलहटी से दक्षिण में नर्मदा नदी तक फैला हुआ था। इसके अतिरिक्त सीमान्त प्रांतों के अनेकों राज्य तथा गणराज्य उसकी अधीनता को स्वीकार कर चुके थे। विदेशों के राजा उसके मित्र थे। उसने अश्वमेध यज्ञ किया। उसका पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य भी पराक्रमी था। उसने पश्चिमोत्तर भारत के कुषाण तथा अवन्ति के महा क्षत्रपों को पराजित करके साम्राज्य का विकास किया। इसने बरार के वाकाटक राजा रुद्रसेन से वैवाहिक संबंध स्थापित करके

तथा गुजरात के शासकों को पराजित किया। गुप्त साम्राज्य समुद्र के

किनारे तक फैल गया। इसके व्यापार वाणिज्य की उन्नति हुई। उसके उपरात कुमारगुप्त प्रथम तथा स्कन्दगुप्त ने साम्राज्य को हूणों के आक्रमणों से बचाने के अथक प्रयत्न किया और ये सफल भी हुए परन्तु उनकी मृत्यु के बाद गुप्त साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।
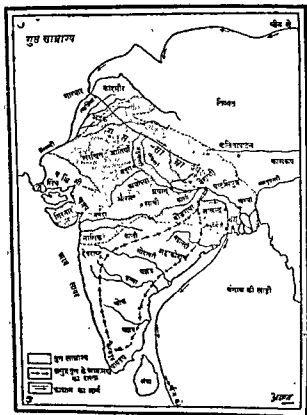
गुप्त युग को कई इतिहासकार बौद्धिक पुनरुत्थान का युग या नवयुग कहकर संबोधित करते हैं। इस युग से पूर्व ही भारत राजनैतिक दृष्टि से भारत निर्बल हो गया और उस पर विदेशी जातियों—शक, हूण, कुषाण, पार्थियन आदि के आक्रमण हुए और भारत छोटे छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। देश की राजनीतिक एकता नष्ट हो गई। धार्मिक क्षेत्र में भी बौद्ध एवं जैन धर्म के विकास के फलस्वरूप वैदिक धर्म का पतन हुआ और अहिंसा के नाम में पड़कर असंख्य व्यक्ति भिक्षुओं की श्रेणी में आ बैठे। असंख्य व्यक्तियों ने भिक्षुक वेश ग्रहण किया और देश की आर्थिक स्थिति को गहरा धक्का पहुंचाया। साधारण बोल चाल की भाषा की लोकप्रियता ने संस्कृत भाषा का ज्ञान अन्धकार में लुप्त कर दिया और कला तथा उद्योग की भी अधोगति हुई। गुप्त युग में इनका पुनरुद्धार किया गया। इसीलिए इस युग को नवयुग या पुनरुत्थान से संबोधित किया जाता है। परन्तु कुछ विद्वान इसे न्याययुक्त नहीं समझते। उनके अनुसार गुप्त काल हिन्दुत्व का विकास काल या पुनरुत्थान का नहीं।

बौद्धिक पुनरुत्थान का युग

गुप्तकाल में हमारे देश के इतिहास की सबसे प्रमुख विशेषता हिन्दू राष्ट्रीय भावना का उदय, वृद्धि और परिवर्धन है। किसी हद तक राष्ट्रीयता की इस भावना में साम्राज्यवादी प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति तक देखी जा सकती है। यह भावना देश और जाति के जीवन के प्रायः प्रत्येक पहलू में दिखाई देती है। यह अंशतः विदेशी यूनानियों, पार्थियनों कुषाणों और शक क्षत्रपों के दीर्घ राजनैतिक आधिपत्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में पैदा हुई थी। इससे विदेशियों के विरुद्ध विद्रोह की भावना और भारतवर्ष में राष्ट्रीय जीवन को पुनः स्थापित करने की इच्छा परिलक्षित होती है। विदेशी शासन के स्थान पर धीरे धीरे उत्तरी, मध्यवर्ती और पश्चिमी भारत में भारतीय शासन स्थापित हो जाता है। गुप्त सम्राटों के तत्वाधान में भारत की राजनैतिक एकता को पुनः स्थापित किया जाता है।

राजनीतिक क्षेत्र में पुनरुत्थान की झलक

इसके अतिरिक्त गुप्तकालीन भारत ने अपनी सभ्यता एवं संस्कृति का भारत के बाहर भी किया। जावा, सुमात्रा, सिंहल, बोर्नियो, चम्पा आदि

अनेक द्वीपों में भारतीय विचारों एवं रीति-रिवाजों का प्रदर्शन एवं दिग्दर्शन किया गया एवं हिन्दू राज्यों की स्थापना की गई।

गुप्तकालीन भारत की शासन व्यवस्था में भी पुनरुत्थान की झलक दिखलाई पड़ती है। साम्राज्य का प्रशासन की दृष्टि से विभाजन एवं न्याय व्यवस्था तथा शांति स्थापना की दृष्टि से सम्राट् के अन्तर्गत एवं निर्देशन में नियुक्त तथा कार्यरत मंत्रिमण्डल प्राचीन प्रणाली की स्मृति को सजग करते हैं। गुप्तकालीन भारत प्राचीन सिद्धांतों की पुनरावृत्ति कर रहा था।

धार्मिकक्षेत्र में पुनरुत्थान की सक्रियता

अशोक के शासनकाल में बौद्ध धर्म की अत्यधिक उन्नति हुई और ब्राह्मण धर्म का प्रभाव क्षीण हो गया परन्तु लुप्तप्राय नहीं हो गया था। वह पूर्णरूप से जीवित था तथा नई आवश्यकताओं के अनुसार अपना सुधार भी कर रहा था। बौद्ध क्रांति की आवश्यक शिक्षाओं को ग्रहण करके ब्राह्मणत्व पुनः नवीन हो रहा था। ब्राह्मणत्व के इस सशोधित और नवीन रूप का समय गुप्तकाल माना जाता है। यही वह काल है जब आर्य बदलकर हिन्दू तथा ब्राह्मण धर्म परिवर्तित अथवा परिपक्व होकर हिन्दुत्व हो जाता है। यही वह काल है जब रामायण और महाभारत का अन्तिम संस्करण बनता है, जब स्मृतियां लिखी जाती हैं। पिछले उपनिषदों का निर्माण होता है, पुराण रचे जाते हैं और दर्शन की अनेक शाखाओं का विकास होता है। जिस रहस्यमय ज्ञान को ब्राह्मण इतने दिनों तक जनता से छिपाये हुए थे, वह महाकाव्यों एवं पुराणों द्वारा जनसाधारण के लिए सुलभ हो गया।

बौद्ध भ्रान्ति से हिन्दुत्व ने दो प्रकार की शिक्षाएं लीं—(१) धर्म वही अच्छा है, जो जनता की समझ में आये तथा (२) संसार त्याग की शिक्षा पर अवलम्बित धर्म, अपने आप को अधिक समय तक नहीं बचा सकता। महाकाव्यों ने लोक-कथाओं का ऐसा स्वरूप ग्रहण किया कि गूढ़ ज्ञान चरित्रों, घटना-वर्णनों तथा संवादों में मूर्तिमान हो उठा और साधारण जनता की निधि बन गया। इसके अतिरिक्त भारत की विभिन्न जातियों में जो भी देवी-देवता थे, वे सब के सब; हिन्दू-वृत्त में गृहीत हो गये और परिणामस्वरूप किसी को यह सोचने का अवसर ही न मिला कि वे किसी अन्य धर्म में हैं। सभी हिन्दू धर्म

की ओर आकर्षक होने लगे। कार्तिकेय और गणेश इसी काल में हिन्दू देवता के पद पर आये, राम एवं कृष्ण इसी काल में अवतार रूप में प्रतिष्ठित हुए। इसी काल में दुर्गा, शिव की शक्ति मानी जाने लगी।

बौद्ध मत ने करुणा धर्म को संन्यास से अधिक महत्व प्रदान किया। हिन्दू धर्म ने शिक्षा ग्रहण की। पुरुषार्थ के चार सोपान बनाये एवं उन्हें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के नाम से विभाजित किया। मोक्ष साधना के लिये व उम्र बताई गई जब मनुष्य गृहस्थ धर्म का पालन कर चुकता है। यह प्रयास गीता में सबसे अधिक भावनापूर्वक निर्दिष्ट किया गया है। उसमें उल्लेख किया गया है कि पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए संन्यास आवश्यक नहीं है क्योंकि अर्थ और काम को धर्म के साथ सेवना ही सच्चा संन्यास है और इस त्रिवर्ग की साधना का स्वाभाविक परिणाम मोक्ष होता है।

जाग्रत हिन्दुत्व ने एक नये मार्ग का परिचय दिया और वह उन अंशों को आगे लाने लगा जिनमें ब्रह्मा की साकारता का आख्यान था, जिनमें यह कहा गया था कि सृष्टि ब्रह्मा की रचना है और ब्रह्मा से प्रेम भी किया जा सकता है, उसकी प्रार्थना भी की जा सकती है। यह परम्परा गीता में भली-भांति प्रतिपादित हो चुकी है। यहीं से ब्रह्मा, विष्णु, महेश नामक 'त्रिमूर्ति' की कल्पना चली। एक ही ईश्वर के तीन रूप—एक रचयिता, एक पालक और एक संहारक। यह हिन्दुत्व की सामाजिकता का प्रोज्ज्वल प्रमाण था।

इसके अतिरिक्त जाग्रत हिन्दू धर्म ने पूजा की पद्धति में भी परिवर्तन किया। यज्ञवेदी के स्थान पर मन्दिरों को लाया गया। जो उत्साह पहले यज्ञों के लिए था, वह अब प्रतिमा-पूजन के लिए दिखाई देने लगा और जो उत्साह पहले प्रतिमा-पूजन के लिए रहा होगा वह अब यज्ञों के लिए शेष रह गया। इस काल में आर्यों की पद्धति को द्रविड़ प्रथा ने दबोच लिया और मूर्ति-पूजा का विकास हुआ।

श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' ने अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखा है कि गुप्त काल में हिन्दुत्व के वे सारे अंग पुष्ट हो गये, जिन्हें हम आज देखते हैं। 'निराकार के पार्श्व में साकार की उपासना निर्वैयक्तिक के साथ वैयक्तिक ब्रह्म का ध्यान,' ईश्वर और त्रिमूर्ति, दुर्गा और गणेश,

दशावतार, वेद की प्रामाणिकता में विश्वास, निष्काम कर्म की महत्ता, जन्मान्तरवाद और कर्मफलवाद, वर्णाश्रम और त्रिवर्ग—वैष्णव, शैव और शाक्त उपासना की विधियां, मंदिर और मूर्ति, तीर्थ और श्राद्ध, दान, भक्ति और कर्म के त्रिमार्ग, हिन्दुत्व के जो भी प्रधान लक्षण और विशेषताएं हैं, वे गुप्त काल तक बढ़कर तैयार हो गई। इसके बाद हिन्दुत्व के निर्माण में कोई नई ईंट नहीं लगी। जो भी आन्दोलन उठे, धूल झाड़ने को उठे, जो भी धर्माचार्य आये, पापड़ियाँ तोड़ने को आये। तब से हिन्दुत्व धूप और छाया में चलता हुआ अपने मूल रूप में कभी नहीं बदला।"

बौद्धों ने संस्कृत का तिरस्कार कर पाली भाषा को अपनाया था परन्तु गुप्त काल में संस्कृत का प्रभाव इतना व्यापक हो गया कि बौद्ध विद्वान् भी संस्कृत में ही अपने ग्रंथ की रचना करने लगे। अश्वघोष, नागार्जुन, वसुबंधु आदि बौद्ध विद्वानों ने पाली व प्राकृत की अपेक्षा संस्कृत का ही अधिक आदर किया। धीरे धीरे प्राकृत भाषा का पतन होने लगा

साहित्यिक क्षेत्र में नव जागरण

और संस्कृत भाषा अपने पूर्ण ऐश्वर्य में दिखाई देने लगी। वह संस्कृत साहित्य का स्वर्ण युग था। "संस्कृत वांगमय का अविच्छिन्न उन्नति क्रम गुप्त युग में पराकाष्ठ तक पहुँच गया। वह भारतीय प्रतिभा के अद्भुत उन्मेष का समय था। संस्कृत ने राष्ट्रभाषा का स्थान ले लिया था।"

संस्कृत का उपयोग न केवल राजाओं की प्रशस्तियों और मुद्राओं में होता था किन्तु प्रजा के भी साधारण दान-पत्र और व्यवहार की बातें संस्कृत में ही लिखी जाती थीं। इन लेखों की रचना-शैली बड़ी ही प्रांजल, परिमार्जित तथा भावपूर्ण थी संस्कृत काव्य का पूर्ण विकास इस समय में हुआ। सम्राट् समुद्रगुप्त "कविराज" था और उसकी रचनाओं का विद्वज्जन अनुकरण करते थे। कवि हरिषेण के गद्य और पद्य में जितना शब्द-सौष्ठव था उतना ही अर्थ गौरव। कवि वत्स भट्ट का भी संस्कृत साहित्य में विशेष महत्व है।

संस्कृत की काव्य शैली की विचार दृष्टि से कविकुल गुरु कालिदास का इसी युग में होना अनुमान किया जाता है। गुप्त कालीन भारतीय साहित्यिक प्रतिभा का पूर्ण चमत्कार इस कवि शिरोमणि की कृतियों में, स्पष्ट झलकता

है। ऋतु संहार, मालविकाग्निमित्र, कुमार सम्भव, मेघदूत, शकुन्तला तथा रघुवंश कालिदास की प्रधान रचनाएं हैं। सुन्दरता, सरलता, मधुरता, मानवीय एवं प्रकृति-चित्रण, सामाजिक आदर्श तथा लोकहित की दृष्टि से कालिदास की रचनाएं अमूल्य हैं।

भास इस युग का सर्वश्रेष्ठ नाटककार तथा कवि था। कई विद्वान इसका स्थान कालिदास से भी महत्वपूर्ण समझते हैं। भास की भाषा तथा शैली अत्यन्त मनोहर है। उसके कुल १३ नाटक उपलब्ध हुये हैं। शूद्रक इस युग का तीसरा प्रमुख नाटककार था। उसने मृच्छकटिक नाटक की रचना की। विशाखदत्त ने 'मुद्राराक्षस, तथा 'देवीचन्द्रगुप्तम्' की, भारवि ने 'किरातार्जुन' की रचना की। इन लेखकों, कवियों तथा नाटककारों की प्रतिभा से संस्कृत साहित्य का नव जन्म हुआ और साहित्यिक क्षेत्र का पुनरुत्थान।

विज्ञान की प्रगति

गुप्तकाल में विज्ञान ने भी प्रगति की और ज्योतिष, गणित, वैद्यक, रसायन विज्ञान, पदार्थ विज्ञान तथा धातु-विज्ञान की बड़ी उन्नति हुई। आर्यभट्ट के आर्य-भटीयम् ग्रन्थ में वृत्त तथा त्रिकोण का उल्लेख है। अंकगणित में दशमलव मित्र का अन्वेषण भी गुप्तकाल में हुआ था। संक्षेप में रेखागणित, बीजगणित तथा अंक गणित तीनों शाखाओं का पूर्ण विकास हुआ। ज्योतिष विज्ञान में भी अत्यधिक उन्नति हुई। राशि तथा लग्न का अन्वेषण, सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण का पता लगाया गया। आर्य भट्ट बहुत बड़े ज्योतिषी थे। आचार्य वाराहमिहिर की पञ्चसिद्धान्तिका, वृहज्जातक वृहत् संहिता, लघु जातक, ज्योतिष शास्त्र की महत्वपूर्ण रचनाएं थीं। वैद्यक-विज्ञान का भी विकास हुआ और असंख्य औषधालयों का निर्माण किया गया। नालन्दा विश्वविद्यालय में वैद्यक की शिक्षा का प्रबन्ध था। नागार्जुन प्रतिभावान् रसायनवेत्ता था। लौहस्तम्भ धातुविज्ञान एवं रसायन विज्ञान के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। चरक तथा सुश्रुत ने लौह-मिश्रित औषधियों का उल्लेख किया है।

बौद्ध गया का मन्दिर

ईस्वी सन् की चौथी और पाचवीं शताब्दियों में उत्तरी भारत के लोगों के आदर्शों का रूपान्तर होने के कारण गुप्तकालीन कला को भारतीय कला का पुनर्जागरण काल कहा जा सकता है। इस परिवर्तन कालीन कला का आधार यह था कि अपने में प्राचीन तत्वों को आत्मसात् किया जाये, विदेशी श्रोत और विदेश से समाहत कला का मूलोच्छेदन किया जाये और अन्ततोगत्वा एक पूर्णतया नवीन और मूलतः भारतीय चीज का क्रमिक उत्पादन किया जाये।

वास्तु, मूर्ति निर्माण और रंगलेप की कलाएं, जिन्हें वाकाटक राजाओं ने प्रोत्साहन दिया था, गुप्तों के काल में जब देश में शांति और समृद्धि थी, बड़े पैमाने पर उन्नत हुईं। कुशल दस्तकारों ने युग भावना को ग्रहण किया, और ललित कलाओं के क्षेत्र से गान्धार की यूनानी बौद्ध-शैली के प्रभाव को दूर कर दिया। मूर्तिकार और चित्रकार दोनों ने बौद्ध साहित्य के दृश्यों और कथाओं के स्थान पर हिन्दू देवताओं और अवतारों के जीवन के दृश्यों और कथाओं को अपने कौशल का विषय बनाया।

जो कुछ भी छोटी मोटी इमारतें उपलब्ध हुई हैं वे दुर्गम स्थलों में ही मिली हैं। झांसी जिले के देवगढ़ गांव का विष्णु मंदिर गुप्त कालीन है। इसकी दीवारों के पत्थरों पर तत्कालीन शिल्प कला के उत्तम नमूने अंकित हैं। इनमें योगीराज शिव का शिल्प चित्र बड़ा ही अनूठा है, जिसमें शिव की मूर्ति और उसकी मुद्रा और भाव-भं बड़े सुचारु रूप से प्रदर्शित की गई है। दूसरे पत्थर शेषशायी विष्णु की मूर्ति अंकित है। गजेन्द्र मोक्ष आख्यान भी प्रदर्शित किया गया है। कानपुर जिले के भिटार गांव का विशा मन्दिर भी अनूठा है। मध्य भारत के नागोद राज्य में सुमरा गांव का प्राचीन शिव मन्दिर भी कला का ज्वलन्त उदाहरण है। मन्दिर के गर्भगृह की विशाल चौखट पत्थर की बनी है। उसकी कारीगरी अपूर्व है। नीचे अगल बगल मगर तथा कूर्म के वाहन पर गंगा और यमुना की बड़ी सुन्दर-मूर्तियाँ हैं।

कला

(१) स्थापत्य कला

देवगढ़ का विष्णु मन्दिर

गुप्त काल की शिल्पकला के स्मारकों में भेलसा के पास उदयगिरि में चन्द्रगुप्त की गुफा भी उल्लेखनीय है। इस गुफा की द्वार की शिला पर कई एक मूर्तियां अंकित हैं जिनमें उछलते हुए सिंहों की जोड़ी का अंकन बहुत निपुणता के साथ किया गया है।
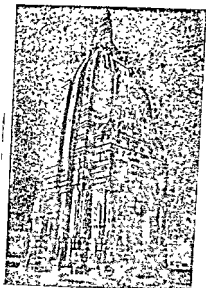
गुप्त काल के शिल्पकारों ने मूर्ति निर्माण कला-कौशल एवं विचार-

तरणी को सूक्ष्म, महत्वपूर्ण एवं निपुणता के साथ अंकित किया है। कुमार-गुप्त के राज्य काल में इलाहाबाद के मनकुंवर गांव से एक बुद्ध प्रतिमा मिली है। बुद्ध देव अपने दक्षिण हस्त की अंगुलियां खोले

(२) मूर्तिकला

हुए अभय मुद्रा में सिंहासन पर बैठे हैं। उनके सिर पर वस्त्र का आवेष्टन है और वे बहुत महीन धोती पहने हैं जिसकी पटलियां पंखे की भांति खुली हुई हैं। प्रसिद्ध कलाविद् कोडरिंग्ट के कथनानुसार मनकुंवर तथा सारनाथ की बैठी हुई और खड़ी हुई बुद्ध की प्रतिमाएं गुप्तकालीन शिल्प के सर्वांग-सुन्दर नमूने हैं। सारनाथ के 'धार्मिक स्तूप पर बेल-बूटों की सजावट अत्यन्त नेत्रग्राही है। गुप्तकाल की मूर्तियों में गम्भीरता, शांति और चमत्कार है जैसे इस युग की काव्य कृतियों में पद लालित्य के साथ अर्थ गौरव पाया जाता है वैसे ही इसकी शिल्प कला में रचना सौन्दर्य के साथ विचित्र भावव्यंजना देखने में आती है। शिल्पकला रूप प्रधान तथा भाव प्रधान थी।

शिल्पकार वस्तु के रूप को सर्वांग सुन्दर बनाने में जितने प्रवीण थे उतने ही अपने आंतरिक और आध्यात्मिक भावों को अपनी कृतियों द्वारा दरसाने में सिद्धहस्त थे। गुप्तकाल के शिल्पी लोहे, तांबे आदि धातुओं की वस्तुएं बनाने में भी बड़े निपुण थे। गुप्तकालीन मेहरोली की लौह स्तम्भ की शिल्पकला आश्चर्यजनक है। इतना विशाल तथा भव्य स्तम्भ आज भी कठिनता से गढ़ा जा सकेगा।

अजन्ता की गुफाएं चित्रकला के ज्ञान के भंडार हैं। इनमें २४ विहार और ५ चैत्य बने हैं, जिनमें तरह की दीवारों, भीतरी छतों या स्तम्भों पर चित्र अंकित किये गए हैं। चित्रकला के मर्मज्ञ पंडितों ने

(३) चित्रकला

अजन्ता के चित्रों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उनमें अनेक प्रकार का अंग विन्यास, मुख-मुद्रा, भाव भंगी और अंग प्रत्यंगों की सुन्दरता नाना प्रकार के केशपाश, वस्त्राभरण, चेहरों के रगरूप आदि बहुत उत्तमता से बतलाये गये हैं। इसी तरह पशु पक्षी, पत्र-पुष्प आदि के चित्र अति सुन्दर हैं। डेन्मार्कवासी एक कलाविशारद का मत है कि 'अजन्ता' के चित्रों में भारत की चित्रकला का चरम उत्कर्ष दिखाई देता है और

गुप्तकालीन गुफाओं की चित्रकला

उनमें छोटे से छोटे पुष्प व मोती से ले कर महत्त्व वस्तु की रचना में चित्रकार ने अपना अद्भुत कला कौशल और प्रतिभा दिखाई है।
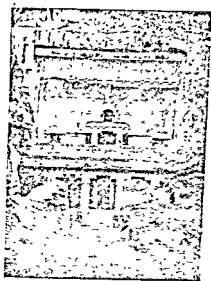
इसी प्रकार अर्नाल्ड ने लिखा है—"इन चित्रों में मानों पंख लगे हुए हों ऐसे प्रतीत होते हैं क्योंकि ये लोग केवल पार्थिव सौन्दर्य का चित्रण करते थे। भारतीय चित्रकार अन्तरिक्ष में ऊँचे उठे हुए दृश्यों को नीचे पृथ्वी पर लाने के भाव और सौन्दर्य को प्रकट करती है।" एक अन्य कलामर्मज्ञ कोडरिंग्टन ने लिखा है—'भावप्रधान होने के कारण गुप्त शिल्पकला की पर्याप्त प्रशंसा की गई है, किन्तु उसकी स्वाभाविकता, अंग सौन्दर्य, आकार प्रकार, और सजीव रचनाशैली आदि गुण भी उतने ही प्रशंसनीय हैं।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्तकालीन भारतीय कला की न केवल भारतीयों ने बल्कि विदेशों के कलाविशारदों ने भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

सामाजिक जीवन

जिस प्रकार मौर्य कालीन संस्कृति का वृत्तान्त मेगस्थनीज ने लिखा था ठीक उसी प्रकार गुप्तकालीन संस्कृति का हाल चीनी यात्री फाहियान ने लिखा। उसके वृत्तान्त से पता चलता है कि प्रजा सुखी थी। देश में सुख शान्ति थी। प्रजा धनी थी। राजा की ओर से अनेक संस्थायें थीं जिनका प्रधान उद्देश्य प्रजा की भलाई करना था। इस काल में चोर नहीं थे। प्रजा ईमानदार थी। प्रजा झूठ नहीं

होलती थी। लोग अपने घरों में ताला नहीं लगाते थे। सड़कें सुरक्षित थीं और यात्रियों की भलाई के लिये उन पर सराये थीं। देश में धन की कमी नहीं थी खाद्य-पदार्थ बहुत सस्ते थे। खाने-पीने की चीजों की कमी नहीं होती थी। उस समय न तो कोई सूअर या मुर्गी पालता था और न देश में कहीं मांस और शराब की दुकानें थीं। प्याज और लहसुन का भी कोई प्रयोग नहीं करता था। चाण्डालों को नगर से बाहर रहना पड़ता था और शहर में प्रवेश करते समय वे एक घण्टा बजाते थे जिससे अन्य लोग जान जायें और उसे छू न जावें। उन्हें लोग घृणा की दृष्टि से देखते थे। चाण्डालों के सिवा भारत में न कोई मदिरा पीता था और न प्याज और लहसुन खाता था।

इस युग में समाज कई जातियों और उपजातियों में विभाजित हो चुका था। ब्राह्मणों का समाज में पुनः प्रमुख स्थापित हो गया और शूद्र निम्न समझे जाने लगे। अन्तर्जातीय विवाह भी प्रायः हुआ करते थे और जाति भी बदली जा सकती थी परन्तु शूद्र अपनी जाति नहीं बदल सकते थे। इस युग में दास प्रथा पूर्ण रूप से विकसित हो गई थी।

इस युग में सम्मिलित कुटुम्ब की प्रथा थी। पिता के उपरान्त भी प्रायः कुटुम्ब के सदस्य एक साथ रहते थे। पिता की सम्पत्ति में पुत्रों को बराबर का हिस्सा मिलता था। कन्याओं की शादी में [illegible] किया जाता था। प्रायः तेरह वर्ष की आयु में (लड़की का) कर दिया जाता था। विधवा विवाह की प्रथा प्रचलित थी परन्तु उच्च कुलों में विधवा विवाह घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। सती प्रथा का प्रारम्भ हो गया था।

संक्षेप में, गुप्त काल में प्राचीन भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का पुनरुत्थान हुआ अपने परिवर्तित एवं संशोधित रूप में।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) गुप्तकालीन भारतीय संस्कृति की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
(२) गुप्तकाल को पुनरुत्थान काल या स्वर्णयुग क्यों कहा जाता है?
(३) गुप्तकालीन शासन प्रबन्ध, कला एवं सामाजिक जीवन पर एक लेख लिखिए।
(४) 'गुप्तकाल में ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान हुआ।' आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं?
(५) 'गुप्तकाल संस्कृत साहित्य का स्वर्ण युग था।' इस कथन की व्याख्या कीजिए।

(७) संस्कृत साहित्य का विकास

तृतीय अध्याय में यह बतलाया जा चुका है कि आदि मानव ने जहाँ प्रकृति पर विजय प्राप्त की वहाँ उसने अपने ही समान अन्य व्यक्तियों के विचारों को जानने के लिये तथा आपस में एकता बनाये रखने के लिये 'भाषा' को जन्म दिया और धीरे धीरे चित्रलिपि का आविष्कार किया। कालान्तर में पूर्ण विकसित लिपि का विकास हुआ और साहित्य की उत्पत्ति तथा उत्थान हुआ। आर्यों का साहित्य विश्व का प्राचीनतम साहित्य माना जाता है। वैदिक साहित्य आर्यों का प्राचीनतम साहित्य है। इसके उपरान्त ईरानी साहित्य है। वैदिक साहित्य की भाषा संस्कृत है और इसीलिए वैदिक साहित्य को संस्कृत साहित्य भी कहते हैं। संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का शब्द कोष है।

वेदों की परिभाषा

संस्कृत साहित्य के मूल ग्रंथ "वेद" शब्द की उत्पत्ति 'विद्' धातु से हुई जिसका तात्पर्य है—जानना अर्थात् ज्ञान। वेदों को शब्द ब्रह्म अथवा 'श्रुति' भी कहते हैं। प्राचीन काल में लिपि ज्ञान का अभाव था और वेदों का पाठ मौखिक होता था। अतः श्रवण करने के कारण श्रुति नाम पड़ा। परन्तु आधुनिक विद्वानों की धारणानुसार यह तर्क गलत है। उनके कथनानुसार ऋग्वेद काल में लिपि का विकास हो चुका था। श्रुति का तात्पर्य ईश्वर के विषय में श्रवण करना था और वेदों के द्वारा ईश्वर का श्रवण किया जाता था। अतः वेद श्रुति कहलाये।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि वेदों का निर्माण सृष्टि के रचयिता ब्रह्म द्वारा हुआ है। कुछ के अनुसार वेदों की रचना ऋषियों ने की। इतना सत्य है कि वेदों की रचना एक व्यक्ति या एक स्थान और एक समय में नहीं हुई थी। यूरोपीय विद्वानों का कथन है कि वेदों के कुछ अंशों का निर्माण उस समय में हुआ था जब आर्य विभक्त नहीं हुये थे। शायद ई० पू० २५०० वर्ष के समय में वेदों के प्रारम्भिक मन्त्रों की रचना हुई होगी।

वेद भारतीय दर्शन का आदि ग्रंथ है। वेदों में आर्यों का जीवन के प्रति उत्साहपूर्ण और साहसी दृष्टिकोण साफ दीखता है। वेद सृष्टि तथा जीवन

के अज्ञात रहस्यों पर भी प्रकाश डालते हैं। प्रकृति का संचालन कौन करता है? मनुष्य कहाँ से आता है? तथा सृष्टि का प्रारम्भ कब और कैसे हुआ? इस प्रकार गूढ़ प्रश्नों की जानकारी भी हमें वेदों से ही होती है। वेदों में विश्व के महान रहस्यों के प्रति आश्चर्यपूर्ण जिज्ञासा की अभिव्यक्ति के उदाहरण मिलते हैं। ये हिन्दू-योरोपियन जाति के आदि गृन्थ हैं जिससे भाषा विज्ञान के अन्वेषणों तथा प्राचीन धर्म और प्रथाओं के अध्ययन में बड़ी मदद मिलती है।

वेदों का महत्व

वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। प्रत्येक वेद के तीन भाग हैं—संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। वेदों को आधार मान कर अनेक गृंथ लिखे गये और इससे वैदिक साहित्य या संस्कृत साहित्य का विकास हुआ।

चार वेदों में सबसे अधिक प्राचीन एवं विस्तृत ऋग्वेद है। इसमें दस मण्डल हैं। १०१७ सूक्त तथा १०५८० मत्र हैं। यह ऋचाओं का वेद है। ऋचाओं की सहायता से विविध देवताओं की स्तुति का उल्लेख है। जैसे इन्द्र वरुण, अग्नि, उषा आदि। ऋग्वेद के मन्त्रों की रचना में निम्नलिखित ऋषियों का हाथ रहा है—मधुच्छन्दा, विश्वामित्र, मेधातिथि, कण्व, शुनशेप, आजीगर्ति हिरण्यस्तूप, अंगिरस, गौतम आदि। स्त्रियों में—घोषा, वाक्वृत्ति, शची पोलोमी इत्यादि। ऋग्वेद में बहुदेवतावाद तथा एकेश्वरवाद का सुन्दर समन्वय किया गया है।

ऋग्वेद

ऋग्वेद के बारे में कुछ प्रसिद्ध विद्वानों की राय निम्नलिखित हैं—

"ऋग्वेद में प्राप्त सब मन्त्रों के अस्तित्व में आने के लिए सैकड़ों वर्षों के समय की अपेक्षा हुई होगी।" (मैकडोनाल्ड)

"सबसे पहले मंत्रों की रचना और ऋग्वेद संहिता की पूर्ति के बीच में अनेक शताब्दियां व्यतीत हुई होंगी।" (विण्टरनीज)

"वैदिक सूक्तों के सबसे प्राचीन अंश भी मानव जाति के अर्वाचीन इतिहास के अंग हैं।" (बुनसेन)

यजुर्वेद

यजुर्वेद यज्ञों मे सर्वप्रथम प्रमाण ग्रन्थ है। यह शुक्ल तथा कृष्ण दो भागों में विभक्त है। ब्राह्मण रहित यजुर्वेद को शुक्ल यजुर्वेद कहते हैं। इसमें ४० अध्याय हैं। यजुर्वेद में यत्र—तत्र सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों के चित्रों की झलक एवं रेखा गणित, अंकगणित सम्बन्धी ज्ञान का दिग्दर्शन मिलता है। विद्वानों के अनुसार ऋग्वेद से विभिन्न भौगोलिक, धार्मिक, सामाजिक आदि परिस्थितियों का उल्लेख मिलता है क्यों कि इस ग्रंथ के समय में आर्य पंजाब से आगे बढ़ कर संपूर्ण उत्तरी भारत में फैल चुके थे। यह वही समय था जब कि प्रजापति देव का महत्व बढ़ा। अप्सराओं का भी उल्लेख किया जाने लगा। उपनिषद् के ब्रह्म का दर्शन हुआ।

सामवेद

सामवेद ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वहीन है। यह भी दो भागों में विभाजित है। प्रथम अर्चिका में ६ प्रपाठक तथा अग्नि, सोम, इन्द्र की स्तुति है। द्वितीय आर्चिका में ९ प्रपाठक हैं जिनमें विभिन्न यज्ञों के समय गाये जाने वाले कुल १५४९ मंत्र हैं। परन्तु ७५ मंत्रों को छोड़ कर बाकी सब मन्त्र ऋग्वेद से लिये गये हैं। सामवेद भारतीय संगीत का आदि ग्रंथ माना जाता है। डा. बी. के. गोखले के अनुसार साहित्यिक और ऐतिहासिक दृष्टि से सामवेद की वास्तविक महत्ता कुछ नहीं है परन्तु यज्ञों के समय गेय मंत्रों की दृष्टि से उसके महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

अथर्ववेद

अथर्ववेद अन्तिम वेद है। यह २० काण्डों में विभाजित है। इसमें ७३० सूक्त और ६००० मंत्र है। इस वेद में भी लगभग १२०० मन्त्र ऋग्वेद से लिये गये हैं, इस वेद के द्वारा ऋग्वेद के उपरान्त की सभ्यता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय में जादू टोने का कितना प्रचार था क्योंकि यह [illegible] था। राजनीति, समाज—शास्त्र एवं आयुर्वेद के उच्च [illegible] के धार्मिक जीवन का प्रतिबिम्ब है। इसमें वर्ण [illegible] सामाजिक उपादेयता का भी उल्लेख मिलता है। [illegible] ज्योतिष विज्ञान की झलक भी मिलती है।

वेदों के उपरान्त संस्कृत साहित्य में वेदों पर आधारित ब्राह्मण ग्रंथों का स्थान है। ब्राह्मण ग्रंथ यज्ञ सम्बन्धी गद्यात्मक साहित्य है। कुछ विद्वान ब्राह्मण ग्रंथों को वेद मंत्रों का भाष्य भी मानते हैं। ब्राह्मणों में संहिताओं का अर्थ पुरानी प्रणाली के अनुसार दिया हुआ है। इनका विषय प्रायः कर्मकाण्ड है। इन ग्रंथों में वर्णित विषयों को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—(१) विधि-यज्ञ करने की विधि; यज्ञवेदी बनाने का ढंग और यज्ञ की आवश्यक बातें (२) अर्थवाद-उदाहरणों सहित यज्ञ के महत्व और फल का दिग्दर्शन तथा (३) उपनिषद-यज्ञ तथा तत्सम्बन्धी बातों पर दार्शनिक ढंग से विचार।

ब्राह्मण ग्रंथ

तिथि क्रम के अनुसार ब्राह्मणों में क्रमशः पंचविंश, तैत्तिरीय, जैमिनीय कौशीतकी, ऐतरेय, शतपथ तथा गोपथ हैं। ब्राह्मण ग्रंथों के अन्त में आरण्यक ग्रंथ हैं जिन्हें केवल संसार को छोड़ कर बन में बसने वाले ही पढ़ सकते थे। आरण्यकों के अन्तिम भाग में उपनिषदों का समावेश है।

प्रत्येक वेद या संहिता का एक ब्राह्मण है। ऋग्वेद का ऐतरेय एवं कौशीतकी, यजुर्वेद का तैत्तरीय और शतपथ, सामवेद का पंचविंश तथा छन्दोग्य और अथर्ववेद का ब्राह्मण गोपथ है।

ब्राह्मण ग्रंथों का बहुत महत्व है। प्राचीनकाल की सामाजिक दशा का ज्ञान, आर्यों के प्रसार का परिचय, भिन्न-भिन्न देशों की शासन पद्धतियों का आभास, राज्य एवं साम्राज्य से संबंधित यज्ञों का ज्ञान, तत्कालीन धार्मिक स्थिति का आभास, भाषा-परिवर्तन की झलक तथा भौगोलिक सामग्री की प्राप्ति हमें ब्राह्मणों से मिलती है।

उपनिषद् ब्राह्मण साहित्य के अन्तिम विकास तथा संस्कृत साहित्य की उत्पत्ति के सूचक हैं। ऋग्वेद में दो विषय हैं—ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड का विकास ब्राह्मण ग्रंथों में तथा ज्ञानकाण्ड का विकास उपनिषदों में मिलता है। उपनिषद ब्राह्मण साहित्य के समाप्तिकाल की रचनाएं हैं जो ई. पू. ५०० वर्ष के लगभग रचे गये थे। डा. गोखले के कथनानुसार 'उपनिषद्' शब्द की उत्पत्ति 'उपा-नी-साद' से हुई है जिसका अभिप्राय है किसी के पास बैठना। यह निःसंदेह शिक्षक और शिष्य की उस स्थिति के संबंध में है जबकि ज्ञानोपार्जन के लिये

उपनिषद्

शिष्य को शिक्षक के समीप बैठना पड़ता था।" एक अन्य विद्वान विण्टरनीत्ज के अनुसार "उपनिषद् प्रायः 'वेदांत' या 'वेद' की मंजिल कहे जाते हैं, केवल इसलिये नहीं कि वे वैदिक युग के अन्त में आये या वे वैदिक निर्देशों के उपरान्त पढ़ाये जाते थे बल्कि इसलिए भी कि अन्तिम दार्शनिकों ने उनमें वेदों का अंतिम उद्देश्य पा लिया था।"

उपनिषद् हमारे दार्शनिक विचारों के उच्चतम ग्रंथ हैं। वे विचार इतने सुन्दर हैं, इतने उदार हैं कि उनमें न सिर्फ अपने देश और देशवासियों के, बल्कि समस्त संसार और मानव जाति के कल्याण की कामना है। उनकी दो एक प्रार्थनाएं सुनने से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। 'असतो मा सद्गमय', 'तमसो मा ज्योतिर्गय' 'मृत्योर्माऽमृतं गमय।' अर्थात् "हमें असत्य से सत्य में ले जाओ, अंधकार से प्रकाश में ले जाओ, मृत्यु से अमृत (अमरता) में ले जाओ।" एक अन्य जगह पर लिखा है—

उपनिषद् की विचारधारा

यत ते रूपं कल्याणतमं तत ते पश्यामि
योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ।

अर्थात "तुम्हारा जो रूप कल्याणतम है, हम उसे ही देख पाते हैं। यह सूर्य मण्डल में जो परम पुरुष है, मैं वही हूं।" उपनिषद् ज्ञान के भंडार हैं, निर्मोह रूप से फल की इच्छा को त्याग कर कर्तव्य करने से तथा सुख दुःख को समान समझने से मनुष्य अमरत्व को प्राप्त होता है। उपनिषदों में आध्यात्मिक ज्ञान का दिग्दर्शन, स्त्रियों को शिक्षा एवं सार्वजनिक कार्यों में रुचि पर प्रकाश एक ब्रह्म का सिद्धांत, ब्रह्म का विश्व रूप, आत्मा तथा परमात्मा का ज्ञान, जीवात्मा, पुनर्जन्म, कर्मवाद तथा मोक्ष का विचार, वर्ण व्यवस्था के विकास का वर्णन, आदि का परिचय एवं उल्लेख मिलता है।

उपनिषद् में एक स्थान पर लिखा है कि "ये आदर्शहीन जटिल यज्ञ रूपी कर्म शदृढ़ नौका के समान हैं। अविवेकी लोग इनको ही जीवन का लक्ष्य बनाकर अपनी अन्ध-वासनाओं के भंवर में ही पड़े रहते हैं और वास्तविक कल्याण को नहीं प्राप्त कर सकते। मूढ़ लोग, अपने को पंडित और बुद्धिमान समझते हुए, पर वास्तव में अज्ञानवश आदर्शहीन याज्ञिक क्रिया कलाप

में फंसे हुए, आध्यात्मिक उन्नित के सरल-सीधे मार्ग में अग्रसर नहीं हो पाते। वे मान, दम्भ, मोह के टेढ़े मार्ग में ही फंसकर अपने जीवन को नष्ट करते हैं। उनकी दशा वास्तव में अन्धे के पीछे वाले अन्धों के समान ही होती है। एक विद्वान ने लिखा है "उपनिषद् मनुष्य की आश्चर्यजनक कृति है। (मेक्समूलर) इसी प्रकार प्रसिद्ध विद्वान शेपेनहावर ने लिखा है "उपनिषद् के प्रत्येक पद से गम्भीर, नवीन तथा उच्च विचार उत्पन्न होते हैं और समस्त संसार में हृदय को उन्नत करने वाली उपनिषदों के सदृश दूसरी विद्या नहीं है।"

उपवेद

प्रत्येक वेद का एक उपवेद है संस्कृत साहित्य में उपवेदों का स्थान भी महत्वपूर्ण है। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है। आयुर्वेद में द्रव्यों के गुणों, स्वभावों, प्रभावों तथा उपयोगों का वर्णन है। यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद है जिसमें शस्त्रों के प्रयोग तथा संहार की शिक्षा का उल्लेख है। सामवेद का उपवेद गन्धर्ववेद है जिसमें गायन, वादन, नृत्य आदि का उल्लेख है। अथर्ववेद का उपवेद अर्थशास्त्र है। अर्थशास्त्र में राजनीतिक एवं आर्थिक नीति की व्याख्या है।

सूत्र-साहित्य

यज्ञादि से संबंधित सिद्धान्तों को नूतन रूप देने के लिए संस्कृत भाषा में सूत्र साहित्य की रचना की गई। व्हूलर के अनुसार सूत्रों की रचना ई. पू. ४०० वर्ष में हुई थी। कुछ विद्वानों का मत है कि 'गागर में सागर' भरने की नीति के आधार पर सूत्र साहित्य की सृष्टि की गई। इस साहित्य को तीन हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है—(१) श्रौत सूत्र—इनकी संख्या चौदह है और ये प्रारंभिक बौद्ध काल में लिखे गये थे। इन सूत्रों में श्रौत कर्मों का विधान है। (२) गृह्य सूत्र—इन सूत्रों में जन्म से मरण तक, पारिवारिक जीवन से संबंधित कुल चालीस संस्कारों एवं कर्मों का विधान है और (३) धर्म सूत्र—इसमें सामयाचारिक धर्मों का विचार है। सामाजिक रूढ़ि, रीतिरिवाज आदि के आधार पर सामाजिक जीवन के संचालन हेतु नियमों का विवेचन है।

संस्कृत साहित्य और विशेषकर उसके वैदिक साहित्य की भाषा की जटिलता को दूर करने उसे सुगम बनाने, हेतु वेदांग साहित्य की रचना की गई।

वेदांग-साहित्य

वेदांग ६ हैं—(१) शिक्षा—यह स्वर शास्त्र से संबंधित है। इसमें वर्ण और उनकी उच्चारण विधि है। (२) छन्द—यह वैदिक छन्दों के प्रयोग का शास्त्र है। इसे वेद का चरण भी कहते हैं। (३) व्याकरण—यह शब्दों का विज्ञान शास्त्र है। नाम, सर्वनाम आख्यात, उपसर्ग, निपात आदि का ज्ञान प्राप्त होता है। (४) निरुक्त—यह वेद का भाष्य है और इसमें वैदिक शब्दों की व्याख्या की गई है। (५) ज्योतिष—इसके द्वारा ग्रहों एवं नक्षत्रों की गतिविधि एवं उनके प्रभाव का ज्ञान मिलता है और (६) कल्प—श्रौत सूत्र है।

स्मृतियां

संस्कृत साहित्य की अन्य धरोहर है स्मृतियां। स्मृतियों में चारों वर्णों तथा आश्रमों के कर्त्तव्यों का वर्णन है। यों तो कई स्मृतियां हैं परन्तु उनमें मनु, याज्ञवल्क्य और पाराशर स्मृति मुख्य हैं। मनुस्मृति हिन्दुओं का कानूनी ग्रन्थ है जिसमें हिन्दू धर्म के कानूनों का विवरण है। हजारों वर्षों से मनु के बतलाये हुए नियम-कानूनों का पालन किया जा रहा है और आज भी हमारे सामाजिक जीवन में इसका बहुत महत्व है क्योंकि मनुस्मृति वर्णाश्रम व्यवस्था का मुख्य आधार मानी जाती है।

रामायण और महाभारत भी संस्कृत साहित्य के बड़े ही माननीय ग्रन्थ हैं। इन दोनों महाकाव्यों का अध्ययन हम पिछले अध्यायों में कर चुके हैं।

पुराण

पुराण भी प्रमुख संस्कृत साहित्य ग्रन्थों में गिने जाते हैं। इन में देवी देवताओं के सम्बन्ध में काल्पनिक कहानियाँ लिखी हुई हैं। इन कहानियों में वास्तविक सत्य का अभाव है परन्तु चमत्कारपूर्ण घटनाओं का खूब उल्लेख मिलता है। पुराणों के रचयिता लोमहर्ष अथवा उनके पुत्र उग्रश्रवा माने जाते हैं। पुराणों की संख्या १८ है। पुराणों के पांच विषय हैं अर्थात् सर्ग (जगत-निर्माण), प्रतिसर्ग (प्रलय के उपरान्त निर्माण), वंश (ऋषियों तथा देवताओं की वंशावली), मनवन्तर (महायुग) तथा वंशानुचारित। डा० रमाशंकर त्रिपाठी ने लिखा है, इन बहुत सी प्राचीन युग की कथाओं के संग्रह का कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं परन्तु इन पर बिल्कुल विश्वास न करना ठीक नहीं है।"

संस्कृत साहित्य के विकास में गीता ने महत्वपूर्ण सहयोग दिया है। गीता का वास्तविक नाम है भगवद्-गीता जिसका शाब्दिक अर्थ है, भगवान का गीत। यह महाभारत का एक अंग है और इसमें उच्च कोटि भागवद्-गीता का उपदेश लिखा है जो श्रीकृष्ण भगवान ने महाभारत का

युद्ध प्रारम्भ होने के समय अर्जुन को दिया था, जबकि उसने इस बात पर लड़ने से इन्कार कर दिया था कि मैं अपने भाइयों के विरुद्ध कैसे लड़ूं। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया कि हवन तथा यज्ञ करने से मोक्ष प्राप्त नहीं होता। मोक्ष प्राप्त करने का सरल उपाय योग साधन तथा कर्म पर अटल रहना है। आत्मा अमर है, केवल शरीर नश्वर है, प्रत्येक मनुष्य को निष्काम भाव से अपने सभी कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए। संसार के बड़े-बड़े विद्वानों की यह धारणा है कि ब्रह्मज्ञान की शिक्षा के लिये यदि कोई श्रेष्ठ और उत्तम ग्रन्थ दुनिया में है तो वह केवल गीता है। गीता में किसी धर्म विशेष की शिक्षा नहीं है। यदि गीता का सूक्ष्म रूप से अध्ययन किया जाय तो हमें मालूम पड़ता है कि गीता गहन तत्त्वज्ञान से भरपूर है, जिसमें ज्ञान, कर्म तथा भक्ति तीनों योगों का समन्वय है। इसके अलावा गीता जन साधारण के लिये भी बहुत उपयोगी है, क्योंकि यह उन्हें ऐसी बातों का भी उपदेश देती है जिनके आचरण करने से प्रत्येक प्राणी अपने जीवन को सुखी और शान्तिमय बना सकता है। गीता हमें बतलाती है कि सफलता, असफलता की चिन्ता किये बिना अपना कर्त्तव्य करते रहना चाहिए। सब कुछ भगवान का समझ कर, सिद्धि, असिद्धि में समत्व भाव रखते हुए; आसक्ति और फल की इच्छा का त्याग कर के भगवत् आज्ञानुसार केवल भगवान ही के लिए सब कर्मों का आचरण करना तथा श्रद्धा, भक्तिपूर्वक मन, वाणी और शरीर से सब प्रकार भगवान की शरण हो कर नाम, गुण और प्रभाव सहित उनके स्वरूप का निरंतर चिन्तन करना ही निष्काम कर्म का साधन है। इस प्रकार गीता ने जन साधारण को कर्त्तव्य करने का उपदेश दिया है। यह एक परम रहस्यमय ग्रन्थ है।

संस्कृत साहित्य में दार्शनिक ग्रंथों का बाहुल्य है। दर्शन का तात्पर्य है आध्यात्मिक ज्ञान और ज्ञान का चिंतन। भारतीय दर्शन को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—नास्तिक एवं आस्तिक। नास्तिक दर्शन तीन भागों

इस दार्शनिक साहित्य के साथ ही साथ संस्कृत साहित्य में कई अन्य विषयों पर जैसे अर्थशास्त्र, न्याय, अलंकार, कामशास्त्र, व्याकरण कोश, अमर, कोश आदि विषयों पर संस्कृत में महत्वपूर्ण ग्रन्थ मिलते हैं याज्ञवल्क्य, पाराशर मनु और चाणक्य विधि आधार नीति के निर्माता प्रसिद्ध ही हैं। शिल्प कला पर भी भास्कर जैसे ग्रंथ, वैद्यक पर चरक और सुश्रुत के, ज्योतिष पर वाराहमिहिर के, गणित पर भास्कर का, काम सूत्र पर वात्स्यायन के ग्रंथ

संस्कृत साहित्य मिलते हैं जो संस्कृत साहित्य की अभिवृद्धि में और अधिक के अन्य ग्रन्थ सहयोग देते हैं। परन्तु संस्कृत साहित्य में सब से अधिक महत्वपूर्ण स्थान काव्य, नाटक और अलंकार से सम्बन्धित ग्रन्थों का है। भास से बाण भट्ट तक १५३ प्रसिद्ध संस्कृत कवि मिलते हैं जिनमें कालिदास, भवभूति, भास शूद्रक आदि नाटककार, भर्तृहरी, भोज, भारवी, श्री हर्ष जैसे कवि, दण्डी, राज शेखर क्षेमेन्द्र आदि अलंकार शास्त्री और असग धर्मकीर्ति, नागार्जुन, शंकराचार्य आदि दार्शनिक प्रसिद्ध हैं। इसमें से कुछ प्रसिद्ध विद्वानों की कला कृतियों का उल्लेख हम मौर्यकालीन तथा गुप्तकालीन सभ्यता के अन्तर्गत कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त हमें यह भी कहना पड़ेगा कि भरत का नाट्य शास्त्र और काव्य-दर्पण, रस गंगाधर, काव्य-मीमांसा आदि ग्रंथ साहित्य शास्त्र के बहुत ऊंचे ग्रंथ हैं जिनका परिशीलन करने पर आधुनिक मनोवैज्ञानिक सत्यों या अन्वेषणों से बहुत मिलते हुये जान पड़ते हैं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) संस्कृत साहित्य से आप क्या समझते हैं ? इसका क्या महत्व है ?
(२) वेद की परिभाषा एवं महत्व समझाइए।
(३) वेद कितने हैं ? प्रत्येक का सविस्तार वर्णन कीजिए।
(४) वेदों पर आधारित साहित्य का उल्लेख कीजिए।
(५) उपनिषद् क्या हैं ? उपनिषदों की विचार धारा को समझाइए।
(६) "भगवद्गीता जनसाधारण को आसक्ति और फल की इच्छा को त्याग कर कर्म करने का उपदेश देती है।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? अपने पक्ष को स्पष्ट समझाइए।
(७) 'भारतीय दर्शन की छः धाराएं' पर एक निबन्ध लिखिए।
(८) संस्कृत साहित्य के विकास पर एक संक्षिप्त आलोचनात्मक लेख लिखिए।

(८) भारतीय संस्कृति का विदेशों में प्रचार
(वृहत्तर भारत)

प्राचीन काल से ही भारत का विदेशों से सम्पर्क था। इस सम्पर्क का कारण भारत की अनुकूल भौगोलिक स्थिति था। भारत एशिया महाद्वीप का अंग है। इसका दक्षिणी भाग हिन्द महासागर की तरंगों से अठखेलियां करता है तो पश्चिम में अरब सागर और पूर्व में बंगाल की खाड़ी है। उत्तर-पश्चिम में खैबर और बोलन के दर्रे हैं जिनकी सहायता से पश्चिम की तरफ अग्रसर हुआ जा सकता है। इस प्रकार की अनुकूल परिस्थितियों

भौगोलिक स्थिति का प्रभाव

देखते हुये हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल से ही भारत का एशिया के अ देशों से सम्बन्ध रहा होगा। हिन्द महासागर में स्थित छोटे बड़े द्वीपों व्यापार सम्बन्ध रहे होंगे। अरब सागर तथा खैबर और बोलन के दर्रों सहायता से मध्य एशिया और पश्चिमी देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध रहे होंगे। यदि हम यह कहें कि भारत पूर्व और पश्चिम में घनिष्ट सम्बन्ध स्थापि करने में शृंखला का कार्य करता था तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक प्रभावों के कारण धीरे धीरे भारत का एक विशाल सांस्कृतिक परिवार स्थापित हुआ जिसे साधारण अर्थ में "वृहत्तर भारत" कहा जाता है। हमारे पूर्वजों ने न केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में शानदार सफलताएं प्राप्त की थीं, बल्कि सांसारिक कर्म क्षेत्र में भी वे दुनिया की जातियों के अगुआ रहे थे। उन्होंने जो सांसारिक और आध्यात्मिक उन्नति की उसे अपने तक ही सीमित न रखा बल्कि

वृहत्तर भारत का तात्पर्य

दुनिया के दूर दूर के देशों में पहुँचाया, जिससे वहाँ के लोग भी उससे लाभ उठा सकें। उस महान प्रयास में जहाँ साधारण भारतीय नर नारियों ने हिस्सा लिया वहां राजाओं और राजकुमारों, व्यापारियों और धर्म प्रचारकों, साधुओं और संतों तथा विद्वानों और भिक्षुओं ने भी अपने जीवन अर्पित किए। जहां जहां ये प्रचारक जाते थे, वहां वहां इनके साथ इंजीनियर, मूर्ति निर्माता, वास्तु कला, चित्रकार, चिकित्सक और अन्य कुशल शिल्पी भी पहुँचते थे और

वे लोग अपनी छोटी छोटी नई बस्तियां (उपनिवेश) बना लेते थे। इन नई बस्तियों में भारतीय सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाएं स्थापित की गईं और नवीन नगर, नदियों और पर्वतों के नाम भारतीयों ने अपनी प्रिय मातृभूमि में प्रचलित नामों में से ही रखे ताकि मातृभूमि के साथ मानसिक सम्बन्ध सदा के लिये कायम रहे। अपने पूर्वजों के यह महान कार्य देख कर हमारा मस्तक, उनके साहस, सूझ बूझ, कर्मठता और देश प्रेम के आगे श्रद्धावनत हो जाता है।

उपर्युक्त उपनिवेशों की स्थापना किसने की या उनके संस्थापक कौन थे ? इस विषय को ले कर बहुत वाद विवाद होता रहा परन्तु अब यह धारणा बन चुकी है कि इन उपनिवेशों की स्थापना व्यापारियों, तथा धर्म-प्रचारकों के कारण ही सम्भव हो सकी है। प्राचीन काल से ही भारतीय व्यापारियों ने पूर्वी द्वीपसमूह के साथ सम्बन्ध स्थापित कर रखा था। उस समय इन द्वीपों को सोने की खान समझा जाता था और इसीलिये उन्हें सुवर्ण भूमि सवर्ण द्वीप आदि नामों से पुकारा जाता था। बहुत से व्यापारी वहीं बस गये और उनकी सुरक्षा के लिये बहुत से सैनिक भी। इनके पीछे पीछे बहुत से विद्रोही क्षत्रिय राजकुमार भी वहां पहुंच गये और अपने लिये पृथक् पृथक् राज्यों की स्थापना की। उपनिवेशकों में ऋषि कौण्डिन्य और अगस्त्य प्रमुख थे। उन्होंने इन देशों की असभ्य जातियों को सभ्य बनाने का सकल्प किया और इन द्वीपों में अपने-अपने तपोवन और आश्रम स्थापित कर भारतीय संस्कृति का प्रचार किया। धर्म प्रचारकों में वैदिक ऋषियों और मुनियों से भी अधिक कार्य बौद्ध धर्म के प्रचारकों ने किया। उन्हीं ने विश्व के अधिकांश स्थानों तक बुद्ध की शिक्षा का प्रचार किया। इस प्रकार बृहत्तर भारत का निर्माण हुआ।

उपनिवेशों के संस्थापक

भारत का यह सम्पर्क पाषाण युग से चला आ रहा है। पाषाण युग के प्राप्त अवशेषों के अध्ययन से पता चलता है कि भारतीयों का पश्चिम एशिया, मध्य एशिया, चीन, हिन्दचीन तथा पूर्वी द्वीपसमूह के लोगों से घनिष्ट सम्पर्क रहा होगा। सिन्धु घाटी के अवशेषों की मिस्र, सुमेरिया आदि देशों की सभ्यता के अवशेषों के साथ समानता भी इस बात की प्रतीक है कि आज से ५,००० वर्ष पूर्व के

प्रागैतिहासिक काल का सम्पर्क

युग में भारतीयों का मिश्र तथा मेसोपोटेमिया के साथ काफी घनिष्ट सम्बन्ध रहा होगा। द्रविड़ तथा वैदिक धर्म भारत के मूल निवासी नहीं थे। वे बाहर से आये थे। अतः यह स्वाभाविक था कि इन विदेशी जातियों का अपने मूल स्थान के बन्धुओं के साथ सम्पर्क रहा होगा। पुराणों की कल्पनाओं को यदि सत्य माना जाय तो हमें विश्वास करना होगा कि उस युग में भी भारतीयों ने बाहर से उपनिवेशों की स्थापना की थी। जैसे पश्चिमोत्तर के पर्वतीय भाग में, सुमेर (सुमेरिया) में, मध्य एशिया में आदि-आदि।

लंका में भारतीय सभ्यता का प्रसार

भारत तथा लंका का पारस्परिक सम्बन्ध पौराणिक गाथाओं से अत्यन्त प्राचीन है ही किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से भी भारत और लंका की घनिष्ठता बड़ी प्राचीन है। सब से प्राचीन ऐतिहासिक सम्पर्क अशोक के समय का प्राप्त होता है जब कि अशोक के पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा (बुद्ध के अनुयायी होने) अन्य भिक्षुओं के साथ बौद्ध गया के बौद्ध वृक्ष की एक टहनी लंका ले गये थे। इसी सम्पर्क के परिणामस्वरूप लंका बौद्ध धर्म का पूर्ण रूप से अनुयायी बन गया।

दूसरी बात यह भी है कि जिस प्रकार यूरोप की राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक हलचलें इंगलैण्ड के इतिहास पर समय-समय पर प्रभाव डालती रही हैं उसी प्रकार भारतीय अवस्थाएं भी लंका की भारत से समीपता होने के कारण प्रभाव डालती रही हैं। लंका का प्रभाव ब्रह्मा तथा स्याम को बौद्ध धर्मावलम्बी बनाने में रहा। बौद्ध धर्म ने लंका को ब्राह्मी लिपि तथा पाली भाषा प्रदान की थी। लंका में साहित्य, कला, धर्म सभी क्षेत्रों में भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति की छाप है।

भारत का द्वितीय निकटवर्ती देश ब्रह्मा है। भारतीय राजनीतिक आर्थिक समस्याओं ने ब्रह्मा पर भी प्रभाव डाला है। ब्रह्मा का भारतीय नाम 'स्वर्ण भूमि' था। इसका दक्षिणी क्षेत्र श्री क्षेत्र कहलाता था। बौद्ध धर्म के भिक्षु ब्रह्मा भी गये। सर्व प्रथम सम्राट् अशोक ने बौद्धधर्म प्रचारकों को वहाँ भेजा।

ब्रह्मा या बर्मा

उन्होंने प्रचार किया और उस देश को भी बौद्ध धर्माव-लम्बी बना लिया। अशोक से पूर्व की भी कई, विष्णु में भारतीय संस्कृति की मूर्तियां यहा पाई जाती हैं। ईसा की तेरहवीं शताब्दी में बौद्ध भिक्षुओं ने लंका के बौद्ध विचारकों की नीति का प्रचार किया। उनकी भाषा, लिपि तथा धर्म पर भारतीयता का गहरा प्रभाव है। आज भी बर्मा भारत के साथ खड़ा है।

चीन तथा भारत का सम्पर्क भी अति प्राचीन है। भारत की तथा चीन की सीमायें काश्मीर, आसाम आदि भागों से मिलती हैं। इन्हीं प्रान्तों के हिमालय के पर्वतीय मार्गों तथा दर्रों से अनेक भारतीय बौद्ध भिक्षु चीन गये। वहां उन्होंने बौद्ध धर्म का प्रचार किया। चीन में बौद्ध धर्म का सदेश ले जाने का श्रेय कश्यप, मातंग तथा धर्म रत्न नामक बौद्ध भिक्षुओं को प्रदान किया जाता है। अपने देश की सभ्यता तथा संस्कृति का प्रचार करने के लिये भारतीय धर्म दूतों ने बौद्ध धर्म ग्रन्थों का चीनी भाषा में रूपान्तर करना आरम्भ किया और लगभग ३५० ग्रन्थों का अनुवाद कर डाला। जब

चीन पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव

चीन निवासियों को बौद्ध धर्म की शिक्षाओं का ज्ञान हुआ तो अनेकों चीनी महात्मा, जिनमें फाहियान, ह्वेनत्सांग, इत्सिंग आदि प्रमुख थे, भयंकर यातनाओं को सहन कर बौद्धग्रन्थ की प्राप्ति, बौद्ध धर्म के अध्ययन तथा अपने धार्मिक गुरु की जन्म भूमि के दर्शन करने भारत में पधारे। आज यह कितने आश्चर्य की बात है कि बौद्ध धर्म का जन्मदाता देश भारत अपने बौद्ध धर्म को भूल गया किन्तु ५० करोड़ की आबादी वाला साम्यवादी चीन आज भी हमारे बौद्ध धर्म को अपना रहा है। चीन तथा भारत के इस धार्मिक संबंध के परिणामस्वरूप इन दोनों देशों में राजनीतिक तथा व्यावसायिक सम्बन्ध भी स्थापित हो गया और जल तथा स्थल दोनों मार्गों से व्यापार होने लगा। इन सम्बन्धों का सामूहिक परिणाम यह हुआ कि भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का चीन में खूब प्रचार हुआ।

भारतीय सभ्यता तथा धर्म का सबसे गहरा प्रभाव पूर्वीय द्वीपसमूह के मुख्य-मुख्य टापू जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदि में आज तक पाया जाता है।

प्रसिद्ध मंदिर भारतीय संस्कृति के अखण्ड चिन्ह हैं।

(३) मलाया

मलाया प्राय द्वीप में भी हिन्दू राज्यों का प्रादुर्भाव हुआ। सब से पहिले शैलेन्द्र वंश ने आठवीं शताब्दी ई. में हिन्दू राज्य की स्थापना की। इस विशाल साम्राज्य के अन्तर्गत जावा, सुमात्रा, बाली और बोर्नियो द्वीप भी सम्मिलित थे। यहां के शासक 'महाराज' की उपाधियां धारण करते थे। अरब तथा चीन के लेखकों के अनुसार भारत तथा चीन के राजा मलाया के महाराज का बड़ा सम्मान करते थे। शैलेन्द्र वंश के राजा बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय के अनुयायी थे। उन्होंने बहुत से स्तूपों, मन्दिरों तथा मूर्तियों का निर्माण कराया था। तेरहवीं शताब्दी में इस वंश का अन्त हो गया।

(४) जावा

शैलेन्द्र वंश के पतन के उपरांत मलाया प्रायद्वीप के जावा की शक्ति का विकास हुआ। जावा में चौथी शताब्दी में ही हिन्दू राज्य की स्थापना हो चुकी थी। परन्तु शैलेन्द्रवंश ने उस पर अपना अधिकार कर लिया था। तेरहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में सम्राट् विजय ने एक नये राजवंश की स्थापना की और तिक्त विल्व को अपनी राजधानी बनाया। इस राजवंश ने धीरे धीरे मलाया द्वीप समूह को अपने अधिकार में कर लिया। सोलहवीं शताब्दी में जावा का हिंदू राजा गद्दी से उतार दिया गया और इस्लाम का राज्य स्थापित हुआ। जावा में भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का खूब प्रचार हुआ। पहिले यहां हिंदू धर्म ने प्रवेश किया था परन्तु कालान्तर में बौद्ध धर्म का प्राबल्य हो गया इस समय भी जावा में सहस्रों मंदिरों के भग्नावशेष उपलब्ध हैं। भारतीय ग्रन्थों की अनेक पाण्डुलिपियां भी उपलब्ध हैं। रामायण तथा महाभारत यहां अत्यधिक लोकप्रिय थे।

केन्द्र था। चीन तथा भारत को एकता में जोड़ने की शृंखला थी। यहां पर भी किसी समय अशोक के वंशजों का शासन था।

तिब्बत

प्राचीन काल में चीन और भारत का सम्बन्ध तिब्बत देश में हो कर था। इसलिये चीन जाने से पूर्व भारतीय धर्म प्रचारक तिब्बत पहुँचे। तिब्बत के राजा तथा जनता ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया। अशोक के प्रयत्नों से ही यह सम्भव हो सका था। इसके अतिरिक्त इन दोनों देशों में व्यापारिक सम्बन्ध भी था। बहुत से भारतीय विद्वानों ने तिब्बत देश की यात्रा की और भारतीय संस्कृति का प्रचार किया। आज भी तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रभुत्व है और भारतीय संस्कृति का प्रभाव भी परिलक्षित है।

यूनान तथा रोम

भारतीय व्यापारी जल मार्गों द्वारा भी व्यापार करते थे। भारतीय सामान भारतीय बन्दरगाहों से नावों पर लद कर यूनान को जाता था। इस के अतिरिक्त स्थल मार्ग से भी यूनान के साथ व्यापार होता था। सिकन्दर के आक्रमण से यूनान और भारत में सम्पर्क बढ़ा और जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय संस्कृति ने यूनानियों को प्रभावित किया। यूनानी दार्शनिकों ने कर्मवाद तथा पुनर्जन्मवाद की शिक्षा ग्रहण की। इसके अतिरिक्त अनेक यूनानी विद्यार्थी तक्षशिला के विश्व विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने आते थे। इस प्रकार यूनान पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव पड़ा।

भारतीय व्यापारी रोम से व्यापार करने जाते थे। रोम में उनका व्यापार खूब होता था। रोम की स्त्रियां मलमल की खूब माँग करती थीं। विलास की सामग्री तथा पूर्वी द्वीप समूहों के गर्म मसाले भी खूब खरीदे जाते थे और रोम से लाखों सोने की मुद्रायें आती थीं। कालांतर में जिस ईसाई धर्म का रोम में प्रचार हुआ उसका प्रवर्त्तक ईसा मसीह कई वर्षों तक उत्तर पश्चिमी भारतीय सीमान्त में बौद्ध धर्म का अध्ययन करता रहा था और इससे प्रभावित हो कर उसने ईसाई धर्म चलाया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति ने समुद्र पार तथा अन्य देशों में अपना प्रभाव स्थापित किया।

सफल हो सकी या नहीं ? समझाइये ।

[६] राजपूतों की सभ्यता एवं संस्कृति

गुप्त साम्राज्य के पतन के उपरान्त उत्तर भारत की एकता छिन्न भिन्न हो चली थी। ६०६ ई० से ६४२ ई० तक हर्षवर्धन ने उत्तर भारत के एक बड़े भाग को एक सूत्र में सम्बद्ध किये रखा परन्तु उसकी मृत्यु से ले कर दिल्ली पर मुसलमानों के आधिपत्य तक अर्थात् ६४२ ई० से लेकर ११९२ ई० तक के भारत की कहानी थका देने वाली और शोचनीय कहानी है। इस काल में राज्य बनते थे, बिगड़ते और फिर बनते थे।

राजपूत काल का परिचय

इस काल की महत्वपूर्ण घटना राजपूतों का अभ्युदय है। राजपूतों का नाम पहली बार सातवीं शताब्दी में दिखाई देता है। उनके उद्भव का प्रश्न अभी विवादास्पद है।

सैनिक निर्भीकता, विचारहीन वैयक्तिक साहस और युद्ध और शान्ति दोनों में ही उच्चादर्श का पालन, राजपूत की कुछ अपनी विशेषताएं हैं। इनसे निस्सन्देह मानव इतिहास में उन्होंने नाम कमाया है।

इस युग में भारतवर्ष में भिन्न भिन्न वंश अपना राज्य फैला रहे थे। दक्षिण में सोलंकी राजाओं का अधिक प्रभाव था। उत्तर में पाल, सेन, प्रतिहार तथा राठौरों आदि का प्रभाव था। मुसलमान भी सिंध में आ चुके थे और ग्यारहवीं बारहवीं सदी में मुसलमानों का प्रवेश भारत में विशेष रूप से हो चुका था और कितने एक प्रांतों पर भी उनका अधिकार हो गया था। इस तरह भिन्न भिन्न राजवंशों के विकास और पतन आदि

राजनीतिक स्थिति

अनेक राजनीतिक परिवर्तनों के कारण भी इस काल का महत्व बहुत बढ़ गया है।

इस युग में भारत में कोई ऐसी राजनीतिक शक्ति नहीं थी; जो देश के बड़े भाग पर अपना आधिपत्य स्थापित कर के एक विशाल राज्य की नींव डालने में समर्थ होती, जिससे यह देश एक राजनीतिक सूत्र में संगठित रहता। इसके विपरीत, पारस्परिक युद्धों के कारण यह काल अराजकता और अव्यवस्था का था। इस प्रसंग में यह निर्दिष्ट कर देना भी आवश्यक है कि संसार के अन्य देशों में भी यह काल अवनति और पतन का ही था।

इस समय भारत के विविध राज्यों में सामन्त-पद्धति का विकास हो गया था। सामन्त पद्धति का सब से बड़ा दोष यही होता है कि उसके कारण राज्य स्थिर नहीं रहने पाते और अकेन्द्री भाव की प्रवृत्तियों को बल मिलता है जिससे देश में स्थायी शांति का अभाव रहता है।

इन महत्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तनों के कारण तत्कालीन सामाजिक स्थिति में भी विशेष महत्व के परिवर्तन हुए। सामाजिक ढांचे में भी एक स्पष्ट परिवर्तन हो गया था। सामाजिक दृष्टि से इस युग में संकीर्णता उत्पन्न हुई। प्राचीन समय में भारत का सामाजिक संगठन वर्ण धर्म के सिद्धांत पर अवश्य आश्रित था, पर उस समय जातिभेद ने उग्ररूप धारण नहीं किया था। मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार शिल्प, व्यवसाय व पेशे का अनुसरण कर सकता था, और कर्म के अनुसार ऊंचे या नीचे वर्ण को भी प्राप्त कर सकता था। स्थिति बदल गई। जातियों की संख्या बहुत बढ़ गई थी और जाति पांति के नियमों का पालन बड़ी कठोरता से होने लगा था। पुराने और बड़े वर्ण समूहों का स्थान छोटे छोटे जीविका सम्बन्धी समूहों या शिल्पी संघों ने ले लिया था।

सामाजिक स्थिति

इस काल में हिन्दू समाज में जौहर, सती और बाल-विवाह की कुप्रथायें चल पड़ी थीं।

विचाराधीन काल में बौद्ध धर्म बड़ी तेजी से क्षीण हो रहा था और उसके स्थान पर हिन्दू धर्म आ रहा था जिसकी जड़ें गुप्तकाल में गहरी जम गई थीं।

दार्शनिक सृष्टि के तत्वों की गहराई में पहुँचने का उतना प्रयत्न नहीं करते थे जितना कि शब्द जाल द्वारा बाल की खाल उतारने के लिये करते थे।

इस युग में शिक्षा का प्रसार भी बढ़ा और भारत के विभिन्न भागों में शिक्षा केन्द्रों को प्रोत्साहन मिला। नालन्दा, विक्रमशीला और उदयंतपुरी के महाविहारों ने विश्व विद्यालयों का रूप धारण कर लिया; जिनमें न केवल बौद्धों के धार्मिक और दार्शनिक साहित्य का ही अध्यापन होता था, पर साथ ही गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि विज्ञानों का भी शिक्षण होता था।

कृषि, व्यापार और व्यवसाय इन तीनों के उन्नत होने के कारण यह काल आर्थिक दृष्टि से भी विशेष महत्व का था। यूरोप और एशिया के देशों के साथ भारतीय व्यापार बहुत बढ़ा हुआ था। वस्त्र व्यवसाय के अतिरिक्त सोना, लोहा, कांच, हाथी दांत इत्यादि के व्यवसाय भी बहुत उन्नत थे। भारतवर्ष में भोजन और अन्य आवश्यक पदार्थ बहुत सस्ते थे जिस से किसी को भोजनादि की विशेष चिन्ता नहीं रहती थी।

आर्थिक स्थिति

ऐसे समय में उत्तर भारत में जिस वस्तु का अभाव था, दक्षिण ने उसकी पूर्ति की। वैष्णव अल्वार तथा शैव नैयनार सन्तों ने एक नये भक्तिमार्ग का प्रतिपादन किया। मीमांसा के भी दो मतों का प्रादुर्भाव हुआ। शंकर, रामानुज तथा माध्व ने वेदान्त दर्शन के तीन मुख्य मतों का विकास किया। ८५० ई. से १२०० ई. का चोल राजाओं का युग तमिल संस्कृति का स्वर्ण-युग कहा जा सकता है। इसी काल में दक्षिण भारत की स्थापत्य कला उन्नति के शिखर पर जा पहुँची। एलोरा के विहार. महाबलीपुरम् की पल्लव स्थापत्य कला की कृतियां तथा तंजावूर के चोल मंदिर इसी युग की देन हैं।

संक्षिप्त में, राजपूत काल भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है। इसके बाद ही भारत परतन्त्रता में जकड़ जाता है।

शुरू हो गये। सर्वप्रथम असभ्य एवं बर्बर हूणों ने भारत को पदाक्रान्त किया। सम्पूर्ण देश में अराजकता फैल गई। थानेश्वर के वर्धन शासकों ने कुछ समय के लिये उन्हें भारत से निकाल बाहर किया। इस वंश के प्रमुख शासक श्री हर्ष के शासन काल में उत्तरी भारत की राजनैतिक एकता पुनः स्थापित की गई परन्तु दक्षिण भारत में उसे सफलता नहीं मिली और चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय से उसे पराजित होना पड़ा। श्री हर्ष की मृत्यु के उपरान्त हिन्दू भारत का पतन होना शुरू हो गया। राजपूत राज्यों का उत्कर्ष हुआ। यद्यपि ये राज्य कला तथा साहित्य के प्रेमी थे परन्तु इनमें पारस्परिक एकता तथा सहयोग का अभाव था और इसी कारण उन्हें इस्लामी शासकों के सम्मुख नतमस्तक होना पड़ा। हिन्दू भारत के पराभव के निम्न कारण थे:—

हिन्दुओं की सामाजिक दुर्बलताएं

हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष की व्याख्या करते हुये डा० ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है—"यह वास्तव में दो सामाजिक व्यवस्थाओं में संघर्ष था—एक पुरानी और पतनोन्मुख और दूसरी ताजा, पौरुष और साहस से भरी हुई।" वास्तव में हिन्दू समाज पतनोन्मुख हो रहा था। समाज दो वर्गों में विभाजित था। एक वर्ग राजपूतों का था, जिसे अपने अभिजात्य का मिथ्या अहंकार था और जो वंश की कीर्ति; आत्म सम्मान तथा धर्म विजय के नाम पर युद्ध करना ही अपने जीवन का पवित्र कर्तव्य समझता था। ब्राह्मणों ने इस वर्ग का नैतिक समर्थन किया। इस वर्ग का उत्पादन से कोई सम्बन्ध न था दूसरा वर्ग साधारण जनता का था जिसे निरंतर होने वाले युद्धों तथा राजाओं और सामन्तों के भोग विलासमय जीवन का व्यय भार उठाना पड़ता था। बहुविवाह की प्रथा का रोग राजपूतों में घर कर गया था। इस रोग

ने उनकी शूरता और वीरता को आत्मसात् कर दिया था। इसके परिणामस्वरूप सती प्रथा पराकाष्ठा को पहुँच गई। अफीम के अत्यधिक प्रयोग ने राजपूतों की बुद्धि को कुण्ठित कर दिया था। हिन्दू समाज में पारस्परिक सहयोग और सहानुभूति की भावना नष्ट हो चुकी थी।

जाति व्यवस्था की अधिक परिपक्वता के कारण हिन्दू समाज व्यवस्था में निर्जीवता तथा शिथिलता आ गई थी। हम यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि जाति व्यवस्था का जन्म कब हुआ। इतना अवश्य कह सकते हैं कि आर्यों के आगमन के पूर्व भारत में इस व्यवस्था के बीज भी उत्पन्न नहीं हो पाये थे। आर्यों के आगमन के साथ ही साथ सर्वप्रथम भारतीय समाज में वर्ग की उत्पत्ति हुई—आर्य वर्ग जो विजेता था, शासक था, सभ्य था और अनार्य वर्ग जो पराजित था, शासित श्रेणी में सम्मिलित था, दास था, आर्यों से कम सभ्य था। परन्तु जब आर्यों ने भारत में स्थायी निवास कर लिया तो कार्यों का विभाजन हो गया। कार्यों के विभाजन के साथ वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति हुई। चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) की उत्पत्ति हुई यह ऋग्वैदिक काल की बात है। उस समय यह वर्ण व्यवस्था वंशानुगत नहीं थी। कर्मानुसार या कार्यानुसार थी। उत्तरवैदिक काल में इसमें कुछ कट्टरता आने लगी। रीति रिवाज, खान-पान, विवाह शादी आदि में इस व्यवस्था को दृष्टि में रखा जाने लगा। कालान्तर में यह वर्ण व्यवस्था जाति की व्यवस्था में बदल गई और भिन्न-भिन्न जातियों के लोगों ने अपनी-अपनी जाति के नियम अलग अलग बना लिये। समय के साथ साथ जातियों के नियम भी कड़े होते गये और जाति का आधार व्यवसाय न रह कर जन्म और वंश परम्परा बन गया और जाति-परिवर्तन असम्भव बन गया। आज इस जाति व्यवस्था के कारण हिन्दू समाज लगभग तीन हजार जातियों में विभाजित है। उपजातियों की तो गणना करना ही असम्भव है।

जाति व्यवस्था की उत्पत्ति व विकास

जातियों के कारण हिन्दू समाज असंख्य भागों में विभाजित हो गया जो परस्पर ईर्ष्या द्वेष रखते थे। यही कारण है कि हिन्दू एक सुदृढ़ तथा संगठित जाति न बन सकी। ऊंच व नीच की भावना

हिन्दू धर्म में सम्मिलित होना कठिन हो गया। इस से हिन्दू धर्म का विकास रुक गया। अन्तर्जातीय विवाहों के रुक जाने से भी मानसिक तथा बौद्धिक शक्ति का पतन होने लगा। सब से बुरी बीमारी छूत-छात की थी। इससे निम्न जातियों की इच्छाओं को सफलीभूत बनाने के मार्ग रुक गये। राष्ट्रीय भावनाओं के विकास की गति मन्द हो गई। इन प्रकार की स्थिति करीब एक हजार वर्ष तक रही तत्पश्चात् हमारा सम्पर्क अरबों से बड़ा परन्तु हमने उनसे कुछ नहीं सीखा यद्यपि उन्होंने हमसे बहुत कुछ सीखा।

हिन्दू भारत के पराभव का एक कारण हिन्दुओं की राजनीतिक दुर्बलता था। भारतवर्ष में राजनीतिक एकता तथा सुदृढ़ता का सर्वथा अभाव था। देश में असंख्य नेता थे। उनकी शक्ति विभिन्न राज्यों के पारस्परिक युद्धों में क्षीण हो चुकी थी। भारतवर्ष शब्द केवल भौगोलिक एकता का द्योतक था। यह युग अव्यवस्था तथा अराजकता का था। राजपूत राजा निरंकुश ही नहीं बल्कि स्वेच्छाचारी भी थे। इन शासकों में अहंकार तथा झूठे आत्म सम्मान की भावना पराकाष्ठा को पहुंच चुकी थी। राजा तथा प्रजा का सम्बन्ध समाप्त हो चुका था। प्राचीनकाल की प्रचलित प्रजातान्त्रिक संस्थायें-सभा और समिति का महत्व क्षीण हो चुका था और देश में प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों का गला घोंट दिया गया था। जागीरदारी प्रथा भी राजनीतिक दुर्बलता का कारण थी। ज्यों ही राजवंश लड़खड़ाने लगे सामन्तों ने अपने लिये स्वतंत्र राज्यों के निर्माण का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया।

राजनीतिक दुर्बलता

एलफिंस्टन, विंसेंट स्मिथ आदि आंग्ल इतिहासकारों का मत है कि भारतीयों के पराभव का कारण उनकी सैनिक दुर्बलता थी। हिन्दू सैनिक निर्बल थे और इस्लामी सैनिक उनसे कहीं अधिक सशक्त। इन मत में सत्यता कम है। इसके पीछे राजनीतिक मन्तव्य छिपे हैं। हिन्दू जाति के सैनिक विरुद्ध

हिन्दुओं की सैनिक दुर्बलताएं

के अन्य सैनिकों से किसी प्रकार कम नहीं थे और वे जन्म सिद्ध सैनिक थे जो मृत्यु के अन्त तक युद्ध करना जानते थे। हां, हिन्दू सैनिक और सेनापति कूटनीतिज्ञ नहीं थे। वे छल कपट की नीति द्वारा युद्ध में विजय प्राप्त करना अधर्म समझते थे। वे अपने वचनों के पक्के थे और वचन की रक्षा में सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार रहते थे। उनकी युद्ध नीति प्राचीन प्रथा पर अवलंबित थी। वे सेना को तीन भागों—वाम, मध्य और दक्षिण में विभाजित करते थे और 'सुरक्षित दल' नहीं रखते थे। इसके अतिरिक्त अन्य दुर्बलता यह थी कि हिंदू जाति में लड़ने का अधिकार केवल राजपूत जाति को ही था। सामान्य जनता को रण की बारीकियों को सीखने का अवसर प्राप्त नहीं होता था। डा० हबीबुल्लाह के मतानुसार हिंदुओं की सबसे बड़ी कमजोरी यही थी कि वे युद्ध में पीठ दिखाना अपमान समझते थे और युद्ध में वीर गति प्राप्त करना सौभाग्य। इससे राजपूतों की शक्ति दिन दिन घटती गई। अगर वे पराजित होने के बाद फिर आक्रमण का मुकाबला करते तो शायद जीत जाते।

गुप्तकाल में जो नवीन अनुसंधान और मौलिकता की प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई थी, वह धीरे धीरे क्षीण होती गई। धीरे धीरे दर्शन और विज्ञान में नई शोध बन्द हो गई। हमारे संसार प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों में निर्जीवता आ गई। वह

सांस्कृतिक पतन का प्रारम्भ

भारत जो एक समय संसार के सर्वोन्नत देशों में गिना जाता था, वहाँ अब उसकी गणना पिछड़े हुए देशों में की जाने लगी है। क्योंकि हमारे देश का विज्ञान और दर्शन का ज्ञान लुप्त हो गया। यह सच है कि इस युग में भी भारत में अनेक कवि, दार्शनिक, स्मृतिकार और विज्ञानवेत्ता हुए पर साहित्य और ज्ञान के क्षेत्र में इस काल के भारतीयों ने उस असाधारण प्रतिभा का परिचय नहीं दिया, जो प्राचीन विद्वानों ने प्रदर्शित की थी। इस युग के कवि वाल्मिकि और कालिदास का मुकाबला नहीं कर सकते थे। उनके काव्य में सौन्दर्य है परन्तु अलंकारों के कारण, स्वाभाविकता के कारण नहीं। इस युग के दार्शनिक सृष्टि के तत्वों की गहराई तक पहुँचने का उतना प्रयत्न नहीं करते जितना कि शब्दजाल द्वारा बाल की खाल उतारने के लिए करते हैं। यही कारण है कि

विदेशों से सम्बन्ध विच्छेद

खुरासान या फारस के किसी विद्वान या वैज्ञानिक की चर्चा करोगे तो वह आपको भूठा कहेंगे।" उसने एक अन्य स्थान पर लिखा है—"उसका प्रधान कारण यह है कि भारतवासी दूसरी जातियों से मिलना, विदेश यात्रा करना और विचारों और विज्ञान का आदान प्रदान पसन्द नहीं करते।" वास्तव में यह कथन सत्य का द्योतक था, इस युग में भारत का विदेशों से सम्बन्ध विच्छेद हो चुका था। उन्हें अन्य देशों की सभ्यता एवं संस्कृति का ज्ञान नहीं था। वे अपनी ही कूप मण्डूकता में मग्न थे। इतना ही नहीं, भारत के धर्म में इस समय वह शक्ति भी नहीं रह गई जो किसी समय यवन, शक, पार्थियन, कुषाण, हूण आदि विदेशी जातियों को आत्मसात् करने में समर्थ हुई थी। जब तुर्क लोग भारत में बसने लगे तो इस देश के शैव, वैष्णव आदि धर्म उन्हें अपना अनुयायी बनाने में या उन्हें अपने दायरे में ले आ सकने में असमर्थ रहे।

इस युग के विचारक ऐसा मानने लगे थे कि संसार में सर्वत्र ह्रास ही ह्रास दृष्टिगोचर होता है। अतः यह सर्वथा स्वाभाविक है कि मनुष्य की शक्ति और ज्ञान में भी ह्रास हो। इस भावना ने भी प्रगति की गति को रोकने में सहयोग दिया।

शान्ति का अभाव

हमारे देश में विज्ञान और दर्शन के ह्रास का एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि हमारा देश नवीं और दसवीं शताब्दी के समय से ही लगातार एक बहुत लम्बे समय तक विदेशी शत्रुओं के आक्रमण का शिकार बनता रहा। श्वेत हूणों के निरन्तर आक्रमणों से भारत की युद्ध शक्ति कमजोर हो गई। तत्पश्चात् अरबों का आक्रमण हुआ और उसके बाद मुसलमानों के आक्रमण होते रहे।

भारत में मुस्लिम शासन

(१) मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना

सन् ७१२ ई. में खलीफा के अन्यतम सेनापति मुहम्मद बिन कासिम ने भारत पर आक्रमण किया और इस आक्रमण के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति का एक नवीन विदेशी संस्कृति के साथ सम्पर्क प्रारम्भ हुआ। सब से पहले इस्लाम का सम्पर्क भारत से शांतिपूर्ण हुआ। अरबों के प्रति

अरबों का आक्रमण

आक्रमण के पहिले ही इनके सौदागर दक्षिण भारत में व्यापारिक सम्बन्ध कायम करने के लिये आ गये थे। यद्यपि अरबों के इस आक्रमण का कोई राजनीतिक प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु इन दोनों जातियों के परस्पर सम्पर्क का सांस्कृतिक प्रभाव विशेष उल्लेखनीय है। भारतीय तत्वज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान और अन्यान्य विषयों के अध्ययन से अरब में सांस्कृतिक पुनर्जागरण हुआ। इस देश से उन्होंने शासन प्रबन्ध की व्यावहारिक बातें सीखीं।

दसवीं सदी में अरब साम्राज्य का खण्डन होना शुरू हुआ और उसके भग्नावशेष पर अनेक नये राज्य कायम हुए। इन राज्यों में तुर्कों द्वारा स्थापित गजनी के राज्य का भारतीय इतिहास के साथ घनिष्ठ

गजनवी और गौरी

सम्बन्ध है। तुर्क लोग अरबों की तरह सभ्य नहीं थे। ९७७ ई. में सुबुक्तगीन गजनवी ने भारत पर अनेक आक्रमण किये। उसकी मृत्यु के उपरान्त महमूद गजनवी ने भारत पर सत्रह बार आक्रमण किये परन्तु वह स्थिर शासन स्थापित करने में असफल रहा। उसके उपरान्त लगभग दो सदी तक भारत पर किसी विदेशी आक्रान्ता ने आक्रमण नहीं किया। बारहवीं सदी के अन्त (११९१ ई.) में एक बार फिर अफगानिस्तान के क्षेत्र से मुसलमानों ने भारत पर हमले शुरू किये और शहाबुद्दीन गौरी ने उत्तरी भारत के अच्छे बड़े प्रदेश को जीत कर साम्राज्य स्थापना की नींव डाली।

गौरी ने भारत के किसी नगर को अपनी राजधानी बना कर शासन करने का प्रयत्न नहीं किया बल्कि उसने भारत के विजित प्रांतों को अपने सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक के नियंत्रण में रखा। १२०६ ई. में गौरी की मृत्यु के उपरान्त ऐबक स्वतन्त्र राजा के रूप में शासन करने लगा।

तुर्क-अफगान सल्तनत

उस समय तक पंजाब, सिंध, मगध, बंगाल, उत्तर-प्रदेश आदि प्रांत मुसलमानों के अधिकार में आ चुके थे। १२०६ से १५२५ तक भारत पर अफगानों का आधिपत्य रहा। इस दीर्घकाल में अनेकों सम्राट् हुये और कई राजवंश पलटे।

बाबर के आक्रमण के पूर्व से ही भारत का मुगलों से सम्पर्क हो चुका था। महान् मंगोल नेता चंगेज खाँ और तैमूर ने भारत पर आक्रमण किया था। तैमूर आंधी की भांति आया और अफगान सल्तनत को तहस नहस कर पर्शिया लौट गया। उसने भारत में स्थिर शासन की स्थापना का कोई प्रयत्न नहीं किया। उसके वंशज बाबर ने भारत पर पांच आक्रमण किये और अंतिम आक्रमण में उसे दिल्ली का साम्राज्य प्राप्त हो गया।

मुगलवंश की स्थापना

महत्वाकांक्षी बाबर ने मुगल वंश की नींव रखी और राजपूतों के नेता राणा सांगा तथा अफगानों को पराजित कर के मुगल साम्राज्य की सीमा का विस्तार किया। परन्तु बाबर ने जो कुछ प्राप्त किया था उसके पुत्र हुमायूं ने खो दिया। शेरशाह के नेतृत्व में अफगानों ने मुगलों को भारत से बाहर खदेड़ दिया परन्तु हुमायूं भी अन्त में भाग्यवान निकला और १५ वर्ष के भ्रमणशील जीवन के उपरान्त उसने पुनः अपनी विरासत को प्राप्त किया। १५५६ ई. में हुमायूं की मृत्यु के उपरान्त अकबर दिल्ली का स्वामी बना। उस समय भारत की राजनीतिक स्थिति अराजकता तथा अव्यवस्था से परिपूर्ण थी। चारों ओर शत्रु थे। परन्तु अकबर ने अपनी कूटनीति के सहारे राजपूतों से मित्रता स्थापित [illegible]र उनकी सहायता से सम्पूर्ण उत्तरी भारत को (केवल चित्तौड़ के [illegible] छोड़-कर) अपनी अधीनता में लाने में [illegible]

जिसका नाम [illegible]

महत्वपूर्ण [illegible]

(३) तुर्क-अफगानकालीन भारतीय संस्कृति

[illegible] अब हमें यह देखना है कि इन ३०० वर्षों के शासन में भारतीय संस्कृति को क्या [illegible]। इस काल की भारतीय संस्कृति को निम्नलिखित शीर्षकों में प्रकट कर सकते हैं।

इस युग को संस्कृति का [illegible] कहा जाता है। दिल्ली सल्तनत के विषय में लेखकों के विभिन्न विचार हैं। एक वर्तमान इतिहास लेखक ने तो दिल्ली सल्तनत काल (७११ ईसवी से १५२६ ई० तक) को सांस्कृतिक शून्य बताया है। दूसरी ओर इसके विपरीत विचार धारा वाले इस काल की संस्कृति में नितान्त शून्य मानते हैं, किन्तु एक इतिहास की नवीन पुस्तक दिल्ली सल्तनत (Delhi Sultanate) के लेखक डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव का कथन है कि "ये दोनों विचारधारा वाले लेखक सत्य से दूर हैं। यह समय न तो पूर्णरूप से संस्कृतिमय था और न संस्कृति से नितान्त शून्य ही माना जाना चाहिये।"

(१) साहित्य

कुतुबुद्दीन ऐबक से ले कर सिकन्दर लोदी तक दिल्ली के सभी सुल्तानों के दरबार में बड़े-बड़े कवि, दार्शनिक, कानून के ज्ञाता (Lawyers) धर्म के विद्वान, लेखक, तर्कशास्त्री, (Logicians) आदि लोग आश्रय पाते थे। उस समय इतिहासकार भी राज्य की ओर से रखे जाते थे। इनमें से कुछ प्रसिद्ध इतिहास लेखक हसन निजामी, मिन्हाजुद्दीन सीराज, ज़िआउद्दीन बरनी (लेखक

तारीखे फीरोजशाही, फतुहाई जहांदारी) समशीराजे अफीफ (लेखक तारीखे फीरोजशाही), याहिया बिनअ हमद (लेखक तारीखे फीरोजशाही), कवियों में अमीर खुसरो आदि का नाम कौन नहीं जानता ? इस प्रकार दिल्ली सल्तनत की संस्कृति व विद्या केवल उनकी राजधानी तक ही सीमित रही; वे इसे व्यापक रूप न दे सके। यह संस्कृति उनके दरबार की ही शोभा बना कर रह गई। जनसाधारण में यह न फैल सकी।

शिक्षा

उस समय शिक्षा देना राज्य का कार्य नहीं माना जाता था। शिक्षा प्राप्त करना तो प्रजा का ही कार्य था। किन्तु थोड़ा बहुत सहयोग राज्य मुसलमान प्रजा को शिक्षित बनाने में अवश्य देता था। मुसलमानों की शिक्षा के लिये स्थान-स्थान पर राज्य की ओर से मदरसे खुले हुए थे। प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध लगभग प्रत्येक मस्जिद में किया जाता था। उच्च शिक्षा के मदरसे उस समय के बड़े-बड़े मुसलमानी संस्कृत के केन्द्रों में पाये जाते थे। ये प्रमुख केन्द्र दिल्ली, आगरा, जौनपुर, जालंधर, फीरोजाबाद आदि थे। दिल्ली आदि स्थानों पर पुस्तकालय भी थे। मध्य एशिया के विद्वानों ने भी दिल्ली में आ कर शरण ली। इस प्रकार दिल्ली विद्या तथा विद्वानों का केन्द्र बन गया था।

कुछ मुसलमान विद्वानों ने संस्कृत पढ़ने का भी प्रयत्न किया। अलबरूनी इन में मुख्य था। कुछ संस्कृत की पुस्तकों का अनुवाद फीरोजशाह व सिकन्दर लोदी की आज्ञाओं से भी किया गया था।

संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य

मुसलमानी राज्य ने संस्कृत तथा हिन्दी भाषाओं को किस प्रकार प्रोत्साहन प्राप्त हो सकता था। इन भाषाओं का पालन-पोषण तो उस समय के हिन्दू राजाओं के दरबार में हुआ। यही कारण था कि राजाओं की उचित सहायता, संरक्षता तथा शान्ति प्राप्त न होने से इस समय इन भाषाओं की कोई अच्छी कृति न लिखी जा सकी। इस समय तो केवल धार्मिक साहित्य लिखा गया। जयदेव का प्रसिद्ध गीत-गोविन्द इसी काल में लिखा गया। श्री रामानुज ने ब्रह्मसूत्र की टीका लिखी। हिन्दू कानून की प्रसिद्ध पुस्तक 'मिताक्षर' मिजनेश्वर द्वारा इसी समय लिखी गई। जीमूतवाहन ने हिन्दू

मिल कर एक नवीन भाषा उर्दू का जन्म हुआ। इसमें भी लोग कविता आदि करने लगे। यह प्रायः दिल्ली-मेरठ के आस-पास की भाषा बन गई। बाद में यही मुसलमानों की भाषा बन गई।

उर्दू

सुन्दर कलायें

दिल्ली सल्तनत के समय में सुन्दर कलाओं की उन्नति के विषय में हमें अधिक विवरण कहीं नहीं मिलता। उस समय मुसलमान अपनी धार्मिक कट्टरता के कारण गान-विद्या को अधिक अच्छा नहीं समझते थे। इसीलिए उस समय गान-विद्या को अधिक प्रोत्साहन नहीं प्राप्त हुआ। फिर भी उस समय के खुसरो आदि गान-विद्या के अच्छे ज्ञाता थे। चित्रकला की भी कोई विशेष उन्नति नहीं हुई। उस समय की दीवालों पर कसीदा आदि काम तथा बर्तनों पर चित्र-कला ही उस समय की कला थी।

भवन निर्माण कला

दिल्ली सुल्तान भवन बनवाने के शौकीन थे। ये सुल्तान भारत में मध्य एशिया से आये थे। वहां उस समय मध्य एशिया में भारत, अफगानिस्तान, टर्की, चीन, खुरासान, मैसोपोटामिया, मिश्र, उत्तरी अफ्रीका, अरब, दक्षिण पूर्वी योरुप आदि देशों की विभिन्न सभ्यतायें आ कर सम्मिलित हो गई थी इसलिये ये मध्य एशिया निवासी जातियां भारत में आने पर अपने साथ उस कला को भी लाईं। इस कला में चार विशेषतायें थीं—

(१) गुम्बद (२) ऊंची मीनारें (३) मेहराब (Arch) (४) डाट (Vault)।

इन सुल्तानों ने जो इमारतें निर्मित कराईं वे न तो भारतीय कलामय थीं और न मुसलमानी कलामय। यह कला एक नवीन मुस्लिम-भारतीय कला कहलाई।

गुलाम वंश के राजाओं की इमारतें—गुलाम वंश में कुतुबुद्दीन ने सर्व प्रथम कुव्वतुल इस्लाम नामक दिल्ली में एक मस्जिद बनवाई। यह किसी हिन्दू

मन्दिर को नष्ट कर के बनवाई गई थी। इसने दूसरी मस्जिद अजमेर में एक प्राचीन हिन्दू संस्कृति विद्यालय को तुड़वा कर बनवाई।

दूसरी प्रसिद्ध मुसलमानी इमारत दिल्ली की कुतुब मीनार है। बलवन ने 'ढाई दिन का झौंपड़ा' नामक इमारत बनवाई।

खिलजी तथा तुगलक राजाओं की इमारतें—अलाउद्दीन खिलजी को इमारतों का बड़ा शौक था। उसने इमारतें बनवाई। तुगलक राजाओं की गुलाम अथवा खिलजी काल की इमारतो जैसी शानदार इमारतें नहीं।

सैयद तथा लोदी राजा—इन राजाओं की सब से सुन्दर इमारत मोठ की मस्जिद कहलाती है।

उस समय की प्रान्तीय भवन निर्माण कला—दिल्ली सुल्तानो के अतिरिक्त उस समय की प्रान्तीय राजधानियों में भी भवन निर्माण कला की अच्छी उन्नति हो गई थी। इस कला के मुख्य केन्द्र मुलतान, बंगाल, गुजरात, मालवा, काश्मीर, जौनपुर तथा दक्षिण थे। बंगाल तथा दक्षिण में तो उस समय बड़े-बड़े नगर तथा भवनों का निर्माण हुआ। दक्षिण में विजयनगर उस समय की भव्य कला का केंद्र था।

हिन्दू राजाओं के राज्य में हिन्दू कला भी उन्नत होती रही। विशेष रूप से राजस्थान के हिन्दू राजाओं ने हिन्दू मन्दिरों में हिन्दू कला क जीवित रखा।

भारतीय मुसलमान सम्राट् केवल असभ्य विजेता ही न थे। उन्होंने कला को भी उचित स्थान दिया। महमूद गजनवी ने भारत की लूटी हुई संपत्ति द्वारा अति सुन्दर नगरों को सुशोभित किया। जितने भी मुसलमान आक्रमणकारी भारत आये, वे अपने साथ भारत के अच्छे कारीगरों को अवश्य ले गए। मुस्लिम जाति यदि स्वयं कलाकार नहीं थी, तो उसने हिन्दू कलाकारों की कला की प्रशंसा की। दो सभ्यताओं के पारस्परिक मेल ने Indo-Islamic सभ्यता को जन्म दिया। इस्लाम धर्म की सादगी भारतीय कलात्मक सौंदर्य से मिल कर एक नवीन रूप धारण करने लगी। ईसा खां और हुमायूं के मकबरों में दोनों प्रकार की भवन निर्माण कलाओं का सम्मिश्रण है। कुतुब मीनार तथा कुतुबुद्दीन की मसजिद के

हिन्दू कला

भक्ति मार्ग

नहीं हो सकती। अल्लाह और ईश्वर एक हैं, वे एक ही वस्तु के भिन्न-भिन्न नाम हैं। महाप्रभु चैतन्य ने भी जात पात के कठोर नियमों को समूल नष्ट करने को कहा। उन्होंने मनुष्य मात्र को प्रेम, मित्रता तथा भ्रातृभाव की शिक्षा दी। भक्त लोग सारे भारत में इसी तरह के उपदेश देते रहे।

इसका परिणाम यह हुआ कि पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष को भूल कर हिन्दू और मुस्लिम एक सूत्र में बंध गये। एक दूसरे को समझने और अपने आन्तरिक उद्‌गार प्रकट करने का अच्छा अवसर मिलने लगा।

दोनों धर्मों का सम्पर्क सैकड़ों वर्षों तक चलता रहा। इस काल में न तो मुसलमान सारे भारत में इस्लाम का ही प्रसार कर सके और न हिन्दू ही अन्य विदेशियों की भांति मुस्लिम जाति को ही अपने में मिला सके। इसमें कोई संदेह नहीं कि इन दो विभिन्न संस्कृतियों के मिलने से एक नवीन संस्कृति का उदय हुआ।

शासन प्रबंध में मुस्लिम शासकों ने देश तथा परिस्थिति के अनुसार शासन व्यवस्था की। मुसलमान शासकों को इस दिशा में अधिक अनुभव भी न था। इसलिए इस दौर में जैसा शासन था वैसा ही चालू रहा। जजिया आदि

शासन प्रबन्ध

नये कर हिन्दुओं पर चालू कर दिये गये। दीवानी (Civil) मामले हिन्दू तथा मुसलमानों के अलग अलग चालू रहे। फौजदारी के कानून कुरान के अनुसार तय किये जाते थे। सैनिक शिक्षा में कुछ विकास हुआ। देश की उत्तर पश्चिमी सीमा की रक्षा के लिए विशेष प्रबन्ध किया गया। राजपूतों को इस प्रकार अपनी सीमाओं की रक्षा का ध्यान कभी न हुआ।

दोनों जातियों की विरोधी भावनायें मिटती गईं। धीरे धीरे धार्मिक सहनशीलता भी आती गई। दोनों जातियों के साथ साथ रहने से एक दूसरे के विचारों पर भी प्रभाव पड़ता रहा। कुछ हिन्दुओं को कट्टर हिंदुओं के ही अत्याचार से लाचार हो कर इस्लाम धर्म स्वीकार करना पड़ा।

हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों के मिलने से एक नवीन संस्कृति का उदय हुआ जिसका प्रभाव संस्कृति के विभिन्न अंगों पर पड़ा। संक्षेप में यह प्रभाव निम्न था :—

कला के क्षेत्र में :—

(१) चित्रकला में राजस्थान शैली का विकास।

(२) वास्तुकला में भारतीय-कला से भिन्न पठान कला का प्रसार हुआ।

सामाजिक क्षेत्र में :—

(१) अन्तर्जातीय विवाह का आरम्भ हुआ।

(२) उत्सव त्यौहारों में पारस्परिक भाग लेने की प्रवृत्ति का विकास हुआ।

(३) दरबारी शान शौकत व रीति रिवाजों का पारस्परिक प्रभाव पड़ा।

(४) वेश-भूषा व रीति रिवाजों में आदान-प्रदान हुआ।

(५) दोनों वर्गों में सहयोग एवं सामंजस्य की भावना की उत्पत्ति हुई।

संगीत के क्षेत्र में :—

(१) संगीत में विभिन्न शैलियों का जैसे—ख्याल, गजल, कव्वाली व भजन आदि का जन्म हुआ।

(२) नये वाद्य यन्त्रों का जैसे—सितार, तबला, आदि का आविष्कार हुआ।

धार्मिक क्षेत्र में:—

(१) सत्य पीर की सहपूजा का विकास हुआ।

(२) सूफी धर्म के रूप में सम्मन्वित धर्म का उदय हुआ।

(३) नानक, कबीर, चैतन्य आदि सन्तों द्वारा धार्मिक समन्वय।

(४) मुसलमानों द्वारा शीतला, काली आदि की मूर्ति पूजा की जाने लगी।

(५) एकेश्वरवाद का प्रसार हुआ।

साहित्यिक क्षेत्र में:—

(१) एक दूसरे के ग्रन्थों का अनुवाद कार्य प्रारम्भ हुआ।

(२) उर्दू के रूप में समन्वित भाषा का जन्म हुआ।

(३) प्रान्तीय साहित्य जैसे बंगला, ब्रज आदि का विकास हुआ।

(४) ज्ञान विज्ञान व साहित्य का आदान प्रदान प्रारम्भ हुआ।

(५) मुस्लिम कवियों—जायसी, खुसरो आदि द्वारा हिन्दी में काव्य रचना की जाने लगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस समन्वय का प्रभाव दोनों संस्कृतियों के विभिन्न क्षेत्रों पर पड़ा।

(३) मुगलकालीन संस्कृति

मुगल शासन प्रबन्ध

मुगल शासक सभी स्वेच्छाचारी थे। उनका शासन फौजी न था। उनकी प्रतिष्ठा और शक्ति सेना पर निर्भर थी। उनका अधिकार अपरिमित था। वे प्रजा के हित का बराबर ध्यान रखते थे। वे हिन्दू और मुसलमानों के मुकद्दमों का फैसला उनके धर्म ग्रन्थों के अनुसार करते थे। बादशाह किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। बादशाह के बनाये हुये कानूनों के अनुसार मुकदमों का फैसला किया जाता था। अन्याय करने वालों को कठोर दण्ड दिया जाता था।

मुगल शासन में न्याय

उनका शासन प्रबन्ध सुव्यवस्थित और दृढ़ था। मुगलों ने भारतीय आदर्शों की अवहेलना नहीं की। संक्षेप में उनके शासन प्रबन्ध की रूप-रेखा निम्न प्रकार की थी:—

(१) मुगल साम्राज्य स्वेच्छाचारी राज्य था। मुगल राजा अच्छा बुरा होना राजा के स्वयं चरित्र के अच्छे बुरे होने पर निर्भर था। पहले मुगल बादशाह अपनी प्रजा के प्रति दयालु थे तथा उनकी कुशल क्षेम का ध्यान रखते थे। हिन्दुओं को भी ऊँचे पद देते थे।

(२) राजा साम्राज्य का प्रधान था। यों तो उसकी शक्ति अपरिमित थी मगर व्यवहार में वह अपने परामर्शदाताओं का कहना मानता था। सभी नये विचार तथा पॉलिसी होती थी वह राजा की ही उपज होती थी। राजा के नीचे वकील अथवा प्रधान मन्त्री होता था और महत्वपूर्ण बातों में उसका परामर्श लिया जाता था। दूसरे बड़े अफसरों में दीवान या वजीर वित्त (Finance) के

मामलों में सब से ऊंचा था। बक्शी या (Pay master) और सदर या मुख्य धार्मिक अफसर (Chief Ecclesiastical Of fcer) होते थे।

(३) राजा न्याय सम्बन्धी बातों में सब से ऊपर था—आखिरी अपील वह सुनता था। उसके नीचे सदर था जो दीवानी के मामले विशेषकर धार्मिक मामले सुनता था। मुख्य काजी न्यायालयों का स्वामी था। इसके अलावा मुफ्ती जो कानून का वर्णन करता था तथा मीर अदल होता था जो फैसला सुनाता था। आजकल के जैसे न्यायालय तथा कानून की लिखित पुस्तकें उस समय न थीं। 'कुरान' ही उस समय की सब से बड़ी कानून की पुस्तक समझी जाती थी। जिन मामलों में यदि हिन्दू होते तो फैसला देते समय उनके रीतिरिवाजों का ध्यान रखा जाता था।

फौजदारी कानून करीब करीब सब के लिये समान था। दण्ड बड़ा कठोर मिलता था मगर मृत्यु का दण्ड बादशाह की आज्ञा के बिना नहीं दिया जाता था।

(४) सारा राज्य प्रान्तों में जो 'सूबा' के नाम से पुकारे जाते थे बटा हुआ था जिस पर सूबेदार राज्य करते थे। सूबेदार के नीचे दीवान जो भूमि-कर वसूल करता था और फौजदार जो सेना का मालिक होता तथा पुलिस के मामलों को तै करने के लिये कोतवाल की नियुक्ति होती थी

(५) इन अफसरों के अतिरिक्त—जागीरदार तथा जमींदार होते थे जो राज्य की हर प्रकार से सेवा करने को उद्यत रहते थे। ये लोग भूमि के मालिक थे जो बादशाह किसी विशेष कार्य के उपहार में उनको देते थे।

मुगल काल में कुछ दोष भी थे। मुगलों ने पुलिस तथा न्याय के प्रबन्ध की ओर ठीक ध्यान नहीं दिया। उनके दण्ड बड़े कठोर और निर्दयतापूर्ण होते थे। सीमा की रक्षा का भी ठीक प्रबन्ध न कर सके। जनता की आर्थिक उन्नति के लिये कोई उपाय न किया। जनता की शिक्षा के लिये तनिक भी ध्यान न दिया गया। मुगलों का शासन एक फौजी शासन था। उनकी सारी शक्ति फौज पर ही निर्भर रहती थी। जब तक मुगल सम्राटों की सैनिक शक्ति दृढ़ बनी रही, तब तक उनका शासन भी दृढ़ बना रहा। जहाँ उनकी सेना में निर्बलता, विलासिता तथा अव्यवस्था आई वहीं इनकी शक्ति क्षीण होने लगी। औरंगजेब

की सेना दक्षिणी भारत में लगभग २६ वर्ष तक रहने पर भी सम्पूर्ण दक्षिणी भारत की विजय करने में सर्वथा असमर्थ रही। कारण केवल यही था कि इस समय की सेना अब बाबर के समय की वीर सेना न रही थी।

दूसरे प्रांतीय शासक भी विलासिता तथा दिखावे में मुगल दरबार की नकल करने लगे। अब वे शासन के आदर्शों को भूल कर अपनी दरबारी शान-शौकत बढ़ाने में व्यस्त रहने लगे। न्याय की व्यवस्था भी उचित न थी। इतने बड़े साम्राज्य में अन्तिम अपील सम्राट के हाथ में थी। उस समय की आने जाने की कठिनाइयों को सोच कर बहुत कम आदमी अपनी अपील सम्राट के निकट ले जाते होंगे।

मुगलकालीन इतिहास के विद्वान् ऐतिहासिज्ञ प्रोफेसर जदुनाथ सरकार ने लिखा है कि मुगल शासन एक कागजी शासन (Paper Government) बन गया था। कोरी कागजी कार्यवाही में अधिक समय व्यतीत होता था। प्रजा की वास्तविक भलाई की ओर कम ध्यान दिया जाता था। राज्य की ओर से अफसर कर वसूली का काम तो बड़ी स्फूर्ती से करते थे किन्तु वे प्रजा हितैषी कार्यों में कोई ध्यान न देते थे।

मुगल-कालीन चित्रकला—मुगलकाल से पूर्व तथा हिन्दूकाल में भी चित्रकला प्रचलित थी किन्तु मुगल सम्राटों ने विशेष रूप से इसको प्रोत्साहित किया था। दिल्ली सुल्तानों में फीरोज तुगलक ने अपने महल की दीवारों पर चित्रकला कराई थी। मुगलों से पूर्व की भारतीय चित्रकला मृतप्राय सी ही थी। मुगलों ने इसे पुनः जीवन दान दिया।

बाबर—चित्रकला का प्रेम मुगलों में खानदानी ही था। बाबर में कहते हैं कि चित्रकला का प्रेम अपने पूर्वजों से आया था। उसने अपने बेटे के हृदय में भी इस कला के प्रति प्रेम उत्पन्न कर दिया था।

हुमायूँ में चित्रकलानुराग—हुमायूं का अधिकतर जीवन इधर-उधर भाग-दौड़ तथा युद्धों में व्यतीत होने के कारण उसे इस कला में अधिक अभिरुचि पैदा करने का मौका प्राप्त न हुआ।

अकबर ने चित्रकला की ओर अधिक ध्यान दिया। वह इसे ज्ञान तथा

मनोरंजन शैली का स्थान मानता था। उसके शासनकाल में बड़े प्रसिद्ध चित्रकार थे। प्रति सप्ताह अच्छे अच्छे कलाकारों के चित्र सम्राट के अकबर सामने प्रदर्शन के लिये रखे जाते थे। सम्राट् उन पर उन चित्रों की कला के अनुसार पारितोषिक प्रदान करता था। बिहजाद उस समय का भारतीय चित्रकला का माना हुआ कलाकार था। उस समय के चित्रों के देखने से ज्ञात होता है कि वे चित्र कितनी कला से परिपूर्ण हैं, उनमें चित्रकार ने कितनी कितनी बारीक वस्तुओं का प्रदर्शन एक छोटे से चित्र में कर दिया है। हिन्दू चित्रकारों की प्रशंसा में अबुलफजल ने लिखा है कि मुस्लिम चित्रकारों से हिन्दू चित्रकार कहीं बढ़े चढ़े थे।

अकबर की धार्मिक सहिष्णुता की नीति का उस समय की कला पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस प्रकार अकबर की हिन्दू-मुस्लिम मेल की नीति ने भारतीय तथा फारसी कलाओं का सम्मिश्रण कर के एक नवीन कला को जन्म दिया। अकबर के समय के प्रमुख चित्रकार अब्दुस्समद, फर्रुखबेग तथा मीर सैयदअली मुसलमानों में तथा ताराचन्द, जगन्नाथ, सांवलदास, दसवन्त तथा बसावन हिन्दुओं में प्रसिद्ध थे। ये विभिन्न चित्रकला के पृथक् पृथक् अंगों के विशेषज्ञ थे।

जहांगीर तो सौंदर्य प्रेमी था ही। उसने मुगलकालीन चित्रकला को अधिक प्रोत्साहन दिया। उसके सुन्दर व्यक्तित्व तथा उसके समय की शांतिपूर्ण व्यवस्था ने इस सुन्दर कला के संपादन में बहुत कुछ सहयोग दिया। जहांगीर अकबर से भी अधिक अच्छा चित्रकला का पारखी था। उसने ऐतिहासिक चित्रों को एकत्र भी किया था। जहांगीर ने अपनी जीवनी में स्वयं अपने चित्रकला को परखने की शक्ति की प्रशंसा की है। उसमें वह लिखता है कि "किसी भी कलाकार का चित्र मेरे सामने आ जाय, मैं बिना नाम पढ़े बता सकता हूँ कि यह चित्र अमुक चित्रकार का है।" सर टामस रो ने भी जहांगीर की चित्रकला परखने की प्रशंसा की है। आकारिजा नामक चित्रकार उस समय का एक प्रसिद्ध चित्रकार माना जाता था। जहांगीर ने उसे नादिर-उज-जमान की उपाधि से विभूषित किया। उस्ताद मंसूर जिन्हें नादिरउल-असर की उपाधि से विभूषित किया गया था, उस समय

के दूसरे प्रसिद्ध चित्रकार थे। ये पक्षियों के अच्छे चित्रकार थे। हिन्दू चित्रकारों को दरबार में स्थान नहीं दिया जाता था। जहांगीर को प्राकृतिक दृश्यों से अधिक प्रेम था। इसी कारण चित्रकार प्राकृतिक दृश्यों को अधिक चित्रित करते थे। यही मालूम पड़ता है कि जहांगीर की मृत्यु के साथ मुगल चित्रकला का भी अन्त हो गया। चित्रकला जहांगीर के बाद रही किन्तु उसका वास्तविक स्वरूप मिट गया।

शाहजहां

शाहजहां भी सौन्दर्य प्रेमी था। आगरे में यमुना नदी के तट पर उस संसार के अनुपम तथा भव्य ताजमहल को देख कर कौन शाहजहां के सौन्दर्य-प्रेम में शंका कर सकता है, किन्तु उसे चित्रकला की अपेक्षा इमारतों से अधिक प्रेम था। उसमें अपने पिता की भांति चित्रकला प्रेम न था और न उसकी दृष्टि जहांगीर की भांति परख ही सकती थी। जहांगीर के समय में जो चित्रकार राज्य से सहायता प्राप्त करते थे उनकी संख्या शाहजहां ने कम कर दी। उसने अपने लाहौर के महल को सुन्दर कला से विभूषित किया था।

औरङ्गजेब—औरंगजेब में धार्मिक कट्टरता की विशेषता आ जाने से कला तथा सौन्दर्य प्रेम न रहा। वह तो सादा जीवन पसन्द करता था किन्तु उसके समय में भी चित्रकारों को दरबार में आश्रय मिलता था। यह नहीं कहा जा सकता कि वह इस कला को बिल्कुल पसन्द नहीं करता था।

राजपूत राजाओं के आश्रय में

चित्रकला मुगलों के अतिरिक्त राजपूत राजाओं के आश्रय में भी पनपी। उनका भी इसे बहुत कुछ सहारा प्राप्त होता रहा। चित्रकला में राजपूत परिपाटी (Rajput School) भी प्रसिद्ध हो गई। राजपूताने के राजाओं से आश्रय पा कर इस कला में हिन्दू धार्मिक चित्र तथा अन्य साधारण ग्रामीण जीवन के चित्रों का चित्रण हुआ। इस प्रकार चित्रकला के पुनरुत्थान, जाग्रति तथा उन्नति का अधिक श्रेय मुगल सम्राटों को था।

जिस प्रकार अफगान युग में प्रादुर्भूत हुई धार्मिक जाग्रति व साहित्यिक [illegible] की प्रकिया मुगल युग में भी जारी रही उसी प्रकार वास्तुकला के क्षेत्र में

भवन निर्माण कला

प्राचीन भारतीय कला और मुस्लिम कला के सम्पर्क से विशाल और सुन्दर इमारतों के निर्माण की जो शैली अफगान युग में आरम्भ हुई थी मुगल काल में भी वह निरंतर विकास को प्राप्त करती रही, यही कारण है कि मुगल युग की इमारतों पर हिन्दू और मुस्लिम वास्तुकलाओं के सम्मिश्रण का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

बाबर ने अनेक सुन्दर इमारतों का निर्माण करवाया था परन्तु वर्तमान में केवल तीन ही विद्यमान हैं—(१) पानीपत का काबुली बाग़ मस्जिद, (२) सम्भल की जामा मस्जिद, (३) आगरा के पुराने किले में विद्यमान मस्जिद बाबर के समय की कृतियां हैं।

हुमायूं के समय की केवल दो मस्जिदें इस समय विद्यमान हैं। उनमें से एक आगरा में है दूसरी हिसार जिले में फतेहाबाद कस्बे में है। इन इमारतों पर पर्शियन वास्तुकला का प्रभाव स्पष्ट रूप से विद्यमान है।

शेरशाह के भवन

इस युग की वास्तुकला के इतिहास में शेरशाह का स्थान महत्वपूर्ण है। प्रो० कानूनगो लिखते हैं—"शेरशाह ने साम्राज्य रूपी भवन की उपयोगी ही नहीं वरन् आलंकारिक पक्ष पर भी अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ी। सहसराम में निर्मित उसका मकबरा दर्शकों को उसके साम्राज्य के वैभव का स्मरण दिलाता है, कठोर होने पर भी लालित्यपूर्ण है। अत्यधिक मुस्लिम होते हुये भी भीतर से हिन्दू है।" वी. ए. स्मिथ ने कहा है—"सहसराम में शेरशाह की समाधि जो एक ऊंचे चबूतरे पर सरोवर के बीच में स्थित थी, योजना तथा सौन्दर्य की दृष्टि से भारत की सर्वोत्कृष्ट इमारत है। और वैभव तथा ओज में उत्तरी प्रान्तों के पहले के भवनों में अनुपम हैं। कनिंघम को तो वह ताज से भी कुछ-कुछ अच्छी लगी थी। इसका गुम्बज बीजापुर के गोल गुम्बज के बराबर न होते हुये भी तेरह फीटर का है और ताज के गुम्बज से भी चौड़ा है। बाहरी स्थापत्य पूर्णतया मुस्लिम शैली का है किन्तु भीतरी द्वारों पर हिन्दू ढंग के गर्दनों तथा डाटों (Middle Porfior) का प्रयोग किया गया है जैसा कि जौनपुर में। इस शैली को हम तुगलक इमारतों की कर्कशता तथा ताज की

स्त्रियोचित कोमलता एवं लालित्य के बीच की शैली कह सकते हैं। इस से इसमें शेरशाह के व्यक्तित्व तथा चरित्र की छाप दिखाई दी "यद्यपि अपने धर्मानुसार वह अपनी नक्काशी की हुई मूर्ति नहीं बनवा सकता था, फिर भी इस मुस्लिम सम्राट ने अपने अन्तिम विश्राम स्थान की योजना में इतनी रुचि दिखाई कि अनजाने में उसने उसमें अपना ही चरित्र प्रतिबिम्बित कर दिया और शिल्पियों ने उसे उसी के अनुरूप बना दिया।"

अकबर का शासन काल जैसे हिन्दी साहित्य के लिये स्वर्ण युग था वैसे ही वास्तुकला की दृष्टि से यह स्वर्णिम अकबर काल था। अकबर को भवन की वास्तुकला का बहुत शौक था जैसा कि अबुलफजल ने लिखा है—पत्थर एवं मिट्टी के इन परिधानों का आयोजन करने में वह स्वयं भी बहुत दिलचस्पी लेता था।' 'अकबर की वास्तु कृतियां संख्या में बहुत अधिक हैं।' कितने ही किले, मकबरे, बुर्जें, सरायें, मदरसे, और जलाशयों का उसने निर्माण करवाया उसके समय की वास्तुकला में हिन्दू, जैन, ईरानी आदि विविध कलाओं का बहुत सुन्दर समन्वय हुआ है। फतहपुर सीकरी की सब से प्रसिद्ध इमारतों
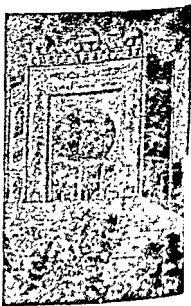
बुलन्द दरवाजा

ब से प्रसिद्ध जामा मस्जिद और बुलन्द दरवाजा है। बुलन्द दरवाजे का
ाण अकबर ने दक्षिण विजय के उपलक्ष्य में करवाया था और निस्सन्देह यह
त का सबसे ऊंचा और विशाल विजयद्वार है। १७६ फीट ऊंचा है और
तुकला की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट है। अकबर की इमारतों में सब से महत्व-
 सिकन्दरा का मकबरा है। इसका निर्माण अकबर ने आरम्भ कराया था
 जहांगीर के समय यह पूरा हुआ। यह बौद्ध विहारों के नमूने पर बनवाया
ा है। अकबर की इमारतों में हम दो विशेषताएं पाते हैं (१) ओज एवं
ता, (२) भारतीय एवं इस्लामी शैली का सम्मिश्रण।

जहांगीर को चित्र कला का बहुत शौक था। उसने वास्तुकला की ओर
शेष ध्यान नहीं दिया। यही कारण है उसके काल में अधिक इमारतें नहीं बन
ई। परन्तु उसकी मलिका नूरजहां को वास्तुकला से अत्यधिक प्रेम था।
सने अपने पिता का जो मकबरा आगरा में बनवाया वह सौन्दर्य एवं कला की
ष्टि से अनुपम है।

मुगल बादशाहों में वास्तुकला की दृष्टि से शाहजहां का स्थान प्रमुख है।
०ा० सक्सेना ने लिखा है—"देशों में व्याप्त शांति तथा सम्राट् की व्यक्तिगत
रुचि से कला तथा साहित्य के विकास को बहुत प्रोत्साहन मिला।
शाहजहां आश्रय तथा जीविका की खोज में कवि एवं कलाकार राज
दरबार में एकत्रित हो गये, और प्रतिभाशाली व्यक्तियों को शायद
ी कभी निराश लौटना पड़ा हो।"

आगरा में "मोती मस्जिद का निर्माण १६४८ से १६५३ तक के काल में
वास्तव में हुआ और उसमें ३ लाख रुपये खर्च हुये।

मन निहालसिंह लिखते हैं—"इसकी" योजना उन कलाकारों ने बनाई थी
जिनमें पत्थर के माध्यम से आत्मा के उस सौन्दर्य को व्यक्त करने की शक्ति थी
जो यह भौतिकबन्धनों से ऊपर उठने को किया करती है। यह ऊंची तथा
असमतल भूमि पर बनी हुई है। भीतर संगमरमर का एक विस्तृत चौक है जो
चारों ओर उसी पत्थर के खम्भों एवं मेहराबों से घिरा हुआ है उसके
सौन्दर्य या सलिलाई आकृति के गुम्बज लाल तथा तीन गुंबदों से ऊपर

उठे हुए हैं और बड़े प्रभावोत्पादक ढंग से उस विचार की अभिव्यक्ति करते हैं। एक अन्य लेखक ने इस मकबरे को "सम्पूर्ण पत्थर की कविता कहा है" वह लिखता है "इसकी दोषरहित मुद्राओं, रंगों एवं नीली नेत्र व्याख्याओं में जो रहस्यमय भाव है उनमें धार्मिक लगन (यूनानी गम्भीर कलात्मकता) के साथ से भी कहीं अधिक गम्भीरता प्रकट होती है। यूनानी मन्दिरों की शान्ति गम्भीरता में भी भावावेग की इतनी सुन्दर अभिव्यक्ति नहीं होती। यह पुण्य स्थान जीवन में मौन प्राप्त है। यहाँ एक रहस्यमयी आत्मा परमानन्द और हर्षोन्माद के बीच नृत्य करती है।"

श्रीराम शर्मा कहते हैं—"ताज महल के निमार्ण में सम्मिलित आगरा किले में स्थित सम्मन बुर्ज (जहाँ अपने कारागार की खिड़की से शाहजहाँ ने ताज को अन्तिम बार टकटकी लगा कर देखा था) से देखने पर "उद्यान की हरियाली तथा भारतीय आकाश की गम्भीर नीलिमा की पृष्ठ भूमि में स्थित उसका दूधिया संगमरमर ऐसा प्रस्फुटित होता है कि जिसे उसको देखने का सौभाग्य प्राप्त होता वह उसके आकर्षण को कभी नहीं भूल सकता।"

ताजमहल

"कदाचित सब से अधिक सम्मोहक दृश्य रात्रि की शान्ति में देखने को मिलता है। जब पूर्णेन्दु आकाश में इठलाता और समाधि को शान्ति से आलोकित करता है और जब स्मारक का प्रतिबिंब यमुना जल में नृत्य

करता है तब कोई व्यक्ति ताजमहल का जितनी सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करता है उतनी ही उसको उसकी अधिक सराहना करनी पड़ती है।"

ऊंचे ऊंचे दरवाजों के किनारों पर कुरान की आयतें खुदी हुई हैं। उन्हें देखने से प्रकट होता है कि कलाकारों को नेत्र दृष्टि पर पूर्ण अधिकार था। तीस फीट तथा उन से भी ऊपर के अक्षर देखने में ठीक उतने ही बड़े प्रतीत होते हैं जितने भूमि से एक फीट ऊपर के। पच्चीकारी में "गोमेन्दक, सूर्य कांति एवं वेदूलय आदि बहुमूल्य पत्थरों का प्रयोग किया गया है।

फिर भी कला विशेषज्ञों ने विभिन्न प्रकार इसका वर्णन किया है। "संगमरमर के रूप में एक स्वप्न" "सौन्दर्य के अनेक रूपों का मिश्रण," इत्यादि ग्लाडस्टन सोलोमन लिखते हैं—"ताज का निर्माण स्वेच्छाचारी शाहजहां ने किया था इस चीज का विशेष महत्व नहीं क्योंकि जिस क्षण से उस महान् मुगल के सौन्दर्य विभोर मस्तिष्क में इसका विचार उत्पन्न हुआ तभी से ताज सारे विश्व की सम्पत्ति बन गया।"

वास्तुकला और चित्रकला के समान संगीत कला की भी मुगल युग में बहुत उन्नति हुई। बाबर और हुमायूं संगीत प्रेमी थे। हुमायूं तो सप्ताह में दो दिन संगीत का नियमित आयोजन करवाता था। अकबर के समय में संगीत

संगीत-कला की उन्नति

कला की विशेष उन्नति हुई। उसके आश्रय में अनेक संगीतज्ञों ने संगीत कला की उन्नति का प्रयत्न किया। तानसेन उस युग का प्रमुख संगीतज्ञ था। वह अकबर के नौ रत्नों में स्थान रखता था। ग्वालियर में उनकी कब्र अब तक विद्यमान है, जिसे आजकल के संगीतज्ञ भी अपने लिये तीर्थ-स्थान मानते हैं। उसके राग व रागनियां आज तक भी भारत में सर्वत्र प्रचलित हैं। जहांगीर तथा शाहजहां ने भी संगीतज्ञों को आश्रय दिया और उनके समय में भी संगीत के क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई। औरंगजेब ललित कलाओं का कट्टर शत्रु था। उसकी नीति का प्रभाव संगीत पर भी पड़ा और मुगल राज दरबार में संगीत का प्रभाव नष्ट हो गया। परन्तु राजपूत राजाओं और सामन्तों के आश्रय में उसकी प्रगति जारी रही।

करता है तब कोई व्यक्ति ताजमहल का जितनी सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करता है उतनी ही उसको उसकी अधिक सराहना करनी पड़ती है।"

ऊंचे ऊंचे दरवाजों के किनारों पर क़ुरान की आयतें खुदी हुई हैं। उन्हें देखने से प्रकट होता है कि कलाकारों को नेत्र दृष्टि पर पूर्ण अधिकार था। तीस फीट तथा उस से भी ऊपर के अक्षर देखने में ठीक उतने ही बड़े प्रतीत होते हैं जितने भूमि से एक फीट ऊपर के। पच्चीकारी में "गोमेन्दक, सूर्य कान्ति एवं वेदूलय आदि बहुमूल्य पत्थरों का प्रयोग किया गया है।

फिर भी कला विशेषज्ञों ने विभिन्न प्रकार इसका वर्णन किया है। "संगमरमर के रूप में एक स्वप्न" "सौन्दर्य के अनेक रूपों का मिश्रण," इत्यादि ग्लडस्टन ग्रोलोमन लिखते हैं—"ताज का निर्माण स्वेच्छाचारी शाहजहां ने किया था इस बीज का विशेष महत्व नहीं क्योंकि जिस क्षण से उस महान् मुगल के सौन्दर्य विभोर मस्तिष्क में इसका विचार उत्पन्न हुआ तभी से ताज सारे विश्व की सम्पत्ति बन गया।"

वास्तुकला और चित्रकला के समान संगीत कला की भी मुगल युग में बहुत उन्नति हुई। बाबर और हुमायूं संगीत प्रेमी थे। हुमायूं तो सप्ताह में दो दिन संगीत का नियमित आयोजन करवाता था। अकबर के समय में संगीत कला की विशेष उन्नति हुई। उसके आश्रय में अनेक संगीतज्ञों ने संगीत कला की उन्नति का प्रयत्न किया। तानसेन उस युग का प्रमुख संगीतज्ञ था। वह अकबर के नौ रत्नों में स्थान रखता था। ग्वालियर में उनकी कबर अब तक विद्यमान है, जिसे आजकल के संगीतज्ञ भी अपने लिये तीर्थ स्थान मानते हैं। उसके राग व रागनियां आज तक भी भारत में सर्वत्र प्रचलित हैं। जहांगीर तथा शाहजहां ने भी संगीतज्ञों को आश्रय दिया और उनके समय में भी संगीत के क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई। औरंगज़ेब ललित कलाओं का कट्टर शत्रु था। उसकी नीति का प्रभाव संगीत पर भी पड़ा और मुगल राज दरबार में संगीत का प्रभाव नष्ट हो गया। परन्तु राजपूत राजाओं और सामन्तों के आश्रय में उसकी प्रगति जारी रही।

संगीत-कला की उन्नति

संगीत में भी प्राचीन और नवीन प्रभावों का मेल देखा जा सकता है। इस युग में नवीन साजों का जैसे—सितार, सारंगी, सरोद, इसराज आदि का आविष्कार हुआ। मुगलकाल में नई शैलियां, ख्याल और ठुमरी निकलीं जिनमें लालित्य और कोमलता अधिक थी। उस समय के संगीतकारों ने वैज्ञानिक संगीत पद्धति को अपना कर उसमें नवीन प्रगति की। यह हिन्दू-मुस्लिम समन्वय प्रवृत्ति उत्तर भारत तक ही सीमित रही। यही कारण है कि दक्षिण भारत में आज भी प्राचीन समय का संगीत अधिक प्रचलित है।

धर्म—अफगान युग में हिन्दू धर्म में नव जागृति की जो प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई थी, मुगल युग में उसे और अधिक बल मिला। स्वामी रामानन्द द्वारा राम भक्ति की जो परम्परा प्रारम्भ की गई थी, तुलसीदास ने उसे उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचा दिया।

तुलसी एक महान् कवि थे और भारतीय साहित्य के इतिहास में उन स्थान सर्वोच्च था, सर्वोच्च है और रहेगा। परन्तु तुलसी का महत्व, एक नवी

तुलसी और राम भक्ति

धार्मिक लहर को जनसाधारण तक पहुँचने वाले धर्म प्रचार व सुधारक के रूप में साहित्यि महत्व से कहीं अधिक है। सर्व साधारण जनता के लिए तुलसी ने राम चरित को निमित्त बना कर 'रामचरित मानस' की रचना की और इस ग्रन्थ में सुगम रीति एवं सरल शब्दों की सहायता से, वेद शास्त्र में विद्यमान ज्ञान को उपनिषदों के अध्यात्मवाद को, दर्शन के तत्वचिंतन को, पुराणों की गाथाओं को हिन्दू धर्म सभ्यता संस्कृति और विचार सरणी को, समझाने का प्रयत्न किया है। इसके द्वारा सर्वसाधारण जनता के लिये अपने धर्म के सिद्धान्तों व आख्यानों को जान सकना बिल्कुल सुगम हो गया। तुलसी ने विष्णु को धनुर्धारी राम के रूप में प्रस्तुत किया। तुलसी के प्रयत्न से राम भक्ति की लोकप्रियता के साथ ही साथ आशा तथा वीरता का संचार भी हुआ।

महात्मा तुलसी

सोलहवीं सदी के प्रारम्भ में आचार्य वल्लभाचार्य ने वृन्दावन को केन्द्र बना कर जिस कृष्ण भक्ति का प्रचार प्रारम्भ किया था उसकी उन्नति के लिये अनेक कृष्ण भक्तों ने प्रयत्न किया। इन कृष्ण भक्तों में आठ कवियों का प्रमुख स्थान था। ये कवि निम्नलिखित थे—सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीत स्वामी, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास। इनमें सूरदास का स्थान सर्वोच्च है। जिस प्रकार तुलसी का स्थान राम भक्ति क्षेत्र में सर्वोच्च है उसी प्रकार सूर का स्थान कृष्ण भक्ति के प्रचारक क्षेत्र में सर्वोच्च है।

सूर और कृष्ण भक्ति

सूरदास भी अपने समय के प्रधान कवि थे। कुछ विद्वानों के अनुसार तो सूर का स्थान तुलसी से बहुत ऊंचा है। सूर के मधुर गीतों से जनसाधारण में कृष्ण भक्ति का प्रचार बढ़ा।

अस्थान युग में हिन्दू धर्म और इस्लाम के पारस्परिक सम्पर्क से जो नवीन जागृति हुई थी उसमें गुरु नानक का स्थान बहुत महत्वपूर्ण था। नानक के अनुयायी सिक्ख (शिष्य) कहलाते थे। नानक के उपरान्त दस गुरु हुए, जिनमें अन्तिम गुरु गोविन्दसिंह थे। प्रारम्भ में सिक्ख सम्प्रदाय का रूप धर्म पर अवलंबित था। परन्तु कालांतर में इस सम्प्रदाय में परिवर्तन हुआ और यह एक राजनीतिक शक्ति के रूप में विकसित होने लगा। जहांगीर के शासन काल में उसके पुत्र राजकुमार खुसरो ने विद्रोह किया और इस विद्रोही राजकुमार ने सिक्खों के तत्कालीन गुरु अर्जुनदेव की शरण में आश्रय लिया। जहांगीर ने अर्जुनदेव को प्राणदण्ड की सजा दी। इस घटना ने सिक्ख धर्म के इतिहास में भारी परिवर्तन किया, क्योंकि सिक्ख लोग गुरु हत्या को सहन नहीं कर सके। उन्होंने अपने को सगठित करना शुरू किया और इस प्रकार वे धार्मिक सम्प्रदाय के साथ-साथ एक राजनीतिक शक्ति भी बन गये।

सिक्ख धर्म का विकास

औरंगजेब के शासन काल में हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया गया। उनके पवित्र मंदिरों को गिराया जाने लगा। सिक्खों के तत्कालीन नवें गुरु श्री तेगबहादुर ने इसका विरोध किया। इस पर उन्हें दिल्ली में प्राणदण्ड की सजा दी गई। गुरु तेगबहादुर के उत्तराधिकारी तथा सिक्खों के अन्तिम गुरु

यद्यपि इस युग में पाश्चात्य-संसार का ईसाई वर्ग भी भारत की भूमि पर आबाद हो चुका था परन्तु उसका प्रभाव विशेष नहीं था। भारतीय समाज में मुगल बादशाह एवं उसके परिवार के सदस्यों का स्थान प्रमुख था। उसके उपरान्त बादशाह के राजा-महाराजाओं, अमीर-उमरावों का स्थान था। यह वर्ग बहुत धनी था। इसके पास विशेषाधिकार थे। सर्वसाधारण जनता सम्मान की दृष्टि से इस वर्ग को देखती थी। यह वर्ग बड़े आराम के साथ जीवन व्यतीत करता था और भोग-विलास में स्वाहा करने के लिए धन की कोई कमी इनके पास नहीं थी। इन लोगों के बड़े बड़े हरम थे जिनमें सैकड़ों और हजारों की संख्या में सुन्दरियां निवास करती थीं। नृत्य, संगीत, जुआ, सुरापान, सुस्वादु भोजन और बड़े बड़े प्रीति-भोज तो दैनिक जीवन चर्या के प्रमुख अंग बन चुके थे।

सामाजिक जीवन

अमीर उमरा और सर्वसाधारण जनता के मध्य की श्रेणी का विकास इस युग के सामाजिक जीवन की प्रमुख विशेषता थी। इस मध्य श्रेणी में कर्मचारी, व्यापारी और समृद्ध शिल्पकार तथा लेखक सम्मिलित थे। अधिकारियों के भय से यह वर्ग सीधा सादा जीवन व्यतीत करता था ताकि उनकी आमदनी का सही अन्दाज मालूम न हो सके।

सर्वसाधारण जनता की स्थिति अच्छी नहीं थी। इस वर्ग में किसान, कर्मचारी व निम्न शिल्पकार सम्मिलित थे। यह वर्ग अपनी आवश्यकता को सुगमतापूर्वक नहीं जुटा पाता था। ये नाम मात्र को स्वतन्त्र थे क्योंकि इनकी दशा गुलामों से किसी प्रकार अच्छी नहीं थी। मजदूरों को बहुत कम वेतन मिलता था। उनसे स्वेच्छापूर्वक बेगार ली जाती थी किसानों की दशा भी ठीक नहीं थी। उन पर नाना प्रकार के कर लगे हुए थे। इन करों के अतिरिक्त उनसे बेगार ली जाती थी। उन्हें भूमि से बेदखल कर दिया जाता था और कभी कभी उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी।

मुसलमानों की क्रूरता के कारण इस युग में भारतीय समाज में बाल विवाह की प्रथा का अत्यधिक विकास हुआ। दहेज प्रथा का भी विकास हुआ। सती प्रथा का भी विकास इस युग में जारी रहा। बहु विवाह का रोग

घर घर फैल रहा था। पर्दे की प्रथा, बाल विवाह आदि बुरी प्रथाएं अपनी उन्नति की चरम सीमा में प्रवेश कर रही थीं। परन्तु फिर भी लोगों का दीनों, गरीबों और साधुओं में विश्वास था, उनके प्रति श्रद्धा थी। गुलामों की प्रथा प्रचलित थी और गुलामों का क्रय विक्रय किया जाता था। पाश्चात्य यात्री टेवर्नियर ने अपनी भारत यात्रा वृत्तान्त में लिखा है "हिन्दू लोग नैतिक दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट हैं। वैवाहिक जीवन में वे अपनी स्त्रियों के प्रति अनुरक्त रहते हैं, और उनके साथ धोखा नहीं करते। उनमें व्यभिचार या अनैतिकता बहुत कम पाई जाती है।" पर मुस्लिम समाज का जीवन इसके विपरीत था। वे नैतिक सिद्धान्तों का बहुत कम पालन करते थे।

मुगलकाल के शिक्षणालयों पर राज्य का नियन्त्रण नहीं था और राज्य के द्वारा सञ्चालित शिक्षणालयों का भी अभाव था। इस काल में शिक्षा का कार्य धार्मिक संस्थाओं के अधीन था और मन्दिरों तथा मस्जिदों में शिक्षा दी जाती थी। इस युग में शिक्षा हिन्दी, संस्कृत, पर्शियन, उर्दू आदि के माध्यम से दी जाती थी। इन शिक्षणालयों का खर्चा दान तथा राजकीय सहायता से चलता था।

शिक्षा और शिक्षणालय

भूगोल, ज्योतिष, गणित धार्मिक ग्रन्थों आदि के अध्ययन पर अधिक जोर दिया जाता था। नृत्य व संगीत तथा अस्त्र शस्त्र संचालन की शिक्षा भी दी जाती थी। शिल्प की शिक्षा के लिए विद्यार्थी प्रायः उस्तादों (आचार्यों) की सेवा में उपस्थित होते जिनके पास वे शागिर्द के रूप में निवास करते थे। इस पर भी उस युग के अधिकांश लोग निरक्षर ही होते थे। बड़े घरों की लड़कियों को भी शिक्षा दी जाती थी। यही कारण है कि मुगल युग में हमें अनेक सुशिक्षित महिलाओं का पता मिलता है। बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम एक सुशिक्षित लेखिका थी। मुगल बादशाहों ने विशेषकर अकबर ने शिक्षा की उन्नति में काफी सहयोग दिया। उसके आश्रय में अनेक विद्वानों ने अपनी रचनाओं के द्वारा तत्कालीन भारतीय साहित्य को उन्नति की ओर अग्रसर में सहयोग प्रदान किया। जहांगीर और शाहजहां भी शिक्षा के प्रेमी थे। ...जेब ने इस दिशा में विशेष रुचि का परिचय नहीं दिया।

(४) प्रान्तीय भाषाओं का विकास

भाषा की परिभाषा

भाषा की परिभाषा भिन्न भिन्न लेखकों ने अलग अलग ढंग से की है। गार्डनर, पाल, स्वीट आदि विद्वानों ने भाषा की परिभाषा निम्न प्रकार से की है—"विचार की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों के व्यवहार को भाषा कहते हैं।" भाषा एक सामाजिक क्रिया है। वह किसी व्यक्ति की कृति नहीं है। भाषा वक्ता और श्रोता दोनों के विचार विनिमय का साधन है। समस्त संसार की भाषाओं का कुछ परिवारों में विभाग किया गया है। एक-एक परिवार में कुछ भाषा वर्ग होते हैं। एक-एक वर्ग में अनेक सजातीय भाषाएं रहती हैं, एक-एक भाषा में अनेक विभाषाएं होती हैं और एक-एक विभाषा की अनेक बोलियाँ होती हैं। 'बोली' से हमारा अभिप्राय उस स्थानीय और घरू बोली से है जो तनिक भी साहित्यिक नहीं होती और बोलने वाला के मुख में ही रहती है अर्थात् वह साहित्य में प्रयुक्त नहीं होती। 'विभाषा' का क्षेत्र बोली से विस्तृत होता है। एक प्रान्त अथवा उपप्रान्त की बोल-चाल साहित्यिक रचना की भाषा विभाषा कहलाती है। हिन्दी के कई लेखक विभाषा को 'उपभाषा' बोली, अथवा 'प्रांतीय भाषा' भी कहते हैं। विभाषाओं का अपने-अपने प्रान्त पर बहुत कुछ जन्मसिद्ध सा अधिकार होता है।

प्रान्तीय भाषाओं की उत्पत्ति

भारतवर्ष की प्राचीनतम भाषा ऋग्वेद की भाषा संस्कृत है। संस्कृत भाषा सदा विशेष कष्ट-श्रमसाध्य रही। इस कारण सर्वबोधगम्य भाषा का अभाव खटकने लगा और भारतवर्ष में अनेक प्रांतीय भाषाएं या बोलियां इस वैषम्य के कारण बन गईं और उनका प्रचार स्थान विशेष में अच्छी प्रकार होने लगा। साथ ही धार्मिक विप्लवों के कारण धर्म गुरुओं तथा उनके प्रचारकों को स्वमत प्रवर्त्तन के लिए अपने अपने उपदेश जनसाधारण की बोलियों में ही देने को विवश होना पड़ा और इसी कारण धर्म ग्रन्थ भी उन्हीं भाषाओं में लिखे गये। बौद्ध तथा जैन धर्म के ग्रन्थ इन्हीं भाषाओं में लिखे गये तथा समय के साथ वे साहित्यिक हो उठीं। मूल संस्कृत भाषा का संस्कार कर के जो भाषा बनी वह 'प्राकृत' कहलाई। प्राचीनतम प्राकृत 'पाली'

कहलाती है, जिसका रूप अशोक के लेखों तथा बौद्ध और जैन ग्रन्थों में अब तक सुरक्षित है। इसके अनन्तर साहित्यिक प्राकृतों का समय आता है, जिनमें महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और अर्ध मागधी प्रमुख हैं। इनमें भी महाराष्ट्री प्रधान थी और समस्त राष्ट्र में मान्य होने के कारण इसका इस प्रकार नामकरण हुआ था। शौरसेनी का ब्रजमण्डल में और मागधी का मगध, वर्तमान बिहार प्रान्त में प्रचार था। इन दोनों के बीच कोशल प्रान्त में अर्ध मागधी बोली जाती थी। पैशाची या भूत भाषा भी प्राकृत ही है।

प्राकृत काल के अनन्तर अपभ्रंश का समय आता है। प्राकृत भाषाएं भी जब साहित्यिक हो गईं, उनके व्याकरण बन गये तथा रूढ़िमय हो गईं तो जनसाधारण में बोली जाने वाली भाषाओं ने परिवर्तनों के कारण भिन्न रूप धारण कर लिया। तब इन भाषाओं को प्राकृत रूप से भ्रष्ट हो जाने के कारण अपभ्रंश (अपभ्रष्ट) का नाम दे दिया गया।

आधुनिक भाषाओं का विवेचन कर विद्वानों ने उसके दो मुख्य विभाग किए हैं—अन्तरंग और बहिरंग। अन्तरंग में पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती तथा पंजाबी प्रधान हैं। इनके सिवा पूर्वी, पश्चिमी तथा मध्यवर्ती पहाड़ी भाषाएं हैं। बहिरंग विभाग में पूर्व की बिहारी, बंगाली, उड़िया तथा असमी, दक्षिण की मराठी और पश्चिमोत्तर की सिंधी, कश्मीरी, लहँदा भाषाएँ हैं। द्रविड़ वर्ग की भाषाओं में तामिल, मलयालम, कनाडी आदि प्रमुख हैं।

भारतीय भाषाओं की उन्नति

मुगल काल भारतीय भाषाओं के विकास में अत्यन्त महत्व का है। देश के प्रत्येक भाग में नये धार्मिक नेता उत्पन्न हुए। उन्होंने अपने विचारों को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए उनकी बोली में रचनाएँ कीं। कुछ कवियों ने वीर सेनानियों अथवा राजाओं की प्रशस्तिगान किया। कुछ ने ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना की और अनेक कवियों ने दरबारी विलासिता से प्रभावित हो कर शृंगार रस प्रधान रचनाएँ कीं जिन में नख शिख वर्णन, नायिका भेद, . . ग्राम्य आदि की प्रधानता रही। अनेक फुटकर छन्दों की भी रचना [illegible]। पद, साखी, कवित्त, दोहे सोरठे आदि इन्हीं के अन्तर्गत हैं।

ने बंगला में इतना प्रभाव डाला कि उनके जीवन चरित तथा उनके अनुयायियों की जीवनी और शिक्षाओं के सम्बन्ध में अनेक उत्कृष्ट

(३) बंगला

ग्रन्थों की रचना हुई। इनसे न केवल इन वैष्णव भक्तों और महात्माओं का जीवन वृत्त मालूम होता है वरन् तत्कालीन बंगाली हिन्दू समाज का भी प्रामाणिक और रोचक वर्णन उपलब्ध होता है। उनमें सर्वोत्कृष्ट रचनाएं निम्नलिखित हैं—कृष्णदास कविराज का चैतन्य महाप्रभु का चरितामृत, गौरांग महात्मा की सर्वश्रेष्ठ जीवनी है। वृन्दावनदास ने चैतन्य भागवत की रचना की। इस काल की दूसरी लोकप्रिय रचनाएं अनुवाद ग्रन्थ हैं। मुकुन्दराय चक्रवर्ती की कवि, कंकण, चंडी, काशीरामदास का महाभारत और कृत्तिवास की रामायण बंगाली लोगों के घर-घर में पाई जाती हैं।

इसी भांति राजस्थानी, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलुगु, उड़िया, मैथिली आदि भाषाओं में भी साहित्यिक रचनाएं हुईं जो अधिकांशतः धर्म से प्रभावित थीं।

द्रविड़ वर्ग की भाषाओं में तमिल सब से अधिक उन्नत और साहित्यिक भाषा है। उसका वाङ्मय बड़ा विशाल है। आठवीं शताब्दी से प्रारम्भ हो कर आज तक उसमें साहित्य-रचना होती आ रही है। आज

(४) द्रविड़ भाषाएं

भी बंगला, मराठी, हिन्दी आदि भारत की प्रमुख साहित्यिक भाषाओं की बराबरी में तमिल का भी नाम लिया जा सकता है। तामिल साहित्य में तिरुवल्लुवर कृत 'कुरल' सब से प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह विश्व साहित्य में एक अनुपम रत्न गिना जाता है, और इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार विभागों द्वारा मानव-जीवन के लिए उपयोगी शक्तियों व उपदेशों का प्रतिपादन किया गया है। कुरल के अतिरिक्त 'मणिमेखला' और 'शीलप्पतिकारम्' ग्रन्थों का उल्लेख भी यहां आवश्यक है। ये दोनों तमिल भाषा के महाकाव्य हैं।

'मलयालम' 'तामिल की जेठी बेटी' कही जाती है। नवीं शताब्दी से ही यह अपनी मां तमिल से पृथक् हो गई थी और भारत के दक्षिण-पश्चिमी समुद्र तट पर आज भी बोली जाती है। यह ब्राह्मणों के प्रभाव के कारण संस्कृत-गान हो गई है। कुछ मोपले अधिक शुद्ध और देशी मलयालम बोलते हैं

क्योंकि वे आर्य संस्कृति से कुछ दूर ही हैं। इस भाषा में साहित्य भी अच्छा है और त्रावणकोर तथा कोचीन के राजाओं की छत्रछाया में उसका अच्छा वर्धन और विकास हुआ।

कनारी मैसूर की भाषा है। उसमें अच्छा साहित्य है, उसकी काव्यभाषा अब बड़ी प्राचीन और आर्य हो गई है। उसका सम्बन्ध तमिल भाषा से अधिक है पर उसकी लिपि तेलुगू से अधिक मिलती है। इस भाषा में भी स्पष्ट विभाषाएं कोई नहीं हैं।

अभ्यास के लिये प्रश्न

(१) भारत में इस्लाम का प्रवेश और विकास कैसे हुआ ?

(२) तुर्क-अफगान कालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पर एक लेख लिखिये।

(३) इस्लाम के सम्पर्क से हिन्दू धर्म, समाज और कला पर क्या प्रभाव पड़ा ?

(४) भक्ति-आन्दोलन से आप क्या समझते हैं ? विस्तार पूर्वक समझाइए।

(५) मुस्लिम काल की चित्रकला पर आलोचनात्मक निबन्ध लिखिए।

(६) मुगल कालीन भवन-निर्माण कला का विकास और उत्थान कैसे हुआ ?

(७) मुगल कालीन साहित्य पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

(८) हिन्दू संस्कृति मुसलमानों को आत्मसात् करने में असफल क्यों रही ? समझाइए।

(९) प्रांतीय भाषाओं की उत्पत्ति और विकास के बारे में आप क्या जानते हैं ?

डूप्ले ने इस समस्या की ओर एक संकेतमात्र किया था। डूप्ले ने मालूम किया कि पाश्चात्य अर्थों में 'राष्ट्रीयता' अथवा 'देश-भक्ति' का उस समय भारत में अभाव था और इसलिए भारतवासियों को एक दूसरे से लड़ा देना अत्यन्त सरल था और इसी कारण भारत अपनी स्वतन्त्रता खो बैठा।

भारत की पराधीनता के कारण

अंग्रेज विद्वान् मालेसन ने लिखा है कि अपने कौमी चरित्र की जिन त्रुटियों के कारण भारतवासी इस तरह पराधीन किए जा सके उनमें एक यह भी थी कि उन्हें 'स्वभाव से ही ईमानदारी का व्यवहार करने और गैरों पर विश्वास करलेने की आदत' थी। भारत की इस दुर्घटना के हमें तीन मुख्य कारण स्पष्ट दिखाई देते हैं—

(१) राष्ट्रीयता का अभाव

सर्वप्रथम कारण यह था कि राष्ट्रीयता का भाव उदार भारतवासियों के चित्तों में कभी भी अधिक स्थान न कर पाया था। १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत के अन्दर कोई प्रबल केन्द्रीय शक्ति न रही थी। अनेक शक्तियाँ उस समय देश के अन्दर प्राधान्य प्राप्त करने के लिए उत्सुक थीं। मुसलमानों और हिन्दुओं में भी पूर्वोक्त कारणों से जगह जगह एक प्रकार की पृथकता पैदा हो गई थीं। ऐसी स्थिति में एक तीसरी बाहर की शक्ति अनेक लोगों को निष्पक्ष मध्यस्थ की तरह दिखाई दी। पाश्चात्य लोगों ने भारत में बस कर भारत को अपना घर बना लिया था। ऐसी सूरत में अपने और गैर का भेद भारतवासियों के लिए कोई विशेष अर्थ ही न रखता था। बल्कि भारतवासियों ने सात समुद्र पार के यूरोप निवासियों के साथ उसी तरह के प्रेम और सत्कार का व्यवहार किया जिस तरह का वे आपस में एक दूसरे के साथ करने के आदी थे। ऐसी स्थिति में यूरोपीय निवासियों का विविध भारतीय नरेशों के परस्पर संग्रामों में कभी एक और कभी दूसरे का साथ देना अथवा अपनी साजिशों द्वारा इस तरह के संग्राम खड़े कर के उनसे पूरा लाभ उठाना अत्यन्त सरल हो गया।

द्वितीय कारण यह था कि यद्यपि भारत का व्यापार उस समय बहुत अधिक बढ़ा हुआ था परन्तु 'व्यापार' का जो स्थान उस समय यूरोपियन और

विशेषकर अंग्रेज कौम के जीवन में दिया जाता था वह भारत में कभी न दिया गया था। पाश्चात्य राष्ट्रों में बड़े-बड़े जमींदार, शासक तथा सम्राट् व्यापारिक कम्पनियों के हिस्सेदार होते थे। परन्तु भारत के शासक और सामन्त लोग व्यापार करना पसन्द नहीं करते थे क्योंकि व्यापार द्वारा धन उत्पन्न करना एक गौण अथवा छोटा कार्य समझा जाता था और अनादि काल से एक श्रेणी विशेष के लिए छोड़ दिया गया था। इस कारण किसी भारतीय नरेश के लिए अपने देश के साथ पाश्चात्य लोगों के व्यापार के भावी राजनैतिक अथवा राष्ट्रीय परिणामों को सोच सकना उस समय असम्भव था। इसके अतिरिक्त व्यापारी मात्र की रक्षा करना और व्यापार को प्रोत्साहित करना भारतीय नरेश अपना धर्म समझते थे। उन्हें यह गुमान तक न हो सका कि उनकी उदारता एक दिन बढ़ते-बढ़ते भारतीय व्यापार, भारतीय उद्योग-धन्धों और भारत की राजनैतिक स्वाधीनता तीनों के सर्वनाश का बीज साबित होगी।

(२) व्यापारिक उदारता

तीसरा कारण यह था कि भारतवासी अपने वचनों के सच्चे थे। इसके पूर्व किसी विदेशी के वचनों पर अविश्वास करने का कोई कारण न था। भारत में सन्धिपत्रों और राजकीय आदेशों को पवित्र माना जाता था और विदेशी शासकों के संधिपत्र भी अब तक सच्चे होते थे। किन्तु इसके विपरीत अंग्रेजों के अपनी सन्धियाँ पालन करने या न करने के विषय में अंग्रेज इतिहास-लेखक सर जॉन ने लिखा है—"मालूम होता है कि अंग्रेज सरकार ने संधियों के तोड़ने का ठेका ले रखा था। यदि मौजूदा अहदनामों के तोड़ने की सजा में किसी से उसका प्रान्त छीना जा सकता है, तो इस समय ब्रह्मपुत्र से ले कर सिन्धु नदी तक एक चप्पा जमीन भी भारत में अंग्रेजों के पास नहीं बच सकती।" इसी प्रकार एडमण्ड बर्क ने लिखा था कि "एक भी देसी सन्धि नहीं है जो अंग्रेजों ने भारतवर्ष में किसी के साथ की हो और जिसे उन्होंने बाद में तोड़ा न हो।" परन्तु सन् १७५७ से ले कर १८५७ तक बार-बार के प्रतिकूल अनुभवों के होते हुए भी भारतवासियों ने सदा अंग्रेजों की प्रतिज्ञाओं पर विश्वास कर लिया।

(३) राजकीय आदेशों व संधिपत्रों में विश्वास

उपर्युक्त तीन प्रमुख कारणों के अतिरिक्त अन्य कारण भी थे जिनके सहयोग से भारत पर पाश्चात्य लोगों का अधिकार सम्भव हो सका था। भारतवासी वीरता, साहस अथवा युद्ध कौशल में कहीं भी अंग्रेजों से पीछे नहीं रहे।

अन्य कारण

अंग्रेजों के भारतीय संग्राम अंग्रेजों ने नहीं जीते, किन्तु भारतवासियों ने अंग्रेजों के लिए जीत कर अपनी विजय का फल अंग्रेजों के हवाले कर दिया। जो असंख्य लड़ाइयाँ अंग्रेजों और भारतवासियों के बीच लड़ी गईं उनमें एक भी ऐसी नहीं हुई जिसमें अंग्रेजी सेना एक ओर रही हो और भारतीय सेना दूसरी ओर, और फिर आंग्ल सेना ने विजय प्राप्त की हो। इस तरह के युद्ध लड़े भी गये थे परन्तु परिणाम उल्टा हुआ था। अंग्रेज पराजित हुए थे। जहाँ कहीं भी किसी संग्राम में अंग्रेजों ने विजय प्राप्त की वहाँ सदा भारतवासियों में दो दल दिखाई दिए हैं, एक उनके पक्ष में और दूसरा उनके विरुद्ध। यह एक अकाट्य सत्य है कि अंग्रेजों ने भारत को तलवार से नहीं जीता, वरन् भारतवासियों ने अपनी ही तलवार से अपने देश को जीत कर विदेशियों के हवाले कर दिया।

मानसिक तथा नैतिक सर्वनाश

पूर्वोक्त हानियों से कहीं अधिक भयंकर हानि जो दूसरे देश की राजनैतिक परतन्त्रता किसी भी देश को पहुँचा सकती है, वह उस देश के चरित्र का नाश है। अमरीकन विद्वान ई. ए. ए. रास ने लिखा है "किसी राष्ट्र के चरित्र के अधःपतन के सब से प्रबल कारणों में से एक कारण उस राष्ट्र का किसी विदेशी जाति के अधीन हो जाना है।" भारत के साथ यह कथन सही रूप में लागू होता है। मुगलों की अधीनता में भारत का सामाजिक जीवन भ्रष्ट हो गया था। उच्च नैतिक आदर्शों की हत्या हो चुकी थी। इन्द्रिय सुखों और भोग विलासिता के अत्यधिक प्रचार से लोगों का मानसिक तथा नैतिक पतन हो चुका था। समाज में भ्रष्टाचार, व्यभिचार तथा अन्य अनैतिक तत्वों की प्रधानता आ गई थी। इस कारण सामाजिक भावना, जिसके सगठन पर स्वतन्त्रता का भवन टिका होता है, डगमगाने लग गई थी और स्वतन्त्रता परतन्त्रता में परिवर्तित हो गई। परिवार की प्रतिष्ठा समाप्त हो चुकी थी। प्रारंभिक

भारतवासियों के चरित्र की इस प्रकार के भारतवासियों के चरित्र से तुलना करना दुष्कर है। एक विद्वान् ने लिखा था कि "भारतवासियों के उत्कृष्ट चरित्र के ऊपर विदेशी शासन का प्रभाव ऐसा ही है जैसा किसी चीज को दबा जाना।" निःसन्देह मुगल कालीन युग में यह प्राचीन देश तेजी के साथ मानसिक नैतिक तथा भौतिक सर्वनाश की ओर अग्रसर हो चुका था।

भारत में पठान शासन स्थापित हो जाने के बाद यहाँ शान्ति स्थापित न रह सकी। छोटे छोटे राज्यों का निर्माण भी होने लगा और केन्द्र तथा प्रान्तीय राज्यों में संघर्षों की आवृत्ति हुई। इस प्रकार की अराजक स्थिति में भारतवासियों के लिये यह सम्भव नहीं रहा कि वे विदेशी राष्ट्रों के साथ सम्पर्क जारी रख सकें। इस सम्पर्क के टूटने से भारतवासियों की विस्तृत विचार धारा का प्रवाह रुक गया और धीरे धीरे उनमें कूप मण्डूकता के लक्षण प्रगट होने लगे। उन्हें प्रकार की घटनाओं के इतिहास का कोई ज्ञान न रहा और इस कारण पाश्चात्य देशों की गतिविधि और शक्ति का सही अनुमान लगाना कठिन हो गया। इसके अतिरिक्त वे अपने ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में भी पिछड़ने लगे। भारतवर्ष का विज्ञान तथा दर्शन लुप्त होने लगा। केवल अकबर के समय में ज्ञान-विज्ञान का विकास हुआ परन्तु फिर वही शिथिलता आ गई।

विदेशी सम्पर्क की समाप्ति

भारत के पतन तथा पाश्चात्य शक्तियों के अभ्युदय में तत्कालीन आर्थिक स्थिति ने भी काफी सहयोग प्रदान किया। सरकार ने इस युग में कुछ विशेष भूलें कीं। उसने राजकर भारी रखे, छोटे वर्गों के वेतन कम रखे और गरीबों के धन को विलासिता पर व्यय करके देश के आर्थिक ढांचे को दुर्बल कर दिया। उसने यातायात के साधनों के सुधार की ओर भी यथेष्ट ध्यान नहीं दिया। साम्राज्य विस्तार की कामना में उसने आन्तरिक संगठन को सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्था द्वारा पुष्ट करने की ओर पूरा ध्यान नहीं दिया। उसने विदेशी व्यापार की उपेक्षा की, अपना जहाजी बेड़ा बनाने के कर्त्तव्य का ध्यान नहीं रखा और अनेक व्यवसायों के विकास अथवा स्थापना की ओर ध्यान नहीं दिया। विदेशी व्यापारियों ने भारत में अपने छापेखाने खोले थे परन्तु तैमूरी सम्राटों अथवा मराठों या राजपूतों ने छापाखाने अथवा कारखाने

आर्थिक विषमता

के मिल स्थापित करने की कल्पना भी नहीं की। इस कारण देश में विद्या का समुचित प्रसार नहीं हो सका। अस्तु, यह कहना अनुचित न होगा कि मुगल-कालीन सरकार ने न तो अपनी प्रजा का पेट भरने तथा ढंकने की संतोषजनक व्यवस्था की ओर न ही उनके बौद्धिक विकास के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध किये। साधारण जनता का आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन-स्तर सरकार की कृपा से नहीं वरन् उसके शोषण और उपेक्षा के बावजूद जैसा बन सका वैसा ही रहा। दर्बार के वैभव और ऐश्वर्य में जनता की दुरवस्था की व्यथा झलकती रही। परन्तु उसे दूर करने का उपाय नहीं हुआ। इन सब कारणों से भारत का पराभव हुआ और इस प्रकार की अराजक तथा अस्त-व्यस्त स्थिति से लाभ उठा कर पाश्चात्य शक्तियाँ भारत में अपना अधिकार क्षेत्र बढ़ाती रहीं और अन्त में सम्पूर्ण भारत को परतन्त्रता की शृंखला में आबद्ध होना पड़ा। इस पराभव का कारण विदेशियों की उन्नत अवस्था नहीं थी परन्तु भारतवासियों का पारस्परिक कलह, सामाजिक पतन, आर्थिक विषमता, राजनैतिक अराजकता तथा व्यापारिक उदारता और राष्ट्रीयता का अभाव था।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) भारत के पराभव के कारण समझाइए।

(२) पाश्चात्य शक्तियाँ भारत पर अधिकार करने में कैसे सफल हुई ?

(३) "भारतवासियों के उच्चतर जीवन के ऊपर विदेशी शासन का प्रभाव ऐसा ही है जैसा किसी चीज को पाला मार जाना।" आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं ?

सामाजिक दर्शन

द्वितीय खण्ड
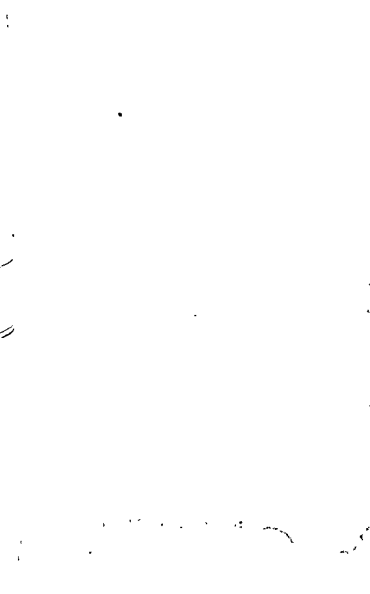
प्रथम अध्याय

यूरोप में पुनर्जागरण की लहर

(अ) बौद्धिक व मानसिक पुनरुत्थान

पुनरुत्थान का अर्थ

'पुनरुत्थान' शब्द के अनेक अर्थ हैं। साहित्यिक दृष्टि से इसका तात्पर्य है 'नूतन जन्म'। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इस आन्दोलन ने यूरोप के जीवन एवं उसकी विचारधारा में एक महान् परिवर्तन का सृजन किया। इस प्रगति के फलस्वरूप मानव मस्तिष्क में उस अनुभूत रीति से सर्वतोन्मुखी जागृति की प्रक्रिया उत्पन्न हुई जिसके आधार पर यह समझा जाने लगा कि यूरोपीय इतिहास का मध्ययुग, पुनरुत्थान के साथ ही समाप्त हो गया। पुनरुत्थान न तो राजनैतिक आन्दोलन था और न ही धार्मिक आन्दोलन। वह मानव-मस्तिष्क की एक विचित्र जिज्ञासापूर्ण स्थिति थी। अब मनुष्य को जीवन के प्रति मध्यकालीन दृष्टि से अश्रद्धा उत्पन्न हो गई थी लौकिक तथा पारलौकिक जीवन के सम्बन्ध में उसकी विचारधारा में महान् परिवर्तन आ गया था। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप देश में कला तथा साहित्य की इतनी अधिक उन्नति हुई थी कि इस समय का इतिहास में एक विशेष नाम है। ये नाम 'नवयुग' 'नया जन्म', 'बौद्धिक पुनरुत्थान,' आदि हैं।

पुनरुत्थान का लक्ष्य

पुनरुत्थान को प्रायः 'शिक्षा की चेतना' कहा करते हैं। शिक्षा की चेतना का तात्पर्य उच्चकोटि के गंभीर साहित्य का सृजन तथा अध्ययन है। पुनरुत्थान विशेष रूप से ग्रीस का द्योतक है। परन्तु यदि पुनरुत्थान का तात्पर्य केवल यही होता तो इतिहास में इसका नाम इतना उज्वल न होता। क्योंकि मध्यकाल के अन्धकारमय वातावरण में भी यूरोप ने ज्ञान-विज्ञान, कला एव साहित्य का . . तथा सृजन किया था। तब फिर भी इस समय के बाद के युग को . . क्यों कहा जाता है? इस से तो विदित होता है कि यूरोपीय समाज

अचानक गहरी निद्रा से उठ बैठा था तथा शिक्षा एवं शिल्प का प्रचार १४ वीं शताब्दी में ही प्रारम्भ हुआ था। इसका कारण यह है कि मध्यकाल का ज्ञान पूर्व निर्णीत दृष्टि के माध्यम से हुआ था और अब उच्चकोटि के साहित्य को दूसरे दृष्टिकोण से पढ़ना आवश्यक हो गया। मानव जाति को आभास हुआ कि प्राचीन संसार महानता से परिपूर्ण एवं उच्च सभ्यता का द्योतक था। प्राचीन संसार ने मध्ययुग के मूलभूत सिद्धान्तों को भी स्वीकार नहीं किया था और मध्ययुग ने जिन सिद्धान्तों को नम्रतापूर्वक स्वीकार कर लिया था, उनसे प्राचीन युग आलोचना तथा विवाद की दृष्टि से निडर और स्वतन्त्र रहा। मध्य युग ने मानवीय तर्क को अविश्वसनीय तथा मानवीय शरीर को सार रूप माना परन्तु प्राचीनकाल ने मानवीय शक्ति को कीर्तिमान, मानवीय तर्क को विश्वसनीय तथा शारीरिक सौन्दर्य को प्रेरित कर प्रशसित किया। आत्म निरोध (Self repression) को आदर्श स्वीकार करने की अपेक्षा आत्म-उद्गार (Self-expression) को आदर्श माना। आधुनिक समाज के निर्माण कर्ताओं ने प्राचीन युग के सिद्धातों को स्वीकार किया और आलोचना को नई गति एवं विचारधारा को नवीन निडरता प्रदान की। पुनरुत्थान का लक्ष्य स्वतन्त्र आलोचना तथा निर्धारित परम्परागत विचारधाराओं की कसौटी पर कसना था।

पुनरुत्थान की उत्पत्ति एवं उसके कारण

पुनरुत्थान की गति कब और कैसे प्रारम्भ हुई, इसके बारे में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। परन्तु यह सत्य है कि इस गति का जन्म १३वीं सदी के उत्तरार्ध में हो चुका था। प्रोफेसर स्वेन ने लिखा है—'पुनर्जागरण उत्तर मध्य युग और आरम्भिक आधुनिक युग की समस्त बौद्धिक परिवर्तनों के लिए एक सामूहिक शब्द है। यह पुनर्जागरण धर्म युद्ध और नये देशों की खोज से आरम्भ हुआ तथा इनमें भूतकाल के प्रति रुचि और वर्तमान को समझने की बौद्धिक चेतना है।' पुनर्जागरण किसी एक मनुष्य, एक स्थान अथवा एक विचारधारा के कारण नहीं हुआ। असख्य व्यक्तियों के सामूहिक ज्ञान एवं विभिन्न राष्ट्रों की विभिन्न परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से ही पुनरुत्थान का निर्माण संभव हो सका। परन्तु फिर भी इस

निर्माण कार्य में निम्नलिखित तत्व कार्य कर रहे थे—(१) पारस्परिक युद्धों का निरोध और शांत वातावरण की उत्पत्ति (२) धर्म युद्धों के उपरान्त रक्षा एवं सुख साधन की प्राप्ति और इसके कारण यात्रा के अनुभव द्वारा उत्पन्न हुआ मनुष्यों का चित्तोत्साह (३) व्यापार-वाणिज्य की पुनर्वृद्धि एवं नगरों में सुख शांति तथा वैभव का विकास। (४) उच्च श्रेणी की शिक्षा का चर्च में प्रादुर्भाव तथा जनता में उसका प्रचार (५) पोप तथा राजकुमारों के वादविवाद और नास्तिकों के प्रति स्पष्ट बर्बरता एवं धूर्तता भरे अत्याचारों के कारण जनता में चर्च के प्रभुत्व का घटना तथा जनता की धर्म के प्रधान मौलिक तत्वों पर स्वयं निर्णय करने की रुचि का विकास। (६) अरबों के आक्रमणों के फल-स्वरूप यूनानी विद्वानों का पश्चिम में बसना तथा प्राचीन ग्रीक सिद्धान्तों का प्रचार। वैज्ञानिक एवं भौतिक दृष्टिकोण से ईसाई जनता के अंधविश्वास की समाप्ति (७) चीन के आविष्कारों का ज्ञान, कागज, कुतुबनुमा एवं मुद्रण प्रणाली। (८) यहूदियों की समस्या तथा मानव विचारों को भड़काना। (९) क्रियात्मक भौतिक विज्ञान की ओर उत्साहित होना। (१०) अंतिम कारण फ्रांस, इंगलैण्ड, पोलैण्ड, डेनमार्क के शासकों एवं फ्लोरेन्स तथा वेनिस के धनवानों तथा पोप के द्वारा असंख्य साहसिक नाविकों, साहित्यकारों, एवं कलाकारों को आर्थिक सहयोग प्रदान करना था।

पुनरुत्थान का क्षेत्र

पुनरुत्थान की झलक, वैज्ञानिक चेतना, धार्मिक जागरण, कला की नवीन शैली, नवीन साहित्य तथा नये देशों की खोज में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। उपरोक्त झलक इटली, फ्रांस, जर्मनी, इंगलैण्ड आदि सभी राष्ट्रों में दिखलाई देती है। यह ठीक है कि इस झलक का विकास काल भिन्न भिन्न राष्ट्रों में अलग अलग है, परन्तु मिलता अवश्य है। अब हम पुनरुत्थान क्षेत्रों का पृथक् पृथक् अध्ययन करेंगे ताकि इन क्षेत्रों में पुनरुत्थान की झलक का सुगमतापूर्वक अवलोकन किया जा सके।

पुनरुत्थान का प्रथम केन्द्र इटली था और पुनरुत्थान की प्रथम झलक की चित्रकला, शिल्पकला एवं साहित्य में प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हुई।

इटली सम्पूर्ण यूरोप की पाठशाला बन गया। प्राचीन सौन्दर्य के आदर्शों तथा मनुष्य और प्रकृति-विषयक नवीन उत्साह का प्रभाव जितना इटली के नवयुग की शिल्पकला में वर्तमान है उतना और कहीं नहीं। मध्ययुग की शिल्पकला परम्परागत नियम बन्धनों से जकड़ी हुई थी। नवयुग के कलाकारों ने अपनी कल्पना शक्ति को विशेष स्वच्छन्द मार्ग पर डाल दिया।

कला का पुनरुत्थान

इटली में गृह निर्माण के गोथिक ढंग का विशेष प्रचार नहीं हुआ था। उन्होंने अपने धर्मस्थानों में रोमन शिल्पकला का ही थोड़ा सा परिवर्तन कर के प्रयोग किया था। उत्तरीय देशों में ऊंचे मेहराबों और पत्थर की नक्काशी का प्रचार विशेष रूप से था, इधर इटली में गुम्बज का अधिक प्रचार था।

कदाचित् मूर्तिकारी में ही प्राचीन समय का अनुकरण सब से अधिक और सब से पहले किया गया। शिल्प की उन्नति में 'पीसा' नगर के मूर्तिकार
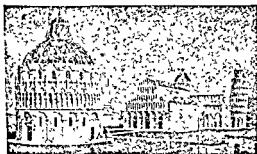
पीसा का गिरजाघर

निकोला का स्थान सर्वप्रथम है। उसने पीसा में गिर्जा के मेम्बर (उपदेशक के खड़े होने का स्थान) का निर्माण किया था। यद्यपि मूर्तिकला ने लोगों का ध्यान सर्वप्रथम आकृष्ट किया परन्तु इसकी उन्नति बहुत मन्द गति से हुई।

चौदहवीं शताब्दी में इटली के विख्यात चित्रकार जोटो ने चित्रकला विकास में विशेष उत्साह दिखलाया। उसके पहले भित्तियों पर वज्रलेप चित्रों

का प्रचार था। जोटो के समय में विशेष परिवर्तन हुआ। उसने जीवित भावपूर्ण स्त्री तथा पुरुषो के चित्र बनाने का प्रयत्न किया। उसकी चित्रकारी केवल बाइबिल के दृश्यों तक ही सीमित न रही बल्कि महात्मा फ्रैंसिस के जीवन चित्रों तक पहुँच गई। जोटो चित्रकार होने के अतिरिक्त गृह निर्माण कला एवं मूर्तिकला का भी ज्ञाता था।

इटली में कला का चरम विकास सोलहवीं शताब्दी में प्रकट हुआ। मध्य युग की प्रथाओं का परित्याग कर प्राचीन युग की शिक्षा का अनुशीलन किया गया। यन्त्रों के प्रयोग के साथ ही साथ उनकी चित्रकारी में अपने अभिलाषित मानव भावों को चित्रित करने की प्रेरणा विकसित हो सामर्थ्यवान् हो उठी।

फ्लोरेन्स नगर का गिबर्टी भी एक महान् शिल्पकार था। उसने फ्लोरेन्स के गिर्जा के कामे के द्वार का निर्माण किया, जो नवयुग के शिल्प के उत्कृष्ट उदाहरणों में से है। स्वयं माईकेल अ'जेला उन्हें स्वर्ग द्वार के योग्य बतलाता था। गिबर्टी का समकालीन ल्यूकाडेला रोबिया, चिलकदार मिट्टी अथवा संगमरमर पर सुन्दर-सुन्दर चित्र बनाने के लिये प्रसिद्ध था। महान् चित्रकार महन्त फ्रा एंजेलिको ने सैन मार्कों के मठ की दीवारों पर जो चित्रकारी की है उस से उसके सौन्दर्य प्रेम तथा आरामय भक्ति का परिचय मिलता है।

सेण्ट पीटर का गिरजाघर

पन्द्रहवीं शताब्दी में सेण्ट पीटर के गिर्जा का निर्माण आरम्भ हुआ। यह कार्य तत्कालीन कुशल कलाकार राफेल तथा माइकेल अंजेलो आदि के निरीक्षण में था। यह लैटिन क्रॉस के आकार का बनाया गया और उस पर एक विशाल गुम्बज बनाया गया। उसका व्यास १३८ फुट लम्बा था। यह गिरजाघर तत्कालीन विश्व का महान् रहस्य बन गया था।

सोलहवीं शताब्दी में पुनरुत्थान की कला अपनी उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुंच गई। उस समय तीन महान् कलाकारों की उत्पत्ति हुई— लियोनार्डो डा विंसी, माइकेल अंजेलो तथा राफेल। लियोनार्डो क चित्रकार, मूर्तिकार, विचारक तथा वैज्ञानिक था। उसे प्रयोग में बहुत रुचि थी। उसने सर्वप्रथम यह प्रतिपादित किया कि रक्त मनुष्य के शरीर में घूमा करता है। 'मौना लिसा' और 'दी लास्ट सुपर' उसके उत्कृष्ट चित्र माने जाते हैं। उसकी प्रकृति विविध रूप से विकसित थी, उसके कार्य मौलिक होते थे और वह नयी पद्धतियों का आविष्कार कर उनका प्रयोग करता था उसको शिल्पकार न कह कर परीक्षक कहें तो यथार्थ होगा! माइकेल अंजेलो एक अद्भुत मूर्तिकार था। ठोस संगमरमर को काट कर उसने विशाल मूर्तियां बनाईं। उसने लगभग १४५ चित्र बनाये। उसके चित्रों में 'दी लास्ट जजमेण्ट' सर्वोच्च है। राफेल अत्यन्त सुन्दर स्त्रियों के चित्र बनाया करता था। उसके चित्रों में भक्ति और सौन्दर्य दोनों का अपूर्व समन्वय था। 'कोलोना-मेडोना' उसकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दर कृति है। इसमें वात्सल्य, प्रेम और मातृत्व का सुन्दर चित्रण है।

पन्द्रहवीं शताब्दी में वेलजियम के वान तथा आइक बन्धुओं ने चित्रकला को एक नया मोड़ प्रदान किया। उन लोगों ने रंग मिश्रित करने की नवीन प्रणाली का सृजन किया जो इटली की कला से कहीं अधिक आकर्षक थी। इस के एक शताब्दी पश्चात् जर्मनी के दो चित्रकारों डयोरर तथा हैन्स दाल्बीन, ने राफेल तथा माइकेल को भी पीछे रख दिया। इन्होंने लकड़ी तथा तांबे के पत्तरों पर आश्चर्यजनक चित्रों की रचना की।

सत्रहवीं शताब्दी में डच तथा फ्लेमिश चित्रकारों ने विशेषतः रयूबेंस तथा रेम्ब्राण्ट ने चित्रकला की एक नयी प्रथा निकाली। उन्होंने कितने ही ऐतिहासिक प्रसिद्ध पुरुषों के चित्रों को अंकित किया। इसी शताब्दी में स्पेन

के बेलत्मीन ने भी अनेक तिरस्कारी चित्रों का निर्माण किया। वेनिस के टिशियन एवं टिन्टोरेटो प्रसार की भावना को चित्रित करने में प्रसिद्ध हुये।

बौद्धिक पुनरुत्थान की झलक साहित्यकारों की कला में पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित है। इस समय के दो महान लेखक—दांते तथा पेट्रार्क थे।

दांते को वास्तव में पुनरुत्थान युग से सम्बन्धित नहीं कर सकते परन्तु फिर भी उसके लेखों को पुनरुत्थान की भूमिका से सम्बन्धित किया जा सकता है। वह उत्तम श्रेणी का महाकवि था। उसकी गणना साहित्य का पुनरुत्थान होमर, वर्जिल तथा शेक्सपियर के साथ की जाती है। वह अपने काल का वैज्ञानिक, पंडित तथा कवि था। लैटिन का पंडित होते हुये भी उसने 'डिवाइन कॉमेडी' की रचना अपनी मातृभाषा में की।

पेट्रार्क प्रथम विद्वान था जिसने मध्ययुग की शिक्षा का त्याग कर के अपने समय के मनुष्यों को ग्रीक तथा रोमन साहित्य के लालित्य तथा सौन्दर्य की तरफ आकर्षित किया। उसने प्राचीन समय की अलभ्य तथा विस्मृत पुस्तकों के अन्वेषण में बहुत प्रयत्न किया। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों में पुस्तकालय स्थापित करने का नया उत्साह उत्पन्न हो गया।

इतिहास में रोजर बेकन का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसके लेख अज्ञान के विरुद्ध एक लम्बी चौड़ी निन्दात्मक समालोचना हैं। 'प्रयोग करो, प्रयोग करो,' यही रोजर बेकन का सिद्धान्त था। उसने घोषणा की कि "सिद्धान्तों और धर्म के प्रामाणिक ग्रन्थों का सहारा छोड़ कर अब संसार की ओर देखो। प्रमाण वचनों के प्रति श्रद्धा, लोकाचार, अज्ञानी जनसमुदाय के भाव और मानव स्वभाव की अविश्वसनीय आहंकारिक प्रकृति इन चार अज्ञानता के उद्गम स्थानों को उसने हेय बतलाया है। केवल इन्हीं को जीतने पर "समस्त शक्तियों के भण्डार मनुष्य के लिए खुल जायेंगे।"

उपर्युक्त सभी लेखकों का सामूहिक प्रभाव यह हुआ कि अनेक विद्वानों ने यूनानी तथा रोमन विद्वानों के ग्रन्थों को ध्यानपूर्वक पढ़ा। इस से उन लोगों को लौकिक तथा पारलौकिक जीवन के सम्बन्ध में मध्य युग वालों के विश्वासों में अश्रद्धा हो गयी।

यदि यह कहा जाय कि कागज एवं मुद्रण ही के कारण यूरोप का यह बौद्धिक पुनरुत्थान सम्भव हुआ तो यह कथन अत्युक्ति न होगा। "इस आविष्कार के होते ही जगत् के बौद्धिक जीवन ने एक नवीन और

कागज एवं मुद्रण

बड़ी अधिक बलशाली एवं उन्नतिशील युग में पदार्पण किया। उस युग का तो अब सदा के लिये अन्त हो गया था जब ज्ञान एक मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क में बूंदों की भांति टपकता था। अब तो उसने एक 'नदिया' का रूप धारण किया था जिससे सहस्रों लाखों करोड़ों आत्माएं तृप्त होने लगीं।' (एच० जी० वेल्स)

मुद्रण का एक तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि संसार में 'बाइबिल' के ढेर लग गये, दूसरी पढ़ाई की किताबें भी सस्ती बिकने लगीं। पुस्तकें अब पहले की भांति, विद्वानों का रहस्य अथवा रुमञ्जित खिलौना न थीं, बल्कि जनसाधारण की निधि बन गई थीं। छपी पुस्तकों में सब से प्राचीन ग्रन्थ बाइबिल है। यह सन् १४५६ ई० में मेयस नगर में पूरी की गयी थी।

इस प्रकार यूरोपीय साहित्य का विकास हुआ। सर्वप्रथम इतालवी भाषा का विकास हुआ, फिर अंग्रेजी, फ्रेंच तथा जर्मन आदि भाषाओं के साहित्य का

भाषाओं का विकास

विकास हुआ। फ्रांस में मोलेरी और मोन्टेन महान साहित्यकार हुए। स्पेन में सर्वेन्टीज हुआ। इंगलैण्ड में इस आन्दोलन की नींव विश्वविद्यालयों और विशेष कर आक्सफोर्ड में पड़ी। यहीं पर फीनयेर (Finaere), जॉन कोलेट तथा एरेस्मस (Erasmus) आदि महान विभूतियों ने नव सन्देश का प्रचार किया। इंगलैण्ड के थोमस मूर का नाम उल्लेखनीय है। उसने प्लेटो के 'रिपब्लिक' के समान एक आदर्शात्मक राज्य की कल्पना 'यूटोपिया' नामक ग्रन्थ में की। इसके अतिरिक्त बोकेक्सियो (Boccaccio), क्लेरेंडन (Clerendon), रबेलास, मोंटेन कोर्नील, रेसीन, मोलियर, बोलो आदि असंख्य विद्वानों ने अपनी कृतियों के द्वारा नवयुग के सिद्धान्तों एवं सदेश का प्रचार किया।

पुनरुत्थान युग में विज्ञान में चेतना का विकास हुआ। ईसाई लोगों का मत था कि पृथ्वी सम्पूर्ण विश्व का केन्द्र है और सूर्य उसके चारों तरफ

घूमता है। परन्तु पोलैंड निवासी कोपर्नीकस ने इस विश्वास का खण्डन किया। उसने पता लगाया कि पृथ्वी भी और ग्रहों के साथ सूर्य की परिक्रमा करती है। इससे गगनचारी ग्रहों तथा उनकी चालों के सम्बन्ध में नया ज्ञान प्राप्त हुआ, जो कि आधुनिक ज्योतिष की आधारशिला है। परन्तु पोप की पवित्र आज्ञा से उसको अपने सिद्धान्तों का प्रचार बन्द करना पड़ा। किन्तु इटली के निवासी जार्डिनो ब्रूनो ने पुनः उपर्युक्त सिद्धान्त का प्रचार किया और उसे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। प्रसिद्ध विद्वान गैलेलियो ने एक दूरबीन बनाई जिसके द्वारा चन्द्र तथा सूर्य के लोक को देखा जा सकता था परन्तु पोप के भय के कारण उसे भी अपने सिद्धान्तों को अपने पास रखना पड़ा।

वैज्ञानिक चेतना

१६ वीं शताब्दी में फ्रांसिस बेकन और देकार्ते और १७वीं शताब्दी में आइजक न्यूटन महान् वैज्ञानिक हुए। फ्रांसिस बेकन तथा देकार्ते ने विश्लेषण और संशय द्वारा आधुनिक प्रणाली को जन्म दिया। न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त जिसका तात्पर्य है कि पृथ्वी हर चीज को अपनी ओर खींचती है, जगत प्रसिद्ध है। विलियम हार्वी ने अन्तिम रूप से यह सिद्ध किया कि रक्त हृदय से चल कर स्नायुओं में घूम कर फिर वापिस हृदय में आ जाता है। बोइल ने गंधक का तेजाब और हैलमोंट ने कार्बन डाई ऑक्साइड गैस का आविष्कार किया। पैरासेलसस ने औषधि और रासायनिक द्रव्यों के बीच सम्बन्ध बताया भौतिक-विज्ञान के क्षेत्र में गिलबर्ट तथा स्टीविन ने नये सिद्धान्तों का अनुसन्धान किया विद्युत शक्ति के विषय में भी विशेष रूप से अनुसंधान कार्य किया गया।

अंकशास्त्र विज्ञान में पूर्व ने पश्चिम को नवीन ज्ञान प्रदान किया। टार्टेलिया, केर्डी, वायेटा, केपलर, नेपियर आदि विद्वानों ने गणित विज्ञान का विकास किया। पोप ग्रैगरी तेरहवें ने 'जूलियन पञ्चांग' में सुधार किया तथ एक नवीन पञ्चांग का निर्माण किया जो 'ग्रिगेरियन पंचांग' के नाम से विख्यात हुआ।

पुनरुत्थान के परिणाम

बौद्धिक पुनरुत्थान के परिणाम निकले:—

(१) उन्नत पाठ्यक्रम—इसने स्कूलों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के पाठ्य विषयों में ग्रीक तथा लेटिन के अध्ययन को प्रमुख स्थान दिया।

पन्द्रहवीं शताब्दी से ले कर आधुनिक युग तक सीज़र, सिसरो, वर्जिल, होमर आदि विद्वानों का शिक्षा क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

(१) मानववाद—पुनरुत्थान ने जीवन के नवीन दृष्टिकोण 'मानववाद' को अपनाया और मानव प्रकृति के प्रति सक्रिय रुचि को उत्पन्न किया। ज्ञानवाद मानववाद की आधारशिला बन गई और उसका सिद्धान्त—'धर्म विश्वास के कारण ढूंढ़ने और उसकी उपयोगिता सिद्ध करने का प्रयत्न' शीघ्र ही सम्पूर्ण यूरोप में फैल गया। इस सिद्धान्त की आधारशिला थी—अरस्तू की तर्क शक्ति। इसको मानने वाले मानववादी कहलाये।

मानववादी दृष्टिकोण के अनुसार जीवन के इस रंगमंच का प्रमुख अभिनेता मनुष्य ही है। मनुष्य ही सब वस्तुओं का माप दण्ड है और विश्व की आश्चर्यजनक वस्तुओं में मनुष्य ही सब से अधिक विस्मयकारक है। मानववाद का प्रमुख सिद्धान्त था—भूत और भविष्य की चिन्ता से मुक्त हो कर वर्तमान जीवन के सुखों का पूर्ण उपभोग करना, अन्ध विश्वासों का बहिष्कार करना तथा तर्क और बुद्धि की सहायता से वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना तथा मानव-समाज के लिये कल्याणकारी कार्यों को सम्पादित करना।

(२) पूर्व प्राचीनता की जिज्ञासा—इसने अति प्राचीन विश्व की ओर जिज्ञासा उत्पन्न की तथा मध्यकालीन संस्कृति का बहिष्कार किया। इस दृष्टि से प्राचीनकाल का अध्ययन प्रतिक्रियात्मक ढग से हुआ। इसी कारण कला, साहित्य तथा विज्ञान में अति प्राचीन ग्रीस तथा रोम का अनुकरण किया गया न कि निकट प्राचीन काल का। मेकेविली का सिद्धान्त भी अति प्राचीन युग पर अवलंबित था। माता पिता अपने बच्चों का नामकरण तक होमर, वर्जिल, सिसरो, सीज़र आदि के नाम पर करते थे।

(४) ईसाई धर्म का महत्व घटना—पुनरुत्थान ने धार्मिक अन्ध-विश्वासों को समाप्त कर के तर्क तथा बुद्धि को प्रोत्साहित किया तथा बाइबिल का लोक भाषा में अनुवाद हुआ। इससे धार्मिक ज्ञान जनसाधारण की अमानत बन गया और धर्म का महत्व घटने लगा।

(५) देशीय भाषाओं का विकास—ग्रीक तथा लेटिन के अतिरिक्त प्रादेशिक भाषाओं एवं उनके साहित्य का विकास हुआ। यह पुनरुत्थान का महत्वपूर्ण परिणाम था।

(४) कला की उन्नति—कला की सभी क्षेत्रों में उन्नति हुई।

(७) इतिहास का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन प्रारम्भ हुआ।

(ख) धर्म सुधार आन्दोलन

"धर्म सुधार आन्दोलन, धार्मिक भ्रष्टाचारों की उपस्थिति के कारण, जो कि अधिक सहन नहीं किये जा सकते थे, जर्मन मस्तिष्क एवं प्रकृति के संविधान की तर्क संगत एवं आवश्यक उपज था।" (डी. जे. हिल)

पन्द्रहवीं एवं सोलहवीं सदी में धर्म के क्षेत्र में जो जन आन्दोलन चला उसे अंग्रेजी में 'रिफॉरमेशन' कहते हैं। चर्च के प्रभुत्व एवं भ्रष्टाचार के विरुद्ध, जनता धर्म में संशोधन करवाना चाहती थी। परन्तु अन्त में इसका धार्मिक रूप परिवर्तित हो गया और संशोधन के स्थान पर नवीन धर्म की स्थापना हुई और इतिहास में यह आन्दोलन धर्म सुधार आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सुधार आन्दोलन क्यों चला! इस प्रश्न का उत्तर निम्न कारणों में निहित है—

कारण (१) पुनरुत्थान—मानसिक पुनर्जन्म ने लेटिन चर्च में महा क्षोभ उत्पन्न कर दिया। उसका अंगोच्छेद कर डाला और अवशिष्ट अंश में भी महान् परिवर्तन कर डाला।

(अ) मानसिक पुनरुत्थान ने व्यक्ति के महत्व की शिक्षा का प्रचार किया और आलोचना तथा जाँच की आवश्यकता पर जोर दिया तथा अनन्त काल से स्थापित सत्ता को निर्बल बना दिया। सुधारकों ने रोम चर्च के सिद्धान्तों एवं अनुशासन के बारे में आलोचना एवं विचार विमर्श करने की आवश्यकता पर जोर दिया।

(आ) पुनर्जागरण ने प्राचीन धार्मिक पद्धति के आधार पर दी जाने वाली स्कूली शिक्षा पर प्रहार किया। ग्रीक तथा रोमन के अध्ययन एवं प्राचीन तथा नवीन टेस्टामेंट की आलोचना प्रक्रिया तथा मुद्रणालय के द्वारा इस प्रकार के साहित्य के प्रचार की सुविधा ने सुधार गति को उत्साहित एवं प्रेरित किया।

(२) चर्च सुधार—रोमन चर्च के अन्दर उत्पन्न हुए भ्रष्टाचार को रोकने का प्रयत्न किया गया। वीक्लिफ तथा जॉन हस ने चर्च में सुधार करने

की मांग की परन्तु उन्हें दंडित किया गया। पन्द्रहवीं शताब्दी के कौंसिलर आन्दोलन ने चर्च में आंतरिक सुधार की योजना प्रस्तुत की परन्तु पोप के व्यक्तिगत विरोध के फलस्वरूप असफल रही। परन्तु सुधारक चर्च में सुधार ले कर रहे यद्यपि चर्च को दो हिस्सों में बाँटना पड़ा।

(अ) पोप की ईसाई जगत पर एकाधिकार शक्ति उस समय समाप्त हो गई, जब किपोप को एविग्नन में बन्दी रहना पड़ा।

(आ) पादरियों के हस्तक्षेप से फ्लोरेन्स, वेनिस आदि नगरों में राष्ट्रीय तथा स्थानीय देश भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ और जनता चर्च को घृणा की दृष्टि से देखने लगी।

(इ) पोप तथा उसके अधिकारियों द्वारा, शासकों की सहायता के लिये, अन्य शासकों से सहमति प्राप्त किये बिना, उनके प्रांतों के निवासियों से, द्रव्यराशि एकत्र करना, असंख्य शासकों को घृणित लगा और उन्होंने इस प्रणाली का विरोध किया। इस प्रकार के विरोध से पोप की शक्ति एवं अधिकारों का महत्व जनता की दृष्टि में घटने लगा।

(ई) धर्म को नैतिकता से पृथक कर दिया गया। पोप लोगों का नैतिक अधःपतन हो रहा था। उनके अवैधानिक पुत्रों की समस्या ने इटली में अशान्त वातावरण उत्पन्न कर दिया।

(३) राजनैतिक कारण—सोलहवीं शताब्दी में धर्म की संरक्षता के लिये सक्रिय राजनीतिक सहयोग आवश्यक था। "यदि प्रोटेस्टेंट आन्दोलन केवल धार्मिक आन्दोलन होता तो यह अपने सृजनकर्ताओं के जीवनकाल तक भी न पनप सकता। जिस वस्तु ने इसे विजयी बनाया वह थी–इसके राजनीतिक उद्देश्य तथा प्रभाव और विशेषकर कूटनीति।" (डी. जे. हिल)

(४) अन्य कारण—(अ) रोम के धार्मिक न्यायालयों में अपीलों एवं उनके निर्णयों का क्रय-विक्रय भी आन्दोलन का प्रमुख कारण था।

(आ) अशिक्षा का लाभ उठाते हुए पादरी लोग अपने यजमानों को मनमाना धर्म सिखाते थे, एवं उनसे इच्छानुसार द्रव्य वसूल करते थे।

अताश तथा उन मूर्ख लोगों की जिन्हें विश्वास था कि धर्म का अर्थ केवल तीर्थयात्रा, शैवपूजा तथा द्रव्यादि दे कर पोप द्वारा अपराध क्षमापन ही है—खूब आलोचना की। उसने प्रायः उन सब बुराइयों की निन्दा की जिनकी लूथर ने भी आलोचना की थी। एरैसमस ने ईसाई धर्म के सत्य सिद्धान्तों के प्रचार हेतु न्यूटेस्टामेन्ट का शुद्ध संस्करण निकाल कर धर्म की उत्पत्ति स्थान को ठीक कर दिया। तदनुसार उसने ग्रीक पुस्तिका का लेटिन अनुवाद व्याख्या के साथ प्रकाशित किया। इस से धर्मशास्त्रियों की बड़ी बड़ी भूलें प्रत्यक्ष हो गयीं।

(५) मार्टिन लूथर—सन् १४८३ ई० में एक गरीब किसान के घर पर मार्टिन लूथर का जन्म हुआ। अठारह वर्ष की आयु में वह एरफट विश्व विद्यालय में प्रविष्ट हुआ और चार वर्ष पर्यन्त शिक्षा पाता रहा। सन् १५०५ ई० में उसने एम. ए. पास किया परन्तु उसी समय वह मठ में जा कर मुक्ति का उपाय सोचने लगा। मठाधिपति ने उसे अपने पुण्यकार्यों पर भरोसा न-रख कर ईश्वर की कृपा तथा क्षमा पर भरोसा रखने के लिये कहा। उसने महात्मा पॉल तथा ऑगस्टाइन के लेखों का मनन किया जिससे उसे ज्ञान हुआ कि मनुष्य किसी भी पुण्य करने में समर्थ नहीं है, उसकी मुक्ति केवल ईश्वर में श्रद्धा और भक्ति करने से हो सकती है। परन्तु उसे विशेष संतोष नहीं मिला। सन् १५०८ ई० में वह विटनवर्ग विद्यापीठ में अध्यापक नियुक्त हुआ और पॉल के पत्रों तथा भक्ति से मुक्ति पाने के सिद्धान्त की शिक्षा देने लगा। सन् १५११ ई० में उसे रोम जाना पड़ा। इटली के धर्माधिकारियों के भ्रष्ट आचरण ने उसके विश्वासों को धूलि धूसरित कर दिया। उसके हृदय में दृढ़ विश्वास हो गया कि प्रधान धर्म संस्था ही धर्म की मुख्य शत्रु है। उसी समय एक महत्वपूर्ण घटना घटी जिसने लूथर को प्रगट विद्रोही बना दिया। यह घटना थी—"पाप विमोचन पत्रों का विक्रय।"

पोप लिओ दशम् ने, जो कि नितान्त दिवालिया हो गया था, 'इन्डलजेन्सेज बेचने शुरू किये। इन्डलजेन्स एक प्रकार का क्षमा-याचना पत्र था जो कि मूल्य के बदले में दिया जाता था। इसका अभिप्राय यह था कि जो श्रद्धालु अपने पापों के लिए शोचमना हो कर इस पर्चे को खरीदेगा वह नरक से मुक्त हो जायेगा परन्तु कुछ लेखकों ने इस (इन्डलजेन्स) सिद्धांत की उपर्युक्त व्याख्या को गलत

(६) साधारण तथा निर्धन भिक्षुओं के अन्दर अमीर पादरियों की धनराशि एवं विलास के प्रति विद्रोह की भावना।

(७) तत्कालीन कारण—मार्टिन लूथर द्वारा "पाप विमोचन" पत्रों के विरुद्ध विद्रोह था।

धर्म सुधार के अग्रदूत (१) वाइक्लिफ (१३२०–८४) जॉन वाइक्लिफ एक अंग्रेज पादरी एवं आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय का अध्यापक था। उसने कैथोलिक उपदेशों एवं प्रणालियों की आलोचना की। उसने घोषित किया कि 'पोप पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि नहीं है तथा धार्मिक उपदेश जो कि भ्रष्ट एवं विवेकहीन पादरियों द्वारा दिये जाते हैं व्यर्थ हैं। प्रत्येक ईसाई को बाइबिल के सिद्धान्तों का अनुकरण करना चाहिये और चर्च को राज्य के अधीन होना चाहिए।' परन्तु पोप ने उसको दंडित किया। वाइक्लिफ के अनुयायी लोलार्ड्स (Loll uds) कहलाये।

(२) जॉन हस—जॉन हस बोहेमिया का पादरी एवं प्रेग विश्वविद्यालय का प्राध्यापक था। उसने वाइक्लिफ के सिद्धान्तों का प्रचार किया। सन् १४१४ ई० में हस को चर्च की महान् परिषद् के सम्मुख बुलाया गया। यद्यपि सम्राट की ओर से अभयदान की प्रतिज्ञा की गई थी, फिर भी उसे गिरफ्तार कर लिया गया और चर्च की निन्दा करने के आरोप में उसे जीवित जला दिया गया। उसकी मृत्यु ने सम्पूर्ण बोहेमिया में सशस्त्र विद्रोह को प्रज्वलित कर दिया। पोप ने उनके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। असंख्य सैनिक उनको कुचलने के लिये भेजे गये परन्तु बोहेमियन अपराजित रहे। सन् १४३६ ई० में हस के अनुयायियों के साथ समझौता कर लिया गया जिसमें लेकिन चर्च ने बहुत से विधानों पर किये गये विरोध आक्षेपों को स्वीकार कर लिया गया।

(३) सेवेनरोला—इटली का विद्वान पादरी था। उसने चर्च के भ्रष्ट नियमों एवं प्रणालियों में सुधार करने पर जोर दिया परन्तु पोप के भय ने उसका प्रचार कार्य रोक दिया।

(४) एरेस्मस—एरेस्मस डच जाति का था। वह ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में ग्रीक पढ़ाता था और अपने युग का प्रभावशाली लेखक एवं विद्वान था। उसने अपनी पुस्तक 'मूर्खता की प्रशंसा' में महन्तों तथा धर्मशास्त्रियों की

अज्ञान तथा उन मूर्ख लोगों की जिन्हें विश्वास था कि धर्म का अर्थ केवल तीर्थयात्रा, सौतपूजा तथा द्रव्यादि दे कर पोप द्वारा अपराध क्षमापन ही है—खूब आलोचना की। उसने प्रायः उन सब बुराइयों की निन्दा की जिनकी लूथर ने भी आलोचना की थी। एरैसमस ने ईसाई धर्म के सत्य सिद्धान्तों के प्रचार हेतु न्यूटेस्टामेन्ट का शुद्ध संस्करण निकाल कर धर्म की उत्पत्ति स्थान को ठीक कर दिया। तदनुसार उसने ग्रीक पुस्तिका का लेटिन अनुवाद व्याख्या के साथ प्रकाशित किया। इस से धर्मशास्त्रियों की बड़ी बड़ी भूलें प्रत्यक्ष हो गयीं।

(२) मार्टिन लूथर—सन् १४८३ ई० में एक गरीब किसान के घर पर मार्टिन लूथर का जन्म हुआ। अठारह वर्ष की आयु में वह एरफट विश्व विद्यालय में प्रविष्ट हुआ और चार वर्ष पर्यन्त शिक्षा पाता रहा। सन् १५०५ ई० में उसने एम. ए. पास किया परन्तु उसी समय वह मठ में जा कर मुक्ति का उपाय सोचने लगा। मठाधिपति ने उसे अपने पुण्यकार्यों पर भरोसा न कर ईश्वर की कृपा तथा क्षमा पर भरोसा रखने के लिये कहा। उसने महात्मा पॉल तथा ऑगस्टाइन के लेखों का मनन किया जिससे उसे ज्ञान हुआ कि मनुष्य किसी भी पुण्य करने में समर्थ नहीं है, उसकी मुक्ति केवल ईश्वर में श्रद्धा और भक्ति करने से हो सकती है। परन्तु उसे स्थिर संतोष नहीं मिला। सन् १५०८ ई० में वह विटनबर्ग विद्यापीठ में अध्यापक नियुक्त हुआ और पॉल के पत्रों तथा भक्ति से मुक्ति पाने के सिद्धान्त की शिक्षा देने लगा। सन् १५११ ई० में उसे रोम जाना पड़ा। इटली के धर्माधिकारियों के भ्रष्ट आचरण ने उसके विश्वासों को पूर्ति धूसरित कर दिया। उसके हृदय में दृढ़ विश्वास हो गया कि प्रधान धर्म श्रद्धा ही धर्म की मुख्य वस्तु है। इसी समय एक महत्त्वपूर्ण घटना हुई जिसने लूथर को कट्टर विरोधी बना दिया। वह घटना थी—'पैपल निवेदन पत्रों का विक्रय।"

प्रोफ़ेसर जिओ टटजल ने, जो कि विटनबर्ग विद्यालय हो गया था, 'इन्डलजेन्सेज़' बेचने शुरू किये। इन्डलजेन्स एक प्रकार का क्षमा-याचना पत्र था जो कि मूल्य के बदले में दिया जाता था। इसका अभिप्राय यह था कि जो श्रद्धालु अपने पापों के लिए शोकमग्न हो कर इन पत्रों को खरीदेगा वह नरक से मुक्त [illegible] पंचे हुए लेखकों ने इस (इन्डलजेन्स) सिद्धान्त की आलोचना

बतलाया है। उनके कथनानुसार इन्डलजेन्स क्षमा याचना आयोग के द्वारा पापी लोगों पर किया हुआ जुर्माना था, न कि पापों का पश्चात्ताप। विटेनवर्ग प्रान्त में पोप के अधिकारी जॉन टिटजल ने विशेष लगन के साथ इन्हें बेचना शुरू किया लूथर को यह कार्य धर्म विरुद्ध लगा और उसने वहां के मठ के द्वार पर अपने '६५ सिद्धान्त' नामक विरोधों को लिख कर चिपका दिया। टिटजल ने लूथर के इस कार्य के विरुद्ध पोप तथा पोप के सहायक सम्राट चार्ल्स से शिकायत की। यद्यपि लूथर के लेख लैटिन में थे परन्तु जनसाधारण ने उसके महत्व को समझ लिया। इसके अतिरिक्त इन सिद्धान्तों का रोमन भाषा में अनुवाद किया गया तथा मुद्रण प्रणाली की सहायता से इन सिद्धान्तों की हजारों प्रतियाँ जनता के बीच पहुँच गईं। पोप ने वर्म्स में एक बड़ी सभा का आयोजन किया और लूथर को आमंत्रित किया। सैक्सनी का इलेक्टर लूथर का पक्षपाती था। उसने लूथर की सुरक्षा का उत्तरदायित्व लिया और लूथर पोप की सभा में उपस्थित हुआ। उसने अपने सिद्धान्तों को पुनः दुहरा दिया, किसी प्रकार का संशोधन नहीं किया गया। पोप ने लूथर को धर्म बहिष्कृत करने की आज्ञा दी और सम्पूर्ण जनता को आदेश दिया कि लूथर से सम्बन्ध विच्छेद कर ले। परन्तु अब तक हजारों व्यक्ति और असंख्य राजा एवं राजकुमार लूथर के पक्षपाती हो गये थे। जब पोप की आज्ञा लूथर को प्राप्त हुई तो उसने पोपाज्ञा को भरी जनता की सभा में जला दिया। उसकी शक्ति बढ़ चली और यद्यपि कुछ काल तक उसे विटैनवर्ग के किले में राजा की रक्षा में रहना पड़ा परन्तु वह अपने कर्तव्य पालन से न चूका। उसकी पुस्तकें निरंतर निकलती गईं और जनता उन्हें पढ़ती और उनका पालन करती गई। लूथर के सिद्धान्त उसके मरने पर भी प्रचलित होते रहे। उसका नया विरोधी दृष्टिकोण रोमन कैथोलिक धर्म के विरोध में प्रोटेस्टेन्ट कहलाया जिसकी बेलें स्काटलैंड, डेन्मार्क, नार्वे, स्विडन, हालैण्ड, उत्तरी जर्मनी तथा फ्रांस में भी लगीं और मजबूत हो चलीं।

लूथर के सिद्धान्त

(१) क्षमा प्रदान से विशेष लाभ नहीं होता। जो सचमुच पश्चात्ताप करता है वह यातना से भागता नहीं वरन् पश्चात्ताप की चिरस्मृति रखने के लिये उसे

सहर्ष सहन करता है। यदि क्षमा मिल सकती है तो केवल ईश्वर भक्ति करने से न कि पुरोहितों की कृपा से। जिस ईसाई को हृदय से पश्चात्ताप होता है उसे अपने पापों तथा यातना दोनों से रिहाई हो जाती है।

(२) उसने पोप की सर्वोच्च शक्ति को अस्वीकार किया। उसके अनुसार पोप की शक्ति की वृद्धि धीरे धीरे मध्य युग में हुई। इसके पूर्व के महात्माओं को न तो स्तुतियों का, न वैतरणी स्थान का और न रोमन विषय के अधिपति होने ही का ज्ञान था।

(३) वह राष्ट्रीय चर्च की शक्ति में वृद्धि चाहता था तथा रोम के प्रमुत्व को समाप्त करना। उसके अनुसार धर्म ग्रन्थ सब के लिये खुले हुए थे और श्रद्धालु भक्त स्वयं उनका ज्ञान प्राप्त कर लें।

(४) मुक्ति केवल ईश्वर में श्रद्धा तथा भक्ति के द्वारा ही हो सकती है।

(५) यदि कोई भी धर्म संस्था या धर्माधिकारी अपराध करे तो सरकार का कर्तव्य है कि साधारणजन की भांति उसे दंडित करे।

(६) नागरिक लोगों की भांति पादरी लोग भी विवाहादि किया करें और कुटुम्बी बन कर रहें।

(७) विद्यापीठों का सुधार होना चाहिये और 'विधर्मी पाखण्डी अरस्तू' को भूल जाना चाहिये।

(८) ईसाई धर्म के सात संस्कारों में से चार—अभिषेक, विवाह, अनुमोदन तथा अवलेपन को लूथर ने एक दम अस्वीकार कर दिया। उसने केवल तीन संस्कारों—नामकरण, प्रायश्चित्त तथा यूकेरिस्ट—को स्वीकार किया।

(९) लूथर ने स्तुति तथा भगवत्-भोग के तात्पर्य को एक दम उलट दिया। उसके मत से पुरोहित का काम केवल उपदेश देना है।

लूथर के सिद्धान्तों ने जर्मनी में गृह युद्ध की ज्वाला को भड़का दिया। प्रोटेस्टेन्ट तथा कैथोलिक सम्प्रदाय के समर्थकों में संघर्ष हुआ जिसका अन्त सन् १५५५ ई० की आग्सबुर्ग की धार्मिक संधि से हुआ।

संधि की शर्तें—(१) साम्राज्य परिषद् में कैथोलिक ... ो ... दोनों को समान प्रतिनिधित्व दिया जाना स्वीकार किया ग य

(२) पासा की संधि के पूर्व जितनी सम्पत्ति धर्म के नाम पर दी गई है वह कायम रहेगी परन्तु अब कोई सम्पत्ति चर्च को नहीं दी जायेगी।

(३) 'Cujus regio, Ejus religio' का सिद्धान्त स्वीकार किया गया, अर्थात् जो राजा का धर्म होगा वही जनता का धर्म होगा। अर्थात् राजाओं को अपने राज्य में अपनी इच्छानुसार धर्म स्वीकार करने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई।

(६ ज्विंगली—धर्मसुधार आन्दोलन के अग्रदूतों में ज्विंगली का भी महत्वपूर्ण स्थान है। यह भी एक किसान का लड़का था। धर्म संस्था के प्रति उसके असन्तोष का कारण लूथर की भाँति कठिन तपश्चर्या नहीं था बल्कि प्राचीन यूनानी ग्रन्थों तथा लैटिन भाषा में न्यू टेस्टामेण्ट का अध्ययन था। उसके अनुसार केवल बाइबल ही धर्म पुरोहित है। उसने तीर्थ स्थान के धर्म-स्व को अस्वीकार किया और धर्म संस्था की उन प्रथाओं को उठाना चाहा जिनको लूथर ने जर्मनी में उठवा दिया था। उपवास तथा पादरियों के अविवाहित जीवन की प्रथा पर उसने आक्षेप किया। ज्यूरिच (स्विट्जरलैण्ड) में उसका मत फैलने लगा। परन्तु कपेल में प्रोटेस्टेण्ट तथा कैथोलिक में युद्ध हुआ जिसमें ज्विंगली मारा गया। मरने से पूर्व स्विट्जरलैण्ड में उसका मत फैल चुका था।

(७) कैल्विन —कैल्विन प्रोटेस्टेण्ट सम्प्रदाय का अनुयायी था। इस मत का प्रचार स्काटलैण्ड तथा अमेरिका में बहुत हुआ। उसका जन्म सन् १५०९ ई० में फ्रान्स में हुआ था। उसने 'इन्स्टिट्यूट्स आफ क्रिश्चियन रिलीजन' नाम की पुस्तक लिखी। प्रोटेस्टेण्ट धर्म में इस ग्रन्थ का बहुत महत्व है। इस पुस्तक में धर्म व्यवस्था तथा [illegible] की [illegible] का [illegible] पूर्ण [illegible] की [illegible] है। फ्रान्स तथा स्काटलैण्ड और अमेरिका में [illegible] कैल्विन द्वारा [illegible] प्रोटेस्टेण्ट धर्म का प्रचार हुआ।

इस प्रकार धर्मसुधार के अग्रदूतों के [illegible]
[illegible]

में एक नवीन सम्प्रदाय का विकास हुआ जो आज भी ईसाई धर्म का नेतृत्व कर रहा है।

(इ) महान भौगोलिक खोजें

मध्य युग के अन्तिम समय में मनुष्य के भौगोलिक ज्ञान में काफी अभिवृद्धि हुई और साहसिक व्यक्तियों ने सुदूर देशों की यात्रा की और वहाँ की प्रकृति तथा निवासियों के रहन सहन का ज्ञान प्राप्त किया। अरब के यात्रियों के यात्रा-वृत्तान्तों से पश्चिमी यूरोप निवासियों को भूगोल के विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त हुआ। मार्कोपोलो के यात्रा विवरण को पढ़ कर लोगों का मानसिक क्षितिज भी विस्तृत हुआ और उनकी कूपमण्डूकता का निराकरण हुआ।

प्रथम खोज

जिस समय यूरोप में राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना का भयंकर संघर्ष चल रहा था, खोजों के क्रम ने संसार के क्षेत्रफल को विस्तृत कर दिया था और नये-नये क्षितिज खुल चुके थे पुर्तगाल के साहसिक नाविक एवं अन्वेषणकर्त्ता अफ्रीका के सामुद्रिक तटों के सहारे अफ्रीका के दक्षिणी भाग के अनुसंधान में लगे हुए थे। सन् १४८५ ई० में बूवर्थ फील्ड (Booworth Field केप कॉलोनी (Cape of Good Hope) तक पहुँचने में सफल हुआ। उसके दो वर्ष पश्चात् अर्थात् सन् १४८७ ई० में बार्थोलमेन डाइज (Bartholcmen Diaz) ने केप कॉलोनी का चक्कर लगा कर भारत के लिए नवीन सामुद्रिक मार्ग का पता लगाने में सफलता प्राप्त की। अब भारत तथा पाश्चात्य राष्ट्रों के मध्य सामुद्रिक द्वार खुल गया। सन् १४९२ ई० में जब कि हैनरी सप्तम इंगलैंड में आन्तरिक विद्रोहों को कुचलने में लीन था, कोलम्बस भारत का पश्चिमी मार्ग खोजने में संलग्न था। उसने एक नई दुनिया की खोज की तथा दो साहसिक यात्राओं द्वारा पश्चिमी द्वीपसमूह (West Indies) के टापुओं पर स्पेनिश ध्वजा फहराई। सन् १४९७ ई० में कोर्निश लोग (Cornish) ब्लैकहीथ की ओर अग्रसर हो रहे थे। वास्को-डी-गामा ने भारत के मार्ग की शोध की और पूर्व कथित धनराशि लिस्बन (Lisbon) में आने लगी। यूरोप के लोग इन खोजों द्वारा उत्तेजित हो गये थे। यहा तक कि प्रत्येक राष्ट्र ने इसमें रुचि ली

और सुशील व साहसिक नाविकों को सहायता दे कर खोज सम्बन्धी कार्यों के लि भेजा। इस प्रकार की रुचि लेने वाले राष्ट्रों में इंगलैंड का नाम भी महत्वपू है। हैनरी सप्तम ने जॉन तथा कॉबट को खोज कार्य के लिये भेजा। ये लो उत्तरी अमेरिका महाद्वीप में अन्दाजे से ग्रीनलैंड से विरजीनिया तक पहुँचने में सफल हुये।

उपर्युक्त साहसिक भौगोलिक कार्यों के प्रारम्भ का भार स्पेन तथा पोर्चु गीज लोगों पर पड़ा। स्पेन पूर्व की ओर तथा पुर्तगाल पश्चिम की ओर अग्रसर हुआ। सन् १४६२ ई० में ईसाई धर्मगुरु पोप ने, जो अभी तक श्रेष्ठतम स्वेच्छाचारी माना जाता था, वाह्यविश्व को दो भागों में कथित रेखा द्वारा विभाजित कर दिया जो कि अगले वर्ष दो शक्तियों—स्पेन तथा पुर्तगाल की सुलह द्वारा परिवर्तित किया गया। इस सुलह द्वारा पुर्तगाल—को ब्राजील, एशिया तथा अफ्रीका का क्षेत्र मिला तथा स्पेन को ब्राजील के अतिरिक्त सम्पूर्ण नई दुनिया (अमेरिका) का क्षेत्र प्राप्त हुआ। तीस वर्षों के अन्तर्गत आश्चर्यजनक उत्साह द्वारा अन्वेषण कार्य प्रगतिशील हुआ। पोर्चुगीज लोगों ने पूर्व में महान् सामुद्रिक आधिपत्य की स्थापना की तथा अल्बुकर्क के नेतृत्व में आवागमन के मार्गों पर एकाधिकार प्राप्त कर लिया। सन् १५०० ई० में पूर्व में उन्हें आचित ब्राजील भी प्राप्त हो गया।

स्पेन तथा पोर्चुगीज के कार्य

स्पेन के मल्लाहों ने संसार का नवीन मानचित्र तैयार किया। सन् १५०२ ई० में अमीरीगो वेस्पूकी (Amerigo Vespucci) ने दक्षिण अमेरिका की खोज द्वारा महानता दिखलाई। सन् १५५३ ई० में बालबोआ (Balboa) ने पनामा के इस्थमनो (Isthumno) को पार कर प्रशान्त महासागर का अनुसंधान किया। सन् १५१६ ई० में कॉर्टेज (Cortez) ने मैक्सिको तथा वहाँ के खनिज धन को प्राप्त किया। सन् १५१६ से १६२२ ई० तक के अति साहसिक मेगेल्लन (Magellan) ने सारे संसार का चक्कर लगाया। इस ही समय के बाद स्पेन में नये द्वीपपुंजों द्वारा अपूर्व द्रव्य राशि आने लगी जिसने यूरोपीय मामलों में विशेष प्रभुत्व जमाया।

ये घटनाएं आंग्ल इतिहास का प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं क्योंकि अंग्रे ज का इसमें निम्न रूप से भाग रहा। परन्तु भविष्य की दृष्टि से इन्हीं घटनाओं का

छोटे मोटे विद्रोहों तथा षंयों के प्रतिष्ठित कार्यों से कहीं अधिक महत्व रहा।

इंगलैण्ड

इंगलैण्ड के साहसिक "सामुद्रिक कुत्तों" (Sea Dogs) ने सम्पूर्ण विश्व की परिक्रमा की एवं स्पेन तथा पुर्तगाल के नाविकों के कठोर परिश्रम द्वारा उपार्जित द्रव्य राशि को शक्ति-प्रदर्शन द्वारा प्राप्त किया। इन घटनाओं ने मानवीय भावनाओं को परिवर्तित कर दिया तथा मानवीय कार्यों, चरित्र तथा श्रेणी में महान् परिवर्तन ला दिया। इन घटनाओं ने भविष्य के नवीन रंग-मंच का उद्घाटन किया।

पूर्व और पश्चिम

पन्द्रहवीं शताब्दी तक पश्चिमी जगत को बाह्य विश्व का बहुत कम ज्ञान था उस समय यूरोप और एशिया का व्यापारिक मार्ग लाल सागर से मिश्र होता हुआ भूमध्य सागर पहुँचता था। एक दूसरा मार्ग एशिया की खाड़ी से बसरा, बगदाद होता हुआ एशिया माइनर के बन्दरगाहों पर जाता था। सर्वप्रथम ये मार्ग अरबों के अधिकार में थे। अरब सभ्य एवं सुसंस्कृत थे। उन्होंने व्यापारिक उन्नति के मार्गों को पूर्ण रूप से कंटकहीन बना रखा था। परंतु १४५३ ई० में तुर्कों ने पूर्ण रूप से न केवल अरबों पर ही अधिकार स्थापित कर लिया वरन् पूर्वी रोमन साम्राज्य की राजधानी कुस्तुन्तुनिया पर भी अधिकार कर लिया। तुर्क लोग असभ्य थे। वे व्यापार-वाणिज्य के महत्व को नहीं जानते थे और लूटमार को ही श्रेष्ठ समझते थे। फलस्वरूप पूर्व और पश्चिम का व्यापारिक मार्ग बन्द हो गया।

यूरोपियन लोगों को नवीन मार्गों को ढूंढ़ने की उत्सुकता हुई, क्योंकि पूर्व और पश्चिम में घनिष्ट व्यापारिक सम्बन्ध था और मसाले बहुत बड़ी मात्रा में पूर्वी देशों से ही यूरोप में जाते थे। इस समय तक यूरोप में दिग्दर्शक यंत्र का प्रवेश हो चुका था और जहाजों के आकार भी बड़े होने शुरू हो गये थे। इन्हें चलाने के लिये पाल का प्रयोग भी शुरू हो गया था और महासागर में दूर-दूर स्थानों तक सुगमता से जाया जा सकता था। इन खोज सम्बन्धी कार्यों में स्पेन और पुर्तगाल ने सक्रिय रुचि ली। आखिर सन् १४९८ ई० में वास्को-

डी गामा नामक पुर्तगीज मल्लाह अफ्रीका का चक्कर काट कर भारत पहुंचने में सफल हुआ।

इस नवीन मार्ग की प्राप्ति के पश्चात् पाश्चात्य राष्ट्रों के निवासी दूर-दूर तक पूर्व में आने जाने लगे। सन् १५११ ई० में उन्होंने मलक्का पर अपना अधिकार स्थापित किया। सन् १५१८ ई० में उन्होंने चीन का द्वार खटखटाया। १५४१ ई० में पुर्तगाल वासियों ने जापान की एकान्तता भंग की। १५२१ ई० में प्रसिद्ध स्पेनिश यात्री फर्डिनेण्ड मैगेल्लन पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ फिलिपीन पहुंचा।

इस प्रकार महान भौगोलिक खोजों ने पाश्चात्य जगत को चकित कर दिया। वे अपनी आन्तरिक कलहों को भूल कर नवीन संसार में अपना साम्राज्य स्थापित करने में रुचि लेने लगे। वास्तव में आधुनिक समाज के विकास में भौगोलिक खोजों ने महत्वपूर्ण सहयोग दिया।

(ई) अन्वेषण तथा आविष्कार

बहुत से इतिहासकार आविष्कारों को नवीन युग की देन बतलाते हैं। कुतुबनुमा की डिबिया, बारूद तथा मुद्रण यन्त्र के युग-परिवर्तनकारी आविष्कारों के प्रचलन को आधुनिक युग की देन बतलाते हैं। परन्तु यह सत्य नहीं है। यदि हम अपने युग के मोह से दूर रह कर मध्ययुग के यन्त्र विज्ञान का सूक्ष्म अध्ययन करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इसने हमारे आधुनिक यन्त्र-विज्ञान के विकास का मार्ग प्रशस्त और सुगम कर दिया।

मध्ययुग में आविष्कारों और यन्त्र विज्ञान की काफी उन्नति हुई। इस युग में लोग प्राचीन युग के औजारों और यन्त्रों से ही सतुष्ट नहीं रहे बल्कि उन्होंने नूतन यन्त्रों और वस्तुओं के आविष्कार भी किये। दिग्दर्शक यन्त्र, बारूद और मुद्रण यन्त्र के आविष्कारों का यूरोप में मध्ययुग में ही प्रचलन हुआ। आधुनिक यूरोप निवासी को इन वस्तुओं के लिये तीन लोगों का ऋण स्वीकार करना पड़ा है—(१) चीनी जनता का जिसने इन वस्तुओं के आविष्कार का ज्ञान एवं प्रेरणा दी, (२) अरबों का, जिन्होंने चीनियों के इस ज्ञान को

...व एशिया एवं यूरोप में प्रचलित किया तथा (२) मध्यकालीन पूर्वजों का ...होंने इस ज्ञान से पूर्ण लाभ उठाया और नवीन आविष्कार किये।

दिग्दर्शक यन्त्र या कुतुबनुमा की डिबिया

दिग्दर्शक यन्त्र के आविष्कार के पहले सम्पूर्ण पाश्चात्य संसार कूप-मंडूकता में ही मस्त था। उसे बाहरी संसार का अधिक परिचय नहीं था। सामुद्रिकों का साहस भी समुद्र के तटों तक ही सीमित था। परन्तु दिग्दर्शक यन्त्र के आविष्कार ने दिशाओं के द्वार को उन्मुक्त कर दिया। अब साहसिकों का साहस भी बढ़ गया और वे दूर-दूर ...क जाने लगे। वास्तव में ये आविष्कार एक क्रान्तिकारी घटना थी। इस ...ष्कार ने सागर की मदमस्त निरंकुश लहरों का मानमर्दन किया और अनेक अज्ञात महाद्वीपों की खोज की गई, जिसका पूर्ण विवरण पिछले अध्याय में दिया गया है।

बारूद का आविष्कार भी एक महत्वपूर्ण घटना है। इस आविष्कार के पूर्व राजाओं की शक्ति निर्बल थी क्योंकि सामन्त लोग अपने विशाल भीमकाय दुर्जेय दुर्गों द्वारा अपनी आत्म रक्षा कर लेते थे और महीनों तक शत्रु बारूद को सुगमतापूर्वक छुड़ा सकते थे। इसके अतिरिक्त इन दुर्गों को ढहाना या विजित करना भी बहुत कठिन था। इस आविष्कार ने राजाओं की निर्बल शक्ति को पुनर्जन्म दिया। राजाओं ने बारूद की सहायता से दुर्जेय एवं दुर्गम दुर्गों को विजित करना प्रारम्भ कर दिया। दुर्ग बारूद की शक्ति के सामने बालू के टीले की तरह ध्वंसित होने लगे। सामन्त शक्ति का अवसान हुआ, व्यक्तिगत शूरवीरता का महत्व घटने लगा। इंगलैंड के हेनरी सप्तम ने बारूद की सहायता से ही सामन्तों की सत्ता को कुचला था। यह एक बुद्धिमानी की बात थी कि यूरोप के राजाओं ने बारूद के प्रयोग पर राज्य का एकाधिकार स्थापित कर लिया। राज्य की आज्ञा के बिना कोई सामन्त बारूद का निर्माण नहीं कर सकता था और न ही किसी सामन्त को राज्य की आज्ञा के बिना बारूद प्राप्त हो सकती थी। फलतः हम कह सकते हैं कि बारूद का आविष्कार मध्य युग की परिवर्तनकारी घटना थी और राजनैतिक सत्ता के लिए महत्वपूर्ण कृति भी।

मुद्रण यन्त्र के आविष्कार ने पुनरुत्थान अर्थात् शिक्षा की चेतना को बहुत सहयोग दिया। इसके पूर्व व्यक्ति अपनी कूपमण्डूकता में ही मग्न था। उसे अन्य राष्ट्रों की गति विधियों का कोई ज्ञान नहीं था।

मुद्रण यन्त्र यहां तक कि अपने राष्ट्र के नेताओं की नीति एवं दूर दूर के प्रांतों की गतिविधियों का भी पूर्ण ज्ञान नहीं था। इसके अतिरिक्त शिक्षा को प्राप्त करना भी कठिन था। बाइबिल का मनन भी मुश्किल था क्योंकि हस्तलिखित पुस्तकों को खरीदने लायक द्रव्य उनके पास नहीं था। परन्तु मुद्रण यन्त्र ने इन सब कठिनाइयों को दूर कर दिया और मानव की सुदूर राष्ट्रों की गतिविधियों में रुचि बढ़ने लगी।

मुद्रण यन्त्र का सर्व प्रथम परीक्षण हालैण्ड में लारेन कास्टर ने किया परन्तु उसे विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसके परीक्षण को मनटबर्ग ने पूर्ण किया और उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। परन्तु वास्तविक सफलता सन् १५०० ई० में इटली के निवासी अडेलो को प्राप्त हुई। उसने असंख्य पुस्तकें प्रकाशित कीं। जनता को ये पुस्तकें सस्ते दामों में मिलने लगीं। सर्व प्रथम धार्मिक ग्रंथों को प्रकाशित किया गया जिससे जनता की रुचि बढ़ी। जनता अपने युग की राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक समस्याओं को समझने लगी। राष्ट्र हित अहित का ज्ञान होने लगा। यही कारण है कि यूरोप में पुनरुत्थान, एवं धार्मिक क्रांतियां हुई। इन दोनों परिवर्तनों की आधार शिला थी—मुद्रण-यन्त्र की पद्धति एवं उसका सस्ता प्रकाशन।

[उ] राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव

मध्ययुग के अवसान के कुछ ही पूर्वकाल में, पश्चिमी यूरोप में अनेक राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना की गई। जर्मन आक्रांता पश्चिमी यूरोप में स्थायी रूप से बस गये थे और स्थानीय लोगों से काफी हिल मिल गये। कालान्तर में उनके प्रयत्नों द्वारा पश्चिमी यूरोप में राष्ट्रीयता का प्रचार किया गया तथा राष्ट्रीय राज्यों का निर्माण भी किया गया। सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सामन्तवाद की शक्ति जर्जर हो चुकी थी। सौ वर्षीय युद्ध, गुलामों के युद्ध, [illegible], करों की वृद्धि, स्थायी सेना की वृद्धि आदि ने राजाओं को

अपनी शक्ति बढ़ाने में अथक सहयोग दिया। इटली में राष्ट्रीय राज्य का निर्माण न हो सका क्योंकि परिस्थितियां अनुकूल न थीं। बड़े बड़े व्यापारिक शहर अपनी स्वतन्त्रता को त्यागने के लिये तैयार न थे और पोप तथा सम्राट में अधिकार एवं सत्ता की समस्या को ले कर प्रतिद्वन्द्विता जारी थी। जर्मनी का राजा अपने सामन्तों को नियंत्रण में रखने में असमर्थ सिद्ध हुआ। परन्तु इंगलैण्ड, फ्रांस, तथा स्पेन के शासकों ने राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की। इसी प्रकार पुर्तगाल, स्विटजरलैण्ड आदि राष्ट्रों में भी राष्ट्रीय राज्यों का निर्माण किया गया। इस समय के पश्चात् ये राज्य राष्ट्र बन गये। इन राज्यों के चर्च राष्ट्रीय चर्च में परिवर्तित हो गये। अध्ययन की सुगमता के लिये पृथक् पृथक् राष्ट्रों का अध्ययन लाभदायक रहेगा।

आज सम्पूर्ण विश्व में आंग्ल साम्राज्य का विशेष महत्व है। परन्तु आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व इंगलैण्ड एक छोटा सा राज्य था। सम्पूर्ण इंगलैण्ड पर सामन्तों का अधिकार था। मध्ययुग के आरम्भ में

(१) इंगलैण्ड. इंगलैण्ड पर ऐंग्लो सैक्सनों तथा नार्मनों ने आक्रमण किये। नार्मन विजय आंग्ल इतिहास में विशेष महत्व रखती है क्योंकि उन्होंने एकीकरण की भावना के द्वार को उन्मुक्त किया। यद्यपि इंगलैण्ड का वेल्स, आयरलैण्ड तथा स्काटलैण्ड के साथ अनेक शताब्दियों के पश्चात् एकीकरण हुआ परन्तु नार्मन विजय ही इस एकीकरण की आधारशिला थी। प्रारम्भ में विजेता विलियम ने शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। इस राज्य का विस्तार हैनरी द्वितीय के शासन में हुआ। परन्तु उसके पश्चात् सामन्तों की शक्ति का विकास हुआ। सौ वर्षीय युद्ध तथा गुलाबों के युद्ध ने सम्पूर्ण इंगलैण्ड में विनाशकारी दृश्य उपस्थित कर दिया। चारों तरफ अराजकता एवं अव्यवस्था का ताण्डव नृत्य हो रहा था और इन सब बातों का उत्तरदायित्व था वर्ग प्रथा पर इस समय इंगलैण्ड में दो वर्गों की प्रधानता थी—लंकास्टर वर्ग एवं यार्क वर्ग। सर्वप्रथम लंकास्टर वर्ग के हाथों में शासन की बागडोर थी परन्तु चौदहवीं शताब्दी में पासा पलट गया और राज्यसिंहासन यार्क वर्ग के हाथों से चला गया। गुलाबों के युद्ध के पश्चात् सामन्तों की सत्ता लड़खड़ा रही थी। यार्क वर्ग के अंतिम शासक की मृत्यु ने रिचार्ड को इंगलैण्ड

का सर्वेसर्वा बना दिया। परन्तु रिचार्ड के अत्याचारी एवं उसकी वर्गीय नीति से घबरा कर जनता ने लकास्टर वर्ग के निर्वासित नेता हेनरी को निमंत्रित किया जो बाद में हेनरी सप्तम के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

हेनरी सप्तम ने यार्क वर्ग को पराजित कर के उस वर्ग की राजकुमारी एलिजाबेथ से विवाह कर लिया। इस वैवाहिक सम्बन्ध के द्वारा दोनों वर्गों की शत्रुता भी समाप्त हो गई। वर्गीय शत्रुता के समाप्त होते ही हेनरी ने ट्यूडर वंश की स्थापना की और निरंकुश ट्यूडर साम्राज्य का निर्माण किया। उसने केन्द्रीय शक्ति का विकास किया। सामन्तों का दमन किया एवं राष्ट्रीय राज्य तक स्थापना की। उसके पुत्र हेनरी अष्टम ने पोप की सत्ता को समाप्त किया और राष्ट्रीय चर्च की स्थापना की। फलस्वरूप सम्राट् जनता का धार्मिक नेता भी बन गया।

फ्रांस के शासकों को राष्ट्रीय राज्य की स्थापना के लिए कई शताब्दियों तक संघर्ष करना पड़ा। १५ वीं शताब्दी में लुई नवम् तथा फिलिप के माध्यम से जो कुछ भी प्रयत्न किये गये थे वे सब समय के साथ

(२) फ्रांस समाप्त होते गये और सोलहवीं शताब्दी में सामन्तों की शक्ति उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गई। राजा के अधिकार श्री-हीन हो गये इस प्रकार नाममात्र का शासक रह गया। परन्तु सत्रहवीं शताब्दी के कुछ समय पहले फ्रांस के दो महान् राजनीतिज्ञों रिशेलिन तथा मेजरिन ने सामन्तवादी शक्ति का दमन किया और राजा के अधिकारों की वृद्धि की। उसके उपरान्त महान् फ्रांसीसी सम्राट् लुई चतुर्दश ने राष्ट्रीय राज्य की आधारशिलाओं को पूर्ण रूप से दृढ़ किया। उसने स्वेच्छाचारी नीति के सहारे निरंकुशता एवं राजा के दैविक अधिकारों को अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचाया। वह अपने आप को ईश्वर का प्रतिनिधि मानता था तथा जनता से अपनी पूजा करवाता था। तत्कालीन दार्शनिक बोदां ने उसके सिद्धान्तों को उचित ठहराया। बोदां के अनुसार सम्राट् को निरंकुश होना ही चाहिए तथा कर्तव्यों को कुचलना चाहिये। लुई द्वारा स्थापित निरंकुशता क्रांति की विनाशात्मक शक्ति के सामने बालू के टीले की तरह ढह गई और सन् १७८९ ई० में उसके उत्तराधिकारी सोलहवें लुई को सम्मुख के फ्रांस में प्रजातांत्रिक सरकार की स्थापना की गई।

सन् १२३८ ई० में स्पेन के निवासियों ने आक्रमणकारी मूरों को मार भगाया। उन समय स्पेन में तीन पृथक् राज्यों का निर्माण किया गया था। ये राज्य थे—पुर्तगाल, आरगन और केस्टाइल। केस्टाइल और आरगन में सत्ता के लिये परस्पर युद्ध हुआ करते थे परन्तु सन् १४६७ ई० में आरगन के फर्डिनेन्ड तथा केस्टाइल की उत्ताधिकारिणी आइसाबेला में परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हो जाने से दोनों राज्यों में एकता हो गई। उसके उपरान्त ग्रेनेडा को जीत कर स्पेन के साम्राज्य में मिला दिया गया और स्पेन को राष्ट्रीयता पूर्ण हुई। अब स्पेन पूर्ण रूप से राष्ट्र बन गया फर्डिनेन्ड और आइसाबेला ने स्पेन में निरंकुश सत्ता कायम की। उन्होंने न्यायालयों की शक्तियां छीन लीं तथा सामन्तों की शक्ति एवं अधिकार कम कर दिये। स्पेन में बसने वाले यहूदियों को स्पेन छोड़ने की अथवा ईसाई धर्म को स्वीकार करने की आज्ञा दी गई। इस प्रकार स्पेन में राष्ट्रीय राज्य की स्थापना हुई। यह व्यवस्था बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक-काल तक जारी रही।

(३) स्पेन

पुर्तगाल प्रारम्भ में केस्टाइल वर्ग के अधीन एक निम्न वर्ग था और केस्टाइल राज्य के अन्तर्गत एक छोटा सा राज्य था। परन्तु ११४० ई० में जब मूरों को स्पेन से खदेड़ दिया गया और केस्टाइल की शक्ति निर्बल पड़ गई तो पुर्तगाली शासक ने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया और स्वतन्त्र राजा की पदवी धारण की। उसने भी सामन्त प्रथा के अधिकारों एवं शक्ति को कुचल कर निरंकुश एव स्वेच्छाचारी राष्ट्रीय राज्य की स्थापना की।

(४) पुर्तगाल

मध्ययुग के अवसान के कुछ काल पूर्व पोलैण्ड यूरोप का सब से विस्तृत राज्य था। परन्तु यह राज्य न तो शक्तिशाली ही था और न समृद्धिशाली। सन् १३६८ ई० में पोलैण्ड तथा लिययूनिया के राजवंश वैवाहिक सम्बन्ध के द्वारा एकता के सूत्र में बंध गये। इस से राजा की शक्ति बढ़ गई। फलतः उसने सामंतों की शक्ति को नष्ट करने का प्रयत्न किया परन्तु उसका प्रयोजन सफल न हो सका और सामंतों की विजय हुई। सामन्त-विजय ने राजा की शक्ति को संकुचित एवं

(५) पोलैण्ड

भी हीन कर दिया। सामन्तों ने जनता पर नाना प्रकार के अत्याचार आरम्भ किये। उनके उत्पीड़न से सम्पूर्ण पोलैण्ड में अराजकता एवं अव्यवस्था फैल गई और साम्राज्य का विकेन्द्रीकरण हो गया। आन्तरिक शक्ति की निर्बलता के सुअवसर से लाभ उठाते हुए यूरोप के तीन शक्तिशाली राष्ट्रों—रूस, प्रशिया तथा आस्ट्रिया ने सम्पूर्ण पोलैण्ड को अपने अधिकार में कर लिया। यद्यपि इस प्रकार की नीति स्वार्थ एवं अन्याय की द्योतक है परन्तु पोलैण्ड की परिस्थितियाँ ही ऐसी थीं कि किसी भी साम्राज्यवादी राष्ट्र का ध्यान उसकी तरफ आकर्षित हो सकता था। सामन्तों की अनियन्त्रितता ने पोलैण्ड को परतन्त्रता की शृंखलाओं में जकड़ दिया।

(६) स्विटजरलैण्ड

स्विटजरलैण्ड के राष्ट्र निर्माण की कथा यूरोपीय इतिहास में साहस एवं धैर्य का ज्वलन्त उदाहरण है। प्रारम्भ में स्विटजरलैण्ड पवित्र रोमन साम्राज्य के अधीन एक छोटा सा राज्य था परन्तु स्वतन्त्रता-प्रिय नागरिकों ने अपने आपको पवित्रता के बंधन से मुक्त कर लिया और स्विटजरलैण्ड के स्वतंत्र राज्य की आधार शिला रखी। स्विटजरलैण्ड के मुट्ठी भर वीरों ने सेनानायकों, सम्राटों एवं सामन्तों का डट कर सामना किया और अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने में समर्थ हुए। पन्द्रहवीं शताब्दी में स्विटजरलैण्ड साम्राज्य से बिलकुल पृथक् हो गया और प्रजातांत्रिक सरकार की स्थापना की गई। उस युग में स्विटजरलैण्ड ही एक ऐसा राज्य था जिसमें प्रजातांत्रिक सरकार की स्थापना सफलता के साथ की गई।

(७) रूस

मध्ययुग के मध्यकाल तक रूस पाश्चात्य राष्ट्र नहीं गिना जाता था। उसे एशिया में गिना जाता था। रूस में भी सामंतों की शक्ति अपनी चरम सीमा पर थी। रूस के प्रथम जार पीटर महान् ने रूस में अनेक सुधार किये एवं पाश्चात्य संसार से रूस का सम्पर्क स्थापित किया। कैथराइन ने रूस की सामंत शक्ति को पूर्णतया नष्ट किया एवं रूस को पाश्चात्य संसार की शक्तिशाली बना दिया।

यूरोप में राष्ट्रीय राज्यों के अभ्युदय का विशेष राजनैतिक महत्व है। परन्तु राष्ट्रीय राज्यों का पूर्ण विकास आधुनिक युग में ही हुआ मध्य युग में नहीं।

राष्ट्रीयता का प्रभाव

यह सत्य है कि मध्य युग में राष्ट्रीय राज्यों की आधार शिला रखी एवं आधार शिला को ठोस रूप देने में सफल भी हुआ। परन्तु यह भी सत्य है कि मध्य युग में राष्ट्रीय राज्यों का निर्माण सम्पूर्ण यूरोप में नहीं हो सका और न ही राष्ट्रीयता के भावों का सर्वत्र प्रचार ही। पुनरुत्थान के उपरान्त राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति की लहरें सम्पूर्ण यूरोप में फैल गई और वास्तविक रूप में राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना की गई।

आधुनिक युग में निरंकुश शासन को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। परन्तु उस युग में निरंकुश शासन लोकप्रिय ही नहीं था बल्कि जनता को निरंकुश शासकों की आवश्यकता थी। मध्ययुग का मध्यकाल अराजकता एवं अव्यवस्था का युग था। इस प्रकार की व्यवस्था को समाप्त करने के लिये मानव जाति ने सामन्तवाद का सहारा लिया। यह सत्य है कि सामन्तवाद ने जनता को अराजकता एवं अव्यवस्था से मुक्ति दी। परन्तु सामन्तवाद के अंतिम दिनों में, जिस अराजकता एवं अव्यवस्था को नष्ट कर के सामन्तों ने अपनी सत्ता स्थापित की उसी अराजकता को सामंतवाद ने प्रचलित किया। मानव मनोविज्ञान परिवर्तनकारी है। जिस प्रकार फ्रांसीसी क्रांति के सिद्धान्तों ने नेपोलियन का सृजन किया और नेपोलियन ने उसी क्रांति के सिद्धान्तों को ठुकरा कर अपने पतन को आमन्त्रित किया। ठीक उसी प्रकार से वर्गीय नीति को पराजित होना पड़ा और राष्ट्रीयता की उत्पत्ति हुई।

राष्ट्रीयता का तात्पर्य है, एक भाषा, एक धर्म, एक राजनैतिक सिद्धांत और एक राष्ट्र। परन्तु उस युग में उपर्युक्त सभी सिद्धांत लागू नहीं थे। राष्ट्रीयता का अर्थ था—पृथक् भूखण्ड, अन्य राज्यों से स्वतन्त्र तथा उस भूखण्ड में निवास करने वालों के रीति रिवाजों एवं नियमों में समानता। "यह देश हमारा है। इस देश की भूमि हमारी है। यह व्यक्ति हमारे देश का, इस स्थान पर हमारे देश का अधिकार है" आदि भावनायें राष्ट्रीयता की द्योतक हैं। वर्ग भेद की समाप्ति हुई और राष्ट्रीयता का विकास। मनुष्य अपने अपने राष्ट्र की उन्नति के लिये प्रयत्न करने लगे और उनमें राष्ट्र या देश के प्रति प्रेममयी

भावना का उत्थान हुआ। परन्तु उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दियों में राष्ट्रीयता का स्वरूप ही बदल गया और राष्ट्रीयता एक तरह की व्याधि बन गई।

अभ्यास के लिये प्रश्न

(१) पुनरुत्थान से क्या तात्पर्य है? संक्षेप में उसकी उत्पत्ति के कारणों पर प्रकाश डालिए।

(२) साहित्य, कला और विज्ञान के क्षेत्र में पुनरुत्थान से क्या परिवर्तन हुए?

(३) पुनर्जागरण के परिणामों को समझा कर लिखिए।

(४) 'धर्म सुधार आन्दोलन' से आप क्या समझते हैं? इसके अग्रदूत कौन कौन थे?

(५) 'धर्मसुधार पोप पद की भौतिकता और भ्रष्टाचार के विरुद्ध नैतिक विद्रोह था' इस कथन का स्पष्टीकरण कीजिए तथा यूरोप में धर्म सुधार की प्रगति के विषय में लिखिए।

(६) मध्यकालीन युग में कौन सी भौगोलिक खोजें हुई और उनका क्या परिणाम हुआ?

(७) मध्यकालीन युग के अन्त में कौन कौन से महत्वपूर्ण आविष्कार व अनुसन्धान हुए?

(८) 'राष्ट्रीयता के प्रादुर्भाव' से आप क्या समझते हैं? पाश्चात्य राष्ट्रों में राष्ट्रीयता के विकास की कहानी लिखिए।

(९) राष्ट्रीयता के प्रादुर्भाव से यूरोप की राजनैतिक और सामाजिक स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ा? सविस्तार समझाइए।

(१०) 'यूरोप में पुनर्जागरण की लहर' पर एक संक्षिप्त आलोचनात्मक निबन्ध लिखिए।

द्वितीय अध्याय

विज्ञान की निष्पत्तियां (उपलब्धियां)

(Achievements of Science)

पिछली दो शताब्दियों के महान वैज्ञानिक आविष्कारों ने मानव समाज में क्रांति उत्पन्न कर दी और इतिहास की गति को मोड़ दिया। विज्ञान की निष्पत्तियों का परिणाम देख कर तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानव समाज और उसका सभ्य इतिहास सहस्रों वर्षों से मथर गति से चला विज्ञान का युग आ रहा था। विज्ञान ने अचानक ही उसमें अदम्य उत्साह एवं स्फूर्ति का सृजन कर दिया हो। सृष्टि के आरम्भ से ही मनुष्य को दो शक्तियों से लड़ना पड़ा था—प्रकृति और राज्य, पर वह पराजित होने की बात नहीं सोचता था। वह उत्पादन की शक्तियों में परिवर्तन करता गया। नये नये उत्पादन की शक्ति के साथ उसकी शक्ति बढ़ती गई। काम सम्बन्धी समूह फिर से नये बनने लगे। इस नवीन प्रणाली का विरोध किया गया परन्तु अधिक समय तक नहीं। सामन्तवादी युग में वाणिज्य का विकास हुआ। दूर दूर तक व्यापार के साधन बढ़े। व्यापारी वर्ग धनवान हो गया। सामन्ती शासन पर उसका प्रभाव बढ़ने लगा। नए से नए साधन आविष्कृत कर के प्राप्त किये जाने लगे, धनवान व्यापारी आविष्कारों के लिये अपनी ओर से खर्च देता था और उसका उपयोग अपने लिये करता था। इस प्रकार नये से नये अनुसंधान व खोजें होने लगीं। विज्ञान का प्रभाव बढ़ने लगा। भाप वाले यंत्र निकाले गये, कपड़े की मशीनें आईं, लोहे और कोयले को काम में लिया जाने लगा। मशीनें बनीं और मिलें खुलीं। फिर रेल, तार, डाक, वायुयान नगर सभ्यता व प्रजातन्त्र शासन प्रणाली का विकास हुआ।

आज के युग में विज्ञान ने हर एक क्षेत्र में अपना प्रभाव स्थापित कर लिया है। विज्ञान ने मानव जीवन के सम्बन्ध को बहुत गहरा और जटिल बना दिया है। यदि कोई व्यक्ति पौराणिक वस्तु साधन द्वारा युग की समस्याओं को

सुलझाना चाहे तो निश्चय ही वह असफल सिद्ध होगा। उत्पादन के तरीकों व क्रियाओं में तेजी और नवीनता लाने का श्रेय विज्ञान आधुनिक समाज को ही है। यदि हम यह कहें कि आधुनिक युग में पिछले युग का निर्माण कर्ता से भिन्नता लाने के लिए सिर्फ विज्ञान ने ही प्रयत्न किया है तो अत्युक्ति नहीं होगी। मानव ने अपने संघर्ष में विज्ञान के नये-नये सिद्धान्तों को प्राप्त किया और अपने जीवन में उन सिद्धांतों को कार्य रूप में परिणत किया और आज के समय का निर्माण किया।

मानव जीवन पिछले युगों की अपेक्षा आज अधिक प्रसन्न, सुरक्षित व शक्तिशाली है। मनुष्य को अन्धविश्वास से आज कोई डर नहीं। वह भूत प्रेत में विश्वास नहीं करता। धर्म के पाखण्ड की उसे कोई

मानव जीवन प्रसन्न, सुरक्षित परवाह नहीं। वह बीमारियों को ईश्वरीय प्रकोप नहीं मानता वह अकाल, प्लेग और बाढ़ का साहस के साथ मुकाबला करता है। अपनी रक्षा के लिए वह संगठन बना कर रहता है। एक दूसरे की सहायता करता है।

आज के वैज्ञानिक युग के मानव की जिन्दगी अधिक लम्बी है अपेक्षाकृत पिछले युगों में। इस युग के मानव ने बीमारियों का कारण खोज निकाला है। स्वास्थ्य और सफाई पर वह अधिक ध्यान देता है। अस्पताल व औषधालय खुल गये हैं। विज्ञान की प्रतिभा के कारण आज कोई बीमारी

दीर्घ जीवन अधिक मनुष्यों को काल का ग्रास नहीं बना सकती। विज्ञान के नये नये आविष्कार मनुष्य को सुखी बनाने में लगे हैं। रोगों को दूर करने में भी काम में लाये जाते हैं। जैसे क्लोरोमाइसिटिन, पेनिसिलिन, इत्यादि। शल्य चिकित्सा द्वारा मनुष्य का दर्द जल्दी ठीक होने लगा है।

विज्ञान के कारण ही आवागमन के साधन आज सस्ते, सुरक्षित और कम समय लगाने वाले हैं। पहले की भाँति जानवरों पर ही निर्भर नहीं रहना पड़ता, मार्ग में चोर व डाकुओं का डर नहीं लगता। रेल,

द्रुत व सुरक्षित आवागमन मोटर, हवाई जहाज, पानी के जहाज द्वारा दूर दूर स्थानों पर अकेला यात्रा कर सकता है। इन मार्गों में जल्दी से जल्दी तथा सुरक्षित रूप से पहुँच सकता भी ईश्वर भी विज्ञान के कारण ही सम्भव हो सकी है।

विज्ञान के कारण आधुनिक युग के मानव की बुद्धि का विकास हुआ है। आज प्रत्येक मनुष्य शिक्षा प्राप्त करना चाहता है। क्योंकि मुद्रणालय के आविष्कार से पुस्तकें, अखबार व अन्य कोषों का भण्डार हो गया है। तार, टेलीफोन, रेडियो इत्यादि द्वारा मानव ज्ञान बढ़ने लगा है। टेलीविजन ने मानव की दृश्य इच्छा को संतुष्टि प्रदान की है। बिजली (विद्युत) के प्रयोग से मनुष्य के अन्धकार का कष्ट समाप्त हो गया है।

बौद्धिक विकास

विज्ञान के कारण उत्पादन शक्ति का अत्यधिक विकास हुआ है। पिछले युगों में उत्पादन के साधन कम थे। मनुष्य को हाथ से अधिक काम करना पड़ता था। इस युग में हाथों का काम यंत्रों से लिया जा रहा है। उत्पादन अधिक और सस्ता हो गया है। शक्ति का बचाव हुआ जिसे मनुष्य ने दूसरे कार्यों में लगाया। उत्पादन में एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के साथ सहयोग से कार्य करने लगा।

उत्पादन शक्ति का विकास

विज्ञान के कारण मानवीय सभ्यता की सुरक्षा अधिक समय के लिये संभव हो गई है। पूर्व काल में राष्ट्रों की सभ्यता स्थाई नहीं रह सकती थी क्योंकि हर समय बाह्य आक्रमण का भय रहता था। आज के युग में हर राष्ट्र की सभ्यता इस प्रकार के भय से विमुक्त है। सभ्यता के विकास में विज्ञान ने बहुत सहायता पहुँचाई है। आज के साहित्य की प्रगति, कला की उन्नति, दर्शन में उन्नति व रहन-सहन के ढंग में नवीनता इत्यादि विज्ञान की देन है। आज का मानव पहले युग की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्रता से सोच सकता है, लिख सकता है तथा भाषण दे सकता है। आज सामन्त तथा सम्राटों का युग नहीं बल्कि प्रजातंत्र का युग है, विज्ञान का युग है, जहां प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति करने का बराबर अवसर मिलता है।

सभ्यता की सुरक्षा

इस प्रकार हम देखते हैं कि विज्ञान की निष्पत्तियाँ बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। पिछले युगों से सर्वथा भिन्न। वैज्ञानिक युग का मनुष्य प्रसन्न, सुरक्षित, अधिक ज्ञानवान व कार्यशील है। आवागमन के साधनों में परिवर्तन हो गया

है। वे अधिक भरते व सुरक्षित है। उत्पादन का उत्थान हुआ है। मानवीय सभ्यता की रक्षा हो रही है। विश्व में एकता व शांति स्थापित करने के प्रयास हो रहे हैं।

(अ) दूरी पर विजय

विज्ञान की सहायता से मनुष्य ने अपनी दैनिक जीवनचर्या में कई परिवर्तन किये। इन परिवर्तनों का प्रमुख श्रेय मनुष्य के श्रम को तथा प्रकृति के साथ किए जाने वाले संघर्ष को है। प्रारम्भ में वह अपने हाथों का उपयोग उत्पादन के लिए तथा टांगों का उपयोग चलने व बोझा ढोने के लिये करने लगा। परन्तु उसके चलने की गति धीमी थी और बोझा ढोने पर वह और भी धीमी होती गई। इस प्रकार प्रकृति के साथ संघर्ष में वह कमजोरी महसूस करने लगा था। जीवित रहने की आवश्यकता ने उसे प्रेरित किया कि वह ऐसी वस्तु का आविष्कार करे जिसमें शक्ति भर जाय।

लकडी का पहिया

पहिये की उत्पत्ति—प्रारम्भ में मनुष्य बोझा अपने कंधों पर ले जाया करता था। बाद में उसने बोझा जमीन पर लुढ़का कर ले जाने की प्रक्रिया निकाली। फिर यह बोझा किसी साफ पहिये पर रख कर पहिया खींचा जाने लगा। इस प्रकार स्लेज गाड़ी का रूप आया। फिर लकड़ी के बड़े लट्ठे पहिये के नीचे रख कर उसे खींचा जाने लगा। इसके बाद पहिये का प्रचलन होने लग गया। पहिला पहिया अवश्य लकड़ी के लट्ठे का बना होगा। यह पहिया कब आया उसका कोई निश्चित समय नहीं मालूम।

स्लेज गाड़ी
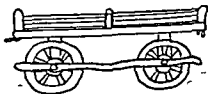
परन्तु ३५०० ई० पू० में सुमेरियन जाति के लोग इस पहिये का प्रयोग करते थे यह निश्चित है।

पहिये के विकास के पहले सड़कें नहीं थीं। सिर्फ पगडण्डी व राहें ही थीं जिन पर स्लेम खींचा जाता था। पहिये की खोज हो जाने के बाद सड़कों का बनाना आवश्यक हो गया। क्योंकि कच्चे मार्ग पर पहिया भूमि में धस जाता था और चलने में कठिनाई होती थी। सड़कों पर पहिया आसानी से चलाया जाने लगा। पहियों पर लकड़ी की पटरी रखी जाती थी। वह उसी में बाँध दी जाती थी। फिर धीरे धीरे गाड़ी का रूप आने लगा। पहले मनुष्य स्वयं गाड़ी खींचता था परन्तु वह अधिक थक जाने पर अन्य काम नहीं कर सकता था। इस लिए ऐसे जानवरों का—बैल, घोड़े आदि का उपयोग गाड़ी खींचने में करने लगा जो पालतू थे साथ ही शक्तिशाली भी।

सड़कों व गाड़ी का विकास

घोड़ागाड़ी का उपयोग—मनुष्य ने कई पशु गाड़ी खींचने में लगाये भेड़, कुत्ता, बैल, भैंसा इत्यादि। परन्तु अधिक शक्ति और तेज चलने वाला पशु घोड़ा था। अतः मनुष्य ने उसका बहुत उपयोग किया। घोड़ा सिर्फ गाड़ी ही नहीं खींचता बल्कि सवारी के काम भी आने लगा। घोड़े के द्वारा गाड़ी खींची जाने लगी तो सड़कें शीघ्र ही टूटने लगीं। अतः मनुष्य ने सड़कों को

घोड़ा गाड़ी

सुधारना शुरू किया। इसके साथ ही साथ गाड़ियों की बनावट में भी परिवर्तन होने लगा। कोचगाड़ी तथा मालगाड़ी बनी। व्यापार तथा यात्रा में गाड़ियाँ

का प्रयोग किया जाने लगा। प्रारम्भ में एक घोड़े की गाड़ी, दो घोड़ों की गाड़ी असंख्य घोड़ों की गाड़ी होती थीं।

रेल का आविष्कार—रेलगाड़ी के आविष्कार ने दूरी पर विजय प्राप्त करने में अत्यधिक सता प्राप्त की है। यातायात के इस साधन से मानव जाति को अत्यधिक लाभ पहुँचा। रेल के आविष्कार ने मानव समाज में क्रांति पैदा कर दी।
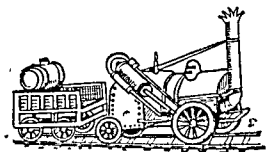
इंजन का प्रारम्भिक रूप

इंजन का प्रारम्भिक रूप

इंजन का इतिहास नया नहीं है। सब से प्रथम मिश्र देश के हीरो नामक शिल्पी ने लगभग २००० वर्ष पहले भाप का एक इंजन बनाया था परन्तु वह बालकों के खेल से बढ़ कर सिद्ध न हुआ। इसके बाद हालैण्ड के ह्यूजिन ने बारूद का एक इंजन बनाया। यह इंजन पिचकारी की तरह था, जो बारूद में जोर का धड़ाका होने से चलता था। फ्रांस के डेनिस पापिन नामक एक डाक्टर ने ऐसा इंजन बनाया जिसके लिए पानी गरम कर के भाप बनाई जाती थी।

सड़कों के यातायात में भाप का प्रयोग करने की राय सर्वप्रथम [illegible] नामक एक अंग्रेज ने दी थी। १७६९ ई० में एक फ्रांसीसी

पूर्वजों ने प्रथम भाप की गाड़ी सड़क पर चलाई। परन्तु इसके पहले भाप का इंजन पानी निकालने के काम में लाया जाता था। ओलिवर इवान्स ने इसका प्रयोग अमेरिका में किया। १७८४ में जेम्स वाट ने बहुत ध्यानपूर्वक भाप की शक्ति का प्रयोग किया और भाप इंजन को काम में लाने के लिये राज्य से पेटेन्ट करा लिया। १८०४ ई० में रिचार्ड ट्रेविथिक ने भाप की गाड़ी बनाई जो पटरी पर चलती थी।

भाप का प्रयोग

आधुनिक इंजन बनाने का सारा श्रेय जार्ज स्टीफनसन को जाता है। वह एक खान में काम करने वाला श्रमिक युवक था। वाट के भाप की ताकत द्वारा चलने वाले पम्प के इंजन के प्रयोग से वह पूर्ण परिचित था। पहली बार उसने उस खान में इंजन द्वारा गाड़ियाँ खींचने का प्रयत्न किया और उसे सफलता मिली। १८२१ ई० में ८ मील लम्बी लोहे की पटरियों पर उसका इंजन गाड़ियों सहित चला। समय के साथ उसने अपने इंजन में सुधार किया। १८२६ ई० में उसने अपने Rocket इंजन द्वारा पांच सौ पौंड का पुरस्कार जीता। १८३० ई० में ३१ मील की दूरी उसकी रेलगाड़ी ने एक घण्टे में पूर्ण की।

जार्ज स्टीफनसन की खोज

प्रारंभिक रेलगाड़ी का स्वरूप अत्यन्त आकर्षक था। उसके डिब्बों में छतें नहीं होती थीं। आधुनिक तरह के स्टेशन नहीं थे। तब भाप कोयले की सहायता से नहीं बल्कि लकड़ी की सहायता से तैयार की जाती थी। उन दिनों बिजली का आविष्कार नहीं हुआ था। अतः रात के अन्धेरे में रेलगाड़ियाँ नहीं चलती थीं। कभी कभी प्रकाश के लिये इंजन में अंगीठी रख कर काम लिया जाता था। मार्ग में लकड़ी समाप्त हो जाती तो रेल रुक जाती थी। रेल की रफ्तार भी बहुत मन्थर थी।

रेलगाड़ी का प्रारंभिक रूप

धीरे-धीरे रेल के इंजनों व डिब्बों में सुधार होने लगे। रेल के डिब्बों में आराम व सुविधा का ध्यान रखा जाने लगा। प्रथम, द्वितीय व तृतीय श्रेणी

के डिब्बों की उत्पत्ति हुई। हवा के लिए पंखे, टट्टी, पानी का इन्तजाम भी किया गया चाल की गति बदली।

आधुनिक रूप

आजकल तो रेल की रफ्तार १०० मील प्रति घण्टा तक है। बिजली के आविष्कार के बाद रोशनी की सुविधा हो गई। डिब्बे हवादार (Air Conditioned) बना दिये गये। बिजली की शक्ति की सहायता से रेल गाड़ी द्वारा पहाड़ों को पार किया जाने लगा। बम्बई से पूना तक ही रेल बिजली के इन्जन से चलती है। रेल में भी बिजली का प्रयोग किया जाता है। स्टेशन प्रणाली तथा निश्चित किराया पद्धति भी रेल के सुधारों के साथ ही साथ कार्यान्वित की गई। रेल ने दूरी पर विजय प्राप्त की।
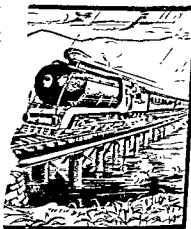
आधुनिक रेलगाड़ी

मोटर का आविष्कार—दूरी पर विजय प्राप्त करने में मोटर का आविष्कार भी चमत्कारपूर्ण है। आधुनिक युग में मोटर कार का प्रचार बढ़ता जा रहा है। सड़क, गली, नगर या गांव, हर स्थान पर मोटर की झलक मिलती है। कुछ लोगों का तो विश्वास है कि हमारे दैनिक जीवन में मोटर का प्रयोग साईकिल की भांति होने लगेगा। मोटर का आधुनिक रूप विकास के बाद आया है न कि पूर्व मनुष्य ने इसे ऐसा ही बनाया है।

मोटरकार के समान एक गाड़ी बनाने के लिये सन् १७६६ ई० से उद्योग हो रहा था। उस समय 'कगन' नामक व्यक्ति ने भाप से चलने वाली एक गाड़ी बनाई जो दीवार से टकरा कर टूट गई। फिर १८२७ ई० में गौल्दसवर्दी ने पहले

में १५ मील चलने वाली एक गाड़ी बनाई। इसके बाद १८६० ई० में लेनवायर नामक एक व्यक्ति ने गैस से चलने वाला इंजन बनाया। जर्मनी के डाक्टर निकोलस ने इस इंजन में सुधार कर उसे अच्छा रूप दे दिया। इस प्रकार आधुनिक पेट्रोल वाली मोटर गाड़ी के चलने के पहले अन्य प्रकार से मोटरें चलती थीं। परन्तु चलते समय वे अधिक शोर करती थीं, उनकी चाल धीमी थी और उनकी प्रयोगशालाएं इतनी सम्पूर्ण व उन्नत नहीं थी कि खराब होने के बाद शीघ्र ही ठीक कर दी जायें।

मोटरों का विकास

मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए अपनी सारी शक्ति का उपयोग हर क्षेत्र में करने लगा। पृथ्वी के भीतर के खनिज पदार्थ, ताप तथा उसकी शक्ति तक को अपने अधिकार में कर लिया। इस प्रकार मनुष्य ने पेट्रोल के कुएं खोज निकाले पेट्रोल की उपयोगिता उस समय मालूम हुई जब पेट्रोल को मोटर के इंजन में काम लेने लगे।

पेट्रोल की खोज

पेट्रोल द्वारा मोटर गाड़ी चलाने की विधि सब से पहले जर्मनी के डेमलर नामक व्यक्ति को सूझी और उसी ने १८८७ ई० में पेट्रोल से चलने वाली एक मोटर बनाई थी। १८९१ ई० के लगभग पेट्रोल की शक्ति से चलने वाली गाड़ी बनी और बाद में उसमें विकास तथा सुधार होता रहा। आरम्भ में मोटर की चाल १० या १५ मील प्रति घण्टा तक सीमित थी। उसमें सिर्फ एक आदमी बैठ सकता था। इन मोटरों से दुर्घटनाएँ भी अधिक होती थीं।

डेमलर की पेट्रोल मोटर गाड़ी

मोटर गाड़ी का आविष्कार तो हुआ परन्तु उसका प्रचार धीरे-धीरे बढ़ा। पेट्रोल के प्रयोग पर लोग हंसते थे। परन्तु शीघ्र ही समय बदला और मोटर गाड़ी ने बहुत उन्नति कर ली। अब अधिक व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था की गई। गति में विकास हुआ। अब तो मोटर ३००–४०० मील प्रति घण्टे की रफ्तार से भी भाग सकती है। बड़ी-बड़ी मोटर बस, यात्रा के लिये मोटर गाड़ियाँ, बोझा ढोने के लिये मोटरें, ट्रक गाड़ियां। फिर जीप गाड़ी का निर्माण

आधुनिक रूप

हुआ। रेत, पानी, पहाड़ी रास्ता, दल-दल सभी स्थानों के लिए जीप का प्रयोग किया जाने लगा। मोटरों का इंजन ट्रेक्टर चलाने के काम में भी आने लगा है। जहाँ बिजली की शक्ति कम हो जाती है वहा मोटर के इंजन का प्रयोग किया जाता है।

जहाजरानी का आविष्कार—थल की दूरी पर विज्ञान ने रेल व मोटर की सहायता से विजय प्राप्त की। जल की दूरी पर उसने जहाजरानी के आविष्कार से विजय प्राप्त की। विज्ञान की सहायता से आज लाखों व्यक्ति अगाध समुद्रों के विशाल वक्षस्थल पर क्रीड़ा करते हुए दिखाई देते हैं। समुद्रों से पृथक् राष्ट्रों में एकता स्थापित करने में जहाजों ने अत्यधिक सहयोग प्रदान किया है।

नाव का प्रारम्भिक रूप

जल-यातायात का प्रारम्भिक रूप

सृष्टि के प्रारम्भिक काल में, जब सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ ही था मनुष्य छोटी-छोटी नदियों और नालों को तैर कर पार करता था। फिर जान वरों की पीठ पर बैठ कर नदियाँ पार करने लगा। पर नदी के बहाव में जानवर बह कर जाने लगे। मनुष्यों ने फिर लकड़ी का प्रयोग किया। लकड़ी के बड़े बड़े लट्ठों द्वारा मनुष्य नदी पार करता था परन्तु लट्ठे बहाव की ओर ही बहते रहते थे। अतः वह बहाव की गति पर विजय प्राप्त करने की सोचने लगा। धीरे-धीरे व्यक्ति ने नावें बनाना आरम्भ किया। इस प्रकार की नावें भी वायु के प्रवाह तथा गति पर निर्भर रहने लगीं। अतः पाल का उपयोग किया जाने लगा।

वायु के प्रभाव को रोकने के लिए पाल वाले जहाज बनने लगे। वे काफ़ी बड़े होते थे। अधिक यात्री इनमें जाते थे। अतः नाविकों की शक्ति काफ़ी लगती थी। परन्तु इस प्रकार की नावें भी आँधी, तूफ़ान और बाढ़ के दिनों में यात्रियों को डूबने से नहीं बचा सकती थीं। इस प्रकार मनुष्य की उन्नति में प्रकृति बाधा देने लगी। परन्तु मनुष्य ने प्रकृति से हार स्वीकार नहीं की।

पाल का प्रयोग

प्रकृति से संघर्ष करने के लिए, समुद्र के वक्षस्थल पर क्रीड़ा करने के लिए मनुष्य ने विज्ञान की खोज 'भाप' की शक्ति का आश्रय लिया।

सर्व प्रथम भाप की शक्ति से सचालित जलयान का निर्माण किसने किया यह एक विवादास्पद विषय है। अंग्रेजों का कहना है, इसका श्रेय अंग्रेज जाति को है। स्पेन के निवासियों का दावा है कि सर्व प्रथम भाप से संचालित जलयान का निर्माण स्पेन निवासी 'ब्लास कांडिस', नामक व्यक्ति ने किया। उधर फ्रांस अपने नागरिक 'डनिस पेपिन' को इसका आविष्कारक मानता है। पेपिन ने अपनी स्टीम बोट का प्रदर्शन जर्मनी में करना चाहा लेकिन वहाँ की सरकार ने यह आज्ञा नहीं दी। स्टीमबोट का सफलतापूर्वक उपयोग अमेरिका निवासी 'राबर्ट फुल्टन' ने किया। उसके साथ ही एरिक्सन ने अधिक से अधिक जहाज बनाकर विश्व में एक चमत्कार कर दिखाया।

भाप के जहाज

पहले जहाजों की गति ४ या ५ मील प्रति घण्टा थी। हेनरी वेल ने 'कॉमेट' जहाज बनाया जो ४०' लम्बा १०' चौड़ा था और ८ मील प्रति घण्टा की रफ़्तार से चलता था। सन् १८१२ ई० में कामेट जहाज के द्वारा क्लाइड नदी की यात्रा की गई। हेनर के सहकारी स्काटलैण्ड निवासी सीमिंगटन ने एक ऐसी जहाज बनाया जिसमें चार हजार मन बोझ लादा जा सकता था। १८३८ ई० में इन दोनों साथियों ने अटलांटिक महासागर अपने भाप के बोट में बैठ कर १४ दिन में पार कर लिया और अमेरिका पहुँच गये।

जहाजों का विकास

भाप के जहाज के निर्माण से हवा की गति तथा पानी के बहाव पर नियंत्रण कर लिया गया। परन्तु जहाजों का निर्माण अभी तक लकड़ी से ही

लोहे का प्रयोग

होता था। जब लोहे की चादरों में लकड़ी रखी जाने लगी। विल्सन नामक पुरुष ने १८१८ ई० में इसका प्रथम प्रयोग किया। अनेकानेक विरोधों के उपरान्त उसने अपना स्टीमर 'वल्कन' पानी में उतारा और सफलता प्राप्त की। फिर क्या था— लोहे का प्रयोग द्रुतगति से होने लगा। परन्तु यह ध्यान रखा जाता था कि कहीं लोहे का वजन इतना न हो कि जहाज डूब जाय।

आधुनिक जहाज

आधुनिक युग के जहाज विशाल नगर प्रासादों के समान हैं बड़े-बड़े जहाज एक हजार फीट तक लम्बे होते हैं। जिनमें तीन हजार आदमी आराम से यात्रा कर सकते हैं। लम्बाई के अनुपात में ही जहाज की चौड़ाई और ऊंचाई होती है। जहाजों में कई मंजिलें होती हैं, जिनमें सब से नीचे की मंजिल में इंजन, बॉयलर और कोयला आदि रखने की जगह होती है। रेल के दर्जों की भाँति जहाजों में भी केबिन का श्रेणी विभाजन होता है। स्वच्छ पानी, खेलने के लिए मैदान, वाचनालय, रेडियो तथा सिनेमा का इन्तजाम रहता है। जहाज के ऊपरी हिस्से ने खुली जगह रहती है जिसे 'डे' कहते हैं। डेक पर यात्री घूम जाते हैं।
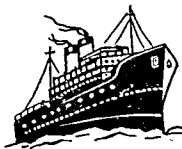
आधुनिक जहाज

वायुयान का आविष्कार—

मानव और प्रकृति के मध्य ज संघर्ष चला उसमें मानव विजयी हुआ। वह नया वातावरण, नया संघर्ष औ नया अनुभव प्राप्त करता गया। विज्ञान की सहायता से उसने थल व जल प अपना नियंत्रण स्थापित किया। दूरी पर विजय प्राप्त की। परन्तु फिर भ समय का अधिक व्यय होता है। अतः मनुष्य ने वायु को जीत कर यात्रा करने की सोची और उसने इस कार्य में भी सफलता प्राप्त की।

मनुष्य ने किस प्रकार वायु पर विजय प्राप्त की यह एक रहस्यमय एवं अनोखी बात है। इसकी कल्पना त्रेता युग से पहले आरंभ होती है। जन-श्रुति के अनुसार अयोध्यापति राम ने लंका से लौटते समय पुष्पक विमान से यात्रा की थी। अर्थात् वायु यात्रा की इस कथा के उपरांत हमें न किसी साहित्यिक कृति में, न दर्शन की मोटी मोटी पुस्तकों में हीं वायुयान का वर्णन मिलता है। अतः रामचन्द्रजी का यह पुष्पक विमान मानवीय मस्तिष्क की कोरी कल्पना ही रह गया।

पुष्पक विमान

सुप्रसिद्ध विद्वान पेलिस का कथन है कि ४०० ई० पू० में आरकीटस ने लकड़ी का वायुयान बनाया था। परन्तु उसके वर्णन के बारे में हमें कुछ ज्ञात नहीं। १३ वीं सदी में उड़ने के सिद्धान्त निकाले गये। १३०६ ई० में चीनी लोगों ने सब से पहली उड़ान की। १४३६ से १४७६ तक जॉन म्यूलर ने चीन के समान एक वायुयान बनाया। १५७१ से १६३० तक जर्मन आविष्कारक

प्रारम्भिक विमान

प्रारम्भिक वायुयान

कैलपर ने उड़ने की कला निकाली। इस प्रकार मध्य युग में मनुष्य ने उड़ने की कोशिश की परन्तु सफलता प्राप्त नहीं हुई।

कालान्तर में मनुष्य ने गुब्बारों के साथ हवा में उड़ने की कोशिश की। पहले पहल मुर्गी, बतख, भेड़, गिद्ध इत्यादि प्राणी गुब्बारों में उड़ाये गये। जब से

गुब्बारा

सकुशल पृथ्वी पर आ गये तो आदमी का उत्साह बढ़ा। इन गुब्बारों का ... में उड़ने के लिये १० प्रयोग या १२ हजार फीट पर उड़ा भी परन्तु इन गुब्बारों पर नियंत्रण कुछ न होता था। हवा उन्हें जिधर ले जाती थी उधर ही वे बड़े वेग से चले जाते थे। कुछ गुब्बारे लम्बी रस्सी बांध कर उड़ाए गए फिर भी इन पर नियंत्रण न हो सका। १८३६ ई० में मास्टर गोडावर नामक दो भाइयों ने एक विशाल गुब्बारा बनाया। इसमें हाइड्रोजन भरी गई परन्तु वायुवेग पर नियंत्रण न हो सका। भाप का इंजन लगा कर १८५२ ई० में गिफर्ड ने गुब्बारे से यात्रा की परन्तु उसका परिणाम भी अच्छा नहीं निकला।

जेपलिन वायुयान

वायु पर नियंत्रण करने का सफल प्रयोग सर्वप्रथम काउन्ट जेपलिन ने किया। जेपलिन का वायुयान अल्युमिनियम का बना था जिसकी सब पतली टीन का बना था। भीतर गैस भरे गुब्बारे रखे थे जिस से गिरने का डर नहीं रहा। उन्होंने 'जेपलिन' वायुयान से २०० मील की यात्रा की। जेपलिन वायुयानों का प्रयोग प्रथम महायुद्ध में बमबारी करने में बहुत हुआ। जेपलिन का हवाई जहाज निकल तो आया परन्तु अभी तक वह दोष रहित नहीं था। उसमें अब भी सुधार की आवश्यकता थी।

वैज्ञानिक लोग एक ऐसा वायुयान बनाना चाहते थे। जिसमें गैस न भरनी पड़े और जो हलका होने के कारण तीव्रतापूर्वक आकाश में उड़ने लगे।

जर्मनी के ओस्टोवैस्ट और अमेरिका के लिनियन्थल नामक वैज्ञानिकों ने ऐसे जहाज बनाए। उन्हें कुछ सफलता भी मिली। इंगलैण्ड के सर हिरम मैक्सिन ने भी इसके लिए अधिक खोज की परन्तु सफलता नहीं मिली। अमेरिका के प्रोफेसर लांगले सरकारी सहायता से हवाई जहाज बनाने लगे परन्तु वे असफल रहे।

अन्य प्रयोग

इस समय तक पेट्रोल का प्रयोग मोटरों में होने लगा था। इंजनों में भी पेट्रोल का प्रयोग होने लग रहा था। इस शक्ति से लाभ उठा कर सन् १९०३ ई. में राइट बन्धुओं ने लोहे की चादरों का एक वायुयान बनाया और वे हवा में उड़ने लगे। उनकी सफलता ने मनुष्य द्वारा किए गये अगणित प्रयत्नों का अन्त कर दिया। उसने गुब्बारों का प्रयोग छोड़ दिया। हाइड्रोजन की भी आवश्यकता न रही।

राइट बन्धुओं का वायुयान

प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त मनुष्य ने सम्पूर्ण विज्ञान की शक्ति वायुयानों को सुधारने तथा विकसित करने में लगा दी। अब वायुयान १३ हजार से ३६ हजार फीट तक की ऊंचाई में उड़ने लगे हैं। यात्रा तथा सामान ढोने के काम में उसका प्रयोग किया जाने लगा है। ५०० या ६०० मील प्रति घण्टा की रफ्तार से उड़ना तो हवाई जहाज के लिए साधारण सा कार्य है। द्वितीय महायुद्ध में इसने महत्वपूर्ण भाग लिया। इसकी कई किस्में बन गई जैसे कि— बॉम्बर्स, फाइटर्स, रॉकेट, डकोटा आदि। आजकल स्वचालित जेट विमान भी बन गये हैं। राकेट के माध्यम से तो मनुष्य चन्द्रलोक तक पहुँचने की चिन्ता में है।

विकास

वायुयान सिर्फ भूमि पर ही उतर सकते हैं। उनके लिए एक विशेष प्रकार का मैदान तैयार किया जाता है जिसे एरोड्रोम कहते हैं। परन्तु आजकल पानी में भी हवाई जहाज के स्टेशन बन गये हैं। जहां पर ऐसे वायुयान उतरते हैं जो हवा में भी उड़ सकते हैं और पानी में भी चल सकते हैं। ऐसे वायुयानों को हाइड्रोप्लेन कहते हैं। राजस्थान में राजसमन्द में ऐसा स्टेशन बनाया गया है। इसके अतिरिक्त एक छोटा सा यान भी बनाया गया है जो

हाइड्रोप्लेन तथा हेलीकाप्टर

कि कहीं भी मकानों की छत पर, सड़क पर, सुगमता से उतर सकता है। इस प्रकार के यान को 'हैलीकाप्टर' कहते हैं।

साइकिल का निर्माण

उपर्युक्त आविष्कारों से मनुष्य ने दूरी पर विजय प्राप्त की परन्तु इससे निर्धन जनता को अधिक लाभ नहीं हुआ। अर्थात उनके दैनिक जीवन में दूरी का अभाव नहीं मिट पाया। इसके लिये मनुष्य ने साइकिल का आविष्कार किया। सन् १८५० ई० में स्कॉटलैण्ड के निवासी मैक मिलन ने विश्व की प्रथम सरल साइकिल का निर्माण किया। इसके आविष्कार ने निर्धन जनता की कठिनाई को दूर कर दिया। दूरी पर विजय प्राप्त करने में साइकिल विज्ञान का महत्वपूर्ण चमत्कार है। आज गांव गांव नगर नगर में इसकी धूम है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य ने धन के प्रयोग द्वारा दूरी को जीत लिया है। प्रकृति द्वारा प्रदत्त कठिनाइयों का डट कर मुकाबला किया गया और ऊंचे २ विशाल पर्वतों, चौड़ी नदियों, विस्तृत मरुस्थल, अगाध समुद्र एवं आश्चर्यजनक आकाश को भी मनुष्य ने विज्ञान की सहायता से अपने नियन्त्रण में ले लिया है।

(अ) विचार वाहन के साधनों का विकास

विज्ञान की निष्पत्तियों में द्वितीय स्थान विचार वाहन के साधनों के विकास को है। दूरी का जीतने का प्रयत्न स्थल, जल, और वायु में हुआ। परन्तु साथ ही साथ घर बैठे दूर स्थान में रहते हुए व्यक्ति से बातचीत करने के साधनों की खोज भी मानव करता गया। बिजली की शक्ति ने इस प्रकार के साधनों के आविष्कार को बहुत सरल कर दिया। पिछले दो सौ वर्षों में इस ओर में मनुष्य ने जो प्रगति की है वह आश्चर्यजनक है।

पहले पहल जब मनुष्य ने समाज बनाया तो भाषा सीखी। भाषा की उत्पत्ति ने मानवीय जीवन मे बड़े क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिए। फिर मनुष्य ने वाणी द्वारा अपने विचार प्रकट किए। धीरे धीरे वह लिखने लगा। पत्र, और स्याही सब का प्रयोग होता गया। साहित्य बढ़ा, संस्कृति बढ़ी और

आपसी सम्बन्धों से विचारों का आदान प्रदान बढ़ा। परन्तु धीमी गति से, द्रुत गति से नहीं। विज्ञान ने इस मंथर गति को दूर किया।

विचारों के आदान प्रदान में निम्नलिखित साधनों ने बहुत सहायता दी—

(१) छापेखाने की कला।

(२) तार—(अ) केबिल, टेलीप्रिन्टर।

(आ) टेलीफोन—(i) लोकल, ट्रंक केरियर।

(ii) ऑटोमेटिक सीधे नम्बर वाले।

(३) बे तार के तार—(अ) रेडियो,

(आ) टेलीविजन।

मनुष्य ने छापेखाने की कल का आविष्कार कर के मानव को केवल शिक्षित ही नहीं बनाया बल्कि विद्वान व ज्ञानवान भी बना दिया है। छापेखाने की उत्पत्ति का श्रेय चीन के निवासियों को है। आज से लगभग १५०० वर्षों पूर्व चीन के निवासियों को इसका ज्ञान था तथा वे इसका उपयोग करते थे। परन्तु इस चीनी कल यन्त्र का अधिक प्रचार नहीं हुआ।

छापेखाने की खोज

१४३४ ई० में जर्मनी के मैंज नगर निवासी गटनबर्ग ने लकड़ी के अक्षरों का निर्माण किया। फिर सीसे के अक्षर आये और उन से सन् १४५५ ई० में बाईबिल छपी। परन्तु छापेखाने की प्रगति में इंगलैण्ड निवासी केक्सटन ने बहुत सहायता दी। पहले मशीनें हाथ से चलती थी परन्तु बाद में पैर से भी चलने लगीं। १८१४ ई० में इंजन की ताकत से छापे की मशीन चलाई जाने लगी। आधुनिक युग में बिजली की शक्ति द्वारा छापाखाना चलता है। छापेखाने ने विश्व की सभ्यता का रूप बदल ही दिया है।

प्राचीन काल में एक स्थान से दूसरे स्थान पर सन्देश भेजने के लिए संकेत (Signalling) काम में लाये जाते थे। परन्तु तार के आविष्कार ने संकेतों के प्रयोग को निम्न कोटि का सन्देश वाहन बना दिया है। आरम्भ में तार द्वारा समाचार भेजने के लिए एक डिबिया काम में लाई जाती थी। दो स्थान तारों से जुड़े रहते थे। बिजली द्वारा प्रवाहित सन्देश उस डिबिया की सुई

तार का आविष्कार

घुमाते रहते थे। परन्तु आजकल मोर्स कोड (Morse Code) का प्रयोग होता है। (') डैश (—) के आधार पर एक वर्ण लिपि तैयार की गई है। इन वर्णों द्वारा तार की भाषा का ज्ञान होने लगा है। तार ने प्रत्येक काम को शीघ्र करने में मदद दी है। दूरी को दूर किया है। घटनाओं से शीघ्र परिचय हो जाता है। खबरें एक स्थान से दूसरे स्थान पर शीघ्र पहुँच जाती हैं। रेल के आने जाने का प्रबन्ध भी तार द्वारा ही होता है। तार मनुष्य की वाणी बन चुका है।

समुद्र में तार नहीं जा सकते। अतः समुद्र पार खबरें भेजने के लिए एक नए प्रकार की मशीन का प्रयोग किया जाता है। कई बिजली के तार गटापार्चा की नली में बन्द कर के समुद्र में डाल दिये जाते हैं। इस प्रकार पानी के प्रभाव से वे तार बचे रहते हैं। इस तार भेजने की योजना को 'केबिल' (Cable) कहते हैं। इतने बड़े २ सागरों व महासागरों में केबिल स पड़े हैं। कहीं वे टूट न जायं या खराब न हो जायं, इसकी देख रेख के लिए विशेष पानी के जहाज बने होते हैं। इस प्रकार समुद्र पार खबरें भेजी जाती हैं।

केबिल की योजना

तार की भाषा को लिखने के लिये एक व्यक्ति की आवश्यकता होती है। सीमित समय पर ही तार स्वीकार किए जाते हैं, जब तक कोई जरूरी तार न हो स्वीकार नहीं किया जाता। परन्तु टेलीप्रिन्टर के द्वारा कागज पर आप से आप अक्षर छप जाते हैं, किसी समय भी यह खबर छप सकती है और किसी व्यक्ति की सेवायें इतनी आवश्यक नहीं होतीं। बड़े २ अखबारों के सम्पादकों की मेजों पर इस प्रकार के यन्त्र लगे रहते हैं। यही कारण है कि एक ही साथ एक ही समय में खबरें एक स्थान से कई स्थानों पर भेजी जाती हैं।

टेलीप्रिन्टर का आविष्कार

१९ वीं शताब्दी में इंगलैण्ड के वैज्ञानिक फैराडे ने विद्युत की खोज की थी जिसके परिणाम-स्वरूप तार, टेलीप्रिन्टर तथा टेलीफोन का निर्माण संभव हो सका था। तार द्वारा विचार भेजे जा सकते हैं टेलीफोन द्वारा व्यक्तिगत रूप से विचारों का आदान प्रदान हो सकता है। किसी भी टेलीफोन से दूसरे

थानों पर लगे हुए टेलीफोन से संबन्धित व्यक्ति से वार्तालाप हो सकती है। हाँ, इसके लिये उस टेलीफोन का नम्बर मांगना पड़ता है। नम्बरों के योग देने का कार्य ऑपरेटर करता है जो टेलीफोन स्टेशन (एक्सचेंज) पर बैठा रहता है। परन्तु ऑटोमेटिक (स्वचालित) (स्वतः जुड़ने वाले) टेलीफोन में नम्बर मांगने की भी आवश्यकता नहीं होती अधिकतर टेलीफोन शहर की सीमा के भीतर ही काम में लाये जाते हैं। रात दिन यह व्यवहार में आता है। अतः इसे 'लोकल' (स्थानीय) फोन कहते हैं।

टेलीफोन

शहर की सीमा के बाहर दूर स्थानों पर बैठे हुए व्यक्ति से बातचीत के लिए अन्य यंत्र होते हैं जिन्हें 'ट्रंक' कहते है। बड़े बड़े शहरों के मध्य इस प्रकार के ट्रंक तार लगे रहते हैं। ट्रंक टेलीफोन अधिकतर आवश्यक कार्यों के लिये हैं।

ट्रंक के एक्सचेंज के साथ-साथ केरियर के एक्सचेंज लगे रहते हैं। एक देश से दूसरे देशों के बीच की दूरी को दूर करने में यह यन्त्र अधिक सफल हुआ है। बड़े-बड़े शहरों के पोस्टआफिस में इस प्रकार के यन्त्रों से अधिक काम लिया जाता है।

तार द्वारा समाचार आने-जाने की बात तो सब को मालूम ही थी परन्तु बिना तार के तार द्वारा भी समाचार भेजे जा सकते हैं, यह बात भी अब विज्ञान ने प्रत्यक्ष कर के दिखा दी है। सन् १८९५ ई० में श्री मार्कोनी साहब ने "बेतार के तार" का आविष्कार किया। परन्तु इस क्षेत्र में भारत के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री जगदीशचन्द्र बोस ने भी काफी सफल अनुसंधान किया था यह यन्त्र १९०६ ईस्वी में निकला था।

बेतार का तार

बेतार के तार का प्रयोग रेडियो के रूप में होने लगा है। आजकल घर-घर में रेडियो का मधुर संगीत सुनाई देता है। खबरें, मनोरंजन के विविध कार्यक्रम भी सुनाये जाते हैं। ये सब कार्यक्रम एक स्थान पर जहाँ बेतार के तार के यन्त्र लगे रहते हैं जिसे ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन (आकाशवाणी केन्द्र) कहते हैं, बिजली की शक्ति के द्वारा वाणी हवा में भेजी जाती है जो ईथर के साथ हवा में फैल जाती है, फिर रेडियो के तार जो कि वायु तक पहुँचाये जाते हैं उस वाणी को आकर्षित करते हैं और रेडियो सेट में लगे माइक्रोफोन

रेडियो का आविष्कार

(ध्वनि यन्त्र) द्वारा प्रसारित कर दिये जाते हैं। रेडियो का आविष्कार भी श्री मार्कोनी साहब की देन है। १२ दिसम्बर, १६०२ ई० में रेडियो द्वारा सर्वप्रथम सन्देश प्रसारित किया गया था।

रेडियो द्वारा सिर्फ वाणी ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर शीघ्र भेजी जा सकती है परन्तु दृश्यों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर दिखलाने का श्रेय टेलीविजन को है। टेलीविजन विश्व एकता का सूत्रपात है क्योंकि एक स्थान पर बैठा हुआ व्यक्ति विश्व के कितने ही व्यक्तियों से परिचय प्राप्त कर सकेगा ऐसा अनुमान लगाया जाता है। भारत में अभी तक टेलीविजन का प्रचार नगण्य ही है। इसका प्रचार इंगलैण्ड के वैज्ञानिक बियर्ड ने १६२६ ई० में किया था।

टेलीविजन

इस प्रकार आधुनिक युग में सन्देशवाहक यन्त्र शीघ्रता से मानवता को उस चरम सीमा तक पहुँचा देना चाहते हैं जहाँ वह अत्यन्त सुखी हो सके।

(इ) अभाव व श्रम पर विजय

विज्ञान की उपलब्धि ने आधुनिक युग में ऐसी विशेषताएं उत्पन्न कर दी हैं जिनके फलस्वरूप आधुनिक युग पूर्व युगों से भिन्न प्रतीत होता है। आज का युग यन्त्रों का युग है। प्रत्येक कार्य यन्त्रों द्वारा सम्पादित होता है। यहाँ तक कि मानव का दैनिक जीवन भी यन्त्रों से प्रभावित है। यंत्र मानव के कार्यों को करते रहते हैं। अतः यदि महात्मा गांधी जी ने यह कहा कि मनुष्य यन्त्रों का दास हो गया है तो उसमें असत्यता का अंश नहीं है। आज किसी वस्तु का अभाव नहीं है। विज्ञान ने श्रम पर भी अपना नियन्त्रण स्थापित कर लिया है।

विज्ञान के आविष्कार के पहले यंत्रों का बहुत कम उपयोग होता था। जिस समय से मानव ने प्रकृति से संघर्ष करना शुरू किया, उस समय से ही वह श्रम करता चला आ रहा है। उस श्रम के लिए उसे अपनी शारीरिक शक्ति का उपयोग करना पड़ता था। अपने शरीर के बल से वह उत्पादन करता था और जीविका उपार्जन करता था। परन्तु ज्यों ज्यों समय गया उसके कार्य करने की क्षमता में कमजोरी आती गई। धीरे धीरे वह

शारीरिक श्रम और दास प्रथा

दूसरे व्यक्तियों के श्रम से लाभ उठाने लगा सभ्यता के विकास में हम दास-युग का इतिहास देखते हैं। प्रत्येक कार्य दास करते थे। युद्ध में गिरफ्तार हुए कैदियों को दास बना दिया जाता था। दास मालिकों के लिये कार्य करते थे। मिश्र के विशाल पिरामिड इस बात के प्रतीक हैं, जहां दासों ने अपने श्रम का प्रयोग किया था।

परन्तु दास मनुष्य थे। उनके श्रम की भी सीमा थी। अतः मनुष्य ने श्रम पर विजय पाने के लिए यंत्रों की खोज की तरफ अपना ध्यान केन्द्रित किया। इसके अतिरिक्त एक अन्य कारण भी था। धर्म की उत्पत्ति होने पर दासों के प्रति मानवता की भावना उत्पन्न होने लगी। अतः नये साधनों की खोज और आवश्यक हो गई। पहले वे साधन उपलब्ध किए जाने लगे जो मनुष्यों की रात दिन काम में आने वाली आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके। खेती के युग के बाद तो नये नये यंत्रों की खोज अधिक सरल होती गई। परन्तु जब तक शक्ति का आविष्कार न हुआ तब तक उत्पादन की क्रिया व मात्रा में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। पहले कोयले की शक्ति से यत्र चलाये जाने लगे, फिर भाप की शक्ति काम में आने लगी। तदुपरान्त पैट्रोल तथा विद्युत की शक्ति का प्रयोग किया जाने लगा। मानव ने दो प्रकार के यंत्र खोजे—एक तो ऐसे यत्र जिनमें शक्ति का उपयोग नहीं होता था और दूसरे ऐसे यत्र जिनमें शक्ति का उपयोग होता था।

यन्त्रों की खोज की आवश्यकता

यंत्रों के आविष्कार से मनुष्य के शारीरिक श्रम को मुक्ति मिली। यत्रों के प्रभाव का सूक्ष्म अध्ययन किया जाय तो प्रतीत होगा कि यत्र मानव के दास हैं न कि मानव यत्र का दास। पहले युग में हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए श्रम करना पड़ता था। परन्तु आजकल उसकी कोई जरूरत नहीं। यहां तक कि खेतों में हल चलाने की भी आवश्यकता नहीं है। यत्र रूप ट्रैक्टर अपने आप ही खेतों को जोत सकता है। बिजली के यत्रों द्वारा कुओं से पानी निकाल कर खेतों में दिया जाता है। खेतों की कटाई, धान की सफाई, पिसाई आदि कार्य यत्रों द्वारा ही होने लगे हैं। इस से खेती का उत्पादन क

मानव के नये दास-यन्त्र

गुना बढ़ चुका है। कम आदमी काम में लगते हैं। श्रम की बचत हुई है अर्थात् श्रम पर विजय प्राप्त हुई है।

पहले मनुष्य अपनी पीठ पर बोझा लाद कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता था। खेती युग के बाद मनुष्य ने बैलगाड़ी व घोड़ागाड़ी का प्रयोग किया परन्तु इसमें भी काफी श्रम पड़ता था। समय लगता था। अब मोटरों तथा ट्रैक्टरों, ट्रक गाड़ियों ने यह कार्य अपने हिस्से ले लिया है। यंत्रों ने केवल मनुष्य को बल्कि पशुओं को भी श्रम से मुक्त कर दिया है। अब मनुष्य आवश्यकताओं का दास नहीं रहा है। अब उसे अभाव नहीं है। अब यंत्रों ने उसकी आवश्यकताओं पूर्ण कर दिया है।

यातायात के यन्त्र

सार्वजनिक क्षेत्र के अतिरिक्त, व्यक्तिगत एवं गृह क्षेत्र में भी विज्ञान की उपलब्धि ने श्रम को मुक्ति प्रदान की है। यद्यपि भारतीय गृहों में आज भी यंत्रों का प्रयोग नगण्य ही है। परन्तु पाश्चात्य राष्ट्रों में इनका अत्यधिक प्रयोग किया जाता है। यंत्रों द्वारा ही घर की सफाई होने लगी है जिसे हम 'क्लीनर' कहते हैं। इस यंत्र के द्वारा क्षण भर में ही सारा घर साफ हो जाता है। गृह वधू को इस श्रम से अवकाश मिलने लगा है। इसके साथ ही साथ घरों में दूसरे यंत्रों का प्रयोग भी होने लग गया है। पानी के नल से पानी लाने का श्रम समाप्त हो गया है। कपड़े धोने में गृह वधू को अब श्रम करने की जरूरत नहीं। कपड़े धोने की मशीन से क्षण भर में ही कपड़े धुल जाते हैं। सुखाने के लिये अलग यंत्र होते हैं और इस्तरी करने के अलग यंत्र। ये यंत्र इतने भारी नहीं होते कि उठाये न जा सकें। उनको आसानी के साथ इधर-उधर ले जाया जा सकता है। हाँ, अब पुरानी चक्कियों के चक्कर में पड़ कर समय व श्रम बरबाद करने की भी आवश्यकता नहीं रही है। जगह-जगह पर विद्युत संचालित आटा पीसने की चक्की लगी हुई हैं। और तो और बड़े-बड़े गृहों में तो रोटी सेकने का, साग सब्जी बनाने का काम भी यंत्रों से ही होता है। यहां तक कि भोजन की मेज पर भोजन भी यन्त्रों द्वारा ही परोसा जाता है।

गृह कार्य में यन्त्र

प्राचीनकाल में मनुष्य वल्कल वस्त्र पहनते थे, फिर चमड़े के कपड़े पहनने गये। जब कपास की खेती हुई तो लोगों ने रूई के कपड़े पहनने

शुरू किये। परन्तु कपड़ों के बनाने का सारा काम मनुष्यों को ही करना पड़ता था परन्तु अब कपड़े बनाने में बड़े-बड़े यन्त्र कामों में आने लगे हैं। बड़े-बड़े शहरों में पुतलीघरों के भोंपू इस बात का प्रमाण हैं कि कपड़ों का यंत्रों द्वारा बुना जाना कितना सरल है। इन पुतलीघरों में तेजी से हजारों गज कपड़ा रोज बनता है। जिनिंग मशीन कपास साफ करती है। अन्य मशीनें

कपड़े बनाने के यन्त्र
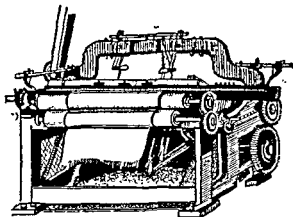
कपड़ा बुनने का मशीन

डोरा बनाती है। बुनाई का काम मशीनों द्वारा किया जाता है। ये मशीनें बिजली की शक्ति से चलती हैं और भिन्न भिन्न प्रकार के कपड़े तैयार करती हैं।

उपर्युक्त वर्णित यंत्रों का कार्य दैनिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने का है। परन्तु बड़े-बड़े यंत्रों के आविष्कार ने हमारे कार्यों को सुविधामय बना दिया है। साइकिल, कपड़ा सीने की मशीन, बिजली के लट्टू, पहिए, कील, गार्डर इत्यादि कई छोटी बड़ी वस्तुयें भी यंत्रों से तैयार की जाती हैं। लोहे और इस्पात के बने हुए बड़े बड़े यंत्र इन चीजों को बनाते हैं। भारत में टाटानगर

बड़े-बड़े यन्त्र

जमशेदपुर में इसका विशाल कारखाना है इन यंत्रों के आविष्कार से यह भी सम्भव हो गया है कि बड़े पैमाने पर वस्तुओं का उत्पादन किया जा सके।

यन्त्रों का आविष्कार हुआ। रेल, मोटर का प्रचार हुआ। विशाल वस्तुओं का निर्माण भी सम्भव हुआ। परन्तु इसमें दुर्घटनायें भी बढ़ने लगीं। दुर्घटनाग्रस्त रेल, मोटर, आदि को हटाने में पहले बहुत श्रम लगाना पड़ता था।

परन्तु अब 'क्रेन' यन्त्र इस कार्य को सुगमता से कर लेता है। भारी से भारी बोझ भी वहाँ क्रेन आसानी से उठा लेता है। अतः मनुष्य को श्रम से अवकाश मिलने लगा है जिस से कि वह अपनी शक्ति अन्य क्षेत्रों की ओर लगा सके।

क्रेन

यन्त्रों ने मनुष्य को श्रम से मुक्ति तो प्रदान कर दी। परन्तु उसने उसे शुष्क एवं नीरस भी बना दिया है। काम का विभाजन होने लगा है। एक व्यक्ति एक ही काम करता है। वह उसमें दक्षता प्राप्त कर लेता है परन्तु इस काम के दूसरे भाग से वह अपरिचित ही रहता है। इसके अतिरिक्त यन्त्रों पर काम करने वाले व्यक्तियों का स्वास्थ्य दिन दिन खराब होता जा रहा है। हर समय दुर्घटना की आशंका बनी रहती है। यन्त्र युग ने पूँजीपतियों और श्रमिकों के मध्य एक नवीन कलह को सूत्रपात कर दिया है। एक दूसरे का शोषण करता है, अपने स्वार्थ एवं उपयोग के लिये।

(ई) शक्ति पर विजय

प्रारम्भ से ही मनुष्य को प्रकृति के साथ संघर्ष करना पड़ा है। मनुष्य ने इस संघर्ष में किसी न किसी शक्ति का आश्रय लिया है। प्रागैतिहासिक काल में पत्थर एवं लकड़ी तथा हड्डियां का, प्रारम्भिक काल में जानवरों तथा अन्य यंत्रों का, मध्ययुग में दास प्रथा के साधनों तथा संगठन का सहयोग ले कर ही मानव आगे बढ़ा है। आधुनिक युग के प्रारम्भ में नये नये आविष्कारों की खोज हुई। फिर इन आविष्कारों की ईंधन सामग्री की खोज की गई। कोयला, भाप, पैट्रोल, विद्युत और अन्त में अणु परमाणु शक्ति। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इन शक्तियों ने अपना अधिकार जमा लिया है। युद्ध हो या शान्ति, पहाड़ हो या जमीन, पाताल हो या आकाश, सब जगहों पर इन शक्तियों के द्वारा कार्य है। मनुष्य ने शक्ति पर विजय प्राप्त कर ली है।

प्रारम्भ में मनुष्य शक्ति को ईश्वरकृत समझता था। परन्तु धीरे धी उसे यह ज्ञान हुआ कि पृथ्वी के गर्भ में ऐसी अनन्त शक्तियां छिपी हैं जिनक शक्ति मानवीय श्रम से अधिक है। वह पृथ्वी खोदने लगा और इस प्रकार के शक्ति रत्नों को प्राप्त करने लगा। पहल रत्न था कोयला। कोयले की खोज के शीघ्र बाद ही उसक उपयोग होने लगा। प्रारम्भ में यह कार्य के लिये, फिर स्वर्णका

कोयले की खोज

लोहार, कुम्हार, हलवाई आदि के कार्यों में कोयले का प्रयोग प्रारम्भ हुआ दैनिक जीवन में प्रयोग में आने वाली वस्तुओं का उत्पादन कोयले की जला क ही किया जाता है। भारत में कोयले की खानें कम हैं परन्तु फिर भी उसका प्रयो दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। कोयले की खान में कार्य करने में कई प्रकार क कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। खानों से कई प्रकार की विषैली गै निकलती है। खान में काम करते समय छत टूट कर गिरने या आग लग जा का भय हर समय लगा रहता है। परन्तु विज्ञान के यंत्रों द्वारा अब काफी सीम तक इस प्रकार की कठिनाइयां दूर हो गई हैं। खान खोदने, काटने व कोयल ढोने का कार्य मशीनों द्वारा होता है। विषैली गैस व वायु को बाहर निकाल के लिए धुआं बना दिये जाते है। डेवी के 'सुरक्षित दीप' से आग लगने क डर नहीं रहता है। अतः खानों में काम करने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती

कोयले और पानी के योग से भाप बनती है। भाप का प्रयोग १८ और १६ वीं शताब्दी में यंत्रों को चलाने में होता था। क्या यातायात के यं क्या खेती के, क्या अन्य धातुओं के उत्पाद के यंत्र, स जगह भाप का प्रयोग ही होता था। आज कल जब कि बिजल परमाणु शक्ति के द्वारा उत्पादन के यंत्रों को चलाया जा है तब भी रेलगाड़ी का इंजन, पानी के जहाज व अन्य भा भारी यंत्रों में भाप की शक्ति का ही प्रयोग होता है।

भाप की शक्ति

प्राचीन युग के मनुष्यों को भी शक्ति के स्रोत पेट्रोल का उपभोग मालू था परन्तु उसका प्रचलन अधिक नहीं था। केवल मरे हुए व्यक्तियों क जलाने तथा औषधियों के निर्माण में ही इसका प्रयोग किया जाता था

पेट्रोल की खोज १३ वीं शताब्दी में मार्कोपोलो ने अपनी यात्रा में बाकू में पेट्रोल प्राप्त करने के लिए दूर दूर से आने वालों का वर्णन किया है। बर्मा में इरावती नदी की घाटी में पाया जाने वाला तेल सब से पुराना बताया जाता है। आधुनिक युग में तेल की खोज १८वीं सदी में अमेरिका में हुई। १८५१ ई० में श्री पेरिस नामक अमेरिकन ने इस पेट्रोल का आर्थिक महत्व मालूम करने तथा पेट्रोल को साफ करने की विधि निकाली। पहले प्रोस्पेक्टिंग क्रिया द्वारा वह स्थान मालूम कर लिया जाता है, जहां पेट्रोल मिल सकता है। फिर उस स्थान की खुदाई होती है। तारपीडो की सहायता से कुएं की तह तोड़ी जाती है। तेल के फव्वारों के रूप में कई छोटे छोटे पत्थरों के साथ पेट्रोलियम बाहर निकलता है। धीरे धीरे ये फव्वारे कम होते जाते हैं। फिर नलों की सहायता से पेट्रोलियम निकाला जाता है और बड़े बड़े नलों द्वारा दूर रिफाइनेरी (साफ करने के) कारखानों में भेज दिया जाता है। साफ होने पर पेट्रोल कार्य करने के लिए तैयार हो जाता है। पेट्रोल का अधिकतर उपयोग वायुयान, मोटर, व अन्य यंत्रों में होता है। इसकी शक्ति से यातायात के साधनों में बहुत परिवर्तन होने लगे हैं। ये भाप की शक्ति के यंत्रों से अधिक तेज चलते हैं।

भाप तथा पेट्रोल की शक्ति का प्रयोग कर के भी मनुष्य संतुष्ट नहीं हुआ। अब उसने नवीन शक्ति को खोजने का प्रयत्न किया। यह नवीन शक्ति थी विद्युत शक्ति। बिजली या विद्युत का ज्ञान सर्व प्रथम अमेरिका के विज्ञान विशारद फ्रेन्कलिन साहब को हुआ था। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि बादलों में बिजली की धाराएं हैं और उनको जमीन पर लाया जा सकता है। उनके बाद मेक्सवेल ने टेढ़ी मेढ़ी बिजली की धाराओं को जानने का सिद्धान्त निकाला, परन्तु कार्य रूप में बिजली की धाराओं को परिणत करने का श्रेय माइकल फेरेडे को है जिसने डाइनेमो के सिद्धांत को निकाल कर विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया। फेरेडे के सिद्धांत पर ही आधुनिक विद्युत शक्ति का निर्माण हुआ है। डायनेमो में तांबे के तारों को एक धुरी पर लपेट कर घुमाया जाता है और विद्युत शक्ति उत्पन्न की जाती है।

विद्युत का अनुसंधान

प्रारम्भ में भाप की शक्ति द्वारा डायनेमो को घुमाया जाता था बाद में पानी का उपयोग होने लगा, पानी की गति में बहुत अधिक शक्ति है। डायनेमो
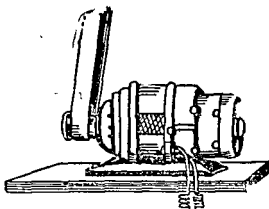
डायनेमो

को चलाने के लिए पानी की शक्ति का प्रयोग किया जाने लगा है। जहाँ जलधारा बहुत ऊँचे स्थान से गिरती है वहाँ विद्युत् शक्ति के केन्द्र (Hydro-Electric Station) खुल गये हैं। बिजली दूर-दूर स्थानों पर भेजी जाती है। बहुत से बाँध भी बनाये गये हैं जहाँ से पानी को ऊपर चढ़ा कर

जल शक्ति का उपयोग

कई सौ फीट नीचे गिराया जाता है और फिर उस से बिजली उत्पन्न की जाती है। रोशनी के लिए भी बिजली का प्रयोग किया गया है। आधुनिक युग में अधिकांश कार्य विद्युत शक्ति से ही सम्पादित होते हैं।

सन् १९४५ के अगस्त मास में जब अमेरिका ने जापान के प्रसिद्ध नगर हिरोशिमा तथा नागासाकी पर अणु बम डाला, उस दिन विश्व ने परमाणु शक्ति का प्रयोग जाना। यद्यपि परमाणु शक्ति का ज्ञान उपलब्ध हुए कुछ ही

समय व्यतीत हुआ है परन्तु इस अल्प समय में ही परमाणु शक्ति का अन्तरिक्ष विज्ञान हुआ है। प्रत्येक वस्तु परमाणु (Atoms) से बनी है। प्रत्येक परमाणु शक्ति का पुंज होता है। यदि परमाणु का विग्रह किया जाय तो महान शक्ति पैदा हो सकती है। दुनिया के शक्तिशाली राष्ट्र इस कार्य में लगे हुए हैं। औद्योगिक शक्ति को बढ़ाने में परमाणु शक्ति बहुत अधिक लाभदायक सिद्ध हो रही है।

परमाणु शक्ति का ज्ञान

अणु और उद्जन शक्ति तथा उपग्रह

जब से अन्तरिक्ष उड़ान की सम्भावनाओं के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों ने खोज आरम्भ की है, वैज्ञानिकों की दृष्टि वस्तुतः एक नितान्त नए ईंधन की ओर लगी हुई है, जो विमान या राकेट को अन्तरिक्ष में बड़े वेग से आगे बढ़ाने में समर्थ होगा। क्योंकि पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति की सीमा अथवा परिधि से यहाँ से फेंका गया कोई भी पदार्थ अथवा राकेट तभी पार जा सकता है जब उसकी गति २५,००० मील प्रति घण्टे से अधिक हो, अन्यथा उक्त पदार्थ अथवा राकेट अन्ततोगत्वा पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के कारण इसी भू-मण्डल की ओर लौट आएगा। इसी प्रकार कृत्रिम उपग्रह की गति १८,००० मील प्रति घण्टा होनी चाहिये, तभी वह पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमा लगा सकता है। इस प्रकार की नूतन शक्ति है अयनित अणुओं से उत्पन्न विद्युत शक्ति। अयनित अणु क्या है?

अणुशक्ति का अर्थ और महत्त्व

अयनित अणु वे अणु हैं, जिनकी बाहरी परिधि से एक या अधिक इलैक्ट्रोन किसी प्रकार भी अलग हो चुके हों। प्रत्येक अणु के अन्दर विद्युत तो होती है, किन्तु संतुलित अवस्था में। इसी लिए साधारण अणु में उसकी अनुभूति नहीं होती। ज्यों ही एक या उससे अधिक इलैक्ट्रोन अलग हो जाते हैं, त्यों ही उसका आन्तरिक संतुलन भंग हो जाता है और अणु विद्युतमय हो उठता है।

वैज्ञानिकों की सूक्ष्म सूझ बूझ अणुशक्ति के नित नए शक्तिशाली प्रयोग ढूँढ निकालती है। चिकित्सा, उद्योग और कृषि के क्षेत्रों में इस अद्भुत शक्ति का प्रयोग रूस, अमेरिका और इंगलैण्ड में आज व्यापक रूप से होने लगा है।

अणुशक्ति से विद्युत का उत्पादन भी होने लगा है। हमारे भारत में भी अणुशक्ति का प्रयोग प्रारम्भ हो चुका है और शीघ्र ही अणुशक्ति से संचालित बिजलीघर का निर्माण शायद राजस्थान में होने वाला है।

यह तो सर्वविदित ही है कि उद्जन शक्ति अणुशक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक भयंकर और प्रचण्ड होती है। दोनों शक्तियों की सर्जन प्रक्रिया में भी अन्तर है—अन्तर ही नहीं, वरन् दोनों दो विरोधी प्रक्रियाओं की अवस्थाओं में ही जन्म लेती हैं। अणुशक्ति की उत्पत्ति होती हैं अणु-विखण्डन अर्थात् अणु के पूर्ण रूपेण टूटने के पश्चात्, जब कि उद्जन शक्ति का निष्क्रमण होता है दो अणुओं के परस्पर मिलने के उपरान्त

अणु शक्ति और उद्जन शक्ति

अंग्रेजी में पहली किया को न्यष्टि-विखंडन तथा दूसरी को द्रवण-प्रक्रिया (फ्यूजन) कहते हैं। उद्जन शक्ति के प्रस्फुटन के दौरान में आणविक ताप से कहीं अधिक प्रचण्ड ताप का सर्जन होता है। अणुशक्ति से उत्पन्न ताप को जो शृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया (चैन-रि-एक्शन) के दौरान में अस्तित्व में आता है, न्यष्टि प्रतिक्रियावाहक (न्यूक्लियर रि-एक्टर) नामक यन्त्र में नियंत्रित किया जाता है। इस यन्त्र में ऐसी व्यवस्था कर ली गई है कि लाखों डिग्री ताप के कारण भी यंत्र भाप बन कर वायु में उड़ नहीं पाता। किन्तु अणुशक्ति से भी भयंकर उद्जन शक्ति को नियंत्रित करने की समस्या वैज्ञानिकों को चिंतित किए हुए थी और वे एक ऐसे यंत्र के निर्माण की उधेड़बुन में थे कि जिसमें इस शक्ति पर काबू पाया जा सके।

अंग्रेज और अमेरिकी वैज्ञानिकों के संयुक्त प्रयासों के फलस्वरूप एक ऐसी प्रक्रिया की खोज कर ली गई है, जिसके अन्तर्गत भयंकर उद्जन शक्ति पर भी कुछ क्षणों के लिए नियंत्रण कायम रखना संभव हो गया है। जिस यंत्र में करोड़ों डिग्री ताप के मध्य द्रवण प्रक्रिया और पुनः उद्जन शक्ति का सर्जन और नियन्त्रण किया जाता है, उसे अमेरिकी वैज्ञानिकों ने फिलहाल "परहेप्सीट्रोन" नाम दिया है। अंग्रेज वैज्ञानिक इसे "जीटा" कहते

उद्जन शक्ति पर नियंत्रण

व्यास का, १८४ पौंड वजन का था। यह अन्तरिक्ष में ५६० मील ऊपर १८,००० मील प्रति घण्टा की रफ्तार से ९६०२ मिनट में पृथ्वी की परिक्रमा करता था।

नवम्बर ५७ को रूस ने दूसरा उपग्रह छोड़ा। इसका वजन ११२ टन था और वह अन्तरिक्ष में ९३० मील की ऊंचाई पर १०२ मिनट में पृथ्वी की परिक्रमा करता था। इस उपग्रह में 'लायिका' नामक जीवित कुतिया भी भेजी गई थी। परन्तु वह तीन दिन बाद मर गई। रूस की सफलता से प्रभावित हो अमेरिका ने भी इस दिशा में प्रयत्न किया और प्रारंभिक असफलता के बाद १ फरवरी ५८ को लघु उपग्रह छोड़ने में सफल हुआ। १७ मार्च ५८ को अमेरिका ने दूसरा लघु उपग्रह छोड़ा। वह रूस के ज्ञान तक पहुंचने में सफल भी न हो पाया है कि मई ५८ में रूस ने अपना १२ टन से दीर्घ उपग्रह छोड़ा जो अभी तक पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है। यह उपग्रहों का युग है। विज्ञान के चरण बढ़ रहे हैं। यदि इन चरणों को शांतिकालीन प्रयोगों में स्थापित किया जाये तो संसार का बहुत कुछ भला हो सकता है, अन्यथा विनाश तो अवसर की प्रतीक्षा में बैठा ही है।

(ऊ) रोग पर विजय

प्राचीन एवं मध्य युग में रोग का कारण ईश्वरीय दण्ड समझा जाता था। जब कोई व्यक्ति बीमार पड़ता तो यह समझा जाता था कि ईश्वर उस से नाराज है। उनकी बीमारियां अधिक भयानक इस लिए हो जाती थी कि वे अन्ध विश्वासी थे, काल्पनिक भय उन्हें हर समय सताता रहता था। यदि किसी रोगी का तापक्रम बढ़ जाता तो उसका रक्त निकाल लिया जाता था। जिससे तापक्रम कम हो जावे। उस समय के इलाज भी विचित्र थे। देवी-देवताओं, भूत प्रेतों को प्रसाद चढ़ाया जाता था। जिससे बीमारियां ठीक हो जायें। वे यह नहीं जानते थे कि रोगों का मुख्य कारण कीटाणु हैं। यदि कीटाणु नष्ट नहीं किये जाते हैं तो रोग बढ़ता है।

रोग के प्रति प्राचीन दृष्टिकोण

भारतवर्ष में आयुर्वेद शास्त्र बहुत बढ़ा-चढ़ा था परन्तु धीरे-धीरे उसका महत्व कम हो गया क्योंकि अनुभवी चिकित्सक न रहे। पाश्चात्य देशों में विज्ञान की सहायता से शारीरिक शक्ति की खोज होने लगी। शरीर का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने के बाद ही हम शरीर के रोगों को मालूम कर सकते हैं। जब रोग मालूम हो जाए तो उसका इलाज भी किया जा सकता है। फ्रांस के एक बहुत

बड़े वैज्ञानिक लुई पेस्टर (पाश्चर) ने प्रथम बार यह खोज निकाली कि समस्त रोगों के कारण कीटाणु हैं प्रत्येक रोग के कीटाणु (Germs) होते हैं। वे इतने छोटे होते हैं कि हमें दिखाई नहीं देते। श्वास की गति के साथ वे शरीर में प्रवेश करते हैं और स्वस्थ कीटाणुओं से युद्ध करते हैं।

रोग के कीटाणुओं की खोज

इस प्रकार यदि वे अधिक बलवान होते हैं तो स्वस्थ कीटाणुओं को नष्ट कर के शरीर में रोग का प्रसार करते हैं। ये कीटाणु सजीव प्राणी होते हैं। सिर्फ श्वास द्वारा ही हमारे शरीर में कीटाणु प्रविष्ट नहीं होते बल्कि जल, भोजन, वायु इत्यादि द्वारा कीटाणु शरीर में चले जाते हैं। शरीर में प्रवेश कर के वे एक प्रकार का विष फैलाते हैं जिसके कारण रोग की उत्पत्ति होती है।

रोग के कीटाणु की खोज निकालने के बाद इलाज बड़ी आसानी से किया जाता है। कीटाणु नष्ट करने की नई औषधियाँ निकली हैं जो रोग को रोक सकती हैं। उन औषधियों का सेवन करने से शरीर में रोग के कीटाणु जीवित नहीं रह सकते हैं। इन में से प्रमुख औषधियाँ निम्नलिखित हैं—

(अ) सल्फनेमाइड परिवार—(Sulphonamide Family)
इस वस्तु का प्रथम आविष्कार जर्मनी में हुआ था। जबकि यह एक रंग के काम में लिया जाता था। परन्तु पिछले युद्ध में जर्मन वैज्ञानिकों ने इसे स्थान चिकित्सा में स्थान दिया १९३५ तक इस वस्तु का विशेष प्रचार नहीं हुआ। परन्तु उसके शीघ्र बाद ही इस वस्तु ने चिकित्सा क्षेत्र में खलबली मचा दी। इस वस्तु से औषधियाँ एक विशेष रीति द्वारा बनाई जाती हैं। ये नाना प्रकार के रूप में गोलियाँ, पाउडर व वेक्सीन में प्राप्त होती हैं। इनमें भिन्न भिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थ काम में लाये जाते हैं। इनमें सब से प्रसिद्ध औषधियाँ सल्फे-डायजीन, सल्फेगायडीन, सीबाजोल, एम० बी० नम्बर ६९३ हैं।

(आ) पेनिसिलीन (Penicillin) सन् १९४० ई० में महान् वैज्ञानिक श्री फ्लेमिंग ने इसका आविष्कार कर के मानव को अनेक रोगों से मुक्ति प्रदान करने का अद्भुत कार्य सम्पन्न किया। पेनिसिलीन एक कीटाणु है जो कि सड़ी चीजों पर पैदा होता है जिसे फगस (Fungus) याने फफूंद कहते

। परन्तु यह कीटाणु अन्य कीटाणुओं को पैदा होने से रोक लेता है और स्व
ोई शारीरिक रोग उत्पन्न नहीं करता। ह्र बुखार को खासकर निमोनिया,
ांसी; ज्वर, फोड़े-फुन्सी आदि बीमारियों को जड़ से दूर कर देता है। गर्मी
Syphillis) जैसी बीमारी को सिर्फ सात दिन में और सुजाक को एक ही सुई
। ठीक कर देता है। इसे रामबाण औषधि माना जाता है।

(इ) स्ट्रेप्टोमाइसीन (Streptomycin) पेनिसिलीन के समान यह
ी एक कीटाणु से ही निकाला गया है परन्तु यह बहुत ही लाभदायक सिद्ध
हुआ है। जिन २ रोगों में पेनिसिलीन सफल हुआ है उन रोगों में यह भी
उतना ही लाभकारी सिद्ध हुआ है। क्षय रोग के लिये यह जीवन दान बन चुका
है। क्षय रोग के अतिरिक्त महामारी के रोग को भी यह तुरन्त ठीक कर सकता
है। इसका आविष्कार सन् १६४६ ई० में ही हुआ है।

(ई) क्लोरोमाइसिटीन (Chloromycitin) यह भी एक कीटाणु
पदार्थ है। यों तो इसका प्रयोग बहुत से रोगों में किया जाता है परन्तु मोतीझरा
(Typhoid) के लिये यह जीवनदान सिद्ध हुआ है। इसके पहले मोतीझरा
के रोग से असंख्य व्यक्तियों की मौतें हो चुकी थीं। परन्तु अभी तक यह निश्चय-
पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह मोतीझरा को जड़ मूल से उखाड़ फेंकने में
सफल हुआ है या नहीं।

(उ) ओरियोमाइसीन (Aureomycin) यह भी एक कीटाणु
पदार्थ है। दस्त, पेचिश, कै तथा ज्वर आदि रोगों में यह अत्यधिक सफल हुआ
है। इस औषधि को मुंह से लेने पर भी उतना ही फायदा पहुँचता है जितना
कि पेनिसिलीन की सुई लेने से।

आधुनिक युग के पूर्व जब किसी व्यक्ति की चीराफाड़ी [शल्य चिकित्सा]
करनी होती थी तो बड़ा भयानक दृश्य उपस्थित हो जाता था। भारत और
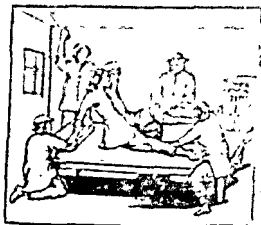
जाता है। चाकू चलाने के पूर्व बेहोशी की औषधियों से मनुष्य को अचेतन बना दिया जाता है फिर कीटाणु विहीन औजारों से उसकी चीरफाड़ी की जाती है।

आधुनिक काल में शल्य चिकित्सा

घावों को कीटाणु विहीन किया जाता है फिर चमड़ी में टांके लगा कर मनुष्य को पुनः होश में लाया जाता है।

अचेतनकारी औषधियां

शल्य चिकित्सा की सफलता अचेतनकारी औषधियों पर अवलम्बित है। शरीर की आन्तरिक खराबियों को दूर करने के लिए शल्य चिकित्सा का प्रयोग करना पड़ता है। शल्य चिकित्सा के समय दर्द को कम करने के लिए अचेतनकारी औषधियों का प्रयोग किया जाता है। कुछ प्रमुख अचेतनकारी औषधियां है—हास्य वायु, ईथर, क्लोरोफार्म, इत्यादि। इन औषधियों के सेवन मात्र से ही मनुष्य अचेतन अवस्था प्राप्त कर लेता है परन्तु ये औषधियां हृदय तथा मस्तिष्क को हानि नहीं पहुंचाती हैं।

(१) हास्य वायु (Laughing Gas या Nitrous Oxide Gas)—इस औषधि का प्रयोग दांतों की बीमारियों को ठीक करने में कि

जाता है। यह वायु नाइट्रस ओक्साइड नामक गैस से बनती है सन् १८०० ई० में हम्फ्रे डेवी ने इसका आविष्कार किया था।

(२ ईथर (Ether) इसके द्वारा मनुष्य शीघ्र ही बेहोश हो जाता है परन्तु आजकल शल्य चिकित्सा में इसका प्रयोग नहीं किया जाता है क्यों कि यह बहुत हल्की है और मनुष्य की बेहोशी को अधिक सुरक्षित नहीं रख सकती।

(३) क्लोरोफार्म (Chloroform) आधुनिक शल्य चिकित्सा में इसी औषधि का अत्यधिक प्रयोग होता है। क्लोरोफार्म के द्वारा कोई भी मनुष्य बेहोश हो कर मर नहीं सकता।

(४) बारबिट यूरेट एवियान (Barbit Urate Eviyan) इस औषधि का आविष्कार अभी हाल ही में हुआ है। शरीर के आंतरिक भाग को शिथिल बनाने के लिए यह बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। इसके द्वारा पांच सेकिण्ड में रोगी सर्वथा बेहोश हो जाता है।

रोगी को बेहोश कर के शल्य चिकित्सा करने में तो सुविधा होने लगी परन्तु कीटाणुओं के संसार ने इस चिकित्सा को असफल करने की कोशिश की।

कीटाणु शत्रु औषधि

चीराफाड़ी करते समय कितने ही कीटाणु शल्य औजारों पर लग जाते हैं और उन्हें जब बार बार प्रयोग किया जाता है तो वे कीटाणु शरीर के भीतर चले जाते हैं। इस प्रकार घावों को सड़ा कर रोगी को मारने का काम करते है

इंगलैण्ड के सुप्रसिद्ध डाक्टर लिस्टर ने सफाई पर बहुत ध्यान देने की आवश्यकता पर जोर दिया। कीटाणुओं को नष्ट करने का उसने सरल तरीका निकाला। प्रत्येक चीज और औजार जो कि

लिस्टर का प्रयोग

शल्य चिकित्सा के काम में लिए जाते थे साफ किए जाने लगे। गर्म पानी द्वारा उन्हें हर बार धोया जाता था। डाक्टर के हाथ भी साबुन द्वारा साफ किये जाने लगे। कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए कारबोलिक एसिड गैस का प्रयोग किया जाता है।

पोटेशियम परमेगनेट का प्रयोग तो हर जगह कीटाणु मारने के काम में लिय
जा सकता है।

शल्य चिकित्सा के समय तो कीटाणु नाशक औषधियों का प्रयोग कर
चीराफाड़ी में सफलता प्राप्त कर ली गई परन्तु वे औषधियां शरीर के सेलों
लिए बहुत हानिकारक हैं। अतः नए प्रकार की चिकित्
होने लगी है जिसे कीटाणु विहीन चिकित्सा (Asepti
Surgery) कहते हैं। शल्य चिकित्सा के यंत्र भाप द्वा
तपाए जाते हैं। शल्यगृह कीटाणु विहीन रखा जा
है। इस नवीन पद्धति से शल्य चिकित्सा अधिक सफल होने लगी है।

कीटाणु-विहीन चिकित्सा

प्रत्येक रोग के लक्षण होते हैं। जब तक उन लक्षणों को डाक्
जान नहीं लेता तब तक उस रोग को दूर करने की ठीक दवा मालूम नहीं
सकती। अतः निदान का होना आधुनिक चिकि
शास्त्र का एक आवश्यक भाग है। जो डाक्टर ठी
तरीके से निदान नहीं कर सकता वह ठीक ढंग
इलाज भी नहीं कर सकता। निदान करने के लिए विज्ञान ने भिन्न भिन्न साध
उपलब्ध कर दिये हैं जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं:—

रोग निदान के साधन

[अ] स्टेथस्कोप (Stethoscope) स्टेथस्कोप रबड़ की एक नल
होती है जिसके एक सिरे पर माइक्रोफोन की तरह छोटी मशीन लगी रह
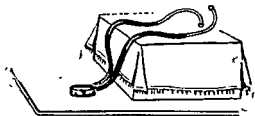
स्टेथस्कोप

है और दूसरी ओर दो अलग अलग नलियां होती हैं जिसे डाक्टर अपने कान में लगाता है। इसके द्वारा शरीर के भीतरी रोगों के लक्षण पहचान में आ जाते हैं। इस नली के द्वारा शरीर के भीतर के कार्य, हृदय की धड़कन, खून की गति, पेट किया इत्यादि मालूम किए जा सकते हैं।

[आ] थर्मामीटर—शरीर का सामान्य तापक्रम ९८.४०० फारेनहाइट है परन्तु रोग के बढ़ने घटने पर तापक्रम भी बढ़ता-घटता रहता है। थर्मामीटर के द्वारा तापक्रम का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। यों तो कई प्रकार के थर्मामीटर बनाये गये हैं परन्तु शरीर के तापक्रम को जानने के लिए एक विशेष थर्मामीटर होता है। वह बहुत छोटा होता है। इसमें पारा भरा जाता है जो शरीर की गर्मी पा कर बढ़ता है। थर्मामीटर पर ९०° से लगाकर ११०° तक के निशान बने होते हैं।

[इ] खुर्दबीन (Microscope) खुर्दबीन की सहायता से इन छोटे-छोटे कीटाणुओं की जाँच कर सकते हैं। इस यंत्र में लगे शीशे इन छोटे से छोटे कीटाणुओं को भी बड़ा बना देते हैं। आजकल खुर्दबीनों में भी बिजली की शक्ति का प्रयोग होने लगा है। एक नया इलेक्ट्रोन खुर्दबीन बना है जिसके द्वारा छोटे छोटे कीटाणुओं को १०,००० गुना बढ़ा कर उनका चित्र लिया जा सकता है।

[ई] एक्सरे—(X Ray) रेडियम के आविष्कार के बाद उसकी शक्ति का प्रयोग चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र में भी किया जाने लगा। रेडियम की किरणों में यह शक्ति होती है कि वह शरीर के भीतर के अन्धकार को भी प्रकाशमय बना सकती है। अतः उसी धातु को ले कर एक्सरे यंत्र का आविष्कार किया गया है। एक्सरे की सहायता से शरीर के भीतरी भागों का हाल मालूम होने लग गया है। एक्सरे बिजली की सहायता से चलता है। एक्स रे शरीर के सिर्फ उस भाग पर ही किया जाता है जहाँ रोग छिपा होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विज्ञान की उपलब्धियों ने मानवीय जीवन की धारा को प्रभावित ही नहीं किया है बल्कि सनातन से चली आ रही गति

को पूर्ण रूप से परिवर्तित कर दिया है। विज्ञान की सहायता से मनुष्य
प्रकृति पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त की है। अभाव व श्रम पर, संदेशव
के साधनों पर, शक्ति के स्रोतों पर तथा रोग पर विजय प्राप्त की है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) विज्ञान की उपलब्धियों का आधुनिक युग एवं उसके मनुष्य के जी
में क्या महत्व है ?

(२) स्थल यातायात के साधनों का विकास कैसे हुआ ? उनके विकास में
कठिनाइयां आईं तथा उन पर किस प्रकार विजय प्राप्त की गई ?

(३) जल यातायात के विकास की कहानी संक्षेप में लिखिए। आधु
जहाजों के बनने से सामाजिक व आर्थिक जीवन में क्या परिवर्तन हु

(४) मनुष्य ने आकाश में उड़ने के लिए क्या क्या प्रयत्न किये तथा
में वह कैसे सफल हुआ ? सविस्तार समझाइए।

(५) पिछले दो सौ वर्षों में संदेश वाहन में क्या उन्नति हुई ? प्रत्येक म
वाहन का संक्षिप्त वर्णन करो।

(६) 'यंत्र मानव के नए दास हैं।' इस वाक्य को दो पृष्ठों में उदाह
सहित समझाइए।

(७) यंत्रों के आविष्कार का मनुष्य के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

(८) पिछले दो सौ वर्षों में मनुष्य ने शक्ति के कौन कौन से नये साधन
निकाले हैं ?

(९) पेट्रोल कैसे निकाला जाता है ? पेट्रोल के उपयोग ने यातायात के वि
में क्या सहायता की ?

(१०) बिजली का प्रयोग किन किन कार्यों में होता है ? उससे मनुष्य को
फायदा हुआ है।

(११) रोग कीटाणु सिद्धान्त की खोज का चिकित्सा शास्त्र पर क्या प्रभाव प

(१२) आधुनिक शल्य चिकित्सा के विकास की कहानी लिखिए! किन किन आविष्कारों ने शल्य चिकित्सा की उन्नति में सहायता की है।

(१३) रोग-निदान के आधुनिक वैज्ञानिक साधन क्या हैं ! उनसे निदान शास्त्र में क्या प्रगति हुई !

(१४) संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—
सल्फोनेमाइड कुटुम्ब, पेनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसीन, अचेतनकारी औषधियां, एक्स-रे, टीका उपचार, तापमापक यंत्र।

तृतीय अध्याय

यांत्रिक व औद्योगिक क्रांति

(अ) क्रांति की उत्पत्ति एवं उसके कारण

आधुनिक युग का मानव सुख सुविधाओं की सामग्रियों को चांदी के कड़ों के सहयोग से सुगमता के साथ हस्तगत कर सकता है। परन्तु उप सुओं को उत्पन्न करने का श्रेय अठारवीं शताब्दी की औद्योगिक क्रा । दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि बीसवीं शताब्दी की चमक दमक ाधारशिला वस्तुतः औद्योगिक क्राति है।

विश्व में क्रातियां होती हैं पर रक्तपात से पूर्ण यह है राजनैतिक का ा स्वरूप, और सामाजिक क्रातियों से कई लोगों के रीति रिवाज एवं सि तथा मान्यताओं पर अनुचित दबाव पड़ता है। परन्तु औद्यो

महत्व क्रांति वस्तुतः बिना किसी रक्तपात एवं सैद्धातिक मतभेदों जननी हैं और वह मानव समाज को शाति एव विचारण अनुमति देती है तथा अन्य क्रातियों की तरह इसकी सफलता एवं सुपरिणा संदेह नहीं किया जा सकता। अपने असीम महत्व में वह अन्य क्रांतियों से आगे बढ़ जाती है क्योंकि यह मानव मात्र की सुख-सुविधाओं को दृष्टिगत हुए विकसित होती रहती है।

अब हम यह देखेंगे कि इस आकस्मिक क्रांति का उद्भव एवं कैसे एवं क्यों हुआ ? यदि इसका सूक्ष्म विवेचन किया जाय तो हमें निम्न कारण स्पष्ट दृष्टिगत होंगे।

(१) पुनरुत्थान एवं भौगोलिक खोजें—पुनरुत्थान ने मानव को साहस एवं प्रेरणा प्रदान की। ज्ञानवर्धन तथा भौगोलिक खोजों की पूर्व में यही पुनरुत्थान दृष्टिगोचर होता है। भौगोलिक खोजों ने उपनिवे मार्ग खोल दिया एवं इन्हीं उपनिवेश निवासियों की आवश्यकता की वस्तु उपलब्धि ने औद्योगिक क्राति को प्रोत्साहन दिया।

(२) जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि—कई देशों की जनसंख्या में वृद्धि ने भी मानव को औद्योगिक क्रांति की ओर उन्मुख किया। बढ़ती आवश्यकताएं भी विकसित हुई फलस्वरूप औद्योगिक क्रांति का उद्भव एवं विकास हुआ।

(३) रहन सहन के स्तर का उच्च होना—ज्यों-ज्यों मानव को सुविधाएं हस्तगत होती गई उसने अपने रहन-सहन के ढंग में भी परिवर्तन आरम्भ कर दिए, फलस्वरूप मानव के जीवन का आर्थिक स्तर उच्चतर होने लगा एवं औद्योगिक क्रांति को उत्साह मिला।

(४) भोग-विलास की वस्तुओं की मांग—वस्तुओं के उत्पादन की वृद्धि ने वैभव एवं भोग की सृष्टि को प्रोत्साहन दिया। अमीर लोग सहज एवं अत्यधिक मात्रा में अन्यान्य वस्तुओं को प्राप्त कर वैभव एवं विलास का सृजन तथा वर्धन तेजी से करने लगे, फलस्वरूप मांग बढ़ती गई।

(५) व्यापार वृद्धि एवं प्रभाव के लिए—व्यापार वृद्धि एवं अन्यान्य देशों से सम्पर्क तथा उपनिवेशों में अपना प्रभुत्व जमाने के लिये कई देशों ने औद्योगिक क्रांति को अत्यधिक विकसित किया ताकि उनका राष्ट्र धनी-मानी एवं प्रभावशाली राष्ट्रों की गणना में आ सके।

(आ) यान्त्रिक आविष्कार

औद्योगिक क्रांति की प्रथम झलक का आभास हमें कपड़ा बनाने की कला में मिलता है। क्रांति का प्रारम्भिक क्षेत्र इंगलैण्ड था। इंगलैण्ड ने ही सर्वप्रथम मशीनों का निर्माण किया था। कपड़ा बनाने की कला में सर्वप्रथम क्रांति का सूत्रपात करने का श्रेय लंकाशायर के निवासी 'जॉन के' को है। उसने सन् १७३८ ई० में नाचने वाली ढरकी का आविष्कार किया।

नाचने वाली ढरकी
Flying Shuttle

इसके पूर्व इंगलैण्ड का एक जुलाहा, उतने सूत की खपत कर सकता था, जितना कि चार व्यक्ति एक दिन में कात सकते थे; परन्तु नाचने वाली ढरकी के आविष्कार ने बुनने की कला में प्रगति की और अब एक जुलाहा सूत प्रयोग में लाने लग गया जितना कि दस व्यक्ति एक दिन में कात

सकते थे। फलस्वरूप सूत की माँग बढ़ने लगी और सूत कातने वालों की कते हुए सूत-को खपाने वालों की कठिनाइयाँ बढ़ने लगीं।

आवश्यकता एवं संयोग के सामन्जस्य ने 'सूत कातने की जेनी' का आविष्कार किया। इस आविष्कार का श्रेय ब्लेक नगर के आंग्ल-नागरिक हारग्रीव्ज नामक जुलाहे को है। सन् १७६४ ई० में, एक दिन उसकी स्त्री ने उसके चरखे को उलट दिया।

सूत कातने की जेनी (Spinning Jenny)

उसमें केवल एक ही पहिया था जिसके घूमने से एक तकुआ घूमता था और उस पर धागा लिपटता जाता था। जब यह सामान्य मशीन उलट दी गई तो उसका पहिया कुछ देर तक घूमता रहा और उसका तकुआ तिरछे होने के स्थान पर सीधा हो गया। इस घटना ने हारग्रीव्ज को यह ज्ञान दिया कि अगर इसी भाँति तकुये सीधे लगाये जायें तो वे सब एक ही पहिये के घुमने से एक साथ घूम सकते हैं। फलतः यह प्रयोग में लग गया और उसने 'सूत कातने की जेनी' के आविष्कार में सफलता प्राप्त की। जेनी हारग्रीव्ज की धर्मपत्नी का नाम था और उसी के नाम से मशीन विख्यात हुई। सन् १७७८ ई० तक इंगलैण्ड में लगभग २०,००० जेनी का निर्माण किया जा चुका था।

उपर्युक्त सुधार ने जनता को उत्साहित कर दिया और असंख्य व्यक्ति चरखे में अधिक सुधार करने में तत्पर हुये। सन् १७६८ ई० में प्रेस्टन निवासी रिचर्ड आर्कराइट (Richard Arkwright) ने

जल-ढाँचा (Water Frame)

एक ऐसा कारखाना स्थापित किया—यह मशीन पहिले जल द्वारा और बाद में भाप द्वारा चलाया जाने लगा। इस नवीन आविष्कार की रूपरेखा इस प्रकार से थी—दो जोड़े रोलर एक दूसरे से कुछ दूरी पर लगा दिये गये थे। कच्चा सूत अथवा ऊन उन के मध्य से निकाला जाता तो वह दूसरे जोड़े में, प्रथम जोड़े से कुछ ऊँचाई पर स्थित था, पानी के रूप में ऐंठ कर तकुए पर लिपट जाता। प्रारम्भ में जल द्वारा चलाये जाने के कारण यह 'मशीन' 'वाटर फ्रेम' (Water Frame) अथवा जल-ढाँचे के नाम से प्रसिद्ध हुई।

सन् १७६२ ई० में आर्कराइट की मशीनें जल की जगह भाप से चलने लगीं। इन आविष्कारों की सहायता से आर्कराइट लखाधिपति बन गया और उसे लार्ड की उपाधि दी गई।

क्राम्पटन का म्यूल

औद्योगिक क्रांति की अन्य देन क्राम्पटन का म्यूल (Mule) है जेनी की सहायता से कतने वाला सूत बहुत ही बारीक एवं कमजोर होता था और आर्कराइट के 'जल-ढांचे' द्वारा तैयार किया हुआ धागा सुदृढ़ परन्तु मोटा होता था। अर्थात् बुनने की कला अभी पूर्ण रूप से उन्नत नहीं हो पाई। सन् १७७६ ई० में क्राम्पटन ने उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तों की समन्वयता से नवीन मशीन का निर्माण किया जो 'म्यूल' नाम से विख्यात हुई। उसने गतिवान फ्रेम पर बीस तकुये इस प्रकार लगाये कि जब वह रोलरों से, जिनके बीच बिना कता हुआ सूत या ऊन निकाला जाता था, कुछ दूरी पर हटाया जाता था तो प्रत्येक तकुआ कुछ ऊन या सूत को बटता हुआ दूर ले जाता था। जब धागा दृढ़ता-पूर्वक बट जाता तो रोलर रोक दिये जाते और ढांचा अधिक दूरी पर हटा लिया जाता था। इस तरह सूत अधिक लम्बा, बारीक एवं सुदृढ़ हो जाता था।

क्राम्पटन के म्यूल में बीसवीं शताब्दी तक सुधार किये जाते रहे और आज विद्युत् द्वारा संचालित कारखानों में इसी म्यूल की संशोधित मशीनें हैं जिन पर एक हजार तकुये लगे हुये हैं। परन्तु एक हजार तकुओं को संभालने के लिये केवल एक या दो व्यक्ति ही बहुत होते हैं।

डा० कार्टराइट का करघा

नूतन आविष्कारों ने प्राचीन करघा के महत्व को समाप्त कर दिया और हस्तकला कौशल का अवसान हो गया। परन्तु सन् १७८४ ई० में डाक्टर कार्टराइट ने एक आश्चर्यजनक करघे का निर्माण किया जिसमें एक पहिया घुमा देने से कपड़ा बुनने का कार्य स्वयं होता रहता था। यह मशीन बहुत उपयोगी सिद्ध हुई और १८२३ ई० तक इस प्रकार की मशीनों की संख्या इंग्लैंड में ८५,००० तक पहुँच गई।

परन्तु अब तक के आविष्कारों द्वारा उत्पादित कपड़े का मूल्य सस्ता
[था । फलतः सस्ता कपड़े बनाने वाली मशीनों का निर्माण किया गया,

कालिकट छापने की नई रीति

सर्व प्रथम यह सस्ता-कपड़ा भारत के बन्दरगाह कालीकट से इंग्लैंड पहुँचा था । इस कपड़े में सौन्दर्य की छटा होती थी परन्तु अब यह कार्य रोलरों की सहायता से किया जाने लगा । रोलरों पर विभिन्न प्रकार के [बे]ल-बूटे निकाल दिये जाते थे और कपड़ों पर उन्हें छाप दिया, जाता था । इस [प्रक]ार सस्ता एवं आकर्षक कपड़ा निकलने लगा ।

कपड़ा स्वच्छ करने की नूतन क्रिया—आविष्कारों के पूर्वकाल में [क]पड़ों को स्वच्छ करने के लिये धूप का सहारा लेना पड़ता था । परन्तु अब [ए]सिड (Acid) का प्रयोग किया जाने लगा । एसिड से कार्य भी उच्च कोटि [क]ा होता था और समय की भी बचत होने लगी ।

वास्तव में आवश्यकता आविष्कार की जननी है । यद्यपि उपर्युक्त [आ]विष्कार की सहायता से सूत, तागा और बुनने की क्रिया में तो आश्चर्यजनक

बिनौले पृथक् करने की मशीन

परिवर्तन हुए परन्तु इन सब की आधारशिला में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ । हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि रूई द्वारा ही कपड़े का निर्माण होता है परन्तु कपास से बिनौले को पृथक् करने के लिये किसी [प्र]कार के आविष्कार नहीं किये गये जिसके फलस्वरूप बुनने वाली मशीनों का [क]ार्य शिथिल पड़ने लगा । क्योंकि रूई के बिना कार्य का होना सम्भव नहीं था । [पू]र्वकाल में एक व्यक्ति दिन भर में एक या दो पौंड कपास साफ कर सकता था । [प]रन्तु रूई की खपत बहुत अधिक मात्रा में थी । सन् १६६२ ई० में ह्विटने ने एक नवीन मशीन का निर्माण किया जिसकी सहायता से एक व्यक्ति एक दिन में एक हजार पौंड कपास साफ कर सकता था । इस मशीन को जिन (Gin) अथवा 'दानव' का नाम प्रदान किया गया और यही मशीन आगे चल कर [''बि]नौले पृथक करने की मशीन'' के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

कपड़ा बुनने के नवीन आविष्कार ने दो बातों की आवश्यकता की ओर ध्यान आकर्षित किया— (१) ठोस धातुओं से मशीनों का निर्माण जैसे लोहा एवं फौलाद आदि से। (२) और इन विशालकाय मशीनों के ... के अतिरिक्त किसी अन्य शक्ति द्वारा संचालित क... भाप का इंजन ... जेम्स वाट ने इस समस्या का समाधान किया। परन्तु ... को आविष्कारकर्त्ता नहीं माना जा सकता क्योंकि ... पहले ही इंजनों का निर्माण एवं विविध कार्यों में उनका प्रयोग प्रारम्भ हुआ था।

सन् १६६० ई० के आस पास हॉलैण्ड के विद्वान वैज्ञानिक हु... (Huyghens) ने एक सिद्धान्त की स्थापना की। इसके अनुसार यदि सि... में गैस या बारूद का विस्फोट हो सके तो उसकी शक्ति से पिस्टन ... पीछे चल सकता है। हुईगेंस के सिद्धान्त से लाभ उठा कर अंग्रेज व्यक्ति ... कोमेन (Newcomen) ने सन १७०८ ई० में एक इंजन का निर्माण किया ... इस इंजन को भाप की शक्ति द्वारा चलाया जाता था। भाप शक्ति पिस्टन ... आगे बढ़ा देती थी। इस इंजन को सर्वप्रथम खानों का जल निकालने के ... में लाया गया।

सन् १७६६ ई० में ग्लासगो विश्व विद्यालय के विद्वान जेम्स वाट ... उपर्युक्त इंजन में संशोधन किया।

(इ) सामाजिक एवं राजनैतिक परिवर्तन

यदि पुनरुत्थान ने मानव के मानसिक क्षितिज को विस्तृत किया, धर्म सुधार आन्दोलन ने अन्धविश्वासों को समाप्त कर सनातन-धर्म की एकान्त... भंग की, फ्रांसीसी क्रांति ने विशेषाधिकारों को समाप्त कर स्व... और बन्धुत्व की आधार शिला रखी तो औद्योगिक क्रांति ने सामाजिक एवं राजनैतिक स्तर में परिवर्तन किया। औद्योगिक क्रांति के पूर्व का समाज उन्नत तो हो चुका था परन्तु उसका स्तर वही था। समानता की घोषणा की जा चुकी थी परन्तु उस के उपभोग से भी सामाजिक स्तर उन्नत नहीं हो पाया।

औद्योगिक क्रांति के पूर्व समाज का स्तर बहुत ही निम्न था। समाज का अधिकांश भाग गावों में निवास करता था। उसे राजनीति से रुचि न थी। और हो भी कैसे सकती थी! उसे जीविका निर्वाह के लिये कठिन परिश्रम करना पड़ता था। कृषि उनकी जीविका की प्रमुख माध्यम थी और कृषि योग्य भूमि का अभाव था। जनसंख्या बढ़ती जा रही थी परन्तु उत्पादन की मात्रा वही थी। फलस्वरूप ग्रामों में, शहरों में, भुखमरी का राज्य स्थापित होने लगा। लोगों को सुख-सुविधाओं से दूर हटना पड़ा। यहां तक कि तन ढकने को वस्त्र भी उपलब्ध न हो सके।

उसी समय औद्योगिक क्रांति हुई। इस क्रांति का श्रीगणेश इंगलैंड से हुआ। अतः प्रस्तुत अध्याय में हम विशेषकर इंगलैंड के सामाजिक एवं राजनैतिक परिवर्तन पर ही अधिक जोर देंगे। क्रांति के फलस्वरूप गावों की संख्या घटती गई और ग्रामीण लोग औद्योगिक केन्द्रों की ओर अग्रसर हुए। धीरे-धीरे नवीन नगरों का विकास हुआ। ये नवीन नगर औद्योगिक केन्द्रों के पास ही विकसित हुए। औद्योगिक केन्द्रों ने कृषकों को कार्य प्रदान किया परन्तु श्रम का फल बहुत ही कम दिया। कम से कम मजदूरी में ज्यादा से ज्यादा कार्य लिया जाने लगा।

नवीन नगरों का विकास

इतना ही नहीं बल्कि पांच-पांच साल के बच्चों और औरतों को भी कारखानों में मजदूरी का कार्य दिया जाने लगा क्योंकि उनकी मजदूरी कम होती थी और पुरुषों की ज्यादा। यह सब कुछ तो ठीक था परन्तु इन श्रमिकों के निवास स्थान की कोई व्यवस्था नहीं की गई। ये श्रमिक शहरों के गन्दे मकानों में जानवरों की तरह जीवन व्यतीत करने लगे। कभी कभी संकट के कारण कारखाने बन्द हो जाते और श्रमिकों को हाथ पर हाथ धर कर बेकार बैठे रहना पड़ता था। उनके पास किसी प्रकार के राजनैतिक अधिकार नहीं थे, और न ही सामाजिक एकता, क्योंकि ये श्रमिक ग्रामों के भोले भाले ग्रामीण थे और प्रथम बार शहरी जीवन व्यतीत कर रहे थे। यद्यपि अधिकांश श्रमिक एक ही स्थान पर कार्य करते थे और एक ही स्थान पर निवास भी परन्तु सज्जनता और भीरुता के कारण वे अपनी व्यक्तिगत कठिनाइयों को एक दूसरे के आगे रखने में झिझकते थे। यही कारण था कि उनमें सामाजिक एकता

विकास न हो सका और अशिक्षित होने के कारण वे सामूहिक योजना का निर्माण भी न कर सके। राज्य ने भी इन श्रमिकों की अवस्था को सुधारने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

औद्योगिक क्रांति ने समाज को निम्नस्तर की तरफ ही नहीं ढकेला परन्तु नैतिक पतन की ओर भी अग्रसर किया। प्राचीन एवं मध्यकाल की पवित्र संयुक्त परिवार पद्धति का अवसान हुआ और आधुनिक स्वतन्त्र परिवार की उत्पत्ति हुई। परन्तु स्वतन्त्र परिवार का प्रेम युगल दम्पति तक ही सीमित था। संयुक्त परिवार की तरह परिवार के सभी सदस्य सम्मिलित नहीं रहते थे। पारस्परिक प्रेम का स्रोत कम होने लगा और समाज में प्रगतिवाद की झलक दिखलाई देने लगी। नारी स्वतन्त्र है, नर के अधीन नहीं। वह स्वयं कमाती है, किसी के ऊपर आश्रित नहीं। वह अपनी इच्छा शक्ति की संचालिका है, दास नहीं। इस प्रकार की भावनाओं ने समाज में वासना, व्यभिचार एवं लम्पटता का सृजन किया और श्रमिक समाज अधोगति की ओर तीव्रता से जाने लगा।

नैतिक पतन

औद्योगिक क्रांति ने मानवीय समाज के रहन-सहन का स्तर अवश्य बढ़ा दिया। मानव की सुख-सुविधायें बढ़ीं। तड़क-भड़क बढ़ी और भोग विलास की वस्तुओं का प्रयोग बढ़ा। अच्छा कपड़ा, सुगन्धित तेल, पाउडर, सुखदायक यातायात के साधन आदि वस्तुओं का निर्माण और उनका प्रयोग द्रुतगति से होने लगा। गाँव वीरान होते गये और शहर विकसित होने लगे। कुलीनों का महत्व घटता गया और व्यापारियों का महत्व बढ़ता गया। काश्तकारों या कृषकों की आवश्यकता कम होती गई और श्रमिकों की संख्या निरन्तर बढ़ती गई। यह सब कुछ औद्योगिक क्रांति की देन थी। और इसी देन ने कुलीन वर्ग और व्यवसायी वर्ग में शक्ति को हस्तगत करने के निमित्त प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ की और इस संघर्ष में प्राचीन एवं मध्ययुग का शक्तिशाली सामन्त वर्ग लड़खड़ा कर गिर पड़ा और व्यापारी वर्ग की विजय हुई।

भोग विलास की वृद्धि

मध्ययुग के मध्यकाल तक सम्पूर्ण समाज दो हिस्सों में विभाजित था—विशेषाधिकार युक्त सामन्त एवं पादरी वर्ग तथा अधिकारहीन वर्ग। अधिकार

मध्यवर्ग की उन्नति

हीन वर्ग में कृषक, कृषकदास एवं मध्यम श्रेणी के व्यक्ति थे। उस समय तक मध्यम श्रेणी का प्रभाव बहुत ही निम्न था।

पुनरुत्थान एवं धर्म सुधार आन्दोलन ने मानव के मानसिक क्षितिज को विस्तृत किया परन्तु इसका पूर्ण लाभ मध्यम श्रेणी ने ही उठाया। उसने शिक्षा की चेतनता से पूर्ण लाभ उठाया। अपने युग की राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया और अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। इसी समय औद्योगिक क्रांति हुई। औद्योगिक क्रान्ति का श्रेय मध्यम वर्ग को ही है और मध्यवर्ग की उन्नति का श्रेय औद्योगिक क्रान्ति को है। औद्योगिक विकास के लिये कारखानों की स्थापना आवश्यक थी और कारखानों के लिये पूंजी की आवश्यकता थी। पूंजी को लगाने के लिए व्यावसायिक निपुणता एवं बौद्धिक ज्ञान की आवश्यकता थी। सामन्तों के पास पूंजी तो थी परन्तु उपर्युक्त योग्यता न थी। मध्यम श्रेणी के पास दोनों ही वस्तुयें थीं। फलतः उन्होंने शीघ्र ही सम्पूर्ण विश्व की आर्थिक स्थिति पर अपना प्रभाव डाल दिया।

पुनरुत्थान द्वारा मध्यम श्रेणी में शिक्षा का प्रचार हुआ और उसकी बौद्धिक शक्ति का विकास हुआ। औद्योगिक क्रांति के माध्यम से मध्यम श्रेणी की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो गई। अब मध्यम वर्ग, शिक्षा एवं आर्थिक स्थिति में सामन्तों एवं पुरोहितों से आगे था। विशेषाधिकार युक्त वर्ग से आगे था, उन्नत था परन्तु उसे राजनैतिक एवं सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। क्योंकि उनमें न तो विशेषाधिकार युक्त वर्ग की तरह भोग-विलास में लिप्त रहने की आदत थी और न पुरोहितों के अन्धविश्वासों में आस्था थी। मध्यम वर्ग वास्तव में समाज का मध्यम वर्ग था। न प्रथम वर्ग की तरह अधिकारी एवं विलासी और न निम्नवर्ग की तरह परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ, अनेक करों के भार से मृतप्राय सा था। वह शिक्षा एवं आर्थिक व्यवस्था का संचालक था परन्तु राजनैतिक एवं सामाजिक अधिकारों से विहीन था। फलतः इस वर्ग में अधिकारों को प्राप्त करने की प्रबल इच्छा जाग्रत हुई।

समानता की मांग

मध्यमवर्ग की उन्नति का सूत्रपात सर्वप्रथम, इंग्लैण्ड में हुआ। परन्तु राजनैतिक अधिकार इस वर्ग को बहुत बाद में प्राप्त हुए। राजनैतिक अधिकार

को प्राप्त करने का श्रेय अमेरिका के मध्यम वर्ग को है। सर्वप्रथम, अमेरिका के मध्यम वर्ग ने ही राजनैतिक एवं सामाजिक अधिकार प्राप्त किये। अमेरिका के उदाहरण ने फ्रांसीसियों को प्रेरणा दी है। उन्होंने १७८९ की क्रान्ति में राजनैतिक एवं सामाजिक अधिकार प्राप्त किये।

इंगलैण्ड के मध्यवर्ग को वास्तविक सफलता सन् १८३२ ई० में प्राप्त हुई। सन १८३२ के पहले मध्यम श्रेणी के अधिकार प्राप्त करने के प्रयत्न असफल होते गये और उन्हें किसी प्रकार के राजनैतिक अधिकार प्राप्त नहीं हुए। परन्तु सन् १८३२ ई० में प्रथम सुधार बिल पास किया गया और इस बिल ने मध्यम वर्ग को पूर्ण अधिकार प्रदान किये।

औद्योगिक क्रांति ने बड़े बड़े कारखानों का निर्माण किया और पूंजीवाद की आधारशिला भी रखी। मशीनों का प्रयोग बढ़ने लगा और उत्पादन की मात्रा में उन्नति होती गई परन्तु फिर भी धनी सम्पन्न लोगों का एक ही ध्येय था।—अधिक से अधिक उत्पादन। परन्तु किसी को यह भी ध्यान नहीं था कि अधिक से अधिक उत्पादन करने वाले आधार श्रमिकों की क्या दशा है। उनके निवास की कोई व्यवस्था न थी। उनके स्वास्थ्य पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। कभी-कभी कारखाने बन्द हो जाते थे और उनको बेकार बैठे रहना पड़ता था। इधर उधर की खाक छानते फिरते थे।

श्रमिक संघ
Trahde union

श्रमिकों को राबर्ट ओवन जैसे महा साहसी सुधारक का सहयोग प्राप्त हुआ और उसने मजदूरों का पक्ष ले कर सुधारों की माँग की। प्रारम्भ में तो किसी ने ध्यान नहीं दिया परन्तु शनैः शनैः सभी को इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि श्रमिकों के कल्याण के लिये कुछ न कुछ करना चाहिये। प्रारम्भ में उन्होंने निर्धन एवं अनाथ बालकों के प्रति सहानुभूति प्रगट की और सन् १८०२ ई० में एक कानून बनाया गया, जिसके द्वारा यह निश्चित किया गया कि वे सप्ताह में केवल ६२ घण्टे काम कर सकेंगे। (यह कानून इंगलैंड का है और यहां पर अन्य विवरण भी इंगलैंड से ही सम्बन्धित हैं क्यों कि औद्योगिक क्रांति और श्रमिक संघ का सूत्रपात इंगलैंड में ही हुआ था।) उनके लिये कुछ सुविधाएं और भी कर दी गईं जैसे साल में एक जोड़ी जूता और वस्त्र मिल मालिकों को देने पड़ेंगे। यद्यपि राबर्ट ओवन ने मजदूरों की दशा

सुधारने का अथक प्रयत्न किया परन्तु उसे अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई। १८१६ में एक ओर कानून बनाया गया जिसके द्वारा नौ वर्ष से कम आयु बालकों से कार्य नहीं लिया जा सकेगा। और नौ से सोलह वर्ष के बालकों बारह घण्टा प्रति दिवस के हिसाब से अधिक कार्य नहीं लिया जा सकेगा। लोंकि इन सुधारकों से श्रमिकों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ परन्तु अभी इन से सुधारों की आवश्यकता थी। सन् १८२२ ई० में बालकों के लिये काम घण्टे और कम कर दिये गये और १८३२ ई० के कानून द्वारा स्त्रियों और लड़कों से भूगर्भित स्थानों में कार्य लेना वर्जित कर दिया गया। इनके पश्चात् ति वर्ष नवीन-नवीन सुधार किये जाने लगे।

उपरोक्त सुधारों ने मजदूरों में जागृति उत्पन्न की। वे अपने अधिकारों ो समझने लगे और अधिकारों को प्राप्त करने के लिए मजदूर संघों (Trade nions) का सगठन किया जो समस्त श्रमिकों के लिए लड़ सके। परन्तु सब इंगलैण्ड और फ्रांस जैसे उन्नत देशों में भी क्रमशः सन १८७१ एवं १८८४ ई० में ही वैध माने गये।

मजदूरों की दशा को सुधारने के लिए जो आन्दोलन किया गया था वह समाजवाद कहलाया। समाजवाद का तात्पर्य है समाज में समानता की स्थापना करना। समानता का अर्थ है— आर्थिक तथा राजनैतिक दृष्टिकोण से समानता। समाजवाद को अमर रूप प्रदान करने का श्रेय कार्ल मार्क्स को है। कार्ल मार्क्स के प्रयत्नों से ही श्रमिकों में समाजवाद की भावना का प्रचार एवं विकास हुआ।

कार्ल मार्क्स और समाजवाद

वैज्ञानिक होने के नाते मार्क्स की विचारधारा व्यक्तिवाद एवं अन्य वादों से सर्वथा अलग है। यदि पूंजी और श्रम में निहित तथ्यों का गम्भीर अध्ययन और विश्लेषण ही विज्ञान है तो मार्क्स के समाजवाद को वैज्ञानिक कहा जा सकता है। मार्क्स के मतानुसार किसान मजदूर जनता के हाथ में शक्ति आनी चाहिये। जब राज्य शक्ति जनता के हाथ में रहेगी और भूमि व पूंजी पर व्यक्तियों का स्वामित्व न रहेगा और सब लोग श्रमिक की हैसियत से काम करने लगेंगे तो स्वयं एक श्रेणी व वर्गविहीन समाज का निर्माण हो जायेगा, जिसमें कोई किसी का शोषण नहीं कर सकेगा।

की उपनिवेशों को स्थापित करने की प्रवृत्ति में कुछ शिथिलता भी आ ग
परन्तु यह कार्य बिल्कुल ही बन्द नहीं किया गया। औद्य

साम्राज्यवाद की महामारी — क्रान्ति ने इस प्रवृत्ति को पुनः जीवित किया। इस नूतन को 'साम्राज्यवाद' के नाम से भी सबोधित किया जात साम्राज्यवाद का अर्थ है—साम्राज्य में वृद्धि करना वजित देशों से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना। साम्राज्यवाद के ि को इन तीन सीढ़ियों में बाट सकते हैं। नाविकों द्वारा नवीन राष्ट्रों की एवं सामुद्रिक मार्गों की खोज साम्राज्यवाद की आधारशिला अर्थात् प्रथम थी। इसके उपरान्त इन अज्ञात देशों में उपनिवेश स्थापित किये गये अन्त में उपनिवेशों को प्रयत्न से साम्राज्य में मिला लिया गया।

उपनिवेशों की स्थापना और विकास में निम्न कारण महत्वपूर महान् भौगोलिक खोजों ने यूरोप के निवासियों के मानसिक क्षितिज को 'कर दिया था और वे दूर दूर जाने लगे और नवीन उपनिवेशों के की धन-सम्पदा ने आकर्षित होने लगे। दूसरा विकास के कारण तीसरा कारण औद्योगिक क्रांति था। औद्योगिक के कारण उत्पादन की मात्रा बढ़ने लगी। कच्चा माल यूरोप में उपलब्ध न था। अतः कच्चे माल को प्राप्त क लिए उपनिवेशों की स्थापना और स्थापित उपनिवेशों को सुरक्षा के सैनिक सुरक्षा आवश्यक थी। उत्पादन की मात्रा के साथ ही साथ य के साधनों का भी सुधार हुआ और व्यावसायिक क्रांति भी हुई। अब त माल को अच्छे भाव से खपाने के लिये मण्डियों की आवश्यकता थी। म की आवश्यकता ने उपनिवेशों की स्थापना और उनके द्वारा साम्राज्य विकास की प्रवृत्ति को जन्म दिया। इन कारणों के अतिरेक उपनिवे स्थापना में सांस्कृतिक कारणों का भी सहयोग रहा। यूरोप में मानवव जोरों से प्रचार हो रहा था। मानववाद का उद्देश्य था असभ्य मा सभ्य बनाना। अज्ञात राष्ट्रों की असभ्य जनता को सभ्य बनाना। अत निवेशों की स्थापना पर जोर दिया गया। ईसाई धर्म का प्रचार भी उ के विकास का कारण था। ईसाई पादरी अज्ञात स्थानों में अपने

प्रचार करने को निकल पड़े और उनकी सुरक्षा की ओट में साम्राज्यवादियों ने अपने उपनिवेशों का विस्तार किया।

उपनिवेशों की दौड़ में इंग्लैण्ड सब से आगे रहा। यूरोप के अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा उसके उपनिवेश अधिक थे। द्वितीय महायुद्ध के अन्त तक आंग्ल-साम्राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता था। परन्तु यह किसी एक व्यक्ति की प्रतिभा का प्रतीक नहीं था बल्कि अनेक साहसिकों का सामूहिक कार्य था जिसको पूर्ण करने के लिये कई शताब्दियों तक संघर्ष करना पड़ा था।

आंग्ल-उपनिवेशों का विस्तार

सर्वप्रथम इंगलैण्ड ने उत्तरी अमेरिका की तरफ ध्यान दिया। सन् १५८३ ई० में मछली उद्योग के हेतु न्यू-फाउण्डलैण्ड में प्रथम उपनिवेश की स्थापना की गई। फिर धीरे धीरे वरजीनिया, बर्मुडा, कारोलीना आदि उपनिवेशों की स्थापना की गई। इंगलैण्ड ने अमेरिकन उपनिवेशों का शोषण करना प्रारम्भ कर दिया जिसके फलस्वरूप उपनिवेशों की जनता से उसे संघर्ष करना पड़ा और इस संघर्ष में उपनिवेशों की जीत हुई और सन् १७७६ ई० में वे 'संयुक्त राज्य अमेरिका' के रूप में स्वतन्त्र हो गये। इस घटना के कुछ ही वर्षों पूर्व अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों से कैनाडा छीन लिया था।

अमेरिका के निकल जाने के उपरान्त अंग्रेजों ने आस्ट्रेलिया की तरफ अपना ध्यान केन्द्रित किया। प्रारम्भ में आस्ट्रेलिया का प्रयोग अंग्रेजों ने अपराधियों के निर्वासन के लिए किया। परन्तु धीरे धीरे स्वतन्त्र मनुष्य भी आस्ट्रेलिया में बसने लगे। इसके उपरान्त वहां की स्वर्ण-खानों ने अंग्रेजों को प्रभावित किया और फिर हजारों की संख्या में वे वहां बस गये। इसके बाद अंग्रेजों ने न्यूजीलैण्ड की मूल जाति 'माओरी' को पराजित कर के न्यूजीलैण्ड में अपने उपनिवेश स्थापित किये। इसी प्रकार कुछ संघर्षों के उपरान्त दक्षिणी अफ्रीका पर भी अंग्रेजों ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया। फिर भारत, लंका, ब्रह्मा आदि देशों पर भी उन्होंने छल कपट से अपना स्वामित्व स्थापित किया।

इंगलैण्ड के उपरान्त, उपनिवेशों की दौड़ में फ्रांस का स्थान आता है। फ्रांसीसियों ने कैनाडा में अपने उपनिवेश बसाये परन्तु सप्तवर्षीय युद्ध के परिणाम-

फ्रांसीसी उपनिवेश

स्वरूप फ्रांस को अपने उपनिवेश इंगलैण्ड को देने पड़े। इसी प्रकार भारतवर्ष के महत्वपूर्ण प्रांत भी फ्रांस को इंगलैण्ड के हवाले करने पड़े। इस पर भी फ्रांसीसी निराश नहीं हुए और उन्होंने भू-मध्य सागरीय तटवर्ती अफ्रीकन अलजीरिया पर अपना प्रभुत्व कायम किया। आज भी अलजीरिया समस्या विश्व समस्या बनी हुई है और फ्रांस इसे खाली करने को तैयार नहीं। इसके अतिरिक्त फ्रांस ने पूर्वी एशिया में कोचीन-च्यायना और अनाम पर नना अधिकार किया।

उपनिवेशों की इस दौड़ में यूरोप के अन्य देश पुर्तगाल, स्पेन, बेल्जि-म, जर्मनी, इटली आदि बहुत पीछे रह गये परन्तु उन्होंने भी यथासाध्य अपने पनिवेश स्थापित किये। इस प्रकार औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप उत्पादन ी मात्रा बढ़ी। उत्पादन के लिए कच्चे माल और उत्पादन को खपाने के लिए देशी मण्डियों की आवश्यकता हुई और परिणामस्वरूप उपनिवेशों की थापना की गई।

औद्योगिक क्रांति ने जहाँ मानवीय जीवन को कल्याणमय बनाने में हयोग प्रदान किया वहीं उसने यूरोप के राष्ट्रों को समृद्धिशाली बनने की महत्वाकांक्षा से प्रेरित किया। इस प्रेरणा को कार्यान्वित करने के लिए उन्हें पिछड़े हुए राष्ट्रों का अधिकार तथा भरक्षण चाहिये था क्योंकि बिना उपनिवेशों के राष्ट्रीय माल को खपाना उन के लिये अत्यन्त कठिन था क्योंकि यूरोप के सभी राष्ट्रों में सामान तथा हमेशा उपयोग में आने वाली वस्तुओं का निर्माण शुरू हो गया था। इंगलैण्ड और फ्रांस इस दौड़ में आगे थे जबकि जर्मनी,

अन्तर्राष्ट्रीय तनाव का विकास

आस्ट्रिया बहुत पीछे रह गये थे। अतः स्वाभाविक था कि इन दोनों में संघर्ष हो। जर्मनी ने सन् १८७० में फ्रांस को पराजित कर के अपनी शक्ति का विस्तार किया। आस्ट्रिया जर्मनी से पराजित हो कर उसका मित्र बन चुका था। अब जर्मनी ने अफ्रीका और बाल्कन प्रायद्वीप की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इंगलैण्ड भूमध्य सागर तथा मिश्र पर अपना प्रभुत्व समझता था। उधर फ्रांस मोरक्को और मिश्र पर अपना अधिकार

[illegible] जर्मनी पूर्व में [illegible] बढ़ रहा था और जर्मन साम्राज्य योजना को कार्यान्वित करने का यत्न कर रहा था। इटली भी अफ्रीका में अपने उपनिवेश को [illegible] रहा था। रूस अपनी सीमा का विस्तार कर रहा था और [illegible] बढ़ती जा रही थी [illegible] अपनी [illegible] कर और [illegible] हो रहा था। ऐसी [illegible] अन्तर्राष्ट्रीय [illegible] प्रत्येक देश को अपनी सुरक्षा की चिन्ता लग गई और अपने विरोधी देश के मुकाबले में उसने मित्र देशों से गठबन्धन प्रारम्भ की। जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली में सन्धि हुई। इस से विवश हो कर रूस और फ्रांस, फ्रांस और इंगलैण्ड, इंगलैण्ड और जापान तथा रूस, फ्रांस और इंगलैण्ड में भी सन्धियाँ हुईं। जिसका परिणाम यह हुआ कि संसार दो विरोधी गुटों में बट गया और प्रथम महायुद्ध का सूत्रपात हुआ।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) औद्योगिक क्रांति से क्या समझते हो? इस क्रांति के मुख्य-मुख्य कारणों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

(२) औद्योगिक क्रांति कौन-कौन से यांत्रिक आविष्कारों के कारण सम्भव हो सकी? समझाइए।

(३) औद्योगिक क्रांति के कारण कौन-कौन से सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन हुए? विस्तारपूर्वक लिखिए।

(४) मध्यम वर्ग की उन्नति पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिए।

(५) श्रमिकों की स्थिति को सुधारने के लिए क्या प्रयत्न किये गये?

(६) औद्योगिक क्रान्ति ने विश्व के राष्ट्रों को परस्पर निर्भर कैसे बना दिया?

(७) उपनिवेशों का विकास कौन कौन से कारणों के कारण सम्भव हो सका? इंगलैण्ड के औपनिवेशिक विस्तार को समझा कर लिखिए।

(८) "औद्योगिक क्रांति ने अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को उत्पन्न कर दिया।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उनके मातृ राष्ट्रों की सेना एक हद तक पहुँची । फिर क्या था । सम्पूर्ण देश ने विदेशी भाषा स्वीकार की । यह शिक्षा द्वारा राष्ट्रों के साथ [illegible] हो गया । परन्तु उनका [illegible] के साथ उन्हें दूसरे हथकंडों का प्रयोग करना पड़ा। धर्म प्रचारकों ने वहाँ की भाषा को सीखकर निर्धन जनता को [illegible] की जनता से धर्म [illegible] किया [illegible] किया और या ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की कि उन्हें धर्म प्रचार में [illegible] दिया जाये ताकि इस प्रकार उनके मातृ राष्ट्रों को ऐसे दुर्बल देशों से कच्चे माल का [illegible] प्राप्त हो सके । और बनायें व्यापारिक स्थान मिल सके । चीन में ऐसा ही घटित हुआ था ।

शिक्षा का प्रसार

एशिया और पश्चिम में सम्पर्क का द्वितीय कारण था—शिक्षा ! प्राचीन काल में ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में एशिया संसार का अगुआ रह चुका है । गणित, ज्योतिष आदि का विकास सब से पूर्व एशिया में ही हुआ था । एशिया ने ही पश्चिम को शिक्षा प्रदान की थी । परन्तु इसी शिक्षा के प्रचार हेतु आधुनिक युग में पाश्चात्य राष्ट्रों ने एशिया पर अपना प्रभुत्व बनाये रखने का प्रयत्न किया । प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक मैकाले ने कहा था कि यदि भारत पर अपना अधिकार दृढ़ करना है तो भारत की शिक्षा को पलट दो। भारतवासियों को अंग्रेजी शिक्षा दे कर उन से प्रशासन का काम निकालो और उनके हृदय में भारतीय संस्कृति के प्रति घृणा उत्पन्न कर दो । वास्तव में उसके कथन का प्रयोग किया गया । पाश्चात्य राष्ट्रों ने विजित देशों में अपनी मातृभाषा तथा शिक्षा का प्रचार किया । जिसके फलस्वरूप चन्द शिक्षित लोगों की जीविका-निर्वाह का साधन उपलब्ध हो गया और वे अपने मालिकों का अनुकरण करने लगे । अपनी शिक्षा, सभ्यता तथा संस्कृति को हेय समझने लगे। विदेशी शक्तियों ने इस शिक्षा के प्रचार के द्वारा नवयुवकों को अपने रंग में रंग लिया। उन्हें अपना गुलाम बना लिया और ये ही गुलाम अपने देश की परतन्त्रता की श्रृंखलाओं में जकड़ने में सहयोगी बने । इस शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य सभ्यता का प्रसार न हो कर और ही कुछ था । इस नीति की ओट में साम्राज्यवादी शोषण लिप्सा छिपी हुई थी । इस नीति में एक शोषण का पुट प्रमुख रूप से विद्यमान था ।

व्यापारिक क्षेत्र स्थापित कर लिया। रूस ने भी इसी प्रकार उत्तरी चीन पर अधिकार कर लिया।

पड़ोस का राष्ट्र जापान चीन की हत्या को सहन नहीं कर सका। वह भी कुछ हड़प लेना चाहता था। उसने फारमोसा, लाओटुंग व पोर्ट आर्थर पर अधिकार कर लिया। जर्मन भी इस पवित्र भूमि पर चढ़ दौड़ा और शांटुंग प्रान्त पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार चीन अर्द्ध-गुलाम देश बन गया।

राष्ट्रीय जागृति के कारण व विकास—चीन में विदेशी शासन का भार १९ वीं शताब्दी के मध्य काल से ही प्रारम्भ हो चुका था। जनता असन्तुष्ट होने लगी। १८४९ में टाइपिंग की क्रान्ति हुई। पर वह दबा दी गई। लोग विदेशी शासन के सम्पर्क में आने लगे। उनमें राष्ट्रीयता व प्रजातन्त्र के भाव बढ़ने लगे। अपने देश की एकता व स्वतन्त्रता का प्रयास करने लगे।

(१) बोक्सर क्रांति (१९००)—विदेशी अत्याचारों का उत्तरदायित्व राजशासन पर डाला जाने लगा। उस समय राज्य का भार राजमाता त्जू इसी पर था। वह जनता के असंतोष को समझ रही थी। उसने यह असंतोष विदेशियों के विरुद्ध भड़का दिया। राष्ट्रीय नेताओं ने (जिन्हें अंग्रेज Boxer कहते थे।) १९०० में क्रांति कर दी। विदेशियों की हत्या शुरू हुई परन्तु विदेशी राष्ट्रों ने अपनी सैनिक शक्ति के बल पर चीनियों की इस क्रान्ति को दबा दिया। पेकिंग लूट लिया गया।

(२) पश्चिम के नये विचारों से सम्पर्क—बोक्सर क्रांति दबा दी गई। बहुत से समझदार चीनी लोग पाश्चात्य देशों में अध्ययन करने के लिए गए। वहां की शासन पद्धति का अध्ययन किया और अपने देश में भी इसी प्रकार की शासन व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न करने लगे।

(३) मंचू राजवंश की अयोग्यता—चीन में धीरे धीरे विदेशी प्रभाव बढ़ने लगा। चीन का सम्राट इस विदेशी प्रभाव को रोक नहीं सका। बल्कि वह स्वयं उनके हाथों में कठपुतली बन गया। विदेशी शक्तियां [illegible] चीन पर शासन कर रही थीं। जनता ने इस सरकार के पतन में ही अपनी [illegible] दी।

(४) चीनी व्यापारियों का उत्थान—चीन में भी छोटे-छोटे व्या
पनपने लगे थे। वे अपने देश के व्यापार व आर्थिक स्थिति का शोषण
करना चाहते थे इसलिए वे देशभक्तों के दलों को सहयोग देते रहे।

(५) डा० सनयात सेन का नेतृत्व—चीन की राष्ट्रीय एकता
स्वतन्त्रता के प्रतीक डा० सनयात सेन थे। प्रारम्भ में उन्होंने गुप्त ढंग से
बनाना शुरू किया। इस दल का उद्देश्य चीन को स्वतन्त्र व एकता का
देना था। जनता को क्रान्ति के लिए तैयार करना व देश के शासन का उ
दायित्व संभालना इस दल के मूल उद्देश्य थे,कई बार क्रान्ति के प्रयत्न किये ग
परन्तु सफलता नहीं मिली। हजारों देशभक्त चीनी मारे जाने लगे। जेलें
भक्तों से भरी जाने लगीं। डाक्टर सेन निराश नहीं हुए। तीस वर्ष तक प्र
करते गये। १९११ में इन्होंने अन्तिम बार प्रयत्न किया। क्रांति सफल हुई।
राजवंश का अन्त हुआ। १९१२ में चीन को प्रजातन्त्र घोषित कर
गया।

१९१२-१९२५—चीनी प्रजातन्त्र के प्रथम अध्यक्ष डा० सनयात
चुने गये। उन्होंने देश में एकता स्थापित करने का भरसक प्रयत्न किया।
पति युआन-शी-काई उत्तरी चीन पर अधिकार
कुमिन्तांग का शासन हुए था। डा० सेन ने उसके पक्ष में अध्यक्ष प
डा० सनयातसेन त्याग कर दिया। वह कुमिन्तांग के प्रजाता
विचारों का विरोधी था परन्तु देश को एकता के
डा० सेन ने यह त्याग भी किया। सेनापति यूआन शी काई अध्यक्ष होते
तानाशाही स्थापित करना चाहता था। उसने पार्लियामेंट तोड़ दिया। १९
में वह सम्राट बन गया। परन्तु उसी वर्ष उसकी मृत्यु हो गई। उसके सहयो
ने उसकी परम्परा बनाए रखी। डा० सनयात सेन बहुत निराश हुए। उ
कैंटन में क्यूमिन्टाग सरकार स्थापित कर ली। एक सरकार पेकिंग में,
सरकार कैंटन में दोनों ही एक दूसरे के विरोधी। अतः चीन में स्थिति पू
बनी रही।

चीन की एकता को संगठित करने में डा० सनयात सेन को असफ
मिली परन्तु अन्य क्षेत्रों में कुमिन्टाग सरकार को कुछ सफलता मिली।

पर अधिकार कर लिया । पुनः चीन में एकता स्थापित हो गई । देश नि
कार्य सरल प्रतीत होने लगा । परन्तु च्याग काई शेक की कम्यूनिस्ट-विरो
से चीन की स्थिति पूर्ववत् बनी रही ।

साम्यवादी विरोधी नीति से गृह-युद्ध शुरू हो गया । देश के पु
की योजना सफल न हो सकी । चीनी सेनापति व सामन्ती शक्तियां पुनः
होने लगीं । चीन को गृह-युद्ध में लगा समझ कर जापान ने—जो कि शीघ्र ई
शाली देश हो रहा था—मन्चूरिया पर अधिकार कर के एक कठपुतली
स्थापित कर दी ।—कम्यूनिस्टों ने एकता का मोरचा स्थापित कर के जा
युद्ध करना चाहा पर च्याग ने पहले इन्कार कर दिया । परन्तु जब १६
जापान चीन विजय को निकला तो संयुक्त मोर्चे का आयोजन किया ग
जापान की प्रगति रोकी गई । द्वितीय महायुद्ध (१६३६—१६४५) के
व बाद में च्यागकाई शेक ने द्वितीय महायुद्ध में मित्रराष्ट्रों को सहयो
अतः एशिया का बड़ा राष्ट्र होने के कारण वह चार बड़ों की गिनती
लगा । युद्ध के दौरान में चीनी दलों में एकता थी अतः जापान चीन
न कर सका । १६४५ में युद्ध समाप्त हुआ । विजयी च्यांग काई शेक ने
निस्टों पर पुनः आक्रमण किया । इसका साथ अमेरिका ने दिया । अमे
चीन के पुनर्निर्माण के लिए धन की सहायता दी । उधर सोवियत
कम्यूनिस्टों की सहायता करना शुरू किया । गृह युद्ध पुनः भड़क उठा । च
का पुनर्निर्माण नहीं कर सका । किसान पीड़ित थे, सैनिकों को पूरा वे
मिल रहा था, काला बाजार जोर से था, वस्तुओं के दाम आकाश में ज
कहते हैं कि एक जोड़ा जूतों के दाम करीब एक बड़े थैले भर कर नोट
भुखमरी फैल रही थी । उधर सेना संचालन में कमजोरी आ रही थी ।
सेना हार रही थी । कम्यूनिस्ट विजयी हो रहे थे, उनके सिद्धान्त व कार्य
जनता प्रभावित हो रही थी अन्त में च्याग को चीन छोड़ कर फारमूस
पड़ा (१६४६) और अब संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की संरक्षता में रहना पड़
कुमिंगतान का शासन चीन में १६४६ में समाप्त हुआ । माओत्से-
अध्यक्षता तथा चाऊ एन-लाई के प्रधान मन्त्रित्व के अन्तर्गत साम्यवादी
की स्थापना की गई ।

किया गया। एक राष्ट्रीय असेम्बली स्थापित की गई। पुराने रीति रिवाजों को समाप्त कर नया जीवन शुरू किया गया। इन प्रयत्नों से जापान का सम्राट मिकाडो अति शक्तिशाली हो गया।

यह जापान और विश्व के लिए दुर्भाग्य का समय था कि जापान की प्रगति प्रजातान्त्रिक विचारों व साधनों द्वारा न होकर साम्राज्यवादी तरीकों से हुई।

साम्राज्य का उत्थान

सम्राट के निरंकुश शासक बन जाने पर जापान में नए-नए सुधार हुए। मिकाडो ने पश्चिम से जो सीखा वह अपनी शक्ति व साम्राज्यवादी विचारों को दृढ़ बनाने में लगा दिया। शिंटो धर्म द्वारा जापानी जनता में प्राचीनता के प्रति अधिक श्रद्धा उत्पन्न हो गई। यह धर्म जनता को अनुशासन में रखने के लिए भयंकर प्रचार करने लगा। पश्चिम के सम्पर्क से जापानियों ने सैनिक संगठन की नीति अपनाई। सैनिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। सैनिक नेताओं ने राज्य पर प्रभाव स्थापित कर लिया। सैनिक शक्ति सम्राट के व्यक्तिगत उत्तरदायित्व पर निर्भर थी। पश्चिम के सम्पर्क से जापानी सम्राट ने उद्योगीकरण का पाठ सीखा। तेजी के साथ उत्पादन शक्ति बढ़ने लगी। उद्योग धन्धों और वैज्ञानिकों की उन्नति हुई। परन्तु देश की भूमि कम थी और जनसंख्या बढ़ती जा रही थी, अधिक जनसंख्या बसाने की भयंकर समस्या थी। अधिक उत्पादन के वितरण की समस्या थी। विदेशी पूंजीपतियों के प्रभाव से युवक जापानी पूंजी प्रसार के लिए उत्सुक थी। अतः जापान की दृष्टि चीन पर पड़ी। चीन अस्त-व्यस्त शासन से पीड़ित हो रहा था। विदेशी शक्तियाँ अपने दाव पेच द्वारा चीन को प्रभावित कर रही थीं। जापान ने इसका लाभ उठाया। १८६४ में चीन-जापान युद्ध हुआ। चीन पराजित हुआ इस के फलस्वरूप चीन को फारमोसा, लाओ टंग तथा पोर्ट आर्थर जापान को देने पड़े। इसके पहले कोरिया जापान हथिया ही चुका था पर अब स्वतन्त्र कर दिया गया। जापानी साम्राज्य का निर्माण होना शुरू हो गया था।

जापान की समस्याओं ने जापान को एक साम्राज्यवादी राष्ट्र बना दिया। धीरे धीरे चीन में प्रसार करने लगा। चीन में रूस, इंगलैंड, जर्मनी, भी अपनी शक्तियों का प्रसार कर रहे थे। जापान और रूस का क्षेत्र

एक ही था अतः संघर्ष होने की पूर्ण संभावना थी। १९०२ में जापान ने इंग्लैण्ड से एक संधि कर के रूस व इंग्लैण्ड को एक होने का अवसर नहीं दिया। इस प्रकार जर्मनी जापान सन्धि हो गई। जापान अब अपने साम्राज्य का विस्तार करने लगा। १९०५ में रूस-जापान युद्ध हुआ। रूस हार गया। जापान ने पुनः कोरिया पर अधिकार कर लिया। अब तो जापानी साम्राज्य निःसंकोच बढ़ने लगा। १९१४-१९१८ के महायुद्ध में जापान को एशिया में अपना व्यापार फैलाने का अवसर प्राप्त हुआ क्योंकि इस समय रूस, ब्रिटेन फ्रांस आदि युद्ध में सलग्न थे। पूर्वी देशों में अभी औद्योगीकरण नहीं हुआ था अतः जापानी माल हर एशिया के देश में मिलने लगा। उसका विरोध कोई नहीं कर रहा था। युद्ध के बाद जापान को भी लाभ पहुँचा। वह एशिया का सब से शक्तिशाली स्वतन्त्र देश था। अतः एशिया का पुनर्निर्माण उसकी राय के बिना नहीं हो सकता था। १९३९ में दूसरा महायुद्ध शुरू हुआ। जापान ने जर्मनी व इटली को सहयोग दिया। और १९४१ में पर्ल हारबर पर आक्रमण कर के संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से युद्ध की घोषणा कर दी। 'एशिया एशिया वालों का है' का नारा बुलन्द किया।

विकास

शीघ्र ही जापान ने दक्षिण पूर्वी एशिया में अपना राज्य स्थापित कर लिया। फिलिपाईन, इन्डोचीन, मलाया, स्याम, इंडोनेशिया, बर्मा में जापानी राज्य कायम हो गया। भारत पर भी आक्रमण होने लगे। १९४४ में जापानी साम्राज्य अपने शिखर पर था।

साम्राज्य का पतन

हिंसा और दम्भ पर आश्रित साम्राज्य अधिक दिनों तक नहीं ठहर सका। धीरे धीरे जापानियों के विरोधी बढ़ते गए। १९४५ की मई में जर्मनी हार गया। इटली के मुसोलिनी की हत्या कर दी गई। जापान की शक्ति को नष्ट करने के लिए हिरोशिमा व नागासाकी पर १९४५ की ६ अगस्त को एटम बम बरसाए गए। ९ अगस्त को जापान ने हथियार डाल दिए। और इस प्रकार जापानी साम्राज्य का अंत हो गया।

जापानी सैनिक नेताओं पर युद्ध का अभियोग लगाया गया। उन्हें सजा दे दी गई। संवैधानिक राजसत्ता स्थापित कर दी गई। प्रजातन्त्र का उदय

कानून लागू किया गया । जगलूल व अन्य नेता गिरफ्तार किये गये । इस दल की घोषणा करदी गई थी कि युद्ध के बाद मिश्र को स्वतन्त्र कर दिया जावेगा १९१८ में युद्ध समाप्त हुआ । शासन सुधार के लिये कमीशन बैठाया गया जिसकी रिपोर्ट से मिश्रवासियों को क्रोध आया क्योंकि उस में स्वतन्त्र राष्ट्र बनाने की कोई बात नहीं थी । पुनः आन्दोलन उठे । अन्त में जगलूल पाशा के नेतृत्व में १०२२ में मिश्र स्वतन्त्र हुआ ।

जगलूल पाशा का नेतृत्व

(१९१९-३०)—युद्ध के बाद दिए गए शासन सुधार का घोर विरोध वफद दल ने किया । भयंकर आन्दोलन उठा । दमन भी उतना ही भयंकर था । जगलूल पाशा गिरफ्तार कर लिए गये । विद्रोह न दबाया जा सका । जगलूल पाशा व उनके साथियों को छोड़ना पड़ा । विद्रोह के कारण जानने व नए शासन-सुधार देने के लिये अंग्रेजों ने 'मिलनर कमीशन' बैठाया, वफद ने इसका विरोध किया क्योंकि इस संस्था में एक भी मिश्र का प्रतिनिधि नहीं था । मन्त्रिमण्डल, शाही घरों व धार्मिक नेताओं ने भी इसका विरोध किया । कमीशन ने जगलूल से समझौता करना चाहा । मिश्र की स्वतन्त्रता तो स्वीकार कर ली पर मिश्र में सैनिकों को रखने के प्रश्न पर समझौता न हो सका । नए चुनाव हुए । जगलूल पाशा की शानदार विजय हुई पर उन्हें मंत्रिमण्डल बनाने का अवसर नहीं दिया । ३ बार ऐसा हुआ । फिर सैनिक शासन स्थापित हुआ । जगलूल पाशा पुनः गिरफ्तार कर लिये गए । १९२२ में विवश हो अंग्रेजों ने मिश्र को स्वतन्त्र कर दिया—परन्तु सेना रखा, सूडान का शासन आदि का अधिकार अंग्रेजों के पास ही रहा । सुल्तान फौद प्रथम शासक बना । आम चुनाव हुए । वफद फिर विजयी हुआ । जगलूल प्रधान मन्त्री बनाये गये । १९२४ को मिश्र स्थित अंग्रेजी सेनापति की हत्या का दोष जगलूल सरकार पर लगाया गया । अंग्रेजों ने मिश्र की सरकार से क्षमा याचना, हरजाना मांगा । सूडान से मिश्री सेना हटाने और अंग्रेजी सलाहकारों को पुनः रखने की मांग की । जगलूल पाशा ने अस्वीकार किया । जगलूल ने इस्तीफा दिया । नए चुनाव हुए । पुनः वफद को बहुमत प्राप्त हुआ । फिर संसद तोड़ दी गई । चुनाव के नियम बदले तो भी वफद को बहुमत मिलता रहा । इसी समय १९३० में जगलूल पाशा का देहान्त हो गया ।

जगलूल की मृत्यु के बाद नहसपाशा ने वफद दल का नेतृत्व सम्हाला। वह प्रधान मन्त्री बने। अंग्रेजों से संधि की बातचीत की परन्तु शासक फौद ने नहस को बरखास्त कर दिया। देश ने इसका विरोध किया। पुनः सर्वदलीय सरकार ने अंग्रेजों से संधि की। अंग्रेजी सेना २० साल के लिए मिश्र के स्वेज में रहने का तय हुआ। सूडान पर अंग्रेजों का शासन रहा। १६३१ में शाह फौद की मृत्यु हो गई। शाह फरूक गद्दी पर बैठा। यह बहुत प्रतिक्रियावादी शासक था। नहसपाशा संसद की शक्ति बढ़ाना चाहता था और फारूक अपनी शक्ति। १६३७ में नहसपाशा को पद से अलग कर दिया। १६३८ में उसने ससद भंग कर दी। नवीन चुनाव हुए। बादशाह की चतुराई से वफद दल हार गया परन्तु शीघ्र ही वफद ने अपनी खोई हुई शक्ति प्राप्त कर ली। परन्तु वफद दल का प्रभाव धीरे धीरे कम हो रहा था। क्योंकि चुनावों में विजयी होने पर भी वह मिश्र को शक्तिशाली राष्ट्र नहीं बना सका।

नहसपाशा का नेतृत्व
१६३०—१६५०

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् मिश्र की राजनैतिक और आर्थिक स्थिति बिगड़ती गई। बादशाह फारूक का ऐय्याशी जीवन दिन ब दिन बढ़ता ही गया। देश में दलबन्दी हो रही थी। राजनीतिज्ञों में आपसी होड़ लगी थी। शासन अवरुद्ध हो गया था।

अतः देश को इस अवस्था से मुक्त कराने के लिए सैनिकों में नवयुवक गुट ने जनरल नजीब के अधीन क्रान्ति कर दी और राजधानी पर अधिकार कर लिया। सारी शासन सत्ता अपने हाथों में ले ली। जनता ने इस क्रांति का अभिवादन किया क्योंकि जनता राजनीतिज्ञों के खेल से तंग आ गई थी। वह अपने बादशाह के प्रति घृणा करती थी। सैनिक क्रांति ने वहाँ पर तानाशाही स्थापित कर दी। मिश्र को सही रास्ते पर ले जाने का प्रयत्न किया।

कार्य—राजवंश का अन्त कर दिया गया। शाह फारूक को देश से निकाल दिया। उनकी सारी सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया गया। मिश्र को प्रजातन्त्र घोषित कर दिया गया। जनरल नजीब को राष्ट्रपति चुना गया। वे प्रधान मन्त्री भी बने। परन्तु बाद में उप-प्रधान मन्त्री नासिर की शक्ति बढ़ने लगी।

तथा द्वेष बढ़ गया था। महर्षि दयानन्द, महामना मालवीय, महात्मा गांधी आदि महान् विभूतियों ने इस भावना का अन्त करने का अधिक प्रयत्न किया और वे काफी सफल भी हुए। हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए ही राष्ट्र पिता गांधी जी ने अपने प्राणों का बलिदान कर दिया। भारतीय संविधान ने अल्प संख्यकों की रक्षा करने तथा साम्प्रदायिकता की भावना को समाप्त करने में कुछ कसर बाकी नहीं रखी है और इसके परिणामस्वरूप इस प्रकार की भावना का यदि बिल्कुल ही अन्त नहीं हुआ है तो भी इस का भयंकर रूप काफी शांत रूप में परिवर्तित हो चुका है।

साम्प्रदायिकता का अन्त

अस्पृश्यता हिन्दू समाज का सब से बड़ा कलंक है। अछूतों की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक तथा नैतिक दशा सुधारने का प्रयत्न भिन्न-भिन्न कालों में किया गया है। प्राचीन काल में महात्मा गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी ने अस्पृश्यता का खण्डन किया। मध्य युग में स्वामी रामानन्द, कबीर, नानक, तुकाराम, एकनाथ, नामदेव, ज्ञानेश्वर, आदि सन्तों ने भी अस्पृश्यता को दूर करने का प्रयत्न किया। १९वीं शताब्दी में राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज के माध्यम से अस्पृश्यता के दूर करने का तथा जाति व्यवस्था के बन्धनों को ढीला करने का प्रयत्न किया था। इस के बाद स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जाति प्रथा का खण्डन करना आरम्भ किया। उन्होंने शुद्धि तथा संगठन का प्रचार करने के लिये आर्य समाज की स्थापना की। आर्य-समाजियों ने शूद्रों की दशा को सुधारने का अथक प्रयत्न किया। और वे काफी सफल भी हुये। इन लोगों ने अछूतों में शिक्षा प्रसार कर के व्यक्तित्व को ऊंचा उठाने का प्रयत्न किया। सन् १९०६ ई० में अखिल भारतीय अछूत मिशन समाज की स्थापना की गई। इस संस्था ने अछूतों की सामाजिक तथा धार्मिक दशा के सुधारने का बहुत बड़ा प्रयत्न किया।

अस्पृश्यता का अन्त

बीसवीं शताब्दी में अछूतोद्धार का सब से अधिक प्रयत्न महात्मा गांधी [illegible]। उन्होंने अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ की स्थापना की। महात्मा

जी ने इन अछूतों को हरिजन कहना आरम्भ किया और इन की सर्वांगीण उन्नति का प्रयत्न किया। उनके नेतृत्व में हरिजनों के लिए स्कूलों, कालिजों, विश्व-विद्यालयों, सरकारी नौकरियों, मन्दिरों, सार्वजनिक स्थानों, वाचनालयों आदि के मार्ग खुल गये। कांग्रेस सरकार भी इस दिशा में काफी प्रयत्नशील है। भारतीय संविधान ने अस्पृश्यता का बिल्कुल अन्त कर दिया है। आज हरिजन धारा सभा, लोकसभा, मन्त्रिमंडल आदि उच्च पदों पर भी विभूषित हैं।

बाल विवाह का अन्त

विश्व के किसी भी देश में विवाह सम्बन्धी इतनी कुव्यवस्थाएं नहीं हैं जितनी भारतीय समाज में पाई जाती हैं। हिन्दू समाज में बाल विवाह का बड़ा प्रकोप है। कुछ जातियों में तो अत्यन्त अल्पायु में बालक बालिकाओं का विवाह कर दिया जाता है। इसका बहुत बुरा सामाजिक प्रभाव पड़ता है। बाल विवाह को रोकने का सब से पहला प्रयत्न केशवचन्द्र सेन ने किया था। १६३० ई० में 'शारदा एक्ट' पास कर के बाल विवाह का निषेध कर दिया गया। इस एक्ट के अनुसार बालक की अवस्था कम से कम १८ वर्ष और लड़की की अवस्था कम से कम १४ वर्ष की होनी चाहिये।

बहु-विवाह प्रथा

भारतीय समाज में पुरुषों को कई विवाह करने का अधिकार है। यह कुप्रथा हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों में पाई जाती है। एक व्यक्ति की कई पत्नियां होती हैं। ऐसी दशा में घर में कलह तथा अशान्ति फैल जाती है। बीसवीं शताब्दी में इस प्रथा के विरुद्ध बहुत बड़े प्रदर्शन किये गये। इसका विरोध किया गया। हिन्दू कोड बिल में बहु विवाह के रोकने का प्रयत्न किया गया है। इसी प्रकार वृद्ध विवाह या अनमेल विवाह को भी रोकने का प्रयत्न किया जा रहा है।

विधवाओं की दुर्दशा में सुधार

हिन्दू समाज में विधवाओं की बड़ी दयनीय दशा है। वह पुनः विवाह नहीं कर सकतीं। विधवायें बरबस सती करा दी जाती थीं। उन्नीसवीं शताब्दी में राजा राममोहन राय के प्रयत्न से सती प्रथा का अन्त कर दिया गया। विधवा विवाह की ओर सब से पहले ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने ध्यान दिया। इन्होंने सिद्ध कर दिया कि विधवा विवाह हिन्दू शास्त्रों के विरुद्ध नहीं

पारिश्रमिक प्राप्त नहीं होता था और उन्हें अधिक समय तक काम करना प
था। उन्हें कोई विश्राम काल तथा मनोरजन का साधन प्राप्त नहीं होता

श्रमिकों की स्थिति में सुधार

आकस्मिक दुर्घटना हो जाने पर भी उनकी व्यवस्थ कुछ प्रबन्ध नहीं होता था। इन सब असुविधाओं दूर करने के लिए १९२० ई० में अखिल भार मजदूर संघ की स्थापना की गई। सरकार ने मजदू हितों की सुरक्षा की तरफ ध्यान दिया। स्वतन्त्र भारतीय सरकार ने मिल मालि और मजदूरों में होने वाले झगड़ों को दूर करने के लिये Trades Dispu Act पास कर दिया। इसके अतिरिक्त सरकार ने फैक्ट्री नियम भी पास दिया। इन नियमों से कार्यावधि, साप्ताहिक अवकाश, दुर्घटना के समय हरज बीमा, प्राविडेन्ड फन्ड, बोनस आदि की व्यवस्था हो चुकी है और श्रमिक की उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है। इस के अतिरिक्त उन के बच्चों की शि का प्रबन्ध भी जा चुका है।

(ख) कला तथा संस्कृति का पुनर्जागरण

(१) भारत में साहित्य-प्रगति

आधुनिक भारतीय साहित्य विविध भाषाओं की सामूहिक उन्नति परिणाम है! विविध भाषाओं में हिन्दी का स्थान प्रमुख है। हिन्दी देश अति प्राचीन भाषा है परन्तु आरम्भ में हमें हिन्दी में पद्य परम्परा ही दि पड़ती है। हिन्दी में परिमार्जित गद्य खड़ी- बोली में १६वीं शताब्दी के बाद में ही आया, जब मुन्शी सदासुखलाल, इंशा अल्ला खाँ, लल्लू लाल सदल मिश्र ने गद्य में अपनी रचनाएं करना शुरू किया। राजा शिवप्र सितारे हिन्द के उर्दू से भरे हिन्दी गद्य के उत्तर में राजा लक्ष्मणसि शुरू हिन्दी गद्य में रचनाएं कीं और उसके बाद तो हिंदी के आकाश में भार हरिश्चन्द्र का उदय हुआ जिन्होंने हिन्दी की आधुनिक गद्य शैली का नि किया। हिन्दी गद्य के परिमार्जन में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और प रामचन्द्र शुक्ल की देन अमर रहेगी।

अब तो हिन्दी का साहित्य क्या गद्य, क्या पद्य सभी विकासन्मुख उन्नत दिखाई पड़ता है। काव्य की ओर ध्यान दें तो हिंदी में तीन

उपन्यासों का आरम्भ हिंदी में बहुत देर से हुआ। इन में सर्व
१९१३ में प्रकाशित प्रेमचन्द के "सेवा सदन" का नाम
उपन्यास है। बाद में तो प्रेमचन्द ने और भी अनेक मौलिक और
कोटि के उपन्यास हिन्दी को भेंट किये। प्रसाद के "कंकाल"
"तितली" जैसे उपन्यास उनकी अपनी शैली के कारण अमर रहेंगे। भ
चरण वर्मा, विश्वंभर नाथ कौशिक, यशपाल, अश्क और अज्ञेय आदि के
हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासकारों में सहज ही गिने जा सकते हैं।

नाटकों का प्रारम्भ हिन्दी में भारतेन्दु के "सत्य हरिश्चन्द्र," "
वती," "नील देवी" आदि से होता है। उन्होंने संस्कृत और बंगला के
नाटकों के अनुवाद भी किए। प्रसाद के काव्य प्रधान एवं ऐति
नाटक सामग्री पर प्रकाश डालने वाले नाटक हिन्दी में अपना वि
स्थान रखते हैं। हिन्दी के नाटकों पर बंगाल के द्विजेन्द्रला
तथा पश्चिम के इब्सन, बर्नार्ड शॉ और एच० जी० वेल्स आदि का बहुत
है। आजकल जैसे उपन्यास की जगह कहानी अधिक पसन्द की जाती है
तरह समयाभाव और रंगमंच की सुविधा की दृष्टि से पहले के पांच य
अंकों के नाटकों के स्थान पर छोटे एकांकी नाटक अधिक लोकप्रिय ह
रहे हैं।

साहित्य की रचना के साथ ही समालोचना भी आवश्यक है। इस
में आचार्य द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दर दास, मिश्र बन्धु, राम
वर्मा, गुलाब राय, नन्ददुलारे वाजपेयी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं,

इस प्रकार हम देखते हैं कि युग धारा के साथ हिन्दी के साहि
कदम मिलाते हुए आगे बढ़ रहे हैं। यद्यपि पाश्चात्य भाषाओं के सा
समकक्ष आने के लिए हिन्दी को अभी बहुत कुछ करना है तो भी यह नि
कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य उन्नतिशील है और हिन्दी में सभी
की साहित्यिक अभिव्यंजना की शक्ति है।

हिन्दी के अतिरिक्त अन्य कई समुन्नत भाषाएं और भी हैं जिनमे
बंगला, गुजराती, मराठी, तमिल मुख्य हैं। अठारहवीं शताब्दी के अ

महत्व रखती हैं। गीजी भाई ने बालकों के लिए उच्च कोटि के सरल स
सृजन के द्वारा बहुत ख्याति प्राप्त की थी।

दक्षिण की भाषाएं उत्तर भारत की भाषाओं से भिन्न हैं क्योंकि
विकास द्रविड़ भाषाओं से हुआ है। परन्तु भाषा की भिन्नता होते हुए भी
हासिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राष्ट्रीय दृष्टि से दक्षिण प्रदेश
भारत का अभिन्न अंग रहा है इसलिए, दक्षिण की साहित्य-सरिताओं
उत्तर भारत की तरह की धाराएं बहती रही हैं। तमिल भाषा के उन्नत
में सामाजिक और धार्मिक साहित्य की प्रधानता तो थी ही, अब राष्ट्रीय
मुख्यतया दिखाई पड़ती है। तमिल की कहानियां सारे भारत में प्रसि
रही हैं। मलयालम की छोटी छोटी कविताएं और कहानियाँ साहित्यिक
उच्च कोटि की हैं। कन्नड़ के गीत-काव्य बड़े मनोरम हैं।

(२) भारत में विज्ञान

लम्बे समय तक प्रयास नहीं हो पाने से हम पाश्चात्य देशों की
वैज्ञानिक क्षेत्र में बहुत पिछड़ गये। फिर भी आधुनिक युग में हमारे प्रखर
विज्ञानवेत्ताओं ने अपने अनुसंधानों से देश को गौरवान्वित किया है।
शास्त्र (Chemistry) में शोध कार्य का समारम्भ आधुनिक भारतीय
यनशास्त्र के पिता आचार्य प्रफुल्लचन्द राय ने किया। उनका कार्य प्रध
रसायनशास्त्र के सैद्धान्तिक क्षेत्र में था। रासायनिक क्रियाओं पर
किरणों के प्रभाव के सम्बन्ध में डा० नीलरतन धर के तथा विद्युत स्फु
प्रकाश द्वारा पड़ने वाले प्रभाव के सम्बन्ध में प्रोफेसर जोशी के प्रयो
अनुसंधान प्रख्यात हो चुके हैं। डा० शान्तिस्वरूप भटनागर के कार्य
उल्लेखनीय हैं। औद्योगिक उपयोग के कई सुधार तो उन्होंने दिये ही
मिट्टी के तेल का प्रकाश बढ़ाना, ऐसा मोम तैयार करना, जिसमें गंध न
वानस्पतिक तेलों से मशीनों की चिकनाई के लिए तेल बनाना, परन्तु
अणुओं और उनके चुम्बकीय गुणों के सम्बन्ध में उन्होंने जो शोध-का
वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भारतीय वैज्ञानिकों ने कई भोजन-पदार्थों के
तत्वों की खोज के लिए भी रासायनिक अनुसंधान किये हैं।

भौतिक विज्ञान (Physics) में भारतवर्ष में अत्यन्त उच्चकोटि के अनुसंधान किये गये हैं। वनस्पति विज्ञान में डा० जगदीशचन्द्र बसु ने विस्मय-जनक कार्य किये हैं। भौतिक विज्ञान में भी उन्होंने भारत का नाम चमकाया, रेडियो तरंगों के गुणों की खोज की और उसके लिये यंत्र बनाये। डा० मेघनाद साहा ने अणु विस्फुरण के सम्बन्ध में एक नये सिद्धान्त (Theory of Thermal Ionisation) का आविष्कार किया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि सूर्य के वायु मण्डल की गैसों के परमाणु विद्युतमय हो जाते हैं और इसी से उसके रश्मि-चित्र की कुछ रेखाएं अपेक्षतया स्थूल दिखाई पड़ती हैं। ज्योतिविज्ञान के रहस्योद्घाटन में डाक्टर डी० एस० कोठारी के नक्षत्र सम्बन्धी अनुसंधान बड़े सहायक हुए हैं। प्रकाश के क्षेत्र में 'रमन प्रभाव (Raman Effect) नामक सिद्धांत बड़ा महत्वपूर्ण माना जाता है, इस खोज का श्रेय डा० चन्द्रशेखर वेंकटरमन को है। डा० रमन को इस पर नोबेल पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया था।

डा० जगदीशचन्द्र बसु का नाम ऊपर भौतिक विज्ञान के संबंध में लिया जा चुका है। उनके अनुसंधान वनस्पति-विज्ञान के क्षेत्र में बहुत महत्व रखते हैं। उन्होंने अपने बनाये हुए यंत्रों द्वारा प्रमाणित और प्रदर्शित किया कि वनस्पति में भी हृदय की धड़कन, नाड़ियों द्वारा रस का प्रवाह और मज्जातंतु आदि होते हैं तथा उस पर भी सर्दी, गर्मी, विष, मादक द्रव्य आदि के प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं। भूमि में गड़ी हुई वनस्पतियों के वर्गीकरण तथा युग-विभाजन के सम्बन्ध में डा० बीरबल साहनी ने जो प्रयोग किये वे पुरातत्व की दृष्टि से भी बड़े महत्वपूर्ण हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि १९वीं और २०वीं सदी में हमारे देश में विज्ञान के भिन्न भिन्न क्षेत्रों में बहुत प्रगति हुई। सन् १९४१ में वैज्ञानिक औद्योगिक अनुसंधान परिषद् स्थापित की गई जिस के तत्वावधान में शोध-रहे हैं। साथ ही वैज्ञानिक प्रयोग और खोज कार्य के लिए और भी बनाई गई। जैसे—एग्रिकल्चर रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूसा, इंस्टीट्यूट बंगलौर और फोरेस्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट, देहरादून।

(२) भारतीय कला

भारतीय कलाकार 'कला के लिए' के सिद्धांत के समर्थक नहीं सकते हैं। प्राचीनकाल में वे 'कला मोक्ष के लिए' सिद्धांत को मानते थे लिए भारतीय कला प्रतीकात्मक (Symbolic) है। गूढ़ से गूढ़ कल्प तत्वों को मूर्तरूप प्रदान करने की सफलता पर ही उसकी श्रेष्ठता निर्भर है

अंग्रेजों से सम्पर्क हो जाने के बाद जहां एक ओर भारतीय क पतन हुआ वहां दूसरी ओर नये ढंग की कला का विकास हुआ। श्री ई बेवेल ने—जो कि कलकत्ता कला के आचार्य थे—प्राचीन काल की नये में लाने का प्रयास किया। श्री अवनी टेगोर की सहायता से बंगाल में कला के प्रति पुनः अनुराग पैदा हुआ।

आधुनिक भारतीय चित्रकला

(१) बंगाली चित्रकला—इस कला केन्द्र के प्रेरणा बिन्दु अ राजपूत व मुगल चित्रकला थी। उसका विषय रामायण, महाभारत, गीता, उमर खैयाम थे। इन कलाकारों ने 'वाटर कलर' का प्रयोग किया और ईरानी व जापानी कला से प्रेरणा लेते रहे। प्रसिद्ध कलाकारों में अवनीन नन्दलाल बोस, अब्दुल रहमान चुगताई, देवीप्रसाद चौधरी आदि प्रसिद्ध चौधरी ने पूर्वी व पश्चिमी कला का समन्वय किया। पुलिन बिहारी सिद्धार्थ तथा मीरा को चित्रित किया। प्रमोदकुमार चटर्जी ने हिमाल शरण ली। इनकी प्रेरणा से सारे देश में नवीन कलाकारों ने जन्म लिया

(२) बम्बई कला केन्द्र—आधुनिक भारतीय चित्र कला का केन्द्र बम्बई है और बम्बई स्कूल आफ आर्ट व जे० जे० स्कूल आफ आर्ट क्षेत्र हैं। प्राचीन व नवीन कला के समन्वय का श्रेय इसी कला केन्द्र प्रकृति, अजन्ता, मुगल व पश्चिमी देशों की कला की परम्परा इस कला बनाये रखी।

(३) आधुनिक कला—भारतीय चित्र कला में नवीनीकरण, क श्री गगेन्द्रनाथ टेगोर, श्री रवीन्द्रनाथ टेगोर, श्री जैमिनी राय आदि को दिया है। रेखाचित्र, तैल चित्र, वाटर कलर व अन्य प्रकार के साधनों द्वार अंकित किए गए।

मूर्तिकला

मूर्तियां भावनाओं की प्रतिरूप होती हैं। अतः हर युग में मूर्तियों का निर्माण हुआ है और मनुष्य की भावनाओं की भिन्न भिन्न अवस्थाओं का चित्र बनाया गया है। भारत में मूर्तिकला अति प्राचीन है। हिंदू भारत के पराभव के बाद धीरे धीरे मूर्तिकला की रचनायें बन्द हुईं। मुगलकाल में इस पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। भारतीय कलाकार देवी देवताओं की मूर्तियों व प्रसिद्ध महापुरुषों की मूर्तियों तक ही सीमित रह गये। पशु, प्रकृति व अन्य विषयों की मूर्तियां नहीं बनाई गईं। आधुनिक युग में तो सिर्फ सिनेमा क्षेत्र में कुछ नयी प्रकार की मूर्तियां बनीं। अन्यथा वीर व महापुरुषों, शहीदों व बस्ट (Bust) मूर्तियां ही बनने लगीं। इस से मूर्तिकला का क्षेत्र सीमित हो गया।

स्थापत्य कला

भारतीय स्थापत्य कला का इतिहास अति प्राचीन है। हर युग में लोगों के रहने के लिए गृहों की आवश्यकता होती थी, पूजा के लिए मंदिरों की आवश्यकता होती थी और अन्य प्रकार के गृहों की जरूरत होती थी। जिस युग का जैसा सामाजिक ढांचा होता था उसी प्रकार की स्थापत्य कला का चित्रण होता था। आधुनिक युग में स्थापत्य कला में विज्ञान का हाथ अधिक है। व्यक्ति व कारीगरों का हाथ कम है। अंग्रेजी काल में पश्चिमी देशों की स्थापत्य कला भारत आई। सुन्दर भवन, अट्टालिकाएं सीमेंट व चूने के गारे के भीतर अति सुन्दर दिखाई देती हैं। बाह्य सुन्दरता व सादगी अधिक है। आंतरिक पच्चीकारी व सजावट कम है। कलकत्ते का विक्टोरिया मेमोरियल, देहली का सचिवालय और जोधपुर का छितर पैलेस इस कला के नमूने हैं।

(ग) भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन

त

से १८५७ तक अंग्रेजों ने धीरे-धीरे भारत के मानचित्र को ॰गा। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, नैतिक व धार्मिक क्षेत्र में अंग्रेजों का प्रभाव भारत भूमि पर होने लगा परन्तु स्वतंत्रता के प्रेमी अंग्रेजों के इस प्रकार के शासन के विरुद्ध आन्दोलन करने लगे। १८५७ की सशस्त्र क्रांति भारतीयों हुई स्वतन्त्र भावनाओं का बाह्य रूप थी। इस क्रांति को अंग्रेजों ने

सैनिक विद्रोह माना है। इसे भारतीयों का गदर मान कर भारतीयों के देशद्रोहिता का पद दिया है परन्तु यह प्रथम क्रांति थी जब कि समूचे भारती विचार में अंग्रेजी सत्ता से स्वतन्त्रता प्राप्त करने की भावना प्रबल हो रही इस क्रांति के मुख्य-मुख्य कारण निम्नलिखित थे।

(१) राजनैतिक कारण—लार्ड डलहौजी जो कि उस समय (१ ५६) भारत का गवर्नर जनरल था, गोद न लेने की प्रथा (लेप्स नीति) कर देशीय राजाओं के राज्य को अंगरेजी राज्य में मिलाने लगा।

मुगल बादशाह बहादुरशाह को गद्दी से अलग कर देना क्रां आह्वान था। मुगल बादशाह भारतीयता का प्रतीक बन चुका था।

अवध का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना वहां के तालुकेदा बुरा लगा।

पेशवा, नाना साहिब, अवध का मंत्री अहमदउल्लाह, तांतिया जगदीशपुर का शासक कुंवरसिंह दिल्ली निवासी बल्देवसिंह आदि ने भार अंग्रेज को निकालने की योजना जनता में फैला रखी थी।

(२) आर्थिक—१. कुटीर व्यवसाय के अन्त हो जाने से भा बेकारी फैल रही थी।

२. इनाम में दी गई भूमि को अंग्रेजी सरकार अपने अधिकार में लगी।

३. किसानों पर सामंतों व जमींदारों के अत्याचार का सहारा अ सरकार दे रही थी।

४. कई देशीय राजाओं की सेना सैनिक राज्य विलय के बाद हो गई।

५. भारत का कच्चा माल भारत से बाहर भेजा जाने लगा और में अकाल व भुखमरी बढ़ने लगी।

(३) सामाजिक व धार्मिक—१ भारत की जनसंख्या अ सामाजिक सुधारों के विरुद्ध हो गई क्योंकि सुधारों के पीछे सामाजिक संग तोड़ने की व्यवस्था थी।

२. सती प्रथा का बन्द कर देना, बाल व नर हत्या को निषेध करना हिन्दू समाज के विरोधी तत्व समझे गए।

३. रेल व अन्य यातायात के साधनों में छुआछूत का अन्त हुआ जो भारतीयों को बुरा लगा।

४. पश्चिमी शिक्षा ने भारतीयों में खाई पैदा कर दी।

ईसाई धर्म का प्रचार, मिशनरियों को सरकारी सहायता व हिन्दू व मुसलमानों को ईसाई बनाने की योजना भारतीयों के विरुद्ध थी।

(४) सैनिक—१. भारतीय सैनिकों व अंग्रेजी सैनिकों में भेदभाव, स्थान पाने में, रहन सहन में व वेतन में अन्तर।

२. भारतीय सैनिकों को बाइबिल का अध्ययन कराया जाता था।

३. उनको दाढ़ी मूंछ साफ करने व माथा न रखने की हिदायत थी।

४. उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें विदेश व समुद्र पार भेजा जाता था जो उनके धर्म के प्रतिकूल था।

५. इस समय भारत में २,३३,००० भारतीय सिपाही और ४५,३२२ अंग्रेजी सिपाही थे। भारतीयों की संख्या अधिक होते हुये भी उन्हें ऊंचे पद नहीं दिये जाते थे।

६. अंग्रेज इस समय क्रिमिया, मिश्र व चीन में हार रहे थे—भारतीय सैनिकों को विश्वास होने लगा कि वे अंग्रेजों पर विजय प्राप्त कर भारत को स्वतन्त्र कर सकते हैं।

७. नये कारतूसों ने जिन में कहा गया कि गाय व सूअर की चर्बी है और जिन्हें मुंह से खोलना पड़ता था, क्रांति की आग लगा दी। सैनिकों ने इस प्रकार के कारतूसों को प्रयोग में लाना अस्वीकार किया।

क्रांति के प्रथम चिन्ह १८५७ में बंगाल के बैरकपुर सेना में दिखाई पड़े जब कि उन सैनिकों ने नए कारतूसों का प्रयोग नहीं किया। १० मई १८५७ को मेरठ के सिपाहियों ने भी इस प्रकार का विद्रोह किया। दण्ड देने पर सैनिकों ने अंग्रेजी अफसरों को मारकर मेरठ पर अधिकार कर

लिया। धीरे-धीरे दिल्ली, लखनऊ, कानपुर झांसी, आदि भागों में क्रान्ति की र
फैल गई। बहादुरशाह द्वितीय को पुनः दिल्ली का शासक बनाया गया। झांसी
रानी लक्ष्मीबाई स्वतन्त्रता के युद्ध में रणक्षेत्र में सो गई। नाना साहब, ताँ
टोपे आदि नेताओं ने क्राति को सफल बनाने का भरसक प्रयत्न किया। प
अंग्रेजों की सेना के आगे जिसे अनेक देशद्रोही भारतीय शासकों का सम
प्राप्त था वे टिक न सके। क्रान्ति दबा दी गई। यद्यपि क्रान्ति असफल
परन्तु इसका महत्वपूर्ण प्रभाव भारतीयों पर पड़ा।

१८५७ की क्रान्ति के बाद भारतीयों में पुनः राष्ट्रीय भावना जाग्रत हु
युवकों ने अराजकतावादी विचारों का सहारा लिया। वृद्धों व समझदार लोग
संवैधानिक तरीका अपनाया परन्तु सब भारतीयों में राष्ट्रीयता की अटूट भा
भर चुकी थी जिसकी कमी १८५७ की क्रांति में थी। राष्ट्रीयता की उन्नति
कई कारण हो चुके थे जिनका प्रभाव भारतीय विचारकों पर पड़ा।

(१) धार्मिक आन्दोलनों का प्रभाव—१६वीं शताब्दी के मध्य
अन्त काल में भारत की सामाजिक व धार्मिक स्थिति का पुनः संगठन करने
प्रयत्न राजा राममोहन राय के ब्रह्म समाज ने, दयानन्द के आर्य समाज ने,
बीसेन्ट के थीयोसोफीकल समाज व स्वामी विवेकानन्द के रामकृष्ण पर
मिशन ने किया। इन सब धार्मिक आन्दोलनों का प्रभाव यह हुआ कि भार
एक नवीन जागृति प्रारम्भ हुई। यहां के निवासियों में आत्मविश्वास तथा
गौरव के भाव जागे। राष्ट्रीयता की भावना का भी संचार किया।

(२) इसी समय यूरोप में कई विद्वानों ने प्राचीन भारतीय सभ्यता
संस्कृति के ऊपर शोध कार्य किया। अपनी खोजों के फलस्वरूप उन्होंने
के महान् अतीत को सब के सामने रखा, हमारी सम्मान की भावना ज
हमें यह लगने लगा कि हमारी सभ्यता के सम्मुख यूरोपीय सभ्यता
नहीं है।

(३) अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव—विदेशी भाषा के प्रयोग से
वर्ष में एक कोने से ले कर दूसरे कोने में शिक्षित समुदाय में भाषा की
स्थापित हो गई। इसी भाषा के द्वारा भारतीयों का राष्ट्रीयता, व्यक्तिगत स्वतन्
उदारवाद आदि विचारों से परिचय हुआ। भारत में भी इसी प्रकार के
व वातावरण पैदा करने की भावना उठी।

(४) देश में एकता की स्थापना—अंग्रेजों के शासन विस्तार के फल-स्वरूप सम्पूर्ण भारत राजनैतिक दृष्टिकोण से एक इकाई हो गया। देश के विभिन्न भाग एक दूसरे के अधिक सम्पर्क में आए। अंग्रेज शासकों ने आर्थिक शोषण तथा भौतिक दृष्टि से भारत में समानता के शासनों में उन्नति, की थी परन्तु परोक्ष में उस से यह लाभ हुआ कि एकता की भावना संगठित हो गई।

(५) आर्थिक कारण—(अ) कुटीर व्यवसाय के अन्त हो जाने से बेकारी फैलने लगी।

(आ) भारत का आर्थिक शोषण अंग्रेजों के हित में होने लगा।

(इ) खेती में कोई उन्नति नहीं हुई—जमींदारी प्रथा के कारण किसान भूमिहीन हो गए।

(ई) सरकारी उच्च पदों पर भारतीयों को स्थान नहीं मिलता था।

(उ) अकाल की भयंकरता का भय हमेशा भारतीयों को लगा रहता था।

(६) समाचार पत्र व साहित्य—देश की दुर्दशा की ओर जनसाधारण का ध्यान आकर्षित करने में समाचार पत्रों ने बहुत सहयोग दिया। भारतीय पत्र सरकारी नीति के आलोचक थे इसलिए समय समय पर ब्रिटिश सरकार ने इनकी स्वतन्त्रता पर कई नियम बना कर कुठाराघात किया। भारतीय साहित्य ने भी राष्ट्रीय विकास में सहायता दी। बंकिमचन्द्र के उपन्यासों में सर्वत्र स्वतन्त्रता की महिमा गाई गई ।

(७) अंग्रेजों की भारतीयों के प्रति घृणा—योरुपीय लोग भारतीयों को असभ्य समझते थे। वे उनसे अलग रहते थे। भारतीयों के जीवन से अधिक महत्वपूर्ण योरुपीय लोगों का जीवन समझा जाता था। अंग्रेजों का काम भारत में आ कर आनन्द करना है न कि यहां के निवासियों का हित साधन अंग्रेजों के दुर्व्यवहार के कारण भारतीयों में भी उनके प्रति घृणा, असन्तोष तथा क्षोभ की भावना जाग्रत हुई।

(८) लार्ड लिटन का शासन—लार्ड लिटन (१८७४–१८८०) ने अपने काल में ऐसे काम किए जिस से भारत में असन्तोष और बढ़ा।

१. १८७७ का दरबार जबकि लोग अकाल के ग्रास हो रहे थे।

२. द्वितीय अफगान युद्ध में करोड़ों भारतीय रुपया खर्च किया ग

३. भारतीय समाचार पत्रों पर 'बन्धन ऐक्ट' लगा कर उन की स्व न्त्रता छीन ली।

४. इंगलैंड की कपड़े की मिलों के लाभ के लिए भारत से रुई निर्यात पर कर उठा दिया।

५. आर्म्स ऐक्ट द्वारा बिना लाइसेंस प्राप्त किये हथियार रखने भारतीयों को दण्ड दिया और अंग्रेजों पर यह कानून लागू नहीं किया।

(९) लार्ड रिपन का उदारवादी शासन—१८८० में लार्ड रि भारत का वायसराय बना। उसने (Local self Goverment) स्था स्वशासन की नींव डाली जिससे भारतीयों में स्वशासन का अनुभव होने ल समूचे भारत में स्वशासन की मांग वे करने लगे।

(१०) इलबर्ट बिल—भारतीय न्यायाधीशों को अंग्रेजों के मुक करने का अधिकार नहीं था। १८८३ में लार्ड रिपन के कौंसिल के का सदस्य इलबर्ट ने एक बिल द्वारा यह भेद-भाव दूर करने का प्रयत्न किया। पर भारत में अंग्रेजों ने एक तूफान खड़ा कर दिया। बिल पास न हो सक पर इससे भारतवासियों ने यह समझ लिया कि अंग्रेजों से न्याय की आ करना व्यर्थ है, उसके लिए एक संगठन की आवश्यकता है।

उपर्युक्त कारणों से भारत में राजनैतिक चेतना बढ़ती गई और १८ में प्रथम राष्ट्रीय कांग्रेस के रूप में संगठित हुई।

राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म

सन् १८८५ में अखिल भारतीय संघ की स्थापना हुई। श्री ए० अ ह्यूम ने भारतीय सिविल सर्विस से रिटायर्ड हो जाने के बाद भारतीयों राष्ट्रीय विचारों को संगठित करने का प्रयास किया। इ इस प्रयास ने राष्ट्रीय कांग्रेस को जन्म दिया जिस का प्र सम्मेलन बम्बई में श्री उमेशचन्द्र बनर्जी की अध्यक्षत हुआ। उस समय के वाइसराय लार्ड डफरिन का आशी इस कांग्रेस को प्राप्त था। लाला लाजपतराय का कहना है कि ह्यूम सा

को स्थायी बनाने के लिए नए कानून बनाए जिस से राष्ट्रीय आंदोलन कुच
जा सके। यूनीवर्सिटी के अनुसार विश्वविद्यालयों में हस्तक्षेप कर के राष्
विचारों की शिक्षा को रोकना चाहा। बंगाल के दो भाग (१६०५) कर के
के उत्तेजित राष्ट्रीय आंदोलन को समाप्त करना चाहा।

बंग भंग (१६०५) के बाद भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में नवीन भा
का संचार हुआ। बालगंगाधर तिलक ने 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधि
है' का नारा बुलंद किया। कांग्रेस में गरम दल, जो
स्वराज्य की मांग करते थे और नरम दल, जो कि अ
से शासन में हाथ बटाने की मांग करते थे, पैदा हो ग
बंगाल में बंग भंग आंदोलन प्रारम्भ हुआ। कांग्रे

१६०५-१६२० तक का इतिहास

नेतृत्व में यह आंदोलन चला। अंग्रेजी माल का बायकाट व दुकानों पर
टिंग प्रारम्भ हुई। इसी समय बंगाल, पंजाब और देश के अन्य भागों में म
क्रांति के चिन्ह उत्पन्न होने लगे। देश के बाहर भी कुछ क्रांतिकारी संग
होने लगे जो भारत में हथियार आदि भेजते थे। सरकार ने इस आन्दोलन
कुचलने में नृशंसता तथा बर्बरता का पूर्ण उपयोग किया।

१६०६-१६०७ का वर्ष भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में महत्वपूर्ण
१६०७ की सूरत कांग्रेस में कांग्रेस के दो दल गरम व नरम अलग अल
गए, जिस से कांग्रेस की शक्ति को पूरा धक्का लगा। और इसी काल में अं
की सहायता पा कर भारतीय मुसलमानों ने मुस्लिम लीग का संगठन क
अलग २ चुनाव क्षेत्र की मांग की। अराजकता व क्रांतिकारी शक्तियों को रो
के लिए सरकार ने कड़े कानून बनाये। अखबारों की स्वतन्त्रता रोक दी और
व सम्मेलन करने पर रोक लगा दी फिर भी भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन ब
गया। अतः सरकार ने शिक्षित वर्ग को प्रसन्न करने के लिए १६०६ में I
an Council Act पास करके भारतीयों को शासन व असेम्बलियों में
की सुविधा प्रदान की परन्तु इस कानून में भारतीयों को विचार प्रगट कर
शासन की बागडोर देने की कोई व्यवस्था नहीं थी।

१६१४-१६१६ के महायुद्ध में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अंग्रेजों
साथ पूर्ण सहयोग किया। अंग्रेजों ने यह विश्वास दिलाया कि युद्ध समाप्

जाने के बाद वे भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दे देंगे। अतः भारत के सब दलों ने क्रांतिकारियों को छोड़ कर सरकार की युद्ध नीति का सहयोग किया। युद्ध के दौरान में तिलक जेल से छोड़ दिए गए। श्रीमती-एनी बिसेन्ट ने 'होम रूल' आन्दोलन प्रारम्भ किया। लखनऊ अधिवेशन (१६१६) में गरम व नरम दल एक हो गए। १६१६ की कांग्रेस में मुस्लिम लीग ने कांग्रेस के साथ सहयोग किया।

युद्ध समाप्ति के बाद औपनिवेशिक स्वराज्य के स्थान पर १६१६ का Government of India एक्ट मिला जिसके अनुसार भारतीयों को द्वा शासन प्रणाली मिली वह भी अंग्रेजों के नेतृत्व में। राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस का विरोध किया। जिन कांग्रेसी नेताओं ने इसे अपना लिया उन्होंने कांग्रेस से अलग हो कर Libral party बनाई। क्रांतिकारी दल ने इसे रद्दी की टोकरी का बिल समझ कर अपनी कार्यवाही पहले से अधिक उग्र कर दी। इस पर सरकार ने Rowlett Bill बना कर देशभक्तों को मृत्युदण्ड देना शुरू किया। देश भर में इस बिल का विरोध हुआ। बिल के विरुद्ध जो आन्दोलन हुआ वह कांग्रेस के इतिहास में एक नया चरण था। १६१६-१६२० से भारत के राजनैतिक क्षेत्र में, गांधी जी का आगमन हुआ और स्वराज्य प्राप्ति के नए साधन व नए उद्देश्य आंके गये।

गान्धी युग

१६२० के बाद इस आन्दोलन का नेतृत्व महात्मा गांधी (मोहनदास करमचन्द गांधी) के कन्धों पर पड़ा। भारतीय राजनीति के क्षेत्र में आने के पहले गांधीजी अपने अनेविचारों व सिद्धांतों का प्रादुर्भाव दक्षिणी अफ्रीका की रंग भेद की नीति के विरुद्ध कर के सफलता प्राप्त कर ली थी। उनका शस्त्र असहयोग था और उनका नारा अहिंसा व सत्य थे। अतः वही सिद्धान्त व नारे भारतीय राजनीति क्षेत्र में लगा कर उन्होंने राष्ट्रीयता के आंदोलन में स्फूर्ति व शक्ति फूंक दी। १६२० से १६४७ तक का राष्ट्रीय आदोलन उन के व्यक्तित्व पर ही प्रभावित था; अतः उस युग को हम गांधी युग कहते हैं। राष्ट्रीय आदोलन के २२ वर्ष तक १६२०-१६४२ गांधीजी कांग्रेस के प्रमुख व्यक्ति बने रहे। १६४२-१६४७ तक कांग्रेस पर

रका प्रभाव बना रहा पर अन्य राजनैतिक दल जो पहले उनके नेतृत
श्वास रखते थे, अलग हो गये और अपने दृष्टिकोण से भारत की स्वत
प्त करने लगे। अतः गांधी युग का वास्तविक इतिहास १६४२ तक ही र

रौलेट एक्ट के द्वारा भारत के देशभक्तों को मृत्यु दण्ड दे
ंग्रेजों ने कई उदारवादी भारतीयों को भी अपने विरुद्ध कर दिया। देश
ं इस कानून के विरुद्ध हड़तालें हुईं। सरकार ने दमन नीति से इस आंदो
ो कुचल देना चाहा। पंजाब के जलियावाले बाग में जो सभा हुई–२०,
यक्तियों पर गोलियां चलाई गई। इस हत्याकाण्ड ने देश भर में अं
रकार के विरुद्ध असहयोग की भावना फैला दी। मुसलमान भी अंग्रेजं
वेरुद्ध हो रहे थे क्योंकि टर्की में मुसलमानों के विरुद्ध अंग्रेज इसी प्रका
ीति अपना रहे थे और खिलाफत आन्दोलन चला रहे थे। गांधीजी ने
आन्दोलन में सहयोग देना आरम्भ किया।

१६२० की कलकत्ते की कांग्रेस के सामने गांधीजी ने अंग्रेजी सर
असहयोग करने का प्रस्ताव रखा। बहुमत ने उसे स्वीकार किया। इस अ
वेशन पर गांधीजी ने कौंसिल प्रवेश का विरोध किया व १६१६ एक्ट के

असहयोग आन्दोलन

असहयोग का आदेश दिया। गांधीजी का प्रभाव नागपुर क
में भी रहा। फिर तो असहयोग की लहर देश भर में
गई। जेल कृष्ण मन्दिर बन गया, कालेज व स्कूलों में हड़
होने लगीं। वकीलों ने वकालत छोड़ी, देश भक्तों ने उपा
लौटा दीं। स्वदेशी विचारों का प्रचार हुआ। १६२१ में प्रिंस आफ
भारत आए। हड़ताल द्वारा उनका स्वागत हुआ। आन्दोलन जोरों प
परन्तु चौरी-चौरा के स्थान पर २००० की भीड़ ने पुलिस थाने को जलवा
जिसमें २१ आदमी मर गए। यह वातावरण हिंसात्मक था अतः गांधी ज
यह आंदोलन बन्द कर दिया। गांधी जी को भी ६ वर्ष की सजा मि
स्थगित आन्दोलन में जनता निराश हो गई। जो लोग गांधीजी के पक्ष में
थे वे कांग्रेस से अलग हो गये, जिनमें मोहम्मद अली जिन्ना मुस्लिम लीग
दामोदर सावरकर हिन्दू महासभा में चले गए। कांग्रेस के प्रभावहीन होने
लीग व हिन्दू महासभा ने साम्प्रदायिक झगड़े फैलाने शुरू किये।

कांग्रेस के कुछ प्रमुख व्यक्ति कौंसिलों में आ कर अंग्रेजी सरकार के कार्य में रोड़े अटकाना आरम्भ करना चाहते थे। उन्होंने स्वराज्य पार्टी का
निर्माण किया। इसके नेता श्री मोतीलाल नेहरू, चितरञ्जन-
'स्वराज्य दल' व दास व विट्ठलभाई पटेल आदि थे। १६२३ में इस पार्टी
साइमन कमीशन ने अपना कार्य करना आरम्भ किया। कौंसिलों में आ कर
इस दल ने अंग्रेजी सत्ता को हिलाना चाहा पर असफल
रहे। १६०५ में मजदूरों का संगठन किया गया। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन
कांग्रेस के जन्म से मजदूर संगठित हो कर राष्ट्रीय कांग्रेस में सहयोग देने लगे।
१६१६ के Government of India Act के अनुसार १० वर्ष बाद एक
कमीशन भेजा जाने वाला था, जो यह जांच करता कि यह कानून कहां तक
सफल हुआ। अतः १६२६ में सर जान साइमन के नेतृत्व में एक कमीशन
नियुक्त हुआ। इसमें एक भी भारतीय सदस्य नहीं था अतः कांग्रेस ने इस
'साइमन कमीशन' का विरोध किया। इस विरोधी आन्दोलन से भारतीयों की
राष्ट्रीय भावना पुनः उमड़ गई।

१६२६ में लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास किया
गया। २६ जनवरी १६३० को देश भर में स्वाधीनता की प्रतिज्ञा पढ़ी गई।
१८ मार्च १६३० को गांधी जी की प्रसिद्ध दण्डी यात्रा
गोलमेज कांफ्रेन्स आरम्भ हुई जिसमें नमक कानून तोड़ा गया। देश
भर में आन्दोलन चला। गांधी जी पकड़े गये। इसी
समय साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इसने आग में घी का काम
किया। अंग्रेजी सरकार ने कांग्रेस के अलावा सब दलों की एक गोलमेज सभा
लन्दन में की। यह सभा १६३१ में हुई पर असफल रही। कांग्रेस की अनु-
पस्थिति से इसका कार्य न चल सका। १६३१ की दिसम्बर में द्वितीय गोलमेज
कांफ्रेन्स हुई। इस में गांधीजी को कांग्रेस का प्रतिनिधि बना कर भेजा गया।
परन्तु हरिजनों को हिन्दू न मानने पर गांधीजी ने विरोध किया। सभा फिर
भी असफल रही। भारत आते ही गान्धीजी पकड़ लिए गए। फिर आन्दोलन
चला। दमन की नीति नंगी होकर नाचने लगी। ब्रिटेन के प्रधान मंत्री ने
एक निर्णय दिया जिसे Communal award कहते हैं जिसके द्वारा हरिजनों

को पृथक् चुनाव क्षेत्र मिले। इस पर गांधीजी ने आमरण अनशन कि
हरिजन नेताओं ने बीच में पड़ कर पूना पेक्ट द्वारा हरिजनों को तो हिन्दू
पर उन के लिये १० सीटें सुरक्षित करा लीं। १९३२ में तीसरी गोलमेज
हुई जिसमें कांग्रेस ने भाग नहीं लिया।

१९३५–१९४८—गांधी इरविन समझौते के अनुसार १९३५ में
तीयों को स्वशासन देने के हेतु अंग्रेजों ने कानून बनाया जिसे Governm
o India Act. कहते हैं। इस कानून के अनुसार भारतीय प्रान्तों को
स्वशासन व केन्द्र में ऐसा संघ जो देशीय राज्यों व प्रान्तों से मिल कर बने
योजना रखी गई। कांग्रेस ने प्रांतीय भाग स्वीकार कर लिया परन्तु म
भाग अस्वीकार किया क्योंकि वे देशीय राज्य हमेशा से अंग्रेजों के पिठ्
हैं अतः उनमें भारतीयता की कमी बनी रही। १९३७ में प्रांतीय भा
अनुसार चुनाव लड़े गए। भारत के ११ प्रान्तों में से ८ प्रान्तों पर कांग्रे
प्रभाव हो गया। २ पर मुस्लिम लीग का था। पर मिला जुला प्रभाव
कांग्रेस ने मंत्रिमण्डल बनाए और पहला काम यह किया कि राजनैतिक
को छोड़ दिया।

१९३८ में कांग्रेस के सभापति पद पर श्री सुभाषचन्द्र बोस अ
हुए। वे युवकों के जोश के प्रतीक थे। अंग्रेजी सरकार से पूर्ण सत्ता प्राप्त
ही उनका ध्येय था। वे गांधी जी से प्रभावित अवश्य थे परन्तु वा से उनकी
रूप नहीं अपनाते थे। अतः धीरे धीरे अन्य नेता भी उन से अलग हो
त्रिपुरी कांग्रेस में उन्होंने स्तीफा दे दिया और एक दल Forward Bl
बनाया। इसी समय द्वितीय महायुद्ध (१९३९–१९४५) शुरू हुआ। अ
सरकार ने बिना भारतीयों की अनुमति प्राप्त किए भारत को अंग्रेजों के
में युद्ध में शामिल होने की घोषणा कर दी। इसके विरोध में कांग्रेस मंत्रिम
ने पद-त्याग कर दिए। मुस्लिम लीग ने देश भर में इस अवसर पर
दिवस मनाया। गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह श
किया। चर्चिल की सरकार ने सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भारतीय नेताओं से
मांगने व समझौता के लिए भेजा। उन्होंने यहां नेताओं से बातचीत की
२९, मार्च १९४२ को उन्होंने वह योजना जो इंगलैंड से लाये थे देश के
रखी। 'क्रिप्स योजना' की मुख्य बातें इस प्रकार थीं :—

(१) भारत में युद्धोपरान्त एक नवीन संघ (Federation) स्थापित किया जायेगा जो एक उपनिवेश (Dominion) राज्य होगा अर्थात् उसे ब्रिटिश साम्राज्य के स्वाधीन उपनिवेशों का पद प्राप्त होगा और उसे यह निश्चय करने का अधिकार होगा कि वह राष्ट्रमण्डल का सदस्य रहे या नहीं।

(२) युद्ध समाप्त होते ही एक संविधान सभा बुलाई जायेगी। इस के लिये प्रांतों में १९३५ के अधिनियम के अनुसार नये चुनाव होंगे। उन प्रांतीय विधान-सभाओं (असेम्बलियों) के सदस्य अपने में से संविधान सभा के सदस्य चुनेंगे जिनकी संख्या अपने निर्वाचकों की संख्या का १/१० होगी। इस सभा में देशी नरेशों के प्रतिनिधि उनके राज्यों की जनसंख्या के अनुपात से होंगे।

(३) जो प्रांत या राज्य उस नये संविधान के अनुसार भारतीय संघ में सम्मिलित होना न चाहें वे अलग हो सकेंगे और अपना संघ बना सकेंगे।

(४) ब्रिटिश सरकार तथा भारतीय संविधान सभा के बीच अल्पसंख्यकों के हितों और सत्ता हस्तान्तरण से उत्पन्न अन्य बातों के लिए एक संधि की जायेगी।

(५) युद्ध काल में भारतवर्ष की रक्षा के कार्य पर गवर्नर जनरल का पूरा अधिकार होगा और वह ब्रिटिश सरकार के प्रति उत्तरदायी होगा परन्तु युद्ध के लिए सैनिक, नैतिक तथा भौतिक साधन जुटाने का उत्तरदायित्व भारतीय जनता और भारत सरकार पर होगा। रक्षा को छोड़ कर अन्य विभाग प्रमुख दलों का प्रतिनिधित्व करने वाली राष्ट्रीय सरकार को सौंप दिये जायेंगे।

क्रिप्स की योजना सफल नहीं हो सकी। उसे भारतीय दलों ने अपने अलग-अलग कारणों से अस्वीकार कर दिया। यद्यपि इस में युद्धोपरान्त स्वतंत्रता की बात कही गई थी तो भी कई दोष थे (१) एक बड़ा दोष तो यह था कि प्रान्तों अथवा देशी राज्यों को भारतीय संघ से अलग होने का अधिकार दिया गया था। यह वास्तव में मुस्लिम लीग और कुछ देशी राज्यों को प्रसन्न करने के लिए किया गया था, इस से देश की भावी एकता नष्ट होने का भय था। (२) देशी राज्यों से आने वाले प्रतिनिधि राजाओं द्वारा नामज़द होते—जनता द्वारा निर्वाचित नहीं। अतः संविधान सभा में प्रतिक्रियावादी तत्व आ जाते। (३) युद्धकाल में भारतीयों को रक्षा का उत्तरदायित्व नहीं सौंपा जाने वाला था। (४) गवर्नर जनरल को किसी भी बात पर निषेधाधिकार (Veto)

ले सकता था। (५) वास्तव में इस योजना का तत्काल महत्व कुछ नहीं
गांधी जी ने इसीलिए कहा था कि वह योजना एक ऐसी हुण्डी की तरह
जिस पर आगे की मिति डाली गई हो (Post dated Cheque) जि
तत्काल मूल्य कुछ नहीं हो। क्रिप्स योजना की असफलता पर देश में निर

असंतोष और क्षोभ का वातावरण छा गया। कांग्रेस
भारत छोड़ो समिति ने १४ जुलाई १९४२ को "भारत छोड़ो" प्रस्
प्रस्ताव पास किया। ८ अगस्त को बम्बई में अखिल भारतीय कां
कमेटी ने भी उस प्रस्ताव को स्वीकार किया। गाधी जी
अंग्रेजों को भारत छोड़ने का आवाहन किया और देश के प्राणों में 'करो
मरो' का मंत्र फूंका। गाधी जी ने यह भी बताया कि यह भारत की आ
के विरुद्ध अन्तिम लड़ाई है। ९ अगस्त को सवेरा होने के पहिले ही कांग्रे
बड़े-बड़े नेता गिरफ्तार कर लिए गए। देश में अंग्रेजों ने आन्दोलन द
के लिए अत्याचार और पाशविक दमन करना शुरू किया। लाठियां
गोलियाँ चलाना, गांव जला देना, सामूहिक जुर्माने करना और लोगों का सा
छीनना और नीलाम कर देना—यह सब कुछ किया। अंग्रेजों का अन्या
दमन भी जन आन्दोलन की उस धधकती हुई आग को न बुझा सका, व
ऊपरी रूप से शांति दिखाई पड़ने लगी।

अंग्रेजी सरकार की नीति के खिलाफ गाधी जी ने जेल में १० फ
१९४३ को २१ दिन का अनशन व्रत रखा। मई १९४४ में अस्वास्थ्य के क
उन्हें छोड़ दिया गया। उन्होंने तथा श्रीराजगोपालाचार्य ने मुस्लिम लीग के
श्री जिन्ना से हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए बातचीत की। जिन्ना इस बात
अड़े रहे कि भारत में हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र हैं; इसी से वह
सरल न हो सकी।

भारत के नए वायसराय लार्ड वेवल ने ब्रिटिश सरकार के आदे
देश के राजनैतिक गत्यावरोध को दूर करने के लिए १४ जून १९४५ को
सुझाव रक्खा। इसको वेवल सुझाव कहते हैं। इसमें यह कहा गया
केन्द्रीय कार्यकारिणी का नया संगठन होगा, जिसमें सवर्ण हिन्दू तथा मुस
के बराबर प्रतिनिधि होंगे तथा भारतीय, ईसाई, सिक्ख, दलित वर्ग अ
सदस्य भी होंगे। यह कार्यकारिणी गवर्नर जनरल के प्रति उत्तरदायी होगी

सेवा खण्डों में सरकार और नागरिकों के सहयोग से बड़े पैमाने पर काम हो
है। इस प्रकार के अनेक कार्यों से देश का नवनिर्माण करने की प्रथम प
वर्षीय योजना संतोषजनक रीति से पूरी हो गई है और कृषि तथा सिंचाई अ
के बाद औद्योगिक विकास पर विशेष बल देने वाली द्वितीय पंचवर्षीय यो
आरम्भ हो गई है। निर्माण के इस कार्य में संयुक्त राष्ट्र संघ से तथा विदेश
हमें सहायता और ऋण के रूप में धन राशि प्राप्त हुई है देश के भीतर अ
विषमताओं को समाप्त करने के लिए भी हमने सरकारी तथा गैर सरकारी ढं
सर्वोदय और समाजवादी व्यवस्था की ओर बढ़ने वाले कदम उठाए हैं जि
आर्थिक वितरण में समानता की ओर कुछ सीमा तक आगे बढ़े हैं, यह
है कि अब भी हमारी आर्थिक और सामाजिक असमानतायें मिटाने के लिए
कुछ करना बाकी है। हमारे संविधान के द्वारा स्वीकृति राजनैतिक समान
इस ओर बढ़ने के लिए दृढ़ आधार जुटा दिया है। अन्तर्राष्ट्रीय राज
में भी अपनी स्वाधीनता के शैशवकाल में ही भारत ने पंचशील और
अस्तित्व के सिद्धान्त और शान्तिपूर्ण व्यवहार के कारण गहरी छाप डाल
भारत ने कोरिया और हिंद चीन में युद्ध की ज्वाला को शांत करने में म
पूर्ण योग दिया। विश्व के इतिहास में पहली बार वास्तव में निःस्वार्थ कार्य
अन्तर्राष्ट्रीय शांति के लिए भारतीय सेनायें विदेशों में गईं। इस प्रकार
रिक और बाह्य दोनों क्षेत्रों में भारत की प्रगति उत्साह वर्द्धक और संतोष
रही है। लेकिन शताब्दियों की गुलामी के खण्डहरों में सुदृढ़ आधार पर
कल्याण का नया सृजन करने के लिए भारत माता प्रत्येक क्षेत्र में हमारी
और योग्यता का आह्वान कर रही है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) अंग्रेजी राज्य की स्थापना के समय भारतीय समाज की स्थि
थी? उस पर अंग्रेजी राज्य का क्या प्रभाव पड़ा?

) भारत में सामाजिक व धार्मिक आन्दोलन व जागृति का संक्षिप्त
करो।

) ब्रह्म समाज और आर्य समाज के कार्यों का मूल्यांकन करो।

) अस्पृश्यता का अन्त कैसे किया गया?

(५) स्त्रियों की दशा के सुधारने के लिए क्या क्या प्रयत्न किये गए ?

(६) उन्नीसवीं और बीसवीं सदियों में हिन्दी साहित्य के विभिन्न अंगों के विकास का वर्णन कीजिए।

(७) हिन्दी के अतिरिक्त भारत की अन्य मुख्य भाषाओं की साहित्यिक स्वतन्त्रता का परिचय दीजिये।

(८) भारतवर्ष में आधुनिक काल में क्या वैज्ञानिक प्रगति हुई ? स्वतन्त्रता के पश्चात् इस क्षेत्र में क्या प्रयास किये जा रहे हैं ?

(९) भारतीय कला के बारे में आप क्या जानते हैं ? आधुनिक भारतीय कला पर एक लेख लिखिये।

(१०) १८५७ में भारत के प्रथम स्वतन्त्रता आन्दोलन के क्या कारण थे ? इस क्रांति को कौन-कौन से नेताओं का सहयोग प्राप्त हुआ ?

(११) भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन की जागृति के क्या कारण थे ?

(१२) भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का १८८५ से १९२० तक का संक्षिप्त इतिहास लिखो।

(१३) 'गांधी-युग' से क्या तात्पर्य है ? उस युग के राष्ट्रीय आन्दोलन पर प्रकाश डालते हुए उसका महत्व बतलाइये।

(१४) 'क्रिप्स मिशन' तथा 'केबिनेट मिशन' पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिये।

(१५) "स्वतन्त्रता के बाद आंतरिक और बाह्य दोनों क्षेत्रों में भारत की प्रगति उत्साहजनक रही है।" इस कथन की विवेचना कीजिये।

षष्ठ अध्याय

स्वतन्त्रता के उपरान्त

(१) स्वतन्त्रता की चुनौती का सामना

वर्षों की लड़ाई के बाद अंग्रेजी सत्ता ने सन् १६४७ ई० की १५ अग
को भारत का शासन कांग्रेस दल को सौंपा, तब से देश में भारतीय सरकार का
है। ज्यों ही भारतीयों ने देश के शासन को सम्हाला उन्हें कई कठिनाइयों
सामना करना पड़ा।

हिन्दुस्तान का विभाजन हुआ—भारत व पाकिस्तान में। पाकिस्तान
सिन्ध, पश्चिमी पंजाब, सीमाप्रान्त व पूर्वी बंगाल के प्रान्त शामिल हुए।
स्थानों में कितने ही हिन्दू व सिख रहते थे। भारत

शरणार्थी समस्या

कितने ही मुसलमान रहते थे। मुस्लिम लीग ने पा
स्तान की स्थापना के लिए साम्प्रदायिक दंगे फैल
शुरू किए। स्थान स्थान पर मुसलमान हिन्दू व सिक्खों को मारने लगे। हिन्दु
व सिखों ने मुसलमानों को मारना आरम्भ किया। अन्त में मुस्लिम लीग ने
नीति के द्वारा पाकिस्तान का राष्ट्र स्थापित कर लिया परन्तु हिन्दू मुस्लि
समस्या का अन्त नहीं हुआ। पाकिस्तान में रहने वाले हिन्दुओं और सिखों
विपत्ति के बादल छा गए। इनका जीवन सुरक्षित नहीं रहा। उनकी सम्प
लूटी जाने लगी। उनकी स्त्रियों की इज्जत पर हमला किया गया। यही ह
भारत में रहने वाली मुस्लिम जनता का था। हिन्दू व सिख पाकिस्तान छोड़
भारत में आने लगे। बड़ी समस्या तो यह थी कि उस समय यातायात के साध
को भी नष्ट किया जा रहा था। भारत सरकार ने बड़ी कठिनाई से पाकिस्त
में रहने वाले हिन्दुओं व सिखों को भारत में लाने में सफलता प्राप्त की पर
इन शरणार्थियों की भयंकर समस्या बन गई। घर बाहर से दूर, बेकार शरण
भारत में करें क्या? उनको किस तरह बसाया जाय? किस तरह उनको काम
लगाया जाय? करीब १०० लाख शरणार्थी भारत में आए। उनके बच

की शिक्षा का प्रश्न था। भारत सरकार ने नये कैम्प बना कर, नए आदर्श नगर बसा कर उन्हें रहने के लिए स्थान दिया। उनके लिए स्थान-स्थान पर नये कार्य खोले गये और अन्य कारखानों में लगाया गया परन्तु यह समस्या सुलझी नहीं। अभी तक शरणार्थी समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है।

पिछले महायुद्ध १६३६—१६४५ के बाद में हिन्दुस्तान में बहुत परिवर्तन हुये। भारतीय जनता को कई सकटों का सामना करना पड़ा। मुख्य सकट था रोटी का। न अंग्रेजी सरकार भारतीय जनता की रोटी की समस्या हल कर सकी और न भारतीय कांग्रेस सरकार। कांग्रेस सरकार का

खाद्य समस्या

राज्य आते ही जनता ने आशा प्रकट की कि उन्हें भर-पेट खाना मिलने लगेगा। परन्तु खाद्य की उत्पत्ति धीरे-धीरे कम होने लगी। भारतीय जनता और सरकार के सम्मुख यह समस्या खड़ी हो गई कि किस प्रकार खाद्य का उत्पादन बढ़ाया जाय। हिन्दुस्तान के विभा[जन] के बाद बहुत सा उपजाऊ भाग पाकिस्तान में चला गया। गेहूं की उपज कम [होने] लगी क्योंकि सिन्ध, पश्चिमी पंजाब के उपजाऊ मैदान भारत ने हमेशा के लि[ए] खो दिए। इसी प्रकार पूर्वी बंगाल में चावल के खेत पाकिस्तान में चले गये। इस पर भी भारत में गेहूं और चावल की उत्पत्ति के लिए काफी स्थान [है] परन्तु खेती के साधनों में परिवर्तन नहीं होने के कारण उत्पत्ति में कोई प[रि]वर्तन नहीं हो सका। इसके साथ ही खेती की सामन्ती व्यवस्था बनी रही। [छोटे] छोटे छोटे बिखरे खेतों में अधिक उत्पादन नहीं होता है। भारतीय सरकार [ने] आधुनिक सहयोगी खेतों की नीति नहीं अपनाई है अतः खाद्य सामग्री की समस्[या] हल न हो सकी। इसके साथ साथ अन्य उद्योगों में भी भारत को विभाजन [से] हानि उठानी पड़ी। दुनियां में सब से अधिक जूट भारत में पैदा होती है परन्तु देश के विभाजन के बाद जूट का कच्चा माल पाकिस्तान से आने लगा है। जूट की मिलें भारत में हैं और कच्चा माल पाकिस्तान में पैदा किया जाता है। अतः भारत का जूट उद्योग शिथिल पड़ गया है। सरकार के सामने बड़ी समस्[या] पैदा हो गई है कि जूट का उद्योग न बढ़ा तो भारत की राष्ट्रीय आय कम [हो] जायेगी और मजदूरों में बेकारी फैल जायगी। यह समस्या भी अभी तक ज्यों [क]ी त्यों बनी हुई है। इसी तरह कपास के उपजाऊ खेत पाकिस्तान में चले जाने [के] कारण कपड़े के उद्योग में भी विकट सकट पैदा हो गया है।

अंगरेजों ने भारत में करीब दो सौ वर्षों तक राज्य किया । अंगरे
शासन को शक्तिशाली बनाने में भारत के देशी राज्यों ने बहुत सहयोग दिय
वे अंग्रेजों से भी अधिक इंगलैण्ड भक्त और सम्राट भक्त रहे । अंग्रेजो को
पर पूरा भरोसा था । अतः भारत से विदा होते सम

देशी रियासतें

उन्होंने भारत में इस प्रकार का राजनैतिक वातावर
स्थापित कर दिया कि देशी राज्य स्वतन्त्र बने रं
माउन्टबेटन की नीति—जिसके द्वारा देश का विभाजन हुआ—देशी रियास
को इस प्रकार स्वतन्त्रता दी कि या तो वे भारत के साथ मिल जायें या पा
स्तान के साथ मिल जायें नहीं तो वे स्वतन्त्र रूप से इकाई में रह सकती
भारत में ५६६ देशी रियासतें थीं। इस प्रकार उन्हें इकाई रूपी स्वतन्
मिलने पर देश की आर्थिक स्थिति खराब होने का भय था । भारत के नेता
के सम्मुख बड़ी भयानक समस्या थी । सरदार पटेल ने नई नीति से काम लिय
राजाओं को देश भक्त की पदवी दे कर उनकी रियासतों को भारत में मिलाय
परन्तु अंग्रेजों के दोस्त राजाओं ने अपनी स्वतन्त्र इकाई में रहना ही अ
लाभदायक समझा । हैदराबाद के निजाम ने घोषणा की कि वह भारतीय
में शामिल न होगा । वहा की जनता भारतीय संघ में शामिल होने के
उत्सुक थी । परन्तु हैदराबाद के निजाम ने रजाकारो की सहायता से वहा
जनता पर अत्याचार करने शुरू किये । भारत की सरकार के सामने स्व
हैदराबाद की समस्या थी । अंग्रेजों को भारत लौट आने का वह मार्ग
सरदार पटेल के प्रयत्न से हैदराबाद की समस्या हल हो गई । राजस्थान,
प्रदेश, पेप्सू आदि कई संघ बनाये गये ।

१ नवम्बर १९५६ तक भारतीय सघ में चार प्रकार के राज्यों का अ
था । इनमें अधिकतर राज्य या तो अंग्रेजी शासनकाल के प्रान्त थे या
राज्यो को मिलाकर बनाये गये थे । इनके निर्मा

राज्यों का पुनर्गठन

भाषा या सास्कृतिक एकता को आधार नहीं
गया था । कुछ समय के बाद कई क्षेत्रों में यह
की गई कि भाषा और संस्कृति के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन होना चाहि
मद्रास राज्य के तेलुगू भाषी क्षेत्रों में आन्ध्र प्रदेश की मांग ने बड़े भारी आ

लन का रूप लिया। भारत की संघीय सरकार ने जन आन्दोलन के दबाव से प्रभावित हो कर आन्ध्र को स्वतन्त्र प्रदेश के रूप में स्वीकार कर लिया।

आन्ध्र की समस्या से सरकार सचेत हो गई और उसने २६ दिसम्बर १९५३ को राज्यों के पुनर्गठन के सम्बन्ध में एक आयोग की स्थापना की। इस आयोग के अध्यक्ष श्री सैयद फजलअली तथा सदस्य श्री हृदयनाथ कुंजरू और के. एम. पणिक्कर थे। आयोग ने काफी परिश्रम के बाद १८ अक्टूबर १९५५ को अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। संसद में इस पर अत्यधिक वाद-विवाद हुआ और अन्त में १ नवम्बर १९५६ को कुछ संशोधनों के साथ रिपोर्ट स्वीकार कर ली, गई और निम्नलिखित १४ राज्यों एवं ६ केन्द्र शासित क्षेत्रों का निर्माण हुआ।

(१) बम्बई (४) मैसूर (७) पंजाब (१०) उड़ीसा (१३) जम्मू और काश्मीर
(२) आसाम (५) बिहार (८) राजस्थान (११) केरल
(३) मद्रास (६) मध्यप्रदेश (९) आन्ध्र (१२) उत्तरप्रदेश (१४) पश्चिमी-बंगाल

केन्द्र शासित क्षेत्र

(१) हिमाचल प्रदेश (२) अण्डमान-निकोबार द्वीप (३) मणिपुर (४) त्रिपुरा
(५) दिल्ली और (६) लंकादीव मिनीकोय तथा अमीनदीवी द्वीप समूह।

इस नूतन पुनर्गठन की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं—

(१) राज्यों के रूपों में जो अन्तर था, जैसे 'क' श्रेणी, 'ख' श्रेणी, आदि, उसको समाप्त कर दिया गया।
(२) राजप्रमुख के पद को समाप्त कर दिया गया।
(३) राज्यों की संख्या २७ से १४ हो गई।
(४) राज्यों की सुविधा के लिये पांच क्षेत्रिय कौंसिलों का निर्माण किया गया।

इस प्रकार भारत के प्रान्तों को अधिक सबल बनाया गया है।

काश्मीर समस्या

हैदराबाद की तरह काश्मीर भी स्वतन्त्र इकाई में रहना चाहता था। काश्मीर का राजनैतिक महत्व बहुत है। रूस, चीन, भारत, पाकिस्तान व अफगानिस्तान के देशों से सम्बन्धित उसकी सीमा है। वहां की जनता बहुमत में मुसलमान है परन्तु मुस्लिम लीग का प्रभाव वहां पर अधिक न हो सका। वहां का राजा हिन्दू है। राजा स्वतन्त्र रहना चाहता था जनता भारतीय संघ में शामिल

र चाहती थी। पाकिस्तान काश्मीर को अपने अधिकार में करना चाहता था।
-- के विभाजन के बाद शीघ्र ही पाकिस्तान के कबायलियों ने पाकिस्तानी
फौज की संरक्षता में काश्मीर पर आक्रमण कर दिया। काश्मीर का राजा हरीसिंह
वहां से भाग गया। परन्तु काश्मीर की जनता ने शेख अब्दुला के नेतृत्व में
हमलावारों का सामना किया और वैधानिक तरीके से भारतीय संघ में काश्मीर
सम्मिलित हो गया। भारत के सामने काश्मीर समस्या बड़ी जटिल बन गई
यह प्रश्न यू० एन० ओ० में ले जाया गया परन्तु वहा अमेरिका के स्वार्थी दल
ने काश्मीर को अपने अधिकार में करने की तरकीब निकाली। काश्मीर समस्या
अभी तक भारत की मुख्य समस्या बनी हुई है।

आजादी की समस्या

भारत की जनता ने कल्पना की थी कि आजाद भारत में वे सुखी होंगे
उनकी रात दिन की आवश्यकतायें पूर्ण होंगी, नयी शिक्षा का आयोजन होगा
एक ऐसा भारत बनेगा कि भारतीय गर्व के साथ क
सकें कि रामराज्य लौट आया है। परन्तु १६४७ क
१५ अगस्त को भारत को जो आजादी मिली वह सच्च
आजादी नहीं थी। अंग्रेजों की तरह ही लूट खसो
चलती रही, खाद्य समस्या हल न हो सकी, अकाल पर अकाल पड़ते जा रहे
बेकारी बढ़ती जा रही है, काला बाजार दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है, रिश्वत
बाजार गर्म है, जनता को भयंकर आपत्तियों का सामना करना पड़ता है, अस
माजिक तत्व बढ़ते जा रहे हैं। अतः सरकार को इस प्रकार देश की हालत
समस्या का सामना करना पड़ रहा है। इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न कि
गया परन्तु वह प्रयत्न भी सही तरीके का नहीं होने के कारण असफल हो गया
जनता की सरकार ही इन समस्याओं को सुलझा सकती है।

(२) भारतीय संविधान

(अ) भारतीय संविधान की रचना

तीन वर्ष के कठिन परिश्रम के बाद भारत की संविधान सभा ने भा
के लिए एक संविधान बनाया। सन् १६५० की २६ जनवरी को यह विध
भारत में लागू हुआ। इसके पहले भारत ब्रिटिश साम्राज्य का एक भाग थ

भारत का गवर्नर जनरल ब्रिटिश सम्राट का प्रतिनिधि कहलाया जाता था। परन्तु भारतीय सविधान द्वारा वह स्थिति समाप्त कर दी गई।

यों तो भारतीय सविधान राज्यों का एक सघ माना गया है परन्तु कई स्थलों में यह यूनियन की तरह केन्द्रीय सत्ता के अधिकृत है। भारत एक प्रजातन्त्र गणतन्त्र राज्य है, कानून के सामने सब व्यक्ति बराबर होंगे, न्यायालय स्वतन्त्र होंगे, भारत का विधान बदलती हुई दुनिया के अनुभवों के अनुसार बदला भी जा सकता है। यह इस विधान की मुख्य बातें हैं। यह विधान किस प्रकार भारत की जनता के सुख का आधार बन सकेगा यह तो समय ही बता सकेगा।

मुख्य बातें

भारतीय विधान की प्रमुख विशेषता यह है कि यह विधान दुनिया के सब विधानों से बड़ा विधान है। इस विधान में ३६२ धाराएं हैं। प्रत्येक धारा के चार या पांच खण्ड हैं। इसके अलावा इसकी ८ शिड्यूल हैं। रूस के सविधान में सिर्फ १४६ धाराएं हैं। सयुक्तराष्ट्र अमेरिका का विधान प्रारम्भ में चार कानूनों के आधार पर बना था। भारतीय विधान के बनने में ३ वर्ष लगे। ६ सितम्बर १६४६ को भारतीय सविधान सभा ने विधान बनाने का कार्य प्रारम्भ किया और २६ नवम्बर १६४६ को समाप्त कर दिया। तीन वर्ष के लम्बे अरसे के बाद भारत का यह विधान एक नवीन सविधान बन कर तैयार हुआ। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका, इंगलैण्ड, कनाडा, आस्ट्रेलिया, स्विटजरलैण्ड के विधानों से प्रेरणा प्राप्त कर यह विधान बन कर तैयार हुआ।

दुनिया का सब से बड़ा विधान

इस विधान द्वारा भारतीय जनता ही सर्वोच्च शक्तिशाली सार्वभौम सत्ता होगी जो अपने प्रतिनिधियों द्वारा देश के शासन में हाथ बटायेगी। भारत कई राज्यों में विभक्त होगा परन्तु वे राज्य एक प्रजातन्त्र-गणतन्त्र राज्य केन्द्रीय सघ के अधीन होंगे। भारत की केन्द्रीय सत्ता प्रजातन्त्र की आधार शिलाओं पर निर्भर होगी। भारत का राष्ट्रपति जनता द्वारा चुना जायगा। प्रत्येक कार्य में स्वतन्त्र होगा। परन्तु भारत 'कामनवेल्थ' का सदस्य रहेगा। ब्रिटिश सम्राट के राज के अधीनस्थ देशों के साथ बराबरी की सदस्यता प्राप्त करेगा। अतः

भारतीय गणतन्त्र कुछ सीमा तक अंग्रेजी सत्ता का पक्षपाती रहेगा। यद्यपि अंग्रेजी सम्राट को इतना अधिकार नहीं है कि वे भारत के शासन व स्वतन्त्रता पर प्रभाव डाल सकें।

विधान द्वारा यह स्वीकार कर लिया गया है कि स्वराज्य शासन होगा। केन्द्र व राज्यों की सरकारें जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा बनायी जायेंगी।

स्वराज्य शासन गवर्नरों का चुनाव नहीं होगा बल्कि राष्ट्रपति द्वारा वे नियुक्त किये जायेंगे। देश में विपत्ति काल के समय गवर्नरों को चुने हुए मन्त्री मण्डलों के विरुद्ध भी कार्य करने का अधिकार होगा परन्तु जनता की राय के विरुद्ध यह कार्य नहीं कर सकेंगे। सरकार प्रत्येक कार्य के लिए संसदों के प्रति उत्तरदायी होगी।

भारतीय विधान द्वारा भारत के नागरिकों के मूल अधिकार स्वीकार कर लिए गये हैं। इन अधिकारों को सुरक्षित रखने का अधिकार विधान को है। यदि कोई सरकार इन अधिकारों को नष्ट करना चाहती है तो विधान की बुनियादी बातों को नष्ट करती है। राज्य की शक्ति और मजबूती इन नागरिक अधिकारों पर निर्भर रहती है। जितने ज्यादा अधिकार नागरिकों को प्राप्त होंगे उतनी ही अधिक चेतना देश में फैलेगी। नागरिक अधिक

बुनियादी अधिकार उत्साह के साथ अपने कर्तव्य को सम्हालेंगे और उत्तरदायित्व समझेंगे। नागरिकों की देशभक्ति इन अधिकारों पर अधिक निर्भर है। प्रत्येक नागरिक को कई अधिकार दिये गये हैं नौकरी देते समय समानता, सामाजिक समानता, न्याय के सामने समानता, सुरक्षित जीवन, सम्पत्ति की सुरक्षा, छुआछूत का अन्त, धार्मिक स्वतन्त्रता इत्यादि बुनियादी अधिकार नागरिकों को विधान द्वारा दिये गये हैं। स्वतन्त्र कार्य, भाषण, विचार प्रकट करने के साधन भी नागरिक प्राप्त कर सकेगा यहाँ तक कि सर्वोच्च न्यायालय के पास अपील भेजने के भी अधिकार भारतीय नागरिक को दिये गये हैं। इस प्रकार लिखित नागरिक अधिकारों से सरकार की अत्याचारी नीति से जनता को सुरक्षित बनाना है।

भारतीय विधान की यह विशेषता है कि उसमें कुछ "निर्देशक तत्व" रखे गये हैं। यद्यपि ये तत्व बुनियादी अधिकारों की तरह प्रभावशाली नहीं हैं

सकते परन्तु ये केन्द्र सरकार के लिए यह आवश्यक हो गया कि इन्हीं आदर्शों पर वे कानून बनाये और शासन प्रबन्ध करें। यदि कोई सरकार इन निर्देशक तत्वों को नहीं माने तो कोई भी नागरिक न्यायालय के द्वारा सरकार को बाध्य नहीं कर सकता कि वह इन्हें कानून में परिणित करे। ये सिर्फ काल्पनिक इच्छायें हैं क्योंकि भारतीय संविधान इन को पूर्ण करवाने की कोई निश्चित शक्ति नहीं देता। ये निर्देशक तत्व राज्य में कुछ अधिकार होने चाहिये। जैसे—प्रत्येक नागरिक को उपयुक्त नौकरी मिलनी चाहिये। प्रत्येक नागरिक को बेकारी, बुढ़ापे, बीमारी आदि में सहायता दी जानी चाहिये। मजदूरों के लिए काम के घण्टे उचित रखने चाहिये। जनता की भलाई के लिए उत्पादन किया जाना चाहिए। मनुष्य और स्त्रियों का समान वेतन होना चाहिए। निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा होनी चाहिए इत्यादि।

निर्देशक तत्व

अल्प संख्यकों की रक्षा

भारत में प्रमुख जाति हिन्दुओं की है, अतः अल्पसंख्यक जाति की रक्षा के लिए संविधान में कुछ नियम बना दिये गए हैं। उन्हें बुनियादी अधिकार तो प्राप्त होंगे ही परन्तु कुछ और सुविधायें भी उन्हें दी गई हैं। जन संख्या के आधार पर इन अल्प संख्यकों की सीटें संसद में निश्चित कर दी जायेंगी। दस साल तक यह सीट निश्चित रहेगी। अल्प संख्यकों में आदिवासी, अछूत, सीमा पर रहने वाली जातियां इत्यादि हैं।

धर्मविहीन राज्य

सदियों से भारत एक धार्मिक देश रहा है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब जब धर्म का प्रभाव राज्य पर रहा, राज्य की शक्ति सिर्फ निरंकुश ही नहीं बनी बल्कि कई प्रकार के स्वार्थी वर्ग पैदा हुए जिन्होंने जनता पर अत्याचार किये। भारत कई धर्मों का देश है। इसी धर्म का सहारा लेकर अंग्रेजों ने भारत में दो सौ वर्ष तक राज्य किया। अतः भारतीय संविधान द्वारा यह स्वीकार कर लिया गया है कि भारत के राज्य का कोई धर्म नहीं होगा। धर्म व्यक्तिगत चीज है। जो व्यक्ति जिस धर्म को मानता है उसे उसके अनुसार पूजा पाठ करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है यदि वह अपना धर्म बदलना चाहे तो बदल सकता है। परन्तु

जबरदस्ती से कोई नागरिक दूसरों को अपना धर्म स्वीकार नहीं करा सकता अतः न्याय व राज्य के समक्ष प्रत्येक धर्म समान है।

भारत का संविधान अपरिवर्तनशील है। इसे परिवर्तन करने के लिए एक विशेष प्रकार का तरीका अपनाया जाता है। संविधान परिवर्तन बिल संसद की पूर्ण संख्या के बहुमत द्वारा पास होना चाहिए परन्तु उस समय उप- स्थित सदस्यों के बहुमत का २/३ बहुमत होना आवश्यक है।

संविधान परिवर्तन

यदि राज्य के अधिकारों या सर्वोच्च न्यायालय में परिवर्तन करना है तो आधे से अधिक राज्यों द्वारा और राज्यों के सदनों के १, २ भाग द्वारा वह बिल पास किया जाना चाहिये। संसदों के सद- स्यों की पूर्ण संख्या में बहुमत द्वारा पास होने पर यह केन्द्रीय सदन में भेजा जायगा जहां से सदस्यों की पूर्ण संख्या के बहुमत द्वारा पास होना चाहिए। राष्ट्रपति के हस्ताक्षर हो जाने के बाद उस कानून के आधार पर संविधान परि- वर्तित किया जा सकता है। यह कार्य बहुत कठिन है और इस तरह शीघ्र संवि- धान परिवर्तन होना सम्भव नहीं। अब तक कुल सात संशोधन किये जा चुके हैं।

(आ) मौलिक अधिकार

भारत के इतिहास में यह प्रथम अवसर है कि संविधान द्वारा नागरिक के मूल अधिकार स्वीकार किए गए हैं। भारत के १९१९ और १९३५ के विधानों द्वारा नागरिक को कोई मूल अधिकार नहीं दिये गए थे। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका स्वीटज़रलैण्ड, केनेडा के संविधानों में ऐसी कोई धारा नहीं कि वे नागरिकों के मूल अधिकारों को स्वीकार करें। सोवियत संघ, जेकोस्लोवेकिया व चीन के संविधानों में भी नागरिक को मूल अधिकार दिये हैं। मूल अधिकार प्राप्त करने के बाद नागरिक सत्य रूप में नागरिक पद प्राप्त कर लेता है। ये अधिकार मनुष्य की सामाजिक और व्यक्तिगत उन्नति के लिए बहुत आवश्यक हैं। राष्ट्र की शक्ति और मजबूती इन्हीं नागरिक अधिकारों पर निर्भर है। प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्रता इन्हीं अधिकारों पर निर्भर है। राष्ट्र के प्रति भक्ति का आधार ये नागरिक अधिकार ही हैं। भारत के संविधान का तृतीय भाग नागरिक के मूल अधिकारों की विवेचना करता है। भारतीय संविधान द्वारा निम्नलिखित अधिकार नागरिकों को प्राप्त हुए हैं—समानता का अधिकार, धार्मिक स्वतन्

सांस्कृतिक व शिक्षा सम्बन्धी समानता, सम्पत्ति पर अधिकार, जीवन की सुरक्षा वैधानिक स्वतन्त्रता का अधिकार।

भारतीय संविधान की यह विशेषता है कि मूल अधिकारों को स्वीकार किया गया है। संविधान के तृतीय भाग में मूल अधिकारों की विवेचना की गई है। धारा १४ वीं से लगाकर धारा ३५ वीं तक विविध प्रकार के अधिकारों का उल्लेख किया गया है। प्रथम अधिकार समानता का माना गया है। इसके अनुसार राज्य की ओर से किसी भी नागरिक को कानून के समक्ष असमान नहीं समझा जायगा। कानून द्वारा नागरिक की स्वतन्त्रता की रक्षा की जायगी। धर्म

समानता का अधिकार

जाति, जन्म स्थान, लिंग भेद के कारण राज्य किसी भी नागरिक को उसके नागरिक अधिकारों से वंचित न करेगा वरन् सब के नागरिक अधिकार समान होंगे। किसी भी दर्जे का नागरिक क्यों न हो वह जिस स्थान पर जाना चाहे, जो वस्तु खरीदना चाहे, जहां रहना चाहे उसे जाने का अधिकार होगा। दर्जे के हिसाब से असमानता नहीं होगी। छूत और अछूत का ख्याल नहीं किया जायेगा। सब नागरिकों को नौकरी के लिए समान अवसर दिये जायेंगे। वर्ग विभिन्नता का प्रश्न उस समय राज्य के समक्ष उपस्थित नहीं होगा। इस कानून के अनुसार 'अछूत' प्रथा हमेशा के लिए बन्द कर दी गई है। जो व्यक्ति 'अछूत' वर्ग के साथ घृणा और असमानता का बर्ताव करेगा उसे संविधान के विरुद्ध कार्य करने का अपराध लगाया जावेगा और उसे दण्ड मिलेगा। चूंकि अछूत वर्ग अभी पिछड़ा हुआ है अतः नौकरियों में उनके लिए कुछ स्थान सुरक्षित रखे गये हैं। राज्य की ओर से कोई पदवियां नहीं दी जायेंगी। सैनिक या विद्या सम्बन्धी उपाधियां ही नागरिकों को विभूषित करेंगी। विदेशी राज्यों से भारतीय नागरिक न तो पदक व उपाधियां गृहण करेगा और न वहां से किसी प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त करेगा। ऐसा करने पर राष्ट्रपति की स्वीकृति लेनी आवश्यक होगी। समानता के अधिकारों द्वारा सदियों से आई हुई भारतीय समाज की असमानता हमेशा के लिए समाप्त करके विधान ने ऐसा वातावरण पैदा करने की कोशिश की है जिससे कि योग्य नागरिक उन्नति प्राप्त कर सकें।

जब तक नागरिकों को कार्य व विचार विनिमय करने की आजादी नहीं होती तब तक उसके दूसरे अधिकारों का कोई महत्व नहीं। देश के सवि

ान की शक्ति स्वतन्त्र अधिकारों पर ही निर्भर है। भारत के प्रत्येक न
को भाषण देने और विचार स्पष्ट करने की स्व
स्वतन्त्र अधिकार रहेगी।.प्रत्येक नागरिक अपनी, लेखनी या पत्र द्वा
सभा-मण्डल में भाषण द्वारा अपने उद्‌गार प्र
सकेगा। परन्तु ऐसे उद्‌गार प्रकट करते समय यह ध्यान में रखना हो
कहीं जनता की नैतिकता का तो अपहरण नहीं हो रहा है, कहीं राज्य की
व्यवस्था तो टूटी नहीं जा रही है। प्रत्येक राष्ट्र के नागरिकों को इस प्र
स्वतन्त्रता रहती है। परन्तु प्रथम भारतीय सरकार ने संविधान कार्य रूप में
के एक वर्ष बाद ही इस धारा में परिवर्तन करके नागरिकों की कुछ स्व
हरण कर ली है। प्रत्येक नागरिक को बिना शस्त्र प्रयोग किये हुए सभा
का अधिकार होगा। वह संघ की स्थापना कर सकेगा। देश के भीतर बिन
रोक से आ जा सकेगा। भारत में जिस स्थान पर रहना चाहे स्वतन्त्र
रह सकेगा। भारत के नागरिक को अधिकार दिया गया है कि जो क
धन्धा वह करना चाहे उसे करने में उसे स्वतन्त्रता होगी। अपनी सम्प
प्राप्त करने, बेचने या दान करने की भी उसे स्वतंत्रता होगी। स्वतंत्र
करने की भी स्वीकृति संविधान द्वारा नागरिक को दी गई है। इन सब अ
के साथ-साथ संविधान में यह स्पष्ट किया गया है कि जनता के स्वतन्त्र अ
कुछ सीमा तक सीमित किये गये हैं। प्रथम कि नागरिक अनैतिक
करें। अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद दूसरे के स्वातन्त्र्य अधिकारों को नष्
की कोशिश न करें। ऐसा व्यापार न करे जिससे जनता का अहित हो।

कानूनी शासन स्थापित होने पर ही देश में शांति व अनुशासन
किया जा सकता है। अतः भारतीय संवि- ऐसे कानून व शा
व्यवस्था की गई है जहां नागरिक स्वत- के कानून स
रिकों पर समान लागू होंगे। वे स्वीकार नहीं
कोई भी व्यक्ति . जा सकेगा
ालयों द्वारा
ागरिक उसी
नहीं किया

बिना अपराध साबित हुए कोई भी व्यक्ति २४ घण्टों से अधिक हवालात में नहीं रखा जा सकेगा। यदि कोई व्यक्ति राज्य या विधान के विरुद्ध हिंसात्मक कार्यवाही करता है तो पार्लियामेंट द्वारा कानून बनाकर ऐसे कार्यों को रोका जायेगा। प्रत्येक अपराधी नागरिक को अपने बचाव करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी। प्रत्येक अपराधी नागरिक को, ज्यों ही वह गिरफ्तार किया जायेगा उसे उसके अपराध से सूचित किया जायेगा जिससे कि वह अपने बचाव का पूरा प्रबन्ध कर सके।

गुलामी व्यवस्था और बेगार प्रथा हमारे संविधान द्वारा गैर कानूनी घोषित कर दी गई है। इस प्रकार यदि कोई गुलाम रखेगा या बेगार लेगा उसे कानून के आधार पर दण्ड मिलेगा। चौदह वर्ष से

मानवता के अधिकार छोटे बच्चों को उद्योगों में, खानों में या अन्य प्रकार के भयंकर कारखानों में कार्य करने की मनाही संविधान द्वारा की गई है। इस प्रकार राष्ट्र के छोटे छोटे बच्चों को दर्द भरी जिंदगी से छुटकारा मिलने लगा है।

भारत कई धर्मों का देश है। विश्व के भिन्न २ धर्मों ने भारतीय धर्म से प्रेरणा ली है परन्तु मध्यकाल में धर्म ने राज्य पर प्रभाव डालकर एक भयानक अत्याचार का राज्य कायम कर दिया था। अतः भारतीय संविधान द्वारा राज्य और धर्म अलग अलग कर दिये हैं। प्रत्येक नागरिक को अपने धर्म को मानने, प्रचार करने की आजादी होगी बशर्ते कि जनता में अनैतिकता और अनुशासनहीनता न फैलाये। राज्य की ओर से किसी भी धर्म को सहायता नहीं दी जायेगी और न राज्य का कोई धर्म ही होगा।

स्वतन्त्र धार्मिक अधिकार किसी भी धर्म या सम्प्रदाय को अपने धर्म संबंधी कार्यों की स्वतंत्रता होगी परन्तु जबरदस्ती अन्य व्यक्तियों को अपने धर्म या सम्प्रदाय में लाने का अधिकार नहीं होगा। राज्य की ओर से चलाए गए शिक्षा केन्द्रों में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी परन्तु व्यक्तियों द्वारा चलाए जाने वाले शिक्षा केन्द्रों में धार्मिक शिक्षा उनकी इच्छानुकूल हो सकेगी। व्यक्तियों को धार्मिक शिक्षा पाने की स्वतन्त्रता होगी।

शिक्षा और सांस्कृतिक उन्नति के लिये प्रत्येक व्यक्ति को संस्थाएं स्थापित करने की आजादी होगी। राज्य की ओर से किसी भी नागरिक को

शिक्षा देने का पक्षपात नहीं होगा। प्रत्येक भाषा भाषी को अपनी भ
विकास करने का अधिकार होगा। पिछड़ी हुई ज

सांस्कृतिक व शिक्षा सम्बन्धी अधिकार

की शिक्षा के लिए राज्य सतर्क रहेगा और
शिक्षित बनाने की कोशिश करेगा। शिक्षा के
में जातीयता या धार्मिकता नहीं होगी। जो सह
शिक्षा का विरोध करेगी उसे राज्य की ओर से कोई सहायता नहीं मिलेगी
की प्रान्तीय भाषाओं को उन्नत करने का पूर्ण अवसर होगा राष्ट्री भाषा
रहेगी परन्तु पन्द्रह साल तक अंग्रेजी भाषा में ही राज्य कार्य होगा।

दुनियाँ के अन्य संविधानों की तरह भारतीय संविधान ने भी
की सुरक्षा का अधिकार मानकर वर्ग विशेष के प्रति अपना झुकाव दिखा
भारतीय संविधान की धारा ३१ (१) के द्वारा यह स्पष्ट है कि सिवाय
के द्वारा किसी भी नागरिक को उसकी सम्पत्ति से

सम्पत्ति का अधिकार

नहीं किया जायेगा। यदि सरकार किसी नागरिक की
पर अधिकार करना चाहें तो वह कानूनी कार्यवाही
बिना और उचित मुआवजा दिए बिना नहीं ले
है। सम्पत्ति का अधिकार स्वीकार करके राज्य ने पूंजीवादी वर्ग को
पनपने का खुला अवसर दिया है। जहां एक ओर काम करने का
संविधान द्वारा नहीं माना गया है वहां दूसरी ओर बेकारी को फैलाने
व्यवस्था को आधार मूल स्वीकार कर भारतीय संसद के सदस्यों ने
दुर्दशा का एक अध्याय शुरू कर दिया है।

यदि राज्य की कोई सरकार नागरिकता के इन अधिकारों
रूप में लाकर जनतन्त्र की आधारशिला को नष्ट करे तो प्रत्येक व
अधिकार होगा कि वह सरकार के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में इन
की प्राप्ति के लिए मुकद्दमा लड़े और अधि

संविधानिक उपचारों का अधिकार

प्राप्त करे। न्यायालय की ओर से बन्दियों
करने के आदेश दिए जा सकते हैं और
सरकार को वे मान्य होंगे। यदि कोई नागरिक
पूर्वक लेख लिखकर अपने उद्गारों को प्रकट करता है तो राज्य उन

चाहता नहीं है और वे लेख जब्त कर लिए जाते हैं ऐसी दशा में वह लेखक सर्वोच्च न्यायालय की सहायता से अपनी स्वतन्त्रता के अधिकार को प्राप्त कर सकता है। राज्य की सरकार द्वारा बनाए गए कानूनों को अवैधानिक घोषित करने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को दिया गया है।

भारत के संविधान में इस प्रकार की बुनियादी कानूनों की विवेचना की गई है। मूल अधिकार अभी पूर्ण नहीं हैं। राज्य की ओर से अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा का अधिकार नहीं है, प्रत्येक व्यक्ति को कार्य और नौकरी करने का अधिकार नहीं है। इस संविधान द्वारा कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है जिनके कई अर्थ निकल सकते हैं और भिन्न भिन्न दल उनका अर्थ लगाकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर सकते हैं।

(इ) नीति निर्देशक तत्व

अन्य विशेषताओं के साथ साथ भारतीय संविधान की यह विशेषता है कि राज्यों को सफलतापूर्वक कार्य करने के लिए कुछ बुनियादी तत्वों का आधार दिया गया है। उन्हें संविधान में 'निर्देशक तत्व' (Directive Principles) का नाम दिया गया है। ये राज्यों द्वारा निश्चित तौर पर कानून बनाते समय काम में लिए जायेंगे परन्तु ये मूल अधिकार नहीं हैं। मूल अधिकारों में और निर्देशक तत्वों में काफी भिन्नता है। जहाँ मूल अधिकार जनता के अधिकार हैं और उन्हें प्राप्त करने के लिए नागरिक को अधिकार दिया गया है कि वह सर्वोच्च न्यायालय का सहारा लेकर राज्य को बाध्य करे कि उन्हें अधिकार दे। परन्तु निर्देशक तत्व राज्य की सरकारों के लिए पथ प्रदर्शक का कार्य करते हैं। राज्य उसे स्वीकार करे या न करे वे इसके लिए स्वतन्त्र हैं। नागरिक न्यायालयों द्वारा राज्य को बाध्य नहीं कर सकते कि राज्य उनके अनुसार कार्य करे।

भारतीय संविधान में ये निर्देशक तत्व क्यों रखे गये? इसका मूल कारण तो यह है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष के भिन्न भिन्न राज्यों की सरकारें कानून बनाते समय इन्हें ध्यान में रखें जिससे कि सम्पूर्ण भारत में भिन्न भिन्न राज्यों के कानून के आधार समान हों। कहीं ऐसा न हो कि

निर्देशक तत्व क्यों? बम्बई राज्य में जो कानून बनता है उसमें तो अनिवार्य शिक्षा का आधार मान लिया जाय और

राजस्थान में ऐसा न हो अतः समान कानून व्यवस्था के लिए आधार तत
निर्देशक होना चाहिए जिससे कि मूल अधिकारों में शक्ति प्रदान हो।
इन तत्वों की स्वीकृति राज्य की परिस्थिति पर अधिक निर्भर है परन्तु
स्वीकार करने पर नागरिकों का जीवन सुखपूर्ण और समृद्धिशाली हो स
विधान द्वारा यह आदेश दिया गया है कि भिन्न भिन्न राज्य की सरका
नीति को अपनायें उनमें मूल अधिकारों को व्यवहार में लाने का का
अतः निर्देशक तत्व मूल अधिकारों की प्राप्ति के लिए बहुत आवश्यक
गये हैं।

भारतीय संविधान सभा ने लम्बी बहस के बाद निम्नलिखित
निर्देशक तत्व तत्व स्वीकार किए हैं जिससे कि भिन्न भिन्न रा
कानून बनाने में सरलता मालूम हो।

१. राज्य की ओर से न्याय सम्बन्धी, सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक
स्थापित की जायेगी जिससे नागरिक उन्नति कर सकें।
२. प्रत्येक नर व नारी को जीवन निर्वाह का उपयुक्त साधन
चाहिए।
३. जन कल्याण के लिए देश के भौतिक तत्वों का उपयोग होना चा
४. आर्थिक ढांचा इस प्रकार का होना चाहिए कि कुछ ही व्यक्तियों
में पूंजी और उत्पादन के साधन हो सके।
५. नर व नारी को समान कार्य के लिए समान वेतन मिलना चाहिये।
६. जनतन्त्र निर्माण के लिए देश में सुसंगठित व्यवस्था स्थापि
चाहिए।
७. मजदूरों के लिए काम की शर्तें न्यायपूर्ण तथा उचित होनी
उनके स्वास्थ्य व श्रम की रक्षा होनी चाहिये।
८. जनता के रहने के स्तर को ऊंचा उठाना चाहिए।
९. बच्चों और युवकों को शोषण का माध्यम नहीं बनने देना चाहिये
१०. प्रत्येक नागरिक की बेकारी, वृद्धावस्था व बीमारी में सहायता क
चाहिए।
११. मानवता, विश्व एकता व शान्ति की भावना फैलानी चाहिये।

१२. दस वर्ष के भीतर निरक्षरता का अन्त हो जाना चाहिए।

इस प्रकार कई निर्देशक तत्व हैं परन्तु मुख्य तत्व उपरोक्त ही हैं। बड़े दुर्भाग्य की बात है कि जहाँ ये तत्व मूल अधिकार होने चाहिये वहाँ केवल निर्देशन ही हैं।

(ई) भारतीय संसद

भारत का संविधान प्रजातांत्रिक है। अतः राज्य की सर्वोच्च सत्ता जनता के हाथों में है। जनता अपने चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा देश की शासन क्रिया में हाथ बंटाती है। यों तो शासन व्यवस्था का भार मन्त्री परिषद् पर है परन्तु मन्त्री परिषद चुने हुए प्रतिनिधियों में से ही होनी चाहिए। भारत की संसद इन्हीं प्रतिनिधियों की सभा है। भारतीय संघ की विधायिनी शक्ति संसद् में होगी। अतः भारतीय संसद ही वास्तव में देश में शासन करने वाली संस्था है। जो कानून संसद् पास करती है वह मन्त्री परिषद् कार्य रूप में लाती है। *बिना संसद् की राय प्राप्त किए मंत्री परिषद् कोई भी कार्य नहीं कर सकती।* संसद् के प्रति परिषद् उत्तरदायी होती है। संसद को अधिकार है कि मन्त्री परिषद् यदि गलत रास्ता अपनाए तो उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करके मन्त्रि मण्डल को बदल दे।

सर्व शक्तिशालिनी संसद् भारतीय शासन में मुख्य तत्व है। संसद के दो सदन हैं एक राज्य परिषद्, दूसरा सदन लोक सभा।

संसद् का एक सदन राज्य परिषद् है। इस परिषद् के सदस्यों की संख्या २५० से अधिक नहीं होगी। इन में से १२ ऐसे व्यक्ति होंगे जो राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जावेंगे। वे कला, साहित्य, विज्ञान आदि राज्य परिषद् के विशेषज्ञ होंगे। शेष २३८ सदस्यों को भिन्न भिन्न राज्यों की विधान सभाएं चुनाव करके भेजेंगी। यह परिषद् स्थायी होगा। इसके एक तिहाई सदस्य प्रति दो वर्ष बाद बदले जाते और उनके स्थान पर नया चुनाव होगा। राज्य परिषद् का सभापति उपराष्ट्रपति होगा। राज्य परिषद् के प्रत्येक सदस्य की आयु ३० वर्ष से अधिक होनी आवश्यक है।

लोक सभा के सदस्यों की संख्या ५५० (नवीन संशोधन के
। अधिक नहीं होगी। इसके सब सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित किए
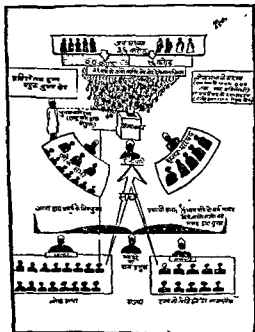
२१ वर्ष से अधिक आयु वाले व्यक्ति को वोट देने का अधिकार होगा।
निर्वाचन क्षेत्र अपनी जनसंख्या के अनुसार
लोक सभा निधियों का चुनाव करेगा। ७,५०,००० जनसंख्या के
कम से कम एक सदस्य तथा प्रति ५,००,०००
लिए एक से अधिक सदस्य न होगा। लोक सभा की अवधि पाँच वर्ष
सदस्यों को कम से कम २५ वर्ष की आयु का होना आवश्यक है। लोकसभा

अध्यक्ष सदस्यों द्वारा बहुमत से चुना जायगा। प्रत्येक कार्य बहुमत से होगा। बराबर मत आने पर अध्यक्ष अपना मत दे सकेगा। भारत में प्रथम चुनाव में करीब १८ करोड़ जनता अपना मत प्रदान करने की अधिकारिणी थी। लोकसभा के वर्तमान कुल सदस्यों की संख्या ५०५ हैं जिनमें से ५०० सदस्य १४ राज्यों तथा संघीय क्षेत्रों द्वारा निर्वाचित किए हुए और ५ सदस्य आंग्ल-भारतीयों, छठी अनुसूची के भाग 'ख' वाले क्षेत्रों और अन्दमान तथा निकोबार द्वीप समूह और लक्काद्वीप, मिनीकॉय तथा अमीनदीवी द्वीप समूह के संघीय क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने के लिए राष्ट्रपति द्वारा नाम निर्दिष्ट किये हुए हैं।

वर्तमान लोकसभा में विभिन्न दलों की स्थिति इस प्रकार है :—

कांग्रेस ३६५

साम्यवादी २६

प्रजा समाजवादी १६

जनसंघ ५

अन्यदल ७१

संसद् के प्रत्येक सदन का प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्रपति के समक्ष संविधान में दी हुई शपथ लेगा या प्रतिज्ञा करेगा। संसद के नियमों और स्थायी आदेशों के अधीन रहते हुए प्रत्येक सदस्य को संसद में वाक् स्वातन्त्र्य होगा। उस पर कोई कानूनी कार्यवाही नहीं हो सकेगी। संसद् के सदस्यों की शक्तियों और विशेषाधिकारों का निश्चय समय पर संसद द्वारा किया जावेगा। उनके मतों को संसद ही निश्चय करेगी।

सदस्यों के अधिकार

देश के शासन की बागडोर संसद के हाथों में ही है। देश का शासन कानूनों के आधार पर होता है। ये सब कानून संसद द्वारा बनाये जाते हैं। मंत्रि-मण्डल को समय समय पर देश में सुचारु रूप से शासन स्थापित करने के लिए जनता की राय की आवश्यकता होती है। संसद द्वारा वह राय जान ली जाती है। बिना संसद की राय से देश की शासन व्यवस्था सुचारु रूप से नहीं सकती है।

शासन की बागडोर

अधिकतर कानून, बिल के रूप में लोक सभा में रखे जाते हैं। बहु
द्वारा स्वीकृत हो जाने पर राज्य परिषद में भेजे जाते हैं। वहां से भी बहु

(ख) कानून बनाने की विधि

द्वारा पास होने चाहियें। फिर राष्ट्रपति के हस्ता
होने पर वह बिल कानून बन जाता है और इस का
के अनुसार देश का शासन प्रबन्ध होता है। यदि लो
सभा द्वारा पास किया हुआ बिल राज्य परिषद रद्द
दें तो दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में वह बिल रखा जाता है और फिर बहु
द्वारा पास करके राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है और यदि राष्ट्रपति हस्ता
न करे तो वह बिल संसद में पुनः लाया जाता है और फिर भी संसद उसे
कर दे तो राष्ट्रपति को उस पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। संसद को
अधिकार है कि विस्तृत शासन के किसी भी अंग के लिए कानून बनाए। यद्
राज्यों के अधिकारों पर संसद कानून नहीं बना सकती परन्तु अपनी राय अव
प्रकट कर सकती है।

धन खर्च व आमदनी के मामलों में संसद बहुत ध्यानपूर्वक कार्य क
है। धन सम्बन्धी बिल सर्व प्रथम राज्य परिषद् में नहीं रखे जाते। लोकस

(ग) बजट

में बिल पास हो जाने के उपरान्त उसे १४ दिन के लि
राज्य परिषद में पास करने के लिए भेजा जाता है। संशो
आने पर वह लोकसभा को लौटा दिया जाता है, उस पर पु
विचार कर पास करती है। संसद द्वारा पास हो जाने पर राष्ट्रपति के
हस्ताक्षर के लिए जाता है। इस प्रकार बजट का कानून पास होता है।

इन तरीकों से संसद देश के शासन को सम्भाले हुए हैं। मन्त्रि मण
के प्रत्येक सदस्य के पास एक एक विभाग होता है। संसद को अधिकार है
प्रत्येक विभाग के कार्यों का निरीक्षण करे और जहां शासन प्रबन्ध खराब ह
है उसे दूर करने के लिए सुझाव रखे। यदि संसद अयोग्य व्यक्तियों से
हुई है तो देश की शासन व्यवस्था कमजोर और अत्याचार पूर्ण होगी। सं
के सदस्यों को यह जानना चाहिए कि जन कल्याण के लिए ही कानून बना

(उ) भारत का राष्ट्रपति

भारत का संविधान मुख्यतः संघ प्रणाली का है। संघ के आधार
प्रजातान्त्रिक विधान की यह विशेषता है कि भारत का सबसे बड़ा नाग

यह कार्यकारिणी सभा का प्रमुख व्यक्ति है, अतः उसे बहुत से
वाहक अधिकार (Executive Powers) दिये गये हैं। यह राष्ट्रपति
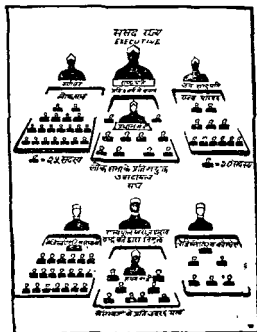
थल व वायु सेना का सेनापति है। वह मन्त्रियों को नियुक्त करता है
मण्डल उसके प्रति उत्तरदायी भी हैं। भारत के

(अ) कार्य करने के अधिकार

उच्च पदाधिकारियों को वह नियुक्त करता है
अटर्नी-जनरल, ऑडीटर जनरल इत्यादि।
न्यायालय के न्यायाधीशों व अन्य न्यायालयों के

धीशों की नियुक्ति का अधिकार उसके हाथ में है। वह विदेशी राजदूतों

और स्वागत करता है। वह केन्द्रीय भागों के राज्यों ('स' भाग) का शासन करता है। भिन्न भिन्न राज्यों के आपसी झगड़ों का अन्तिम निपटारा राष्ट्रपति ही करता है। फाँसी पाये हुए कैदी को क्षमा प्रदान करने का अधिकार राष्ट्रपति को है।

(आ) कानूनी अधिकार

कानूनी व्यवस्था में भी राष्ट्रपति को कुछ अधिकार दिये गये हैं। वह संसद का एक अंग है क्योंकि बिना उसके हस्ताक्षर हुए बिल कानून नहीं बन सकता। राज्य परिषद् में उसे १२ सदस्य नियुक्त करने का अधिकार दिया गया है जो कला, साहित्य इत्यादि विभागों के हों। उसे संसद बुलाने व भंग करने का अधिकार भी है। वह संसद को अपने सन्देशों द्वारा अपने विचारों से अवगत कराता रहता है। जिस समय संसद कार्य नहीं कर रही हो उस समय घोषणा द्वारा कानून बनाने का अधिकार राष्ट्रपति को दिया हुआ है। इस प्रकार ये घोषणा कानून सिर्फ ६ महीने तक ही कार्यरूप में लाये जा सकते हैं। देश की भयंकर स्थिति में उसे विशेष अधिकार हैं कि सारा राज्य कार्य अपने हाथों में संभाल ले। उन अधिकारियों के प्रयोग द्वारा वह नागरिकों के मूल अधिकारों पर पाबन्दी लगा सकता है।

(इ) आर्थिक अधिकार

शासन का अधिपति होने के नाते उसे कुछ खर्च सम्बन्धी अधिकार भी प्राप्त हैं। वह वार्षिक बजट तैयार कराकर संसद के सामने रखता है। बजट पास हो जाने पर उस पर हस्ताक्षर करता है। बिना राष्ट्रपति की सिफारिश के कोई भी बिल संसद में नहीं लाया जा सकता।

(ई) राज्यों पर अधिकार

वह राज्यों की विधान सभाओं द्वारा निर्देशित व्यक्तियों में से राज्य के राज्यपाल (Governor) नियुक्त करता है। राज्यों के कानून पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों की भी आवश्यकता होती है। भयंकर स्थिति में जब राज्यपाल शासन का सारा भार अपने ऊपर ले लेता है तो राष्ट्रपति की आज्ञानुसार कार्य करता है। राष्ट्रपति चाहे तो उस घोषणा को रद्द कर सकता है या सारे अधिकार अपने हाथों में ले सकता है।

राष्ट्रपति के अधिकार देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि लो
राष्ट्रपति को सर्वेसर्वा बना दिया गया है परन्तु वास्तव में राष्ट्रपति अपने

कर्तव्य

का प्रयोग कार्य पालिका (मन्त्रिपरिषद्) की
बिना नहीं कर सकता । कार्यपालिका को
इच्छानुसार चलना पड़ता है। अतः राष्ट्रपति
कार संसद में सुरक्षित हैं। वह उनका दुरुपयोग नहीं कर सकता है। रा
कर्तव्य हो जाता है कि जिन अधिकारों से वह सुसज्जित है उन्हें राष्ट्र
के लिए काम में लाये। चूं कि वह पहला भारतीय नागरिक है, अतः उ
का प्रभाव जनता व विदेशों में बहुत पड़ता है। इसलिए उसे चाहिये
पद के महत्व को समझते हुए दलनीति से दूर रह कर भारत की इज्जत
करे। भयंकर परिस्थिति के समय भी जनतन्त्र का गला न घोंट कर ऐसा
कि स्थिति में जो सुधार हो वह जनता के हित के लिए हो । यद्यपि रा
मन्त्रिपरिषद् की राय जानना आवश्यक है और उसी के अनुसार वह का
है परन्तु उसके व्यक्तित्व का इतना प्रभाव होना चाहिये कि वह अपने
भली भांति संभाल सके और देश की जनता को ठीक रास्ता बतला सके

(ऊ) केन्द्र व राज्य का कार्यक्षेत्र

भारत एक संघात्मक राज्य है। अतः भारत में विभिन्न राज्य
कार्यों में संघ से स्वतन्त्र हैं। कार्यों का क्षेत्र दो विभागों में विभाजित
केन्द्र में, दूसरा राज्यों में। कार्यक्षेत्र में जो सर्व भारतीय समस्या प
डालते हैं उनके अधिकार केन्द्र के पास हैं और अन्य जो प्रांत द्वारा शा
जाते हैं उनमें प्रान्त के विशेष कार्य शामिल किये गए हैं।

जिस समय भारत की संविधान सभा का कार्य आरम्भ हुआ
समय सिर्फ तीन क्षेत्र ऐसे थे जहाँ केन्द्र कार्य कर सकता था । रक्षा,

केन्द्र का कार्य क्षेत्र

यातायात के साधनों का क्षेत्र। परन्तु अनुभ
रान्त विधान सभा ने केन्द्र के कुछ कार्यक्षेत्र
और जब संविधान बन कर तैयार हुआ तो
कार्य क्षेत्र की सीमा बहुत बड़ी हुई थी। केन्द्र
कार्य क्षेत्र निम्नलिखित हैं—

(१) देश की रक्षा का भार—युद्ध के समय सम्पूर्ण देश के शासन का भार, नाविक, वायु व थल सेना का शासन प्रबन्ध, हथियार, शस्त्र व एटम शक्ति का प्रयोग—रक्षा के लिए, उद्योगों का शासन।

(२) विदेशी सम्बन्ध—विदेशी राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित करने में—यू. एन. ओ. (संयुक्त राष्ट्रसंघ), अन्तर्राष्ट्रीय सभाओं में भाग लेना, संधि, युद्ध तथा राजदूतों की नियुक्ति।

(३) नागरिकता, विदेशियों को भारत से बाहर निकालना, विदेशों में धर्म यात्रायें, वायु, समुद्र इत्यादि स्थानों पर अपराधी की गिरफ्तारी।

(४) यातायात के साधन—रेलवे, राष्ट्रीय सड़कें, जहाजी मार्ग जल व्यापार, प्रकाशगृह, राष्ट्रीय बन्दरगाह, वायु मार्ग, तथा हवाई स्टेशन।

(५) सन्देश वाहन के साधन, पोस्ट आफिस, तार, डाक, बेतार के तार इत्यादि।

(६) विदेशी व्यापार, अन्तर्राज्य व्यापार, कस्टम, मुद्रा, सिक्के, तौल नाप इत्यादि।

(७) लौटरी, रिजर्वबैंक, इन्स्योरेन्स, पेटेन्ट आविष्कार इत्यादि।

(८) खनिज पदार्थ, नदियां, शिक्षा, विज्ञान की खोज के स्थान, संसद के चुनाव इत्यादि।

राज्य के कार्य क्षेत्र—राज्य के निम्नलिखित कार्य क्षेत्र हैं जिनको कार्य रूप में लाने के लिए वे बिल्कुल स्वतन्त्र हैं—

(१) शांति और कानून की व्यवस्था, पुलिस, न्याय का शासन।
(२) जेल, सुधारगृह इत्यादि।
(३) स्वायत्त शासन, म्यूनिसिपैलिटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड।
(४) जनस्वास्थ्य, अस्पताल।
(५) धार्मिक यात्रा के स्थान, शराब बन्दी।
(६) औद्योगिक विकास, खेती इत्यादि।
(७) शिक्षा, पुस्तकालय, विश्वविद्यालय।

(८) सड़कें, पुल, ट्राम, बसें इत्यादि।

(९) जंगल, मछली एह, उत्पत्ति, बाजार, मेले, इत्यादि।

(१०) सिनेमा व नाट्य गृह, श्रम, राज्य के चुनाव, वेतन कर

इस प्रकार राज्य और केन्द्र के कार्य क्षेत्र में बंटवारा किया परन्तु कुछ कार्य क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें न राज्य का अधिकार है और न और न वे संविधान में दिये गये हैं। ऐसे कार्यों को बचे हुए कार्य (R Powers) माना गया है और जो केन्द्र के कार्य क्षेत्र में रख दिये गये

(ग) न्यायपालिका

राज्य के तीन अंग होते हैं, राज्य के लिये कानून बनाने वाल (Legislative), कानूनों को कार्यरूप में परिणत करने वा (Executive न्याय करने वाली सभा (Judiciary), संघ शा तीनों अंग स्वतन्त्र होते हैं जिससे कि एक दूसरे को प्रभावित नहीं कर स भारत में संघ प्रणाली होने के कारण भारत में न्याय करने वाली सभा अंगों से स्वतन्त्र हैं।

संविधान द्वारा भारत में एक उच्चतम न्यायालय की स्थापन है। इस न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश होगा। इस न्यायालय के धीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जायेगी। मुख्य न्यायाधीश के बाद उसकी राय से अन्य सात न्याया नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा। मुख्य न्यायाधीश ६ पद धारण करते रहेंगे और साधारण नियमों च्युत नहीं किए जा सकते हैं। मुख्य न्याया

उच्चतम न्यायालय

वेतन पांच हजार रुपये है और अन्य न्यायाधीशों का वेतन चार है। इस प्रकार उच्चतम न्यायालय की बनावट होती है। न्यायाल हो जाने से ही न्याय की रक्षा नहीं होती है बल्कि न्यायाधीश के कार्य क करने की क्षमता पर नागरिकों के अधिकारों की रक्षा होती है। (सर्वोच्च अधिनियम १९५६ द्वारा न्यायाधीशों की संख्या ७ से बढ़ा कर चुकी है।)

उच्चतम न्यायालय और संविधान व नागरिक अधिकारों की रक्षा—भारतीय उच्चतम न्यायालय संसद व कार्यपालिका के प्रभाव से मुक्त है। अतः संविधान व नागरिक अधिकारों की रक्षा करने में वह स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य कर सकता है। उच्चतम न्यायालय का कार्य क्षेत्र निम्नलिखित विवादों के निर्णय पर ही सीमित होगा।

(क) भारत सरकार तथा एक या अधिक राज्यों के बीच में।

(ख) दो या अधिक राज्यों के बीच में।

(ग) दीवानी व फौजदारी की अपीलों पर।

(घ) उच्चतम न्यायालय संविधान का रक्षक होगा। यदि संविधान की किसी धारा के स्पष्टीकरण की आवश्यकता हो तो वह न्यायालय इसका स्पष्टीकरण करेगा और सर्वमान्य होगा।

(ङ) यदि संविधान द्वारा दिये गये नागरिक मूल अधिकारों का उपयोग करने में कार्यपालिका या संसद विरोध करेगी तो न्यायालय द्वारा वे अधिकार नागरिकों को दिये जा सकते हैं। इस क्षेत्र में सर्वोच्च न्यायालय स्वतन्त्र रूप से कार्य भी कर चुका है। कार्यपालिका ने कुछ अनुचित कानून बनाकर बहुत से राजनैतिक व्यक्तियों को गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया है। संविधान के अनुसार दिये गये मूल अधिकारों की अवहेलना हुई है अतः उन राजनैतिक बन्दियों ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपनी रिहाई का अधिकार मांगा। उच्चतम न्यायालय ने अपने स्वतन्त्र निर्णय में कार्यपालिका के कार्य की बुराई बताते हुए राजनैतिक बन्दियों को रिहा करने की आज्ञा दी। कार्यपालिका को यह निर्णय मानना पड़ा। इस प्रकार नागरिकों के अधिकारों की रक्षा हुई है। हमारे न्यायालय सरकार के कामों पर नियन्त्रण रखते हैं और देखते हैं कि वे अपनी शक्ति का दुरुपयोग न करें।

प्रत्येक शासन में एक उच्च न्यायालय होता है जिसके न्यायाधीश द्वारा सर्वोच्च न्यायाधीश की राय पर नियुक्त किये जाते हैं।

की शक्ति एवं वैभव से अनुप्राणित व सम्पन्न हो जायगी ये योजनाएं हमारे देश के लिए कोई नवीन वस्तु नहीं हैं। प्राचीन अर्थ शास्त्री कौटिल्य (दे० अर्थ शास्त्र—२: अध्याय १), मैगस्थनीज के वर्णनों सिन्धु घाटी सभ्यता के अवशेषों तथा जैन व बौद्ध ग्रंथों में इनका पर्याप्त उल्लेख है, जिससे प्रकट होता है कि ये उस समय की सभ्यता की आवश्यक अंग थी।

योजना निर्माताओं के अनुसार योजना का उद्देश्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना है, जिनमें पुलिस, न्यायालय आदि पर न्यूनतम व्यय होगा और जो इस सिद्धान्त से प्रेरित होगा—अधिकतम जनसंख्या का अधिकतम

उद्देश्य

हित।' यह आदर्श दरिद्रता, अशिक्षा, रोग आदि समाज के भयंकर विनाशकों पर विजय प्राप्त करके ही पाया जा सकता है। राज्य का कार्य केवल पथ प्रदर्शन करना रहेगा, विशेषतया आर्थिक मामलों में। योजना का निर्माण एवं उसे कार्यरूप में परिणत स्थानीय लोग ही करेंगे। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने इस योजना को 'यज्ञ' कह कर पुकारा है—'यह छोटा सा बीज है जो विशाल एवं शक्तिशाली वृक्ष में परिणत हो जायेगा। श्री नेहरू के शब्दों में यह शान्तिपूर्ण तरीके से निर्माण का वह ठोस कार्य है जो वास्तव में बड़ी क्रान्ति लायेगा, सारांश यह है कि योजना राष्ट्र निर्माण का महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्य है।

(२) अक्टूबर १६५२ को सामुदायिक विकास योजना का कार्यक्रम आरम्भ किया गया था। इसका उद्देश्य भारत की विशाल ग्रामीण जनता का आर्थिक, शैक्षणिक और सामाजिक उत्थान करना है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। जो करोड़ों व्यक्ति गाँवों में रहते हैं उनका मुख्य व्यवसाय कृषि है। इसी कारण इस कार्यक्रम में खेती पर विशेष जोर दिया गया है। खाद्य और कृषि मंत्रालय की सलाह से सामुदायिक प्रयोजना प्रशासन ने कृषि की सभी समस्याओं पर सीधा आक्रमण किया है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम एक क्रान्तिकारी प्रमाण है। एक नवीन, श्रेष्ठतर और समृद्ध ग्रामीण भारत की दिशा में अग्रसर यह एक जन आन्दोलन है।

इसके मुख्य कार्यक्रम :—

(१) सिंचाई-भारतीय कृषि "वर्षा में जुआ" रहा है। सिंचाई किसान सर्व प्रथम में आवश्यकता है। सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय विस्तार

ा खण्ड में कुओं का निर्माण और सुधार, नलकूपों की स्थापना, :
लाबों का निर्माण आदि जैसे अनेक कार्य तेजी से चल रहे हैं औ
चाई की समस्या काफी हल हो जायेगी।

(२) पौधों की रक्षा :—पौधों पर रोगों और कीटाणुओं का
होता है। यह आक्रमण पौधों की स्वाभाविक वृद्धि को रोकता है और
फसल को बड़ी हानि पहुँचाते हैं। यह हानि कुल पैदावार की दस प्र
आंकी गई है। सामुदायिक प्रयोजना में ऐसे रोगों द्वारा फसल को क
को कम करने के लिये कदम उठाये जा रहे हैं।

(३) कृषि प्रणाली और औजारों में सुधार:—श्रेष्ठतर कृषि के
में अच्छे बीज और अच्छी खाद का प्रयोग और हल तथा अन्य
सुधार का एक आवश्यक स्थान है। हर एक सामुदायिक विकास को
किसानों की मदद देने के लिये अपने विशेषज्ञ कर्मचारी हैं।

(४) भूमि को खेती योग्य बनाना और खेत व्यवस्था :—
भाड़ियों की वृद्धि, ऊपरी भूमि का कटाव और बालू का प्रसार न रो
उपजाऊ भूमि भी कृषि के अनुपयुक्त हो जाती है। सामुदायिक विका
का एक मुख्य अंग है—भूमि को योग्य बनाना खेती करने के लिए
कार्यों द्वारा ऊसर और अर्द्ध ऊसर जमीनों को उपजाऊ खेतों में परिव
जा रहा है। सम्पूर्ण उत्पादन की वृद्धि में कुशल और उचित खेत
आवश्यक तत्व है। क्रय विक्रय खेत प्रबन्ध का एक मुख्य पक्ष है।
क्रय विक्रय की सुविधाओं के प्रसार द्वारा सामुदायिक योजना इस
अपना सहयोग दे रही है।

(५) यातायात, शिक्षा कुटीर उद्योग :—आदर्श गांव, य
अच्छे साधन, कुटीर उद्योग और शिक्षा भी जो कि सामुदायिक विका
के अभिन्न अंग हैं; कृषक को श्रेष्ठतर ढंग से खेत की व्यवस्था
सहायता कर रहे हैं।

पंचवर्षीय योजना के समाप्ति काल तक इन योजनाओं
१,२०,००० गावों में जिनकी जनसंख्या लगभग ७॥ करोड़ हो कार्य
सरकारी अनुमान के अनुसार योजना १९६१
विकास काल व्यापी हो जायेगी। प्रत्येक योजना का कार्य काल

बढ़ाकर ६ वर्ष कर दिया गया है, किन्तु यह अन्तिम माप नहीं है। ५ वर्ष के कार्य काल में योजनाओं पर २५० करोड़ रुपया व्यय होगा। प्रत्येक योजना पर ४५ लाख रुपया तक ही सीमित रखने का प्रयास किया जा रहा है।

इन योजनाओं से हमारे गावों में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए हैं। भारतीय किसान आज नव जागरण की अंगड़ाइयां ले रहा है। मास्को विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्री देगल्यार ने कहा है—'सामुदायिक योजना द्वारा जो शान्त-क्रान्ति भारत में हो रही है, उससे जारशाही के पतन के बाद रूस में जिस प्रकार पुनर्निर्माण कार्य हुआ उसका आभास मिलता है।' क्या गांधी जी का स्वप्न सत्य नहीं हो रहा है?

(आ) प्रथम पंचवर्षीय योजना

राजनीतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति मानव कल्याण (Human well-being) की सर्वोत्तम स्थिति तक पहुँचने का साधन है; साध्य नहीं। सैकड़ों वर्षों की दासता की बेड़ियों को तोड़कर भारत जब अभावग्रस्त जनसमुदाय के जनजीवन को सुखी बनाने के लिए उद्यत हुआ, तब यह अत्यावश्यक प्रतीत हुआ कि योजना के वर्तमान युग में एक निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु हमारे सामने भी कोई अखिल भारतीय आदर्श योजना है। यही कारण था प्रथम पंचवर्षीय योजना के निर्माण का। और बाद में द्वितीय पंचवर्षीय योजना की भी इसी दृष्टि से आवश्यकता हुई।

सन् १९४७ में 'परामर्शदात्री योजना समिति' (Advisory Planning Board) की नियुक्ति की गई, इसी के आधार पर १९४६ में हमारे प्रधानमन्त्री श्री नेहरू की अध्यक्षता में 'योजना कमीशन' की स्थापना हुई, जिसने इस योजना का निर्माण किया।

योजना निर्माण के समय सबसे प्रमुख लक्ष्य राष्ट्र के मानवीय व भौतिक स्रोतों का अधिकाधिक उपयोग कर राष्ट्र के जीवन स्तर को ऊंचा उठाना था। और योजना निर्माण में इसी लक्ष्य को साकार रूप मिला। योजना में उत्पादन—वृद्धि तथा सम्पत्ति के न्यायपूर्ण विभाजन दोनों पर समान रूप से ध्यान दिया ा, क्योंकि दोनों बातें एक दूसरे पर आधारित हैं।

आर्थिक समानता के निम्न मार्ग दृढ़ निर्धारित किये गये:—

(१) भूमि के स्वामित्व तथा संरक्षण में उचित परिवर्तन।

(२) उत्पत्ति तथा वितरण के विभिन्न क्षेत्रों में सहकारी संस्था... प्रोत्साहन।

(३) राज्य का निजी साहस पर योजनाबद्ध अर्थ व्यवस्था के रूप उचित नियन्त्रण।

(४) मृत्युकर आदि करों की व्यवस्था, जिससे एक सीमा तक आ... असमानता दूर हो सके।

(५) गरीब व्यक्तियों के लिए अधिक आवश्यक किन्तु कम उपलब्ध वस्तुओं पर नियन्त्रण (Control) प्रणाली स्वीकार की गई।

संशोधन के उपरान्त सम्पूर्ण योजना में व्यय का अनुमान २,३... करोड़ रु० लगाया गया, जो इस प्रकार है:—

	(करोड़ रु० में)
कृषि तथा सामुदायिक विकास	३७४
सिंचाई	२२८
बहुउद्देश्य तथा शक्ति योजनाएं	२५६
शक्ति (Power)	२७२
संवादन व यातायात	५५८
उद्योग (Industry)	१७९
समाज सेवायें (Social Services)	३७९
पुनर्निवास (Rehabilitation)	११०
अन्य (Others)	५५
	२,३५६

प्रश्न उठा कि यह रकम प्राप्त कहां से हो। ७१८ करोड़ रु० तो ... बचत से, ५२० करोड़ रु० ऋणों के रूप में और शेष भाग, विदेशी सहायता तथा घाटे की अर्थ व्यवस्था आदि से प्राप्त करने का हिसाब लगाया गया।

इस योजना ने भारतीय अर्थ व्यवस्था में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी... कृषि पदार्थों की उत्पत्ति में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है—खाद्यान्नों में-१४ ...

(२) तीव्रगति से औद्योगीकरण, जिसमें बुनियादी तथा भारी उद्योगों के विकास पर बल हो।

(३) अधिकाधिक लोगों को काम पर लगाना।

(४) वेतनों तथा सम्पत्ति की असमानताओं को दूर किया जाय और विभिन्न स्तर के वर्गों को आर्थिक दृष्टि से समानता पर लाने का प्रयत्न किया जाय।

सारांश में कहा जा सकता है कि ये बातें परस्पर सम्बद्ध हैं और मुख्य लक्ष्य रोजगार देना है जिसके लिए कुटीर उद्योग जैसे उद्योगों के विकास पर विशेष बल दिया गया है जिनमें अधिकाधिक हाथों का उपयोग हो सके और साथ ही मूलभूत उद्योगों जैसे इस्पात व लोहे का उद्योग, रासायनिक उद्योग आदि की स्थापना व विकास पर भी पर्याप्त बल दिया गया है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें पांच वर्ष की अवधि में कुल ४,८०० करोड़ रुपया व्यय करेंगी जिसमें से—सिंचाई तथा बिजली पर १० प्रतिशत, सामूहिक तथा राष्ट्रीय विकास योजनाओं को मिलाकर कृषि पर १२ प्रतिशत, उद्योगों व खनिजों पर १६ प्रतिशत, पुनर्संस्थापन तथा आवास एवं समाज सेवाओं पर २० प्रतिशत और परिवहन तथा संचार पर २९ प्रतिशत व्यय होगा।

इस आयोजना में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें विशाल विकासात्मक कार्य अपने हाथ में लेंगी। योजना में २ करोड़ १० लाख अतिरिक्त भूमि की सिंचाई तथा प्रथम योजना की ३५ लाख किलोवाट के मुकाबले में ६९ लाख किलोवाट बिजली तैयार करने की व्यवस्था है। रेलों द्वारा यात्रियों के यातायात में १५ प्रतिशत, तथा माल ढुलाई में ३४ प्रतिशत वृद्धि होने का अनुमान है। विकास योजनाओं के क्रियान्वित होने पर राष्ट्रीय आय में लगभग २५ प्रतिशत वृद्धि होगी।

प्रमुख लक्ष्य—"अधिकाधिक रोजगार उपलब्ध करना"—की पूर्ति के लिए प्रतिवर्ष १५ प्रतिशत की दर से बढ़ने वाली संख्या और उसकी ४० प्रतिशत श्रम शक्ति के सहयोग के लिए कम से कम ८० लाख से २ करोड़ लोगों के लिए काम करने की सुविधाएं उपलब्ध करनी होंगी। कृषि उत्पादनों के सम्बन्ध

निर्धारित लक्ष्यों तक पहुँचने के लिए यह आवश्यक है कि देश के कुछ सि
प्रदेश का क्षेत्रफल ७ करोड़ एकड़ से बढ़ कर २० करोड़ एकड़ कर दिया ज

अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर इतना रुपया आयेगा कहाँ
आयोजना में इस विषय पर भी पूरी तरह से विचार किया गया है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में उत्पादन वृद्धि के लक्ष्यः—

मद	प्रतिशत	मद	प्रतिश
जहाज	८० प्रतिशत	कच्चा लोहा	६७ प्रति
रेलवे एंजिन	७६ प्रतिशत	तैयार लोहा	१३६ प्रति
मोटरकार	१४८ प्रतिशत	एल्यूमीनियम	२३३ प्रति
मूल रसायन	२२२ प्रतिशत	शोधा पैट्रोल (Refined Petroleum)	५२ प्रति
सीमेंट	१०८ प्रतिशत	रासायनिक खाद	३५८ प्रति
कागज	४६० प्रतिशत	डीजल एंजिन	१०५ प्रति
बिजली की मोटरे	१५० प्रतिशत	साइकिल	२०० प्रति

यह मानी हुई बात है कि उत्पादन वृद्धि के साथ जनता की आर्थि
स्थिति में भी सुधार होता है। लोगों की आय बढ़ने से उनकी कर देने की
क्षमता बढ़ती है। अतएव वर्तमान करों में वृद्धि तथा नये करों से ८ या ६
अरब रु० की आय का अनुमान लगाया गया है। इसी प्रकार सार्वजनिक ऋणों
तथा अल्प बचत योजनाओं से १२ अरब रुपये तथा विदेशी पूंजी से केवल
८ अरब रुपये की प्राप्ति की आशा है। विदेशी सहायता पर निर्भर रहना
कभी-कभी योजना की असफलता का भी कारण होता है, इसी बात को ध्यान
में रखते हुए केवल कुल व्यय के १७ प्रतिशत भाग के लिए ही विदेशी ऋणों
की व्यवस्था की गई है। शेष राशि सरकारी रेलों एवं कारखानों की आमदनी
से प्राप्त होगी। सम्पूर्ण साधनों का पूरा पूरा उपयोग कर लेने पर भी ४ अरब
रुपये की कमी पड़ेगी, जिसके लिए भविष्य में उचित व्यवस्था हो सकना कठिन
न होगा।

देश की राष्ट्रीय आय १२,८८० करोड़ रुपये से सन् ६१ में बढ़ कर
२०,८०० करोड़ रु० तक हो जावेगी। इसी प्रकार देश में प्रति व्यक्ति आमद

आय की १६५५-५६ की २८०/- (वार्षिक) १६६१ में ३३०/- रु० तक पहुँच जायगी। फिर भी अमेरिका व अन्य उन्नत देशों की ५,०००/- रु० वार्षिक आय को देखते हुए यह नगण्य है। अतएव इसे २,०००/- रु० तक पहुँचाने का अति शीघ्र प्रयास करना होगा। सत्य तो यह है कि योजनाओं के आरम्भिक वर्ष साधन प्रस्तुत करने में कम होते हैं। वास्तविक कार्य और परिणाम तो अन्त में सामने आता है। दूसरी योजना के अन्त में निजी साधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होंगे। जनता में नई चेतना के फलस्वरूप नया उत्साह जाग रहा है उसका चमत्कार हमें तीसरी योजना में मिलेगा जब प्रत्येक व्यक्ति को उसकी रुचि का कार्य तथा साधन उपलब्ध हो जायेंगे।

प्रथम और द्वितीय योजना

व्यय का तुलनात्मक विवरण

विद्युत	११ प्रतिशत	६ प्रतिशत
समाज सेवा आवास पुनः संस्थापन	२३ प्रतिशत	२० प्रतिशत
उद्योग एवं खनिज	७ प्रतिशत	१६ प्रतिशत
सिचाई बाढ़ नियन्त्रण	१७ प्रतिशत	६ प्रतिशत
यातायात सचार	२४ प्रतिशत	२६ प्रतिशत
कृषि एवं सामुदायिक विकास	१६ प्रतिशत	१२ प्रतिशत
योग	२३५६ करोड़	४८०० करोड़
	प्रथम योजना	द्वितीय योजना

इस स्वर्णिम कल्पना से प्रेरित होकर उस भारत की कल्पना कर सकते हैं जो इन योजनाओं के बाद प्रकट होगा—

"द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना के बाद तीन और ऐसी आयोजनाओं की आवश्यकता पड़ेगी। तदनन्तर ही पूर्णतः विकसित वर्गहीन समाज की कल्पना की जा सकती है।"

भविष्य का यह भारत आज के रूस के समान नहीं होगा, क्योंकि रूस तो अभी तक निरंकुश एक सत्तावाद से मुक्त नहीं हो पाया है। इसके विपरीत भारत सदैव लोकतन्त्रीय राष्ट्र रहेगा। यह मत भूलिये, अभी यह केवल

सकता ही है; इस सपने को पूर्ण करने के लिए राष्ट्र का सर्वोच्च बलिदान, सर्वोच्च बुद्धि और सर्वोच्च श्रम चाहिये।"

(४) भूदान यज्ञ

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में या इसके गौरव में यह एक विशेषता प्रारम्भिक काल से देखने में आ रही है कि जब भी किसी क्षेत्र (राजनैतिक आर्थिक आदि) में विकट समस्या आ जाती है तब प्रायः अधिक शक्ति वाले पुरुष का प्रादुर्भाव होता है। इसी तरह से इस समय कृषि क्षेत्र में विनोबाजी एक दैवीय पुरुष हैं। उनका "भूदान आंदोलन" इस क्षेत्र में कारी कार्य कर रहा है। इसका संक्षिप्त विवरण निम्न है—

भूदान यज्ञ के प्रचारक श्री विनोबा भावे हैं। ये गावों में घूम-घूम कर सुधार कर रहे हैं। एक बार वे पोचमपल्ली गांव में पहुँचे। वहां पर एक सभा की। वहां पर ४० हरिजनों ने मिलकर अपने लिए भूमि न होने के बारे में प्रार्थना रखी। यह बात सभा में रखने पर सभा में सन्नाटा छा गया और फिर बाद में सर्व प्रथम एक दयालु व्यक्ति ने भूमि दान देने का साहस किया। उनका नाम है वी. आर. रेडी। उसी समय विनोबा जी ने कहा कि ईश्वर ने मुझे यह काम सौंपा है और उन्होंने उसी समय प्रण किया कि "मैं सन् १९५७ तक ५ करोड़ एकड़ भूमि एकत्रित करूंगा"। इस प्रकार का निश्चय करके विनोबाजी ने विश्व इतिहास में एक नवीन प्रकार की क्रांति को जन्म दिया। भूदान से जो भूमि एकत्रित होती है वह वास्तव भूमिहीनों में वितरित कर दी दी जाती है जिससे कि कृषि की असमानता दूर हो जाय और कृषकों को जीविका के लिये जमीन मिल जाय।

भूदान से मिली हुई भूमि को वितरित करने के लिये भी कारी नियम बना दिये गये हैं। भूदान समितियां भी स्थापित की गई हैं। नियम बन जाने के कारण भूमि वितरण में किसी भी प्रकार का पक्षपात नहीं किया जा सकता है इसके लिए पूर्ण विवरण प्राप्त किये जाने पर भूमि दी जाती है।

इस महान कार्य के लिए कई लोगों की शंकाएं भी हैं। किन्तु इसके कारी अच्छे परिणाम प्रत्यक्ष देखे जा रहे हैं। सम्पत्ति वितरण में समता कृषि विषयक बेकारी योजना—खेतों का क्षेत्र बढ़ जाना—जमींदारी समाप्ति सहायता—इस प्रकार भूमिसुधार का मार्ग खुल गया है।

यह प्रायः माना जाता है कि जो काम शांति और प्रेम के साथ किया जा सकता है उसके लिये अशांति का तरीका अपनाना ठीक नहीं है तो ठीक इसी तरह विनोबा भावे का यह "भूदान यज्ञ" है। अब तक १५० लाख एकड़ भूमि एकत्र की जा चुकी थी।

विनोबा भावे का यह आन्दोलन विश्व क्रांति के इतिहास में एक अनुपम उदाहरण है, रक्तहीन क्रांति से देश की राजनैतिक आजादी ही नहीं प्राप्त की जा सकती बल्कि हम आर्थिक दृष्टि से भी स्वावलम्बी बन सकते हैं। यह भारतीय अर्थशास्त्र के इतिहास में एक नया अध्याय है। इसकी सफलता एवं परिणाम को देख कर हम यह कामना करते हैं कि आचार्य विनोबा भावे अपने इस पवित्र कर्तव्य क्षेत्र में पूर्ण सफलता प्राप्त करें।

(५) भारत और विश्व

हमारे देश की परराष्ट्र नीति के संचालन का दायित्व हमारे प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू पर पड़ा है। पंडित नेहरू का दृष्टिकोण बहुत व्यापक है और उनकी गणना विश्व के प्रमुख राजनीतिज्ञों में की जाती है। आपकी नीति की आधार शिला है सक्रिय तटस्थता अर्थात् किसी भी गुट विशेष के साथ सम्मिलित न होना और स्वतन्त्र रूप से भारत की उन्नति की दृष्टि से प्रत्येक गुट के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखना। इस के अतिरिक्त आपकी नीति की विशेषता है सत्य तथा न्याय की भावना। दलित तथा छोटे छोटे देशों का पक्ष ले कर उन की सुरक्षा करना। इस निष्पक्षता की नीति के कारण विश्व के राष्ट्रों में भारत का आदर सम्मान बहुत बढ़ गया है।

भारत की परराष्ट्र नीति

भारत के संविधान में भी विदेश नीति सम्बन्धी नीति निर्देशक तत्वों का उल्लेख किया गया है, जो निम्नलिखित हैः—

राज्य (क) अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की उन्नति का,

(ख) राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने का,

(ग) संगठित लोगों के एक दूसरे से व्यवहारों में अंतर्राष्ट्रीय विधि और संधि बन्धनों के प्रति आदर बढ़ाने का तथा—

पंचशील सिद्धांत (१) प्रत्येक राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र की सीमा का अतिक्रमण न करें और एक दूसरे की स्वतन्त्रता का सम्मान करें। (२) कोई राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण न करे। (३) कोई चाहे किसी राजनैतिक व आर्थिक विचारधारा को मानता हो इसके विरोध के कारण किसी भी राष्ट्र के मामलों में हस्तक्षेप न करे। (४) सब राष्ट्रों में पारस्परिक समानता व समान लाभ के सम्बन्ध स्थापित हों। (५) शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व में सब का विश्वास हो। अन्तर्राष्ट्रीय संसार में भारत के ये सिद्धान्त 'पंचशील' के नाम से प्रसिद्ध हैं। सर्वप्रथम चीन ने भारत के पचशील सिद्धान्त को स्वीकार कर के उसके अनुसार कार्य करने की घोषणा की। इसके उपरान्त युगोस्लेविया, मिश्र, ब्रह्मा, रूस तथा अन्य एशियाई और कुछ यूरोपीय राष्ट्रों ने भी पंचशील को स्वीकार किया। यह भारत की नैतिक विजय है। कालान्तर में इसी पंचशील को बढ़ा कर दस सिद्धान्त बनाये गये जिन्हें एशिया तथा अफ्रीका के देशों के 'बाडुंग सम्मेलन' में सर्व सम्मति से स्वीकृत किया गया।

कोरिया युद्ध के उपरान्त भारत ने हिन्द–चीन के गृह युद्ध को शान्त करने में काफी सहयोग दिया। कालान्तर में चीन और अमेरिका के मध्य बढ़ते हुए संघर्ष को भी भारत ने शान्त किया। गत वर्ष में इजरायल ने मिश्र पर आक्रमण किया और इंगलैण्ड तथा फ्रांस ने उसका साथ दिया और अधिकांश मिश्री भू भाग पर अधिकार कर लिया गया। भारत ने जोरदार विरोध प्रगट किया और मिश्र में पुनः शान्ति स्थापना करवाने में सहयोग दिया। इस प्रकार वर्तमान समय में टर्की तथा सीरिया के मध्य चलने वाले पारस्परिक वैमनस्य को भी सुलझाने में भारत काफी दिलचस्पी ले रहा है। वर्तमान युग में अस्त्र शस्त्रों की निर्माण दौड़ को कम करवाने में भारत के सुरक्षा मन्त्री और प्रमुख राजनीतिज्ञ श्रीकृष्णन् मेनन काफी प्रयत्न कर रहे हैं। निरस्त्री और उपनिवेशों के आधुनिक युग में भयंकर तनाव को कम करने में शान्तिप्रिय भारत काफी प्रयत्न कर रहा है।

संयुक्तराष्ट्र संघ का समर्थन करना भारत की विदेश नीति का मुख्य अंग है। हमारे संविधान में राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में स्पष्ट उल्लेख किया

भारत और संयुक्त राष्ट्र संघ

गया है कि राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और की उन्नति के लिए राष्ट्रों के बीच न्याय सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने का लोगों के एक दूसरे से व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय ओर संधि बंधनों के प्रति आदर बढ़ाने का तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को पूर्ण उपायों से हल करने का प्रयत्न करेगा।

भारत संयुक्त राष्ट्र संघ के प्राथमिक सदस्यों में से एक है। वह रा० सं० के विभिन्न अंग और सहायक संस्थाओं में पूर्णतया भाग ले रहा भारत एक बार (दो वर्ष के लिए सुरक्षा परिषद् का सदस्य रह चुका जनरल असेम्बली में विश्व की सर्व प्रथम महिला अध्यक्ष पद को सुशो करने का श्रेय भारत की श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित को प्राप्त हुआ स्वामी मुदालियर सं० रा० सं० की आर्थिक तथा सामाजिक परि कई वर्ष तक अध्यक्ष रहे। डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् सं० रा० शैक्षि वैज्ञानिक, तथा सांस्कृतिक संगठन (UNESCO) के अध्यक्ष चुने गये संरक्षण परिषद में भारत ने अपने स्थान से दलित और पराधीन देशों जनता की दबी हुई वाणी को मुखरित किया है। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायाल स्वर्गीय श्री बेनेगल नरसिंह राव न्यायाधीश निर्वाचित किये गए थे। जे में होने वाले उस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के अध्यक्ष भारत के डा० भाभा जिसमें विश्व के वैज्ञानिकों ने अणु शक्तियों के शांति सम्बन्धी उपयोगों विचार किया था। इसके अतिरिक्त भारत ऐसे संगठनों का भी सदस्य है विविध सरकारों में आपसी समझौते द्वारा बनाए गये हैं।

भारतीय दृष्टिकोण

आरम्भ में स्वतन्त्र भारत की सरकार ने इस बात की घोषणा कर दी कि वह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शान्ति और सब राष्ट्रों के साथ मित्रता नीति का पालन करेगी। युद्धोत्तर काल में हमें परस्पर विरोधी गुट देखने को मिल रहे हैं। एक नेता अमेरिका है, दूसरे का रूस। एक पूंजीवादी है दूसरा साम्यवादी। दोनों ही आज के विश्व की विरा शक्तियां हैं। भारत ने तटस्थता की नीति अपनाई है। एक सच्चे, स्वतन्त्र स्वाभिमानी राष्ट्र की हैसियत से भारत संयुक्त राष्ट्र संघ में और उसके बाहर

उपस्थित होने वाले प्रत्येक प्रश्न का निर्णय अपनी बुद्धि से, मसलों में और अपने लाभ-हानि की दृष्टि से करता है। वह ऐसी कोई नीति नहीं अपना सकता जो युद्ध के रास्ते ले जाती हो क्योंकि आज तो विश्व के प्रत्येक नागरिक का हित इसी में है कि युद्ध न छिड़े। इसी दृष्टि से भारत एशिया-अफ्रीका के नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्रों के साथ मिल कर शान्ति का मार्ग प्रशस्त कर रहा है।

साम्राज्यवाद युद्ध का जनक है। भारत इसीलिए साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का प्रबल विरोधी है। पराधीन देशों की स्वतन्त्रता के लिए भारत बराबर प्रयत्नशील रहा है। इण्डोनेशिया की स्वतन्त्रता के लिए भारत ने एशियाई देशों का एक सम्मेलन बुलाया था और संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा भी उनकी स्वतन्त्रता का प्रयत्न किया था। इटली के भूतपूर्व उपनिवेशों के सम्बन्ध में भी भारत की यही नीति रही। सुरक्षा परिषद में तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की अन्य सभाओं में भी भारत का स्वर और व सदैव पराधीन राष्ट्रों की स्वतन्त्रता की ओर रहा है।

पराधीन देशों का समर्थन

जाति भेद, वर्ण-भेद आदि को मिटाने के लिए भारत प्रयत्नशील है। दक्षिण अफ्रीका में काले-गोरे के भेद के आधार पर जाति भेद व रंगभेद पलने वाली नीति के विरोध में भारत ने बारबार संयुक्त राष्ट्र संघ में आवाज उठाई है। उसने न केवल भारतीयों के लिए बल्कि अफ्रीका के मूल निवासियों-हब्शी तथा अन्य मूल जाति के लोगों के लिए विरोध किया और उन्हें समानता के अधिकार दिलवा कर मानवता के कलंक को मिटाने के लिए प्रयत्नशील है।

... के विरुद्ध

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत ने विश्व में शान्ति बनाये रखने की नीति को स्वीकार कर के वास्तविक रूप से इस क्षेत्र में कार्य करने का प्रयत्न किया है और कर रहा है। उसने विश्व के अधिकांश देशों के साथ मैत्री पूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर रखे हैं और स्वतन्त्र रूप से तटस्थता की नीति का पालन कर रहा है। यहाँ तक कि भारत ने स्वयं अपनी समस्याओं—काश्मीर, पुर्तगीज बस्तियों आदि का समाधान संयुक्त राष्ट्र संघ को सौंप रखा है ताकि शान्ति के [illegible] समाधान हो सके।

अभ्यास के लिये प्रश्न

(१) "स्वतन्त्र भारत को बड़ी बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ा।" इन समस्याओं की विवेचना कीजिये।

(२) भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिये।

(३) मूल अधिकारों से क्या तात्पर्य है? भारतीय संविधान में क्या क्या मूल अधिकार हैं?

(४) भारतीय संविधान द्वारा दिये गये निर्देशक तत्वों की व्याख्या करो।

(५) संविधान द्वारा स्वीकृत भारतीय संसद के निर्माण व कार्यों का वर्णन करो।

(६) भारतीय संविधान में राष्ट्रपति का क्या स्थान है? उसके कर्तव्य तथा अधिकार का वर्णन किजिये!

(७) राज्य व केन्द्र के कार्य क्षेत्र क्या क्या हैं? संक्षेप में उनका वर्णन करो!

(८) भारत के उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के कर्तव्यों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।

(९) 'सामुदायिक विकास योजना' से क्या समझते हो? इस योजना का भारत के आर्थिक विकास में क्या स्थान हो सकता है!

(१०) प्रथम पंचवर्षीय योजना पर प्रकाश डालिए। द्वितीय पंचवर्षीय योजना इस से कहाँ तक भिन्न है! विस्तारपूर्वक समझाइये।

(११) आचार्य विनोबा भावे के भूदान यज्ञ पर संक्षिप्त लेख लिखिये।

(१२) भारत की अन्य राष्ट्रों के प्रति क्या क्या नीति है! स्पष्ट कीजिये।

(१३) भारत ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्वावधान में क्या क्या कार्य किये! उसे कहाँ तक सफलता मिली।

सप्तम अध्याय

महायुद्धों का आतंक एवं शान्ति स्थापना संघर्ष

अन्तर्राष्ट्रीय तनाव की उत्पत्ति के कारण

औद्योगिक क्रांति ने यूरोप के राष्ट्रों को समृद्धिशाली बनने की महत्वाकांक्षा से प्रेरित कर दिया था। परन्तु इस प्रेरणा को कार्यान्वित करने के लिए उन्हें पिछड़े हुए राष्ट्रों का अधिकार तथा संरक्षण चाहिए था क्योंकि बिना उपनिवेशों के राष्ट्रीय माल को खपाना उनके लिए अत्यन्त कठिन था क्योंकि यूरोप के सभी राष्ट्रों में सामान तथा हमेशा उपयोग में आने वाली वस्तुओं का निर्माण शुरू हो गया था। साम्राज्यवाद की इस दौड़ में जर्मनी सब से पीछे था। अतः उसे इंगलैण्ड तथा फ्रांस से घृणा हो गई। उसने भी अपने साम्राज्य को विकसित करने का प्रयत्न किया, परन्तु इंगलैण्ड की नौ शक्ति के सामने झुकना पड़ा। अतः उसने बर्लिन बगदाद रेलवे द्वारा फारस की खाड़ी तक पहुँचाने की योजना बनाई। इस योजना ने अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को बहुत बढ़ा दिया।

अन्तर्राष्ट्रीय तनाव की उत्पत्ति का दूसरा कारण अतिशय राष्ट्रीयता था। युद्ध का वास्तविक कारण राष्ट्रीयता की उग्र भावना और उसके परिणाम-स्वरूप उत्पन्न *विभिन्न राष्ट्रों की प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या तथा पारस्परिक आशंका थी।* इस भावना का सामरिक उग्र भाव जर्मनी में दिखाई दे रहा था। विशाल जर्मनी, विशाल फ्रांस आदि शब्द राष्ट्रीयता रूपी रोग से ग्रसित थे। आस्ट्रिया का साम्राज्य विभिन्न राष्ट्रीयता का क्रीड़ा केन्द्र था। तुर्क साम्राज्य राष्ट्रीयता के कारण दम तोड़ रहा था। सर्बिया, बल्गेरिया आदि छोटी शक्तियां भी राष्ट्रीयता का शिकार बन रही थीं।

अन्तर्राष्ट्रीय तनाव की उत्पत्ति का सब से महत्वपूर्ण कारण यूरोप का असंदिग्ध राजनीतिक वातावरण तथा घटनाक्रम था। नेपोलियन की पराजय के

उपरान्त यूरोप में वीएना कांग्रेस (१८१५ ई०) द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की स्थापना की गई थी। परन्तु १८६०—७० के युग में यूरोप में दो महान शक्तियों का अभ्युदय हुआ—जर्मनी और इटली। इन दोनों शक्तियों की उन्नति एवं एकीकरण के कारण वीएना कांग्रेस की व्यवस्था समाप्त हो गई। जर्मनी ने फ्रांस को पराजित किया (१८७०) और उसके दो प्रान्त—अल्सास तथा लॉरेन अपने अधिकार में ले लिये। फ्रांस इस पराजय को भूलने वाला नहीं था। अतः जर्मनी के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ बिस्मार्क ने फ्रांस के विरुद्ध संधियों का जाल बिछाना शुरू किया। उसने सर्व प्रथम आस्ट्रिया के साथ द्विगुट का निर्माण किया। (१८७९) फिर इटली को मिला कर त्रिगुट का निर्माण किया (१८८२) इस के अतिरिक्त उस ने रूस तथा इंगलैण्ड से भी सम्बन्ध बनाये रखे। परन्तु बिस्मार्क की मृत्यु के उपरांत विलियम कैसर इन कूटनीतिक ताने बाने को न सम्भाल सका। फलस्वरूप १८९३ में फ्रांस और रूस में जर्मनी के विरुद्ध संधि हो गई। उधर जर्मनी ने इंगलैण्ड को सामुद्रिक शक्ति की प्रतिस्पर्धा में ललकार कर उसकी मित्रता भी खो दी। और इंगलैण्ड तथा फ्रांस में १९०४ में सन्धि हो गई। १९०७ में इंगलैंड, फ्रांस और रूस में त्रिगुट की स्थापना हो गई। इस प्रकार यूरोप दो परस्पर विरोधी गुटों में विभाजित हो गया।

जून १९१४ ई० में आस्ट्रिया के युवराज व युवराज्ञी की सर्बिया के नागरिक ने हत्या कर दी। आस्ट्रिया ने सर्बिया पर भयंकर शर्तें लादीं। सर्बिया के इन्कार करने पर आस्ट्रिया ने उसे ४८ घण्टों का अल्टीमेटम दे दिया। उधर सर्बिया के मित्र रूस ने सर्बिया की सहायता के लिये सैनिकों को तैयार रहने की आज्ञा दी। इधर जर्मनी अपने मित्र आस्ट्रिया की पीठ पीछे था। २८ जुलाई १९१४ को आस्ट्रिया ने युद्ध घोषित कर दिया। रूसी सेनाओं का प्रयाण हुआ। जर्मनी ने रूस तथा फ्रांस के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी। फ्रांस पर आक्रमण करने के लिए उसने बेल्जियम की सीमा पर से गुजरना चाहा। बेल्जियम ने अस्वीकार कर दिया। जर्मनी ने बलपूर्वक प्रवेश किया। इस पर इंगलैण्ड भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में कूद पड़ा। धीरे २ यह युद्ध अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध में परिवर्तित हो गया। १९१८ में इसका अन्त हुआ।

परन्तु प्रथम युद्ध के बीस वर्ष बाद ही उस से भी भयंकर महायुद्ध लड़ा गया। प्रथम महायुद्ध में जर्मनी तथा उसके साथी पराजित हुए थे। उन पर भारी

हर्जाना लादा गया। उनके उपजाउ प्रान्तों को छीन लिया गया औद्योगिक केन्द्रों को नष्ट कर दिया गया। इस से वहां की जनता को बड़ा सदमा पहुँचा। उनके हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला धधकने लगी। इसके अतिरिक्त जापान तथा इटली जैसे मित्र राष्ट्रों की इच्छाएं पूर्ण नहीं की गई।

द्वितीय युद्ध का सूत्रपात

युद्ध का अधिकांश लाभ इंगलैंड, फ्रांस, अमेरिका के हाथ लगा। इटली और जापान भी नाराज हो गये। कालान्तर में ये राष्ट्र जर्मनी, जापान, इटली अपनी सैनिक शक्ति के विकास में लग गये। इन राष्ट्रों में अधिनायक का प्रादुर्भाव हुआ जनता पुनः संगठित एवं शक्तिशाली हो उठी और द्वितीय युद्ध का प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध में अणु बम का प्रयोग किया गया। इस बार भी मित्र राष्ट्रों की विजय हुई।

द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त

द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त रूस और अमेरिका में सैद्धान्तिक संघर्ष जारी हो गया। एक साम्यवादी विचारधारा का पोषक है तो दूसरा पूंजीवादी विचारधारा का। इस पूंजीवादी गुट को हर समय साम्यवाद की चिन्ता सताती रहती है। इसलिए वह उससे अधिक शक्तिशाली होने का प्रयत्न कर रहा है। अधिक से अधिक राष्ट्रों को अपनी द्रव्य शक्ति की सहायता से अपने प्रभाव में लाने का, मित्र बनाने का प्रयत्न कर रहा है। इस प्रसंग में सर्वप्रथम अमेरिकी राज्यों का संगठन (O. A. S.) ३० अप्रेल १९४८ के दिन किया गया। इसमें अमेरिका के २१ गणराज्यों ने एक अधिपत्र पर हस्ताक्षर किये और घोषणा की कि किसी भी सदस्य-राज्य पर होने वाले आक्रमण का सामूहिक रूप से सामना किया जायेगा।

इसके बाद अमेरिका ने यूरोप के देशों की तरफ अपना ध्यान आकर्षित किया और ब्रूसेल्स संधि, यूरोपीय आर्थिक सहयोग संगठन, यूरोपीय परिषद् तथा अतलान्तिक संधि संगठन (Nato) के द्वारा यूरोप के गैर साम्यवादी देशों को अपने नेतृत्व में लाने में सफल हुआ। इसी प्रकार दक्षिण-पूर्वीय एशिया संधि संगठन (SEATO) मध्यपूर्व प्रतिरक्षा संगठन (MEDO) मध्य पूर्व के लिए आइजन होवर-योजना, आदि के द्वारा एशिया के गैर-साम्यवादी देशों का अपने

प्रभावक्षेत्र में लाने में सफल हुआ। यद्यपि श्याम, बर्मा, लंका आदि तटस्थ देश उसके चंगुल में नहीं फंसे।

साम्यवादी रूस अमेरिकी हरकतों से चिंतित था और उसने भी वारसा संधि के द्वारा प्रतिरक्षात्मक उद्देश्य से यूरोप के साम्यवादी देशों को एकता के सूत्र में आबद्ध किया।

इसके बाद दोनों गुटों ने दूसरे देशों की समस्याओं में हस्तक्षेप कर के अपनी अपनी शक्ति को तोलना चाहा। सर्वप्रथम चीन में इस नीति का प्रयोग किया गया परन्तु अमेरिका को भारी क्षति उठानी पड़ी और चीन में साम्यवादियों की जीत हुई। परन्तु एंग्लो अमेरिकन गुट के बहुमत के कारण साम्यवादी चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में अभी तक स्थान नहीं मिल सका है और फारमोसा का शासक, चीन से खदेड़ा हुआ च्यांग, अभी तक चीन का प्रतिनिधित्व कर रहा है फिर कोरिया में पुनः शक्ति परीक्षा की गई और साम्यवादी उत्तरी कोरिया के विरुद्ध अमेरिकन गुट ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी। परन्तु फिर भी उनका पिट्ठू दक्षिणी कोरिया जन शक्ति को पराजित करने में असफल रहा। इसी प्रकार वियतनाम में भी संघर्ष जारी है।

मध्यपूर्व में इंगलैण्ड और फ्रांस ने इजराइल के पक्ष में मिश्र पर आक्रमण किया। इस आक्रमण का वास्तविक अभिप्राय स्वेज नहर पर पुनः कब्जा करना था। परन्तु रूस की धमकी के कारण, भारत की मध्यस्थता के कारण आक्रमणकारियों को मिश्र खाली करना पड़ा। यह पूंजीवाद की करारी हार थी।

प्रत्यक्ष तरीकों में असफल होने पर पूंजीवादी गुट ने साम्यवादी प्रधान देशों में अप्रत्यक्ष रूप से विद्रोह करवाना प्रारम्भ किया। हंगरी में इसी प्रकार का नाटक खेला गया परन्तु रूस ने दृढ़ता के साथ इस विद्रोह को कुचल दिया। इस पर हिन्देशिया में यह खेल खेला गया परन्तु वहां भी उनकी दाल नहीं गली। लाचार हो उन्होंने पुनः मध्यपूर्व में पासा फेंका। सीरिया और तुर्की को ईरान और जोर्डन को, अदन और यमन, लेबनान आदि को ले कर यह नाटक ... ही जा रहा है। परन्तु इस में उन्हें शायद ही सफलता मिले।

४ अक्टूबर १९५७ को रूस ने कृत्रिम उपग्रह को सफलतापूर्वक अंतरिक्ष में छोड़ कर पूंजीवादी गुट को भयभीत कर दिया। क्योंकि अब तक लोगों का ख्याल था कि वैज्ञानिक ज्ञान में एंग्लो-अमेरिकी गुट आगे है। प्रथम उपग्रह अंतरिक्ष में ५६० मील की ऊंचाई पर भ्रमण करने को निकल पड़ा। इसकी गति, ८००० मील प्रति घंटा थी। इसका वजन १८४ पौंड और व्यास २३" था। ३ नवम्बर १९५७ को रूस ने दूसरा उपग्रह छोड़ा। इस बार यह अंतरिक्ष में ६३० मील तक जा पहुँचा और इसका वजन ½ टन था। इसमें 'लायका' नामक जीवित कुतिया भेजी गई थी।

रूसी उपग्रहों ने अमेरिकन लोगों की नींद हराम कर दी। करोड़ों रुपयों को खर्च कर के उपग्रह छोड़ने की तैयारी की जाने लगी परन्तु सफलता न मिली। अन्त में १ फरवरी ५८ को उसे एक छोटा सा उपग्रह छोड़ने में सफलता मिली। १७ मार्च को उसने दूसरा छोटा उपग्रह छोड़ा। इसी बीच रूस ने अपना विशालकाय तृतीय उपग्रह छोड़ा।

इतना होने पर भी रूस ने अपनी तरफ से परमाणु शस्त्रों एवं उद्जन-शस्त्रों के परीक्षण को बन्द करने की घोषणा कर दी है। इन दोनों गुटों में जो पारस्परिक तनाव है उसे दूर करने के लिए शासनाध्यक्ष सम्मेलन बुलाया जाने वाला है। आशा है कि शीघ्र ही पारस्परिक वैमनस्य दूर हो जायेगा और विश्व को शीत युद्ध से मुक्ति मिलेगी।

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग

ज्यों-ज्यों मनुष्य के ज्ञान विज्ञान की वृद्धि होती गई और उसकी आर्थिक समृद्धि होती गई त्यों-त्यों कार्य क्षेत्र भी बढ़ता गया। पहले धार्मिक प्रभाव से और फिर आर्थिक और राजनीतिक कारणों से अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की ओर मनुष्य अग्रसर हुआ। मध्यकालीन सामन्तशाही की समाप्ति पर राष्ट्रीयता प्रकट हुई और आर्थिक क्रांति ने व्यापार के साथ-साथ राज्यों के झण्डे दूर दूर पहुँचा कर साम्राज्य बनाये। साम्राज्यवादी शक्तियों के पारस्परिक कलह के कारण अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों का प्रादुर्भाव हुआ और

सहयोग का महत्व

ने १८१५ में एक संधि द्वारा यह तय किया कि प्रतिवर्ष उन की एक बैठक होगी जिस में वे विविध समस्याओं को सुलझायेंगे। इसको (Concert of Europe) कहते हैं। यह व्यवस्था अधिक दिनों तक नहीं चली। वैज्ञानिक साधनों के बढ़ने के साथ बलवान देशों की शक्ति और बढ़ गई। वे निर्बल राष्ट्रों को अपने अधीन करने लगे। १७ वीं शताब्दी में बहुत काल तक युद्ध की आशंका बराबर बनी रहने लगी। फलस्वरूप विश्वशान्ति और आपसी समझौतों के लिए होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय सभाओं और योजनाओं की धूम मच गई। सन १८९९ और १९०७ में दो कॉन्फ्रेंसें हुई जो हेग कॉन्फ्रेंसों के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी योजना के अनुसार एक अन्तर्राष्ट्रीय पंचायती न्यायालय स्थापित किया गया। शुरू में तो इस न्यायालय ने राज्यों के आपसी झगड़ों के कई मामले तय किये परन्तु बाद में इसकी प्रगति रुक गई। प्रथम विश्व युद्ध के अन्त में राष्ट्रसंघ (League of Nations) और द्वितीय विश्व युद्ध के अन्त से संयुक्त राष्ट्रसंघ U N O की उत्पत्ति हुई। इन दोनों का वर्णन आगे के पृष्ठों में किया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि युद्धों की भयानकता के कारण विश्व शान्ति के लिए अलग-अलग देशों के पारस्परिक सहयोग की सीमाएं बराबर विस्तृत होती जा रही हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का दूसरा कारण है विभिन्न देशों की आर्थिक क्षेत्र में परस्पर निर्भरता। इन दोनों कारणों के फलस्वरूप सरकारी तौर पर जो संगठन के प्रयास हुए उनके अतिरिक्त गैर सरकारी स्तर पर भी कई महत्वपूर्ण प्रयत्न बहुत पहिले से होते आ रहे हैं। आज के युग में हमें दोनों तरह के अन्तर्राष्ट्रीय संगठन देखने को मिलते हैं। परन्तु ये संगठन चाहे सरकारी हों या गैर सरकारी इनका आधार स्वेच्छापूर्ण सहयोग ही है राज्यों की सार्वभौम सत्ता (Sovereignty) का सिद्धान्त अब भी बना हुआ है; किसी राज्य को उसकी इच्छा के विरु[illegible] कोई कार्य करने या न करने को कहने के लिए कोई कानूनी [illegible] क्षेत्र में नहीं है।

। जन और धन की अपार क्षति
आया। पाशविकता का

सारकीय नष्ट हुआ। इन्हीं भीषण परिस्थितियों को देख कर अनेक विचारकों और राजनीतिज्ञों के मस्तिष्क और हृदय आन्दोलित हो उठे, अन्त में युद्ध को रोकने के लिये युद्धकाल में ही अनेक योजनाएं बनीं और इन सब का अन्तिम युद्ध की समाप्ति पर राष्ट्रसंघ League of Nation की स्थापना के रूप में हुआ, जिसमें विशेषकर अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति विल्सन का मुख्य हाथ था। युद्धान्त होने वाले शान्ति सम्मेलन में सन्धियों के साथ ही राष्ट्रसंघ का प्रतिज्ञा पत्र (Covenant) भी जोड़ दिया गया।

उस प्रतिज्ञा पत्र के अनुसार राष्ट्रसंघ के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार थे—

उद्देश्य

(१) शान्ति सम्मेलन द्वारा स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की रक्षा और उसके संरक्षण की व्यवस्था (२) अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों का सदैव के लिए अन्त करने के लिए निःशस्त्रीकरण तथा युद्ध सामग्री के उत्पादन पर नियन्त्रण। (३) अल्पसंख्यकों के हितों और अन्तर्राष्ट्रीय प्रदेशों के शासन एवं शान्ति सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण (४) स्वास्थ्य सुधार, समाज सुधार तथा श्रमिकों की अवस्था में सुधार आदि लोक हितकारी कार्यों का सम्पादन।

उपर्युक्त उद्देश्य को पूरा करने के लिए राष्ट्रसंघ के सदस्यों ने प्रतिज्ञा की कि जहां तक हो सकेगा, वे अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध नहीं होने देंगे, समझौते और शान्ति से पारस्परिक झगड़े सुलझायेंगे तथा अन्तर्राष्ट्रीय नियमों एवं सन्धियों का पालन करेंगे।

सदस्यता

राष्ट्रसंघ के सदस्यों के तीन भेद हो सकते थे। (१) वे राष्ट्र जिन्होंने वार्साई (Versailles) के सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करके राष्ट्रसंघ की रचना की थी। (२) वे राष्ट्र जो युद्ध में तटस्थ थे और जिन्हें सदस्यता के लिए आमन्त्रित किया गया था। (३) वे राष्ट्र जिन्हें राष्ट्रसंघ की महासभा (Assembly) ने सदस्य बनाया। यहां पर ध्यान देने योग्य चीज है कि महासभा (Assembly) दो तिहाई मत से नये सदस्यों को प्रवेश दे सकती थी। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका (U S A) राष्ट्रपति ने राष्ट्रसंघ के निर्माण में इतना बड़ा हाथ लिया था, राष्ट्रसंघ में नहीं हुआ। इसका कारण वहां के राजनीतिज्ञों के आपसी मतभेद, ... और ईर्ष्या थे। अमेरिका जैसे बड़े राष्ट्र के शामिल नहीं होने से राष्ट्र-

संघ की शक्ति एवं प्रतिष्ठा को आरम्भ से ही बड़ा धक्का लगा। राष्ट्रसंघ के सदस्यों की संख्या आरम्भ में केवल २४ थी, किन्तु बाद में यह संख्या बढ़ कर ५८ तक पहुँच गई थी। कोई राष्ट्र दो वर्ष का नोटिस देने के बाद राष्ट्रसंघ की सदस्यता छोड़ सकता था। कोई राष्ट्र सहायता से वंचित भी किया जा सकता था। राष्ट्रसंघ के विरुद्ध आचरण करने पर किसी राष्ट्र को निकालने के लिए यह आवश्यक होता था कि उस राष्ट्र के अतिरिक्त, राष्ट्रसंघ की कौंसिल के सब सदस्य एक मत हों।

राष्ट्रसंघ की सर्वप्रमुख संस्था एसेम्बली (Assembly) या महासभा थी। इस में प्रत्येक सदस्य राष्ट्र के तीन प्रतिनिधि होते थे, यद्यपि वोट एक ही होता था। एसेम्बली का अधिवेशन वर्ष में एक बार करना अनिवार्य था। आवश्यकता पड़ने पर विशेष अधिवेशन भी हो सकते थे। एसेम्बली अपने एक

एसेम्बली

सभापति, छः उप सभापति तथा छः स्थाई समितियों का चुनाव करती थी। जब तक यह चुनाव नहीं हो जाता, तब तक कौन्सिल का सभापति एसेम्बली में भी सभापतित्व करता था। एसेम्बली राष्ट्रसंघ के लिए दो तिहाई बहुमत से राष्ट्रसंघ के नये सदस्यों का चुनाव करती थी तथा बहुमत से कौंसिल के नौ अस्थाई सदस्यों में से ३ का प्रतिवर्ष चुनाव भी करती थी। कौन्सिल के द्वारा राष्ट्रसंघ के महामन्त्री (Secretary General) के पद के लिये प्रस्तुत किये हुए नाम पर एसेम्बली में बहुमत से स्वीकृति लेनी पड़ती थी। राष्ट्रसंघ के संविधान में आवश्यक परिवर्तन करने में भी एसेम्बली का प्रमुख हाथ रहता था। राष्ट्रसंघ के बजट पर एसेम्बली की स्वीकृति आवश्यक थी। एसेम्बली ही राष्ट्रसंघ की कौंसिल और अन्य संस्थाओं का निरीक्षण करती थी।

एसेम्बली को समस्त अन्तर्राष्ट्रीय बातों पर विचार करने का अधिकार था। यद्यपि यह सत्य है कि किसी राज्य की धारासभा या संसद की भाँति वह कोई कानून नहीं बना सकती थी, और उसके सदस्यों में एकता और निष्पक्षता का अभाव भी रहता था, फिर भी वह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिज्ञों के इतिहास में पहली सबसे बड़ी सभा थी, और उसके निर्णयों का प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में नैतिकता और राजनीति की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण होता था।

राष्ट्रसंघ की दूसरी मुख्य संस्था काउन्सिल थी। आरम्भ में इंगलैंड फ्रांस, इटली, संयुक्तराज्य अमेरिका और जापान—ये पांच स्थाई सदस्य थे और चार सदस्यों का चुनाव एसेम्बली करती थी। अमेरिका के सम्मिलित न होने से स्थाई सदस्यों की संख्या केवल चार रह गई। सन् १९२६ में जर्मनी के सम्मिलित होने पर यह संख्या पांच, और सन् १९३४ में रूस के सम्मिलित होने पर छः हो गई। किन्तु बाद में जापान इटली, जर्मनी और रूस के निकल जाने से सन् १९३९ में स्थाई सदस्यों की संख्या केवल दो रह गई। सन् १९२२ में अस्थाई सदस्यों की संख्या बढ़ा कर ६, सन् १९२६ में नौ और सन् १९३४ में ग्यारह कर दी गई। काउन्सिल के अस्थाई सदस्य इस प्रकार चुने जाते थे कि क्रम से सभी राज्य उसके सदस्य बन जाय। अध्यक्ष का चुनाव अंग्रेजी वर्णमाला के अनुसार क्रम से होता था। नियमानुसार प्रतिवर्ष एक अधिवेशन काउन्सिल के लिए अनिवार्य था, परन्तु, व्यवहार में प्रतिवर्ष ४ अधिवेशन होते थे। काउन्सिल भी, एसेम्बली की तरह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की समस्याओं पर विचार करती थी, निर्णयों के लिये सब सदस्यों का सहमत होना नियमानुसार आवश्यक था। एसेम्बली और काउन्सिल के परस्पर संबन्ध के लिये राष्ट्रसंघ के प्रतिज्ञा पत्र में कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया था।

काउन्सिल

राष्ट्रसंघ का तीसरा अंग जेनेवा (स्विटज़रलैंड) में स्थित उसका कार्यालय था। वह एक महामन्त्री (Secretary Genetal) के अधीन था और उसकी सहायता के लिये कई मन्त्री और कई सौ कर्मचारियों की व्यवस्था थी। कार्यालय के समस्त कर्मचारी अपने राज्यों के नागरिक न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय समाज के सदस्य हो जाते थे। यह कार्यालय कई विभागों में बंटा हुआ था। जिन के ऊपर एक एक निर्देशक (Director) होता था। कार्यालय का कार्य सामान्यतया एसेम्बली, काउन्सिल तथा राष्ट्रसंघ की उच्च संस्थाओं के निर्णय को कार्यान्वित करना था। कार्यालय विविध अंग थे, जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं—(१) राजनैतिक विभाग, (२) आर्थिक विभाग, (३) यातायात विभाग (४) अल्प संख्यक विभाग (५) निःशस्त्रीकरण, (६) स्वास्थ्य विभाग (७) सामाजिक प्रश्न और अफीम सम्बन्धी

कार्यालय

यातायात विभाग (८) बौद्धिक सहकारिता और अन्तर्राष्ट्रीय कार्यालय (६) कानून विभाग (१०) सूचना विभाग आदि। संघ के सब विभाग परस्पर सहायक थे। कार्यालय को कई लोग राष्ट्र संघ की रीढ़ की हड्डी मानते थे।

अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी झगड़ों को निपटाने के लिए 'अन्तर्राष्ट्रीय न्याय का स्थाई न्यायालय' (Permanent court of Internationl Just.ce) था। यह राष्ट्रसंघ की एसेम्बली के १३ दिसम्बर १६२० के एक प्रस्ताव के द्वारा स्थापित किया गया था। प्रारम्भ में न्यायालय में ११ न्यायाधीश और चार डिप्टी थे, बाद में सन् १६३० में न्यायाधीशों की संख्या १५ हो गई थी। किसी भी देश के कानून के पण्डित इस न्यायालय में न्यायाधीश नियुक्त हो सकते थे चाहे वह देश राष्ट्रसंघ का सदस्य हो या न हो। अमेरिका यद्यपि राष्ट्रसंघ में नहीं था तब भी वहां के कुछ व्यक्ति इसमें न्यायाधीश नियुक्त किये गये थे। प्रत्येक न्यायाधीश का कार्य काल ६ वर्ष होता था और प्रत्येक को ४०,००० डालर वार्षिक वेतन तथा भत्ते के मिलते थे। इस न्यायालय ने अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को निबटाने के लिये जो निर्णय दिये वे बड़े निष्पक्ष थे। राष्ट्रसंघ की संस्थाओं की प्रार्थना पर यह न्यायालय परामर्श भी दे सकता था। न्यायालय का कार्यालय हॉलैंड की राजधानी हेग में था।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय

राष्ट्रसंघ के साथ अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संघ (International Labour Organisation) भी जुड़ा हुआ था जिसका मुख्य कार्य मजदूरों की दशा सुधारना था। राष्ट्रसंघ ने इसी उद्देश्य को ले कर एक कमीशन बैठाया, जिसकी रिपोर्ट के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय-श्रम-संघ (T [illegible] स्थापना की गई। राष्ट्रसंघ के सब सदस्य इसके भी सदस्य [illegible] इसमें भी एक साधारण सम्मेलन, राष्ट्र, [illegible] थी साधारण सम्मेलन का [illegible] अवश्य होता था। इसमें २/३ [illegible] राष्ट्रों की स्वीकृति के [illegible] ने श्रमिकों की [illegible] किया किन्तु इसमें

१६२० से १६३६ तक की दशाब्दियां राष्ट्रसंघ के जीवन में प्राय: उपेक्षा और आशंका का चित्र ही बनती रहीं यद्यपि यह सत्य है कि सामाजिक, सांस्कृतिक और स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों में राष्ट्रसंघ ने और उसकी संस्थाओं ने अच्छा काम किया किन्तु राजनैतिक मामले में वह उच्चकोटि की सफलता न दिखा सका। आयरलैण्ड द्वीप के झगड़े में, विल्ना के विवाद में, मेमल के मामले में, साइबेरिया की समस्या में, अल्बानिया की सीमा और मोसल के सम्बन्ध में, कोर्फू के प्रश्न में यूनान और बल्गेरिया के झगड़े में, दक्षिणी अमेरिका के मामले में, सार प्रदेश और डेन्जिग के शासन में लीग ने साहस पूर्वक निर्णय किये, परन्तु जहां बड़े राष्ट्रों का सवाल आया तो लीग घुटने टेकती नजर आती थी। जब इटली ने एबीसीनिया को हड़प लिया था, जापान ने चीन पर आक्रमण किया अथवा जर्मनी ने वार्साइ की सन्धि के टुकड़े कर के हवा में उड़ा दिये और पूर्वी व मध्य योरोप के देशों में पैर पसारे तो राष्ट्रसंघ कुछ न कर सका।

राष्ट्र संघ के कार्य

राष्ट्रसंघ की कार्य प्रणाली में एक बहुत बड़ा दोष था। जो कोई भी निर्णय करना होता उसके लिये सब सदस्यों का एक मत होना आवश्यक था परन्तु यह प्राय: सम्भव नहीं होता था। इसके अतिरिक्त राष्ट्रसंघ में मुख्यतया तीन दुर्बलताएं थीं (१) इसके प्रतिज्ञापत्र (Covenant) द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों की समाप्ति नहीं हुई, कुछ शर्तों के पूरे नहीं होने की हालत में युद्ध छिड़ सकता था जो राष्ट्र संघ के नियमानुसार वैधानिक कहा जा सकता था। (२) राष्ट्रसंघ के उद्देश्य में और उसके संगठन में विरोध था। विश्व की राजनीति का केन्द्र एशिया की ओर बढ़ता जा रहा था किन्तु राष्ट्र संघ के सूत्र पश्चिमी राष्ट्रों के हाथ में थे। अमेरिका जैसा शक्तिशाली देश आरम्भ में ही राष्ट्रसंघ से अलग रहा और रूस भी बहुत समय बाद आया और बहुत कम समय के लिये राष्ट्र संघ में टिक सका। इस प्रकार पूर्व के देशों को उचित स्थान राष्ट्रसंघ में तो दिया ही नहीं, पश्चिमी के देशों का भी उचित प्रतिनिधित्व नहीं था। (३) [illegible] के सञ्चालन करने वाले, बड़े बड़े राष्ट्र अपने संकीर्ण स्वार्थों के आगे [illegible] बैठे थे। जब इटली जापान और जर्मनी अथवा अपने

राष्ट्रसंघ की दुर्बलताएं

आप को जनतन्त्र और विश्व शांति के अग्रदूत बताने वाले इंगलैण्ड और फ्रांस अपने अपने स्वार्थ साधन में लगे हुए थे तो संसार का सामूहिक हित युद्ध की बलिवेदी पर स्वाहा हो गया तो इसमें क्या आश्चर्य हो सकता है।

राष्ट्रसंघ के बड़े बड़े सदस्यों के स्वार्थ के कारण राष्ट्रसंघ निरंतर पतन और असफलता की ओर बढ़ता गया। दुनिया द्वितीय विश्व युद्ध की ज्वाला में जल उठी और राष्ट्रसंघ भी उसी में भस्म हो गया। अतः ठीक ही कहा गया है कि राष्ट्रसंघ का इतिहास एक ऐसी नदी की भांति था जो आशाओं के उच्च शिखर से निकलकर निराशा के मरुस्थल में जा कर लुप्त हो जाती है।

(२) संयुक्त राष्ट्र संघ

प्रथम विश्व युद्ध के अन्त में राष्ट्रसंघ (League of Nations की) स्थापना हुई थी। किन्तु राष्ट्रसंघ अपने विश्व शांति के उद्देश्य में सफलता प्राप्त न कर सका। उस की स्थापना को पूरे २० वर्ष भी न हो पाये थे कि सितम्बर १६३६ को दूसरा महायुद्ध छिड़ गया। युद्ध काल

स्थापना की कहानी में धुरी राष्ट्रों (इटली, जर्मनी और जापान) के

विरुद्ध लड़ने वाले राष्ट्रों ने सहयोग से काम किया, और मित्र राष्ट्रों का यही युद्धकालीन सहयोग बाद में बढ़ कर और कुछ बदल कर संयुक्त राष्ट्रसंघ के रूप में प्रतिफलित हुआ। लेकिन यह एकाक नहीं हो गया। इसके निर्माण की भी एक कहानी है। ७ जनवरी सन् १६४१ को अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने कांग्रेस को दिये गये अपने संदेश में युद्धोपरांत दुनिया में "चार स्वतन्त्रताएं" प्राप्त कराने का ध्येय प्रकट किया— (१) भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, (२) धर्म एवं उपासना की स्वतन्त्रता, (३) आर्थिक अभाव और निर्धनता से स्वतन्त्रता और (४) भय से स्वतन्त्रता। इसके पश्चात् १४ अगस्त, १६३१ को रूजवेल्ट और चर्चिल ने एटलान्टिक चार्टर की घोषणा की। इस चार्टर द्वारा आठ सिद्धान्त रखे गये जिनका उद्देश्य विश्व में शांति की स्थापना, तथा प्रत्येक देश के अन्तिम निर्णय के अधिकार को स्वीकार करना था। अक्टूबर, १६४३ में रूस, इंगलैण्ड और अमेरिका के विदेश मंत्रियों का मास्को में सम्मेलन हुआ। इसमें युद्ध समाप्ति की शर्तों की घोषणा की गई, और साथ ही एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था स्थापित

ठन के सम्बन्ध में विचार किया गया। सन् १९४४ ई० में वाशिंगटन राज्य में डुम्बर्टन ओक्स नामक स्थान में मित्र राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की एक बैठक हुई जिसमें इंगलैण्ड अमेरिका और रूस के प्रतिनिधियों ने एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की योजना बनाई। इसको डुम्बर्टन ओक्स योजना कहते हैं। अप्रैल सन १९४५ में सेन फ्रांसिस्को में मित्र राष्ट्रों का फिर एक सम्मेलन हुआ जिस में डुम्बर्टन आक्स योजना पर विचार विमर्श हुआ और एक घोषणा पत्र बनाया गया जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ का घोषणा पत्र (United Nations Charter) कहते हैं। प्रारम्भ में इस घोषणा-पत्र पर ५१ राष्ट्रों ने हस्ताक्षर किये और २४ अक्टूबर १९४५ को संयुक्त राष्ट्र-संघ की नींव पड़ी।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणापत्र की स्थापना में कहा गया है कि युद्ध के भय को सदा के लिए मिटा देने, व्यक्ति के तथा राष्ट्र के अधिकारों की रक्षा करने, न्याय की स्थापना करने एवं सामाजिक उन्नति उद्देश्य और जीवन स्तर ऊंचा उठाने को संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई है।

घोषणापत्र की धारा एक में निम्नलिखित उद्देश्य बतलाये गये हैः—

१. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा की स्थापना।

२. राष्ट्र के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास करना।

३. *अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय समस्याओं* को हल करने के लिए राष्ट्र में सहयोग स्थापित करना और व्यक्ति की स्वतन्त्रता और अधिकारों के प्रति सम्मान उत्पन्न करना।

४. इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न राष्ट्र के कार्यों में सयोजन करने के लिए एक केन्द्र रूप से कार्य करना।

जिन सिद्धान्तों के अनुसार संयुक्त राष्ट्रसंघ कार्य करता है उनका उल्लेख धारा दो में इस प्रकार किया गया है —

(क) सदस्य राष्ट्रों की सर्वभौमता और समानता, अक्षुण्ण है;

(ख) प्रत्येक सदस्य राष्ट्र चार्टर के अनुसार अपने कर्तव्य पालन के लिए वचन-बद्ध है;

(ग) सदस्य राष्ट्र आपसी विवादों का शान्तिपूर्ण ढंग से फैसला करने के लिए वचन बद्ध हैं;

(घ) सदस्य राष्ट्र अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में एक दूसरे के विरुद्ध न युद्ध करेंगे और न युद्ध की धमकी ही देंगे,

(ङ) सदस्य राष्ट्र संघ को इस की कार्यवाही में प्रत्येक प्रकार का सहयोग देंगे,

(च) शान्ति और सुरक्षा बनाये रखने के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ व्यवस्था करेगा कि जो देश सदस्य नहीं हैं वे भी चार्टर के सिद्धान्त के अनुसार आचरण करेंगे;

(छ) शान्ति रक्षा के लिए जब तक आवश्यक न हो संयुक्त राष्ट्रसंघ किसी भी देश के 'आन्तरिक क्षेत्र' में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

सदस्यता

संयुक्त राष्ट्रसंघ चार्टर के अध्याय दो में सदस्यता के नियम दिये गये हैं। इस अध्याय की धारा ३ के अनुसार मौलिक सदस्य वे हैं, जिन्होंने सैन फ्रांसिस्को के सम्मेलन में भाग लिया था, अथवा जिन्होंने संयुक्त राष्ट्रसंघ की प्राथमिक घोषणा पर हस्ताक्षर किए थे और बाद में नये घोषणा-पत्र पर अपनी स्वीकृति दे दी थी। इन मौलिक सदस्यों के अतिरिक्त संसार का प्रत्येक राष्ट्र चार्टर में निहित कर्तव्यों को स्वीकार कर संघ का सदस्य बन सकता है। यदि संघ के सदस्यों की राय में वह 'शान्ति-प्रिय' हो तथा उसमें सदस्यता की जिम्मेदारियाँ निभाने की 'इच्छा व सामर्थ्य' हो। किसी नए राष्ट्र के प्रवेश के लिए पहले सुरक्षा परिषद् साधारण सभा से सिफारिश करती है, उसके बाद साधारण सभा कम से कम दो तिहाई बहुमत से अपना समर्थन प्रकट करती है सुरक्षा परिषद में इस प्रश्न पर पाँच बड़े राष्ट्रों में प्रत्येक के निषेधाधिकार (VETO Power) प्रयोग करने का अधिकार है। कई देशों को बहुत समय तक संघ की सदस्यता प्राप्त न हो सकी थी, क्योंकि कभी रूस और कभी अमेरिका इस सम्बन्ध में रुकावट डालते रहे। लाल चीन को अमेरिकी गुट के इसी विरोध के कारण अब तक सदस्य नहीं बनाया गया है।

यदि किसी राष्ट्र पर सुरक्षा परिषद द्वारा दण्डात्मक कार्यवाही की गई हो तो पाचों बड़े राष्ट्रों की सहमति से सुरक्षा परिषद द्वारा की गई सिफारिश पर साधारण सभा दो तिहाई बहुमत से उसे सदस्यता के अधिकारों और सुविधाओं से वञ्चित कर सकती है, किन्तु यदि कोई राष्ट्र चार्टर के आदर्शों व सिद्धान्तों की लगातार अवहेलना करता है तो सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर साधारण सभा उसे निकाल देगी। चार्टर में सदस्यता से त्याग-पत्र देने के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है परन्तु यह स्पष्ट है कि प्रत्येक राष्ट्र इस सम्बन्ध में स्वतन्त्र है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का आर्थिक नियन्त्रण साधारण सभा के हाथ में है क्योंकि यह बजट स्वीकार करती है। संयुक्त राष्ट्र संघ का व्यय सदस्य राष्ट्रों से चलता है। यह निश्चय महासभा अपनी एक विशेष समिति की

बजट राय से करती है कि किस सदस्य से कितना चन्दा लिया जाय।

संशोधनः—संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणा पत्र में संशोधन के संबन्ध में यह कहा गया है कि यदि महासभा के दो तिहाई सदस्य, जिन में सुरक्षा परिषद के कोई सात सदस्य सम्मिलित हों, चाहें तो आवश्यक संशोधन करने के लिये एक सभा बुलाई जा सकती है। यह भी कहा गया है कि यदि महासभा के दसवें वार्षिक अधिवेशन तक इस प्रकार की सभा न बुलाई जाय तो वह अधिवेशन साधारण बहुमत और सुरक्षा परिषद के सात सदस्यों की सहमति से इस प्रकार की सभा बुला सकता है। परन्तु इस प्रकार की सभा में स्वीकृति संशोधन क्रियान्वित तभी हो सकेंगे जब कि पांचों बड़े राष्ट्रों में से कोई भी उन पर निशेधाधिकार का प्रयोग न करे।

संयुक्त राष्ट्र संघ का कार्यक्षेत्र, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के सारे क्षेत्र के समान व्यापक है। इसलिए इसका कार्य भी विविध और बहुत अधिक है। इस विस्तृत कार्य को सम्पन्न करने के लिए चार्टर के द्वारा ६ मुख्य संस्थाएं स्थापित की गई हैं—

(१) महासभा (General Assembly)
(२) सुरक्षा परिषद् (Security Council)

(३) आर्थिक और सामाजिक परिषद (Economic and Social Council)
(४) संरक्षण परिषद् Trusteeship Council)
(५) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय International Court of Justice)
(६) सचिवालय (Secretariat)

महासभा:—संयुक्तराष्ट्र संघ की सब से अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण और केन्द्रीय संस्था उस की महासभा है। चार्टर की ७वीं धारा जिस में संघ की जिन मुख्य संस्थाओं का उल्लेख है उन में महासभा का स्थान सर्व प्रथम है।

मतदान:—साधारण सभा के सदस्य राष्ट्रों में समानता का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है प्रत्येक सदस्य राष्ट्री अधिक से अधिक पांच प्रतिनिधि भेज सकता है, पर पूरे प्रतिनिधि मण्डल का वोट केवल एक ही होता है।

अधिवेशन:—महासभा का अधिवेशन वर्ष में कम से कम एक बार अवश्य होना चाहिये। नियमानुसार यह अधिवेशन प्रतिवर्ष दो सितम्बर के बाद आने वाले पहले मंगलवार से होता है किन्तु यदि साधारण सभा के सदस्य बहुमत से मांग करें अथवा सुरक्षा परिषद चाहे तो संयुक्त राष्ट्रसंघ का महामन्त्री १५ दिन के भीतर महासभा का विशेष अधिवेशन बुला सकता है। अधिवेशन कार्यवाही के लिए अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी, चीनी और स्पेनिश, ये पांच भाषाएं स्वीकार की गई हैं।

महासभा प्रत्येक अधिवेशन के लिये एक अध्यक्ष और सात उपाध्यक्ष चुनती है। अपने विस्तृत कार्य को आसानी से करने के लिये महासभा कई समितियां भी स्थापित करती है। इन में से निम्नलिखित मुख्य है :—

१. राजनीतिक तथा सुरक्षा समिति;
२. आर्थिक और वित्तीय समिति,
३. सामाजिक व सांस्कृतिक समिति,
४. संरक्षण समिति;
५. प्रबन्ध व बजट समिति,
६. कानून समिति।

कार्यः—संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में महासभा के कार्य ऐच्छिक और अनिवार्य दो तरह के बताये गये हैं। ऐच्छिक कार्य वे हैं जो महासभा शांति स्थापना, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के खतरों को दूर करने तथा सुरक्षा और निःशस्त्रीकरण के लिए सब देशों में सहयोग की दृष्टि से समय समय पर कर सकती है। इन कार्यों में महासभा पर एक प्रतिबन्ध लगा हुआ है। महासभा ऐसे किसी मामले में जो सुरक्षा परिषद् के सामने ही सिफारिश नहीं कर सकती जब तक कि सुरक्षा परिषद उस सम्बन्ध में महासभा की राय न मांगे।

महासभा के अनिवार्य कार्य निम्नलिखित हैं—बजट पास करना, सुरक्षा परिषद आदि संस्थाओं और संगठनों के प्रतिवेदन (Reports) पर विचार करना, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के लिये आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक शिक्षा व स्वास्थ्य के सम्बन्ध में अध्ययन और खोज करवाना और प्रत्येक व्यक्ति के बिना जाति,लिंग भाषा व धर्मभेद के मानव अधिकार के उपभोग में सहायता करना आदि।

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए महासभा द्वारा की गई सिफारिशों का स्वीकार करना या न करना प्रत्येक सदस्य राष्ट्र की इच्छा पर निर्भर है। उस के पीछे कोई कानूनी शक्ति नहीं है परन्तु फिर भी विश्व की सर्वाधिक प्रतिनिधित्व करने वाली विशाल संस्था होने के कारण उसकी बातों का नैतिक प्रभाव बहुत व्यापक और बलवान है।

महासभा अपने अध्यक्ष, उपाध्यक्षों और समितियों के चुनाव तो करती ही है, सुरक्षा परिषद् के ६ अस्थायी सदस्य राष्ट्रों का दो वर्षों के लिए चुनाव भी वही करती है तथा आर्थिक व सामाजिक परिषद के सदस्यों को भी तीन वर्ष के लिए चुनती है। संरक्षण परिषद के कतिपय सदस्य भी उसी के द्वारा चुने जाते हैं। संरक्षण परिषद की सिफारिश के अनुसार न्यायालय के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के महामन्त्री की नियुक्ति भी वही करती है। महासभा अपने वार्षिक अधिवेशन में संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्था की रिपोर्ट पर विचार करती है जिनमें सुरक्षा परिषद् की रिपोर्ट सम्मिलित है। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में ५१ सदस्य अर्थात

हों और मत दें उनके बहुमत से कोई भी निर्णय किया जा सकता है। चार्टर की १८ वीं धारा के द्वारा अवश्य इस सम्बन्ध में रोक लगाई गई है। महत्वपूर्ण प्रश्नों पर उपस्थित सदस्यों का २/३ बहुमत आवश्यक माना गया है।

संविधान में संशोधन करने के लिए महासभा में सब सदस्यों का दो तिहाई मत आवश्यक माना गया है।

सुरक्षा परिषद्

सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्र सघ का सब से अधिक शक्तिशाली और सक्रिय अंग है। महासभा यद्यपि सर्वाधिक प्रतिनिधिपूर्ण संस्था है फिर भी वह सुरक्षा परिषद् के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। सुरक्षा परिषद् के ऊपर *नियन्त्रण करने वाली अन्य कोई संस्था* नहीं है।

सदस्यता—पाँच 'बड़े राष्ट्र' इसके स्थायी सदस्य हैं—अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस और चीन। इनके अतिरिक्त ६ सदस्यों का निर्वाचन महासभा करती है, ये अस्थायी सदस्य दो वर्ष के लिए चुने जाते हैं।

सुरक्षा परिषद् में प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को अपना एक प्रतिनिधि रखने का अधिकार है।

कार्य और अधिकार—घोषणापत्र (चार्टर) में कहा गया है, "शीघ्रता पूर्वक और प्रभावशाली कदम उठाने के लिए संयुक्त राष्ट्र-संघ के सदस्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा को बनाये रखने की प्रारम्भिक जिम्मेदारी सुरक्षा परिषद् को सौंपते हैं।" इसलिए परिषद् के सदस्यों का एक एक प्रतिनिधि हमेशा संयुक्त *राष्ट्र-संघ के केन्द्र स्थान पर बना रहता है। कोई भी प्रश्न सामने आने पर तुरन्त* उस पर विचार करने की दृष्टि से परिषद् की बैठक सप्ताह में सातों दिन हुआ करती है।

अपने सामने पेश किये हुए विषयों पर तो परिषद् विचार करती ही है; यदि दुनिया में कहीं पर भी अन्तर्राष्ट्रीय शांति भंग होने की आशंका हो तो बिना सम्बन्धित राष्ट्रों की प्रार्थना के भी परिषद् उस पर विचार और कार्यवाही कर सकती है चाहे वे राष्ट्रसंघ के सदस्य हों या न हों। यदि सम्बन्धित देश परिषद् के सामने अपना मामला पेश नहीं करें तो भी महामन्त्री या महासभा या सुरक्षा परिषद् का कोई भी सदस्य परिषद् का ध्यान इस ओर आकर्षित कर सकते हैं।

स्वायत्त शासन विहीन (Non self-governing territories) प्रदेशों
सवाल सामने था। उनके सुशासन, विकास और व्यवस्था की देख-रेख कर
लिए संरक्षण परिषद् की स्थापना की गई।

कार्य—संरक्षण परिषद् की देख-रेख में निम्नलिखित प्रकार के प्र
आते हैं—

१. वे प्रदेश जो प्रथम महायुद्ध के अन्त में राष्ट्र संघ (League
Nations) द्वारा बड़े राष्ट्रों के संरक्षण (Mandate) में रक्खे गये थे।

२. द्वितीय महायुद्ध के अन्त में पराश्त देशों से छीने गये प्रदेश।

३. वे स्वायत्त-शासन-विहीन प्रदेश जो शासक राष्ट्र द्वारा स्वेच्छा
संरक्षण-परिषद् की देख-रेख के अधीन दिये गये हैं।

प्रति वर्ष शासक राज्यों को अपने अधीन संरक्षित प्रदेश का विव
संरक्षण परिषद् के पास भेजना पड़ता है। यदि किसी शासित प्रदेश के निवा
असन्तुष्ट हों तो वे परिषद् के पास अपना प्रार्थना पत्र भेज सकते हैं, परि
उस पर विचार कर सकती है। शासक देश की अनुमति से संरक्षण परि
शासित प्रदेशों का निरीक्षण भी कर सकती है, इस के लिए वह अपने प्रतिनि
मण्डल भेज सकती है।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (International Court of Justice)
सं० रा० संघ के एक प्रमुख अंग के रूप में कार्य करता है। इनमें अन्तर्राष्ट्री

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय

कानून से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों पर ही विचार कि
जाता है, राजनीतिक झगड़ों पर नहीं। संयुक्त राष्ट्र स
का प्रत्येक सदस्य इस न्यायालय का भी सदस्य हो
है। बाहरी राष्ट्रों को भी सदस्य बनाने की व्यवस्था क
गई है। कोई भी सदस्य किसी अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी झगड़े को न्यायालय के सम
प्रस्तुत कर सकता है। इसके अतिरिक्त सुरक्षा परिषद् भी किसी कानूनी विवाद क
न्यायालय के सामने रख सकती है। सं० रा० संघ की अन्य संस्थाएं भी कि
कानूनी प्रश्न पर इस न्यायालय से परामर्श ले सकती हैं।

संगठन और कार्य पद्धति—अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में १५ न्यायाधीश
होते हैं। एक ही राज्य के दो व्यक्ति एक समय में इस में न्यायाधीश न

जा सकते। वे न्यायाधीश महासभा और सुरक्षा परिषद् द्वारा मिल कर चुने जाते हैं। न्यायाधीशों का चुनाव ६ वर्षों के लिए होता है। न्यायालय के सदस्य अपने अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का चुनाव स्वयं करते हैं। इन दोनों का कार्यकाल ३ वर्ष होता है। वे अपने पदों पर पुनर्निर्वाचित भी हो सकते हैं। न्यायालय रजिस्ट्रार और अन्य अधिकारियों की नियुक्ति करता है। बैठक में गणपूर्ति (Quorum) के लिए नौ न्यायाधीशों की उपस्थिति अनिवार्य है। न्यायालय के कार्य के लिए फ्रेंच और अंग्रेजी भाषाएं स्वीकृत है। किसी पक्ष की प्रार्थना पर अन्य भाषा के प्रयोग की स्वीकृति भी न्यायालय दे सकता है।

निर्णय कैसे लागू होता है:—संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रत्येक सदस्य राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का निर्णय मानने को वचन-बद्ध है। न्यायालय के निर्णयों को कार्यान्वित करने का अधिकार सुरक्षा परिषद् को है। यदि कोई राष्ट्र इस न्यायालय के निर्णय को स्वीकार नहीं करता तो सुरक्षा परिषद् यह विचार करती है कि क्या उस के कारण शान्ति भंग की आशा है। यदि उसका निर्णय शान्ति-भंग के पक्ष में हुआ तो उसे उस राष्ट्र के विरुद्ध कार्यवाही करने का अधिकार है। इस कार्यवाही का विवरण हम पहले दे चुके हैं।

सचिवालय (Secretariat)—संयुक्त राष्ट्र संघ की छटी मुख्य संस्था उसका सचिवालय अथवा कार्यालय है। संघ का विशाल प्रबन्ध कार्य सचिवालय के द्वारा संचालित और सम्पन्न होता है। इसका काम दूसरी मुख्य संस्थाओं और विशाल समितियों आदि के द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार कार्यक्रम की व्यवस्था करना है सचिवालय का प्रमुख अधिकारी **महामन्त्री** (Secretary General) कहलाता है जो सुरक्षा-परिषद् की सिफारिश पर महासभा के द्वारा नियुक्त किया जाता है। श्री त्रिग्वेली इसके पहले महामन्त्री थे और अब श्री हेमर्शोल्ड (Dag Hammarskjoeld) हैं। महामन्त्री का कार्य महासभा एवं परिषदों के सम्बन्ध में व्यवस्था करना है। उसे स० रा० संघ के सदस्य राष्ट्रों तथा संघ की विभिन्न संस्थाओं, विशिष्ट समितियों, समितियों, उप समितियों आदि से अपने कार्यालय के द्वारा सम्बन्धित रहना पड़ता है। महामन्त्री को संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यों के सम्बन्ध में महासभा को एक वार्षिक प्रतिवेदन (Report) देना पड़ता है। उसे यह अधिकार है कि अन्तर्राष्ट्रीय

शान्ति की दृष्टि से खतरनाक स्थिति की ओर सुरक्षा परिषद् का ध्यान आक-
र्षित करें।

सचिवालय का कार्य आठ विभागों में विभक्त है। प्रत्येक विभाग
एक सहायक महामंत्री (Assistant Secretary General) और अ
भी कर्मचारी हैं। विभागों के नाम ये हैं:—१. सुरक्षा परिषद् सम्बन्धी का
का विभाग, २. आर्थिक मामलों का विभाग, ३. सामाजिक कार्यों का विभ
४. संरक्षक और स्वशासन विहीन प्रदेशों सम्बन्धी सूचना विभाग, ५. सार्वज
सूचना सम्बन्धी विभाग, ६. सम्मेलन विभाग, ७. सामान्य सेवाओं और प्रब
सम्बन्धी विभाग और ८. वित्त व्यवस्था सम्बन्धी विभाग।

महासभा द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार महामन्त्री सचिवालय के
कर्मचारियों की नियुक्ति करता है। नियुक्ति में दो आधारभूत बातों का यथा
सम्भव ध्यान रखने की व्यवस्था है—१. योग्यतम व्यक्तियों का चुनाव; २.
यथासम्भव विस्तृत भौगोलिक आधार पर कर्मचारियों का चुनाव। कर्मचारी
चाहे किसी राज्य के नागरिक हों अपनी नियुक्ति के समय प्रतिज्ञा करते हैं कि
वे राष्ट्रसंघ के हित की दृष्टि से ही आचरण करेंगे।

(३) संयुक्त राष्ट्र संघ का मूल्याङ्कन

संयुक्त राष्ट्र संघ का भूत और निकट भविष्य बहुत अधिक सुनहरा
नहीं दिखाई पड़ता। इसके लिए प्रसिद्ध लेखक शुमा (Schuman)
ने संयुक्त राष्ट्र संघ के यन्त्र में और उस के चलाने वालों (दोनों में खराबी
बताई है। सदस्य राष्ट्रों ने राज्य प्रभुता के सिद्धांत का परित्याग नहीं किया
है। वे एक दूसरे पर विश्वास नहीं करते हैं। किसी निर्णय
के सम्बन्ध में पांच बड़े राष्ट्रों के हाथ में निषेधाधिकार की
शक्ति है और कई राज्य अपने पर लगाये गये आरोपों को
अपने आन्तरिक प्रश्न बता कर बचाना चाहते हैं। आज की
दो महान् शक्तियां—रूस और अमेरिका अपने स्वार्थों के कारण दुनिया के
देशों को अपनी-अपनी गुटबन्दी में लेने पर तुली हुई हैं। बात यह है कि संयुक्त
... जब बना तो अणु युग आरम्भ नहीं हुआ था लेकिन इस संघ के जन्म

परिवर्तन की आवश्यकता

में बहुत कम दिन बाद विश्व के सामने प्रथम अणु बम का विस्फोट युद्ध में हुआ। कुछ ही दिन पूर्व रूस ने [illegible] उद्जन छोड़े हैं। इस प्रकार विज्ञान और यन्त्रकला के क्षेत्र में मनुष्य बहुत आगे बढ़ गया है परन्तु हमारे विचार और हमारी भावनाएं युग की माँग से अब भी बहुत पीछे हैं। विभिन्न राष्ट्र पुरानी विचारधारा के आधार पर नया संसार बनाने की भ्रांत कल्पना कर रहे हैं। अणु बमों और हाइड्रोजन बमों तथा राकेट और बिजली की युद्ध सामग्री से सज्जित हो वे संकुचित राष्ट्रीयता और राज्य प्रभुता की कोठरी में बैठे बैठे विश्व शांति का स्वर्णिम अरुणोदय देखने की बात करते हैं। विश्व शांति के लिए अभी अंतर्राष्ट्रीय संगठन की आवश्यकता है और उससे भी बढ़कर आवश्यकता है दृष्टि परिवर्तन की।

असफलता

बड़े दुःख के साथ हमें यह मानना पड़ता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ आशानुकूल कार्य नहीं कर रहा है। विजेता शक्तियों द्वारा और जापान के साथ सन्धि करने में पिछले महायुद्ध के बाद बहुत समय बिता दिया गया और जापान के साथ तो तब भी सर्वसम्मत एक सन्धि नहीं हो सकी जर्मन अभी त्रिखंडित होकर पड़ा रो रहा है और उसके साथ एक सन्धि नहीं हो पाई है। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में जहां मधुर वातावरण बनना चाहिये उनकी जगह तनाव और युद्ध की आशंका ही दिखाई पड़ती है। इसी शीतयुद्ध के फलस्वरूप कोरिया में हिंसा का ताण्डव हुआ और अभी उसके सिर और धड़ अलग अलग पड़े हुए हैं। इटली और युगोस्लाविया के बीच ट्रीस्ट का झगड़ा हल नहीं हुआ। मिश्र और ब्रिटेन का झगड़ा लम्बे समय के बाद बहुत कुछ हल हो जाने पर भी मनोमालिन्य और तनाव बना हुआ है। साइप्रस यूनान के साथ मिलने को ब्रिटेन के पैरों तले छटपटा रहा है। चीन की करोड़ों जनता का संयुक्त राष्ट्र संघ में अब तक भी कोई प्रतिनिधित्व नहीं हो पाया है और मुट्ठी भर लोगों के शासक च्यांग काई शेक की सरकार के हाथ में वीटो पावर (निषेधाधिकार) तो ऐसा हास्यास्पद लगता है जैसे छोटे बालक के हाथ में बहुत बड़ी तलवार सौंप दी गई हो। काश्मीर में आक्रमणकारी राज्य के खिलाफ कार्यवाही न कर के संयुक्त राष्ट्रसंघ ने पक्षपातपूर्ण नीति का

के इटली के उपनिवेश प्रदेशों में से लीबिया को जो स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है और सोमालीलैंड के दस वर्ष के संरक्षणकाल के बाद स्वाधीनता देने का वचन दिया गया तथा इरीट्रिया का इथोपिया के संघ में स्वायत्त राज्य बनाया गया। विश्व में शान्ति स्थापित करना इन सब का श्रेय संयुक्त राष्ट्र संघ को है। संयुक्त राष्ट्र संघ की संरक्षण परिषद् पराधीन देशों के लिए काम कर रही है, उस से इस दिशा में और भी आशायें सहज ही की जा सकती हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ केवल राजनैतिक क्षेत्र में ही काम नहीं करता बल्कि उस के घोषणा पत्र में जो उद्देश्य बताये गये हैं उनमें सामाजिक और आर्थिक प्रयत्नों को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसलिये संयुक्त राष्ट्र संघ की सफलता पर विचार करते समय हमें इस ओर भी ध्यान देना चाहिये। इस संघ ने इस प्रसिद्ध कथन के तथ्य को गहराई से समझ लिया है—"Poverty anywhere is a danger to prosperity everywhere." इसलिये संघ की प्रमुख संस्थाओं में आर्थिक और सामाजिक परिषद् का निर्माण किया गया है। इस परिषद् के प्रयत्नों से तथा इस से सम्बन्ध विशिष्ट समितियों की सहायता से मनुष्य समाज के कल्याण के लिये बहुत काम किया गया है। महायुद्ध के कारण जर्जरित और साम्राज्यवाद के कारण शोषित देशों के निर्माण और विकास कार्य में सलाह और सम्पत्ति के द्वारा महत्वपूर्ण योग दिया गया है। मानवीय क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा किये हुये कामों की सूची मात्र ही बहुत बड़ी हो जायेगी। मानव अधिकार कमीशन ने मनुष्य मात्र के अधिकारों का जो घोषणापत्र तैयार किया है वह सब देशों के लिये नागरिक स्वतन्त्रता की दृष्टि से बड़ा आदर्शपूर्ण है। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय कानून के सिद्धान्तों का विकास बड़ा महत्वपूर्ण है। विभिन्न देशों के खेतों, खानों, वनों, नदियों, रेलों और कारखानों आदि के विकास के लिये अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से कई ऋण प्राप्त हुए हैं। अधिक अच्छा हो कि एक देश के द्वारा दूसरे देशों को जो सहायता दी जाय वह सब संयुक्त राष्ट्रसंघ की मारफत [illegible] जाय ताकि उस में पक्षपात और अनुचित शर्तों का भय न रहे। विशिष्ट [illegible] आर्थिक विकास निधि (SUNFED) की स्थापना इस दिशा [illegible] कदम सिद्ध हो सकती है। संयुक्तराष्ट्र शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति

संघ, विश्व स्वास्थ्य संघ, संयुक्तराष्ट्रीय बाल संकट निधि (UNICEF), अन्तर्राष्ट्रीय शरणार्थी संघ, खाद्य और कृषि संघ आदि संस्थाएं मनुष्य जाति के लिये विभिन्न क्षेत्रों में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। इसलिये हमें कहना होगा कि राजनीतिक क्षेत्र में यद्यपि संयुक्तराष्ट्र संघ आशानुकूल स्तर तक उठने में असफल रहा है किन्तु अराजनैतिक क्षेत्र में उसे उच्चकोटि की सफलता प्राप्त हो रही है।

यह सब देख चुकने के बाद हमें यह उक्ति उचित नहीं लगती कि संयुक्त राष्ट्रसंघ को समाप्त कर देना चाहिये। यद्यपि यह संघ विश्व शान्ति के लिये निःशस्त्रीकरण नहीं कर पाया है फिर भी अपने दस-ग्यारह वर्ष के कार्य-काल में इसने दुनियाँ को कई ऐसी स्थितियों से बचाया है संयुक्त राष्ट्र संघ जबकि बहुत बड़े पैमाने पर युद्ध छिड़ सकते थे। अणु की आवश्यकता अस्त्र-शस्त्रों के उपयोग और परीक्षण पर यद्यपि रोक नहीं लगाई जा सकती है फिर भी इससे भय के प्रति दुनिया के जनमत को काफी जाग्रत करने में योग दिया है। आदर्शवादिता के आधार पर निषेधाधिकार की कटु आलोचना की जा सकती है किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से कुछ सीमा तक उस की आवश्यकता स्वीकार की जा सकती है। संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता और निषेधाधिकार धारण करने वाले राष्ट्र कौन हो— इन बातों पर वर्तमान संयुक्त राष्ट्र संघ को आड़े हाथों लिया जा सकता है। इसी प्रकार सदस्य संख्या और मतदान के सम्बन्ध में विभिन्न देशों की जनसंख्या को आनुपातिक महत्व देने के सम्बन्ध में भी बहुत सही बातें रक्खी जा सकती हैं परन्तु जो कुछ दोष हमें दिखाई पड़ते हैं उनका उत्तरदायित्व संयुक्त राष्ट्र संघ पर नहीं इस के संचालकों पर है। अराजनीतिक क्षेत्रों में राजनीतिक क्षेत्रों की अपेक्षा जो विशेष कार्य हुए हैं तथा उन में और बहुत आगे बढ़ा जा सकता है; आवश्यकता है विभिन्न देशों के बीच सहयोग की। इसलिए सच पूछा जाय तो हृदय परिवर्तन की आवश्यकता पड़ेगी। जब सब राज्य अन्तर्राष्ट्रीय हित और शान्ति की दृष्टि से पृथक्-पृथक् राज्य प्रभुता का त्याग कर के सम्पूर्ण विश्व का एक संघ राज्य बनाने को तैयार होंगे तभी सन्तोषजनक स्थिति कही जा सकेगी। ग्राम पंचायतों से और प्राचीन भारत तथा यूनान के छोटे-छोटे

के इटली के उपनिवेश प्रदेशों में से लीबिया को जो स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है और सोमालीलैण्ड के दस वर्ष के सुरक्षणकाल के बाद स्वाधीनता देने का वचन दिया गया तथा इरीट्रिया का इथोपिया के संग में स्वायत्त राज्य बनाया गया। मिश्र में शान्ति स्थापित करना इन सब का श्रेय संयुक्त राष्ट्र संघ को है। संयुक्त राष्ट्र संघ की संरक्षण परिषद् पराधीन देशों के लिए काम कर रही है, उस से इस दिशा में और भी आशायें सहज ही की जा सकती हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ केवल राजनैतिक क्षेत्र में ही काम नहीं करता बल्कि उस के घोषणा पत्र में जो उद्देश्य बताये गये हैं उनमें सामाजिक और आर्थिक प्रयत्नों को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसलिये संयुक्त राष्ट्र संघ की सफलता पर विचार करते समय हमें इस ओर भी ध्यान देना चाहिये। इस संघ ने इस प्रसिद्ध कथन के तथ्य को गहराई से समझ लिया है—"Poverty anywhere is a danger to prosperity everywhere." इस लिये संघ की प्रमुख संस्थाओं में आर्थिक और सामाजिक परिषद् का निर्माण किया गया है। इस परिषद् के प्रयत्नों से तथा इस से सम्बन्ध विशिष्ट समितियों की सहायता से मनुष्य समाज के कल्याण के लिये बहुत काम किया गया है। महायुद्ध के कारण जर्जरित और साम्राज्यवाद के कारण शोषित देशों के निर्माण और विकास कार्य में सलाह और सम्पत्ति के द्वारा महत्वपूर्ण योग दिया गया है। मानवीय क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा किये हुये कार्यों की सूची [illegible] बहुत बड़ी हो जावेगी। मानव अधिकार कमीशन ने मनुष्य मात्र के [illegible] जो घोषणापत्र तैयार किया है वह सब देशों के लिये नागरिक दृष्टि से बड़ा आदर्शपूर्ण है। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के द्वारा कानून के सिद्धान्तों का विकास बड़ा महत्वपूर्ण है। विभिन्न देशों [illegible] खानों, वनों, नदियों, रेलों और कारखानों आदि के विकास के लिये बैंक से कई ऋण प्राप्त हुए हैं। अधिक अच्छा हो कि एक देश के [illegible] देशों को जो सहायता दी जाय वह सब संयुक्त राष्ट्रसंघ की मारफत [illegible] उस से पक्षपात और अनुचित शर्तों का भय न रहे। विशिष्ट [illegible] आर्थिक विकास निधि (SUNFED) की स्थापना इस दिशा [illegible] कदम सिद्ध हो सकती है। संयुक्तराष्ट्र शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति

कष, विश्व स्वास्थ्य संघ, संयुक्तराष्ट्रीय बाल सङ्कट निधि (UNICEF), अन्तर्राष्ट्रीय शरणार्थी संघ, खाद्य और कृषि संघ आदि संस्थाएं मनुष्य जाति के लिये विभिन्न क्षेत्रों में बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। इसलिये हमें कहना होगा कि राजनीतिक क्षेत्र में यद्यपि संयुक्तराष्ट्र संघ आशानुकूल स्तर तक उठने में असफल रहा है किन्तु अराजनैतिक क्षेत्र में उसे उच्चकोटि की सफलता प्राप्त हो रही है।

यह सब देख चुकने के बाद हमें यह उक्ति उचित नहीं लगती कि संयुक्त राष्ट्रसंघ को समाप्त कर देना चाहिये। यद्यपि यह सब विश्व शान्ति के लिये निःशस्त्रीकरण नहीं कर पाया है फिर भी अपने दस-बारह वर्षों के कार्य-काल में इसने दुनियाँ को कई ऐसी स्थितियों से बचाया है संयुक्त राष्ट्र संघ बल्कि बहुत बड़े पैमाने पर युद्ध छिड़ सकते थे। अणु की आवश्यकता अस्त्र-शस्त्रों के उपयोग और परीक्षण पर यद्यपि रोक नहीं लगाई जा सकती है फिर भी इसने भय के प्रति दुनिया के जनमत को काफी जाग्रत करने में योग दिया है। आदर्शवादिता के आधार पर निषेधाधिकार की कटु आलोचना की जा सकती है किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से कुछ सीमा तक उस की आवश्यकता स्वीकार की जा सकती है। संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता और निषेधाधिकार धारण करने वाले राष्ट्र कौन हों— इन बातों पर वर्तमान संयुक्त राष्ट्र संघ को आड़े हाथों लिया जा सकता है; इसी प्रकार सदस्य संख्या और मतदान के सम्बन्ध में विभिन्न देशों की जनसंख्या को आनुपातिक महत्व देने के सम्बन्ध में भी बहुत सही बातें रक्खी जा सकती हैं परन्तु जो कुछ दोष हमें दिखाई पड़ते हैं उनका उत्तरदायित्व संयुक्त राष्ट्र संघ पर नहीं इस के संचालकों पर है। अराजनीतिक क्षेत्रों में राजनीतिक क्षेत्रों की अपेक्षा जो विशेष कार्य हुए हैं तथा उन में और बहुत आगे बढ़ा जा सकता है; आवश्यकता है विभिन्न देशों के बीच सहयोग की। इसलिए सच पूछा जाए तो हृदय परिवर्तन की आवश्यकता पड़ेगी। जब सब राज्य अन्तर्राष्ट्रीय हित और शान्ति की दृष्टि से पृथक् पृथक् राज्य-प्रभुता का त्याग कर के सम्पूर्ण विश्व का एक सघ राज्य बनाने को तैयार होंगे तभी सन्तोषजनक स्थिति कही जा सकेगी। ग्राम पंचायतों से और प्राचीन भारत तथा यूनान के छोटे छोटे